विषय-सूची

6 : विपणि अनुसन्धान

7 : प्रमापीकरण एवं श्रेणी बन्धन या वर्गीकरण

8 : विपणन की जोखिमें

9 : स्कन्ध विनिमय

10 : उपज विनिमय विपणि

11 : भारत में कृषि एवं औद्योगिक विपणन

12 : विपणन वित्त

13 : विपणन एवं राज्य

1 विषय-प्रवेश

(INTRODUCTION)

प्रश्न 1. "विपणन का आशय उन पारस्परिक व्यावसायिक क्रियाओं की सम्पूर्ण प्रणाली से है जो कि वर्तमान एवं सम्भावित ग्राहकों को उनकी आवश्यकता सन्तुष्टि की वस्तुओं और सेवाओं के बारे में योजना बनाने, मूल्य निर्धारित करने, प्रवर्तन करने और वितरण करने के लिए की जाती है।" स्पष्ट कीजिए।

"Marketing is a total system of interacting business activities designed to plan price, promote and distribute want satisfying products and services to present and potential customers." Elucidate.

अथवा

"विपणन में वे क्रियायें सम्मिलित होती हैं जो स्थान, समय व अधिकार उपयोगिताओं से मिली हुई हैं।" इस कथन का आलोचनात्मक परीक्षण करते हुए आधुनिक युग में विपणन का महत्व स्पष्ट कीजिए।

"Marketing includes the activities involved in the creation of place, time and possession utilities." Critically examine this statement and explain the importace of marketing in modern age.

अथवा

"विपणन एक आर्थिक कार्य है।" इसकी चर्चा करिये।

"Marketing is an economic function." Discuss.

अथवा

"विपणन उन व्यापारिक गतिविधियों का निष्पादन है जोकि माल और सेवाओं के प्रवाह को उत्पादक से उपभोक्ता की ओर निर्दिष्ट करता है।" व्याख्या कीजिए।

"Marketing is the performance of business activities that direct the flow of goods and services from producer to consumer or user." Discuss.

अथवा

"विपणन को समय, स्थान व स्वत्वाधिकार की उपयोगिताओं के सृजन के रूप में परिभाषित किया गया है।" इस परिभाषा में निहित विचारों को समझाये।

"Marketing has been defined as creation of time, place and possession utilities." Explain the ideas involved in this definition.

उत्तर : विपणन का अर्थ (Meaning of Marketing)—विपणन एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय किया जाता है तथा उसका मुद्रा में मूल्यांकन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, विपणन का आशय उत्पादन से लेकर अन्तिम उपभोक्ता तक वस्तुओं के वितरण की प्रक्रिया से लिया जाता है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा विपणन की विभिन्न परिभाषायें प्रस्तुत की गई हैं जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

1. **पायले** (Pyle) के अनुसार, "विपणन में क्रय एवं विक्रय की क्रियायें सम्मिलित होती है।"[1]

2. **क्लार्क एवं क्लार्क** (Clerk and Clerk) के अनुसार, "विपणन में वे प्रयत्न शामिल किए जाते हैं जो वस्तुओं और सेवाओं के स्वामित्व के बदलने और वस्तुओं के भौतिक वितरण में [illegible] उपस्थित करते हैं।"[2]

3. **कन्वर्स ह्यूजी और मिचेल** (Converse, Huegy and Mitchell) के अनुसार, "विपणन में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से उपभोग तक के बहाव की क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।"[3]

4. **विलियम जे. स्टेनटान** (William J. Stanton) के अनुसार, "विपणन पारस्परिक व्यापारिक क्रियाओं का योग है जो मूल्य, व्यापार बढ़ाने और मानव आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुओं और सेवाओं को मौजूदा व सम्भावित ग्राहकों को वितरित करने की योजना से सम्बन्धित है।"[4]

---

1. "Marketing Comprises both buying and selling activities."
—Pyle
2. "Marketing Consists of those efforts which effect transfers in this ownership of goods and services and which provide for their physical distribution."— Clerk and Clerk : Principles of Marketing.
3. "Marketing includes activities involves in the flow of Goods and services from production to Consumption." -Converse, Huegy and Mitchel : The Elements of Marketing.
4. Marketing is a total system of interacting business activities designed to plan, price promote and distribute want satisfying Products and services to present and potential customers."
-William J. Stanton : Fundamentals of Marketing.

5. **डडी एवं रेवजान** (Duddy and Revzan) के अनुसार, "विपणन एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय किया जाता है और उनका मूल्य मुद्रा में निर्धारित किया जाता है।"[1]

6. **विपणन की उचित एवं आदर्श परिभाषा**

उपभोक्ता की आवश्यकता को पहचानने, उसको समन्वित विपणन की सहायता से उत्पाद या सेवा की शक्ल देने तथा इस उत्पाद या सेवा को ग्राहक की सन्तुष्टि हेतु ग्राहक तक पहुँचाने की प्रक्रिया को 'विपणन' कहते हैं।

उक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विपणन में उन सेवाओं को शामिल किया जाता है जिनके द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के स्वामित्व के हस्तान्तरण और उनकी सुरक्षा (care) के शारीरिक वितरण (Physical distribution) करने का प्रयत्न किया जाता है।

सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि विपणन में एकत्रीकरण (Assembling और वितरण की क्रियायें सम्मिलित होती हैं, और इस अर्थ में हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि विपणन का अर्थ उन सामाजिक संस्थाओं (Social Institutions) जो मध्यस्थता, यातायात एजेंसी, बैंकर (Banker), दलाल, विनियोजक, पूंजीपति तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य करने वाली संस्थाओं से होता है। आर्थिक अर्थों में विपणन का आवश्यक तत्व विभिन्न क्रेताओं और विक्रेताओं द्वारा वस्तु अथवा वस्तुओं का क्रय-विक्रय है। जब हम गेहूं बाजार अथवा स्टाक एक्सचेंज आदि के बारे में कहते हैं तो हमारा अभिप्राय उस विशेष स्थान से नहीं होता है जहाँ पर कि गेहूं अथवा स्टाक (Stocks) का क्रय-विक्रय होता है बल्कि उन समस्त व्यक्तियों से होता है जोकि इस कार्य में लगे हुए हैं।

संक्षेप में, विपणन में, वे सब क्रियायें सम्मिलित होती हैं जोकि स्थान, समय और स्वामित्व (Possession) की उपयोगिता की उत्पत्ति में लगी हुई हैं। स्थान उपयोगिता उस समय उत्पन्न होती है जबकि माल और सेवायें (goods and services) उस स्थान पर प्राप्य हैं जहाँ पर कि आवश्यक है, समय उपयोगिता जबकि उनकी आवश्यकता है और स्वामित्व उपयोगिता जबकि उनको स्थानाँतरित की जाती हैं जिनको कि उनकी आवश्यकता है।[2] इस प्रकार विपणन विधि (Process of Marketing)

---

1. "Marketing is the economic Process by means of which goods and services are exchanged and their values determined in terms of money Prices," -Duddy and Revzon : Marketing, An Institutional Approach.

2. To be brief, "marketing includes all the activities involved in the creation of Place, time and Possesion utilities. Place utilitity is created when goods and services are available at the places they are needed, time utility when they are needed; and possession utility when they are transferred to those who need them"—Quoted by Dr. C. B. Mamoria : Principles and Practice of Marketing in India.

माल और सेवाओं को जबकि उनकी माँग की जाती है, अधिक उपयोगी बनाती है और उन लोगों को तथा उस स्थान पर भेजा जाता है जोकि उनको चाहते हैं। साथ ही यह समाज को भी उपयोगी होना चाहिए।

विपणन क्रियायें व स्थल उपयोगिता

स्थान उपयोगिता से हमारा तात्पर्य उपयोगिता के विकास के उस पहलू से है, जो किसी वस्तु में केवल स्थान के बदल जाने से उत्पन्न हो। वस्तुओं का स्थानांतरण ही वास्तव में इसलिए किया जाता है कि वह वस्तु ऐसे स्थान पर भेजी जा सके जहाँ पर कि व्यक्तियों को इसकी अधिक आवश्यकता एवं उपयोगिता है। गाँवों से शहरों को अनाज साधारणतः इसीलिये भेजा जाता है क्योंकि अनाज की उपयोगिता गाँवों की अपेक्षा शहरों में अधिक होती है। यह उपयोगिता हम बढ़ते हुए मूल्यों के आधार पर सहज ही ज्ञात कर सकते हैं। वास्तव में गाँवों से शहरों को वस्तु का हस्तांतरण ही इसलिए किया जाता है क्योंकि उन्हें उस वस्तु के मूल्य अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त होते हैं। विक्रेता वस्तु का स्थानांतरण करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखता है कि उन वस्तुओं की माँग किस स्थान पर अच्छी है, जहाँ माल भेजने से उन्हें लाभ अधिक मिल सकेगा। इस तरह यह स्पष्ट है कि **स्थानांतरण क्रियाएँ जो विपणन क्रियाओं का महत्वपूर्ण पहलू है, उत्पादन का ही एक रूप है क्योंकि यह स्थानांतरण द्वारा उपयोगिता की वृद्धि करती है।**

विपणन क्रियायें और समय उपयोगिता

बहुत-सी वस्तुयें ऐसी होती हैं जोकि किसी विशेष मौसम में अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न की जाती हैं परन्तु वास्तव में जिनका उपयोग वर्ष भर अथवा निरन्तर चलता रहता है। ऐसे पदार्थों को जब वह उत्पन्न होते हैं, इस तरह संग्रह करना आवश्यक हो जाता है कि उन वस्तुओं की पूर्ति ऐसे समय में भी की जा सके, जबकि वह उत्पन्न नहीं होती। संग्रह की क्रिया **विपणन का वह पहलू है जोकि एक समय से दूसरे समय तक वस्तुओं का हस्तांतरण करके उसमें उपयोगिता की वृद्धि करता है।** समय उपयोगिता के अन्तर्गत वस्तु को उस समय से जबकि उसकी पूर्ति अधिक थी, से उस समय तक जबकि उसकी पूर्ति कम हो जाती है, माल का हस्तांतरण किया जाता है। उन वस्तुओं में भी जिनका उत्पादन यद्यपि वर्ष भर होता रहता है परन्तु जिनकी अत्यधिक माँग किसी एक निश्चित समय पर होती है, संग्रह का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

विपणन क्रियायें एवं अधिकार उपयोगिता

विपणन क्रियाएँ एक प्रकार से विनिमय की क्रियाएँ ही हैं। यह क्रिया केवल वस्तुओं को एक हाथ से दूसरे हाथों में या एक अधिकार से दूसरे व्यक्ति के अधिकार में हस्तांतरित करने से सम्बन्धित है। विक्रेता अपनी वस्तुओं को बेचते समय उसके बदले में प्राप्त वस्तु या मुद्रा को, तथा क्रेता वस्तु या मुद्रा की अपेक्षा खरीदी हुई वस्तु को अधिक महत्वपूर्ण समझता है। विपणन क्रियाओं के अन्तर्गत इस प्रकार एक

अधिकार से दूसरे अधिकार में वस्तुओं का हस्तांतरण होता है, जहाँ इसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। **इस प्रकार विपणन के द्वारा अधिकार परिवर्तन से नई उपयोगिता उत्पन्न होती है और वस्तु अधिक उपयोगी अधिकार में पहुंच जाती है। अधिकांशतः हस्तान्तरण विपणन क्रियाएँ उपयोगिता की वृद्धि करती हैं और इसी कारण वह उत्पादन का पहलू है।**

विपणन क्रियायें एवं रूप उपयोगिता

रूप उपयोगिता का सृजन करना भी विपणन के क्षेत्र में आता है। रूप उपयोगिता के अन्तर्गत किसी वस्तु के रंग-रूप, आकार-प्रकार में इस प्रकार से परिवर्तन किया जाता है कि वह वस्तु पहले की अपेक्षा अधिक उपयोगी बन जाए। लकड़ियों से फर्नीचर का निर्माण करने की प्रक्रिया रूप उपयोगिता का सर्वोत्तम उदाहरण है।

विपणन क्रियायें एवं ज्ञान प्रतियोगिता

व्यक्तियों के ज्ञान में वृद्धि करके भी किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है। वर्तमान समय में उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पहले से ही अनुमान लगाकर उत्पादन कर लिया जाता है तथा वस्तु की बिक्री के लिये तथा माँग को प्रोत्साहित करने के लिए नये ढंग अपनाए जाते हैं। ज्ञान में वृद्धि या ज्ञान उपगिता का सृजन भी माँग प्रोत्साहन का एक नवीनतम ढंग है।

विपणन का महत्व (Importance of Marketing)

वर्तमान समय में प्रतिस्पर्द्धा में अत्यधिक वृद्धि हो गई है। प्रत्येक देश अपने यहाँ औद्योगीकरण की गति को तीव्र करना चाहता है तथा अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये प्रयत्नशील हैं। विज्ञान एवं तकनीकी की प्रगति, बाजारों का विस्तार, विशालस्तरीय उत्पादन आदि घटनाओं ने वर्तमान व्यवसाय को अत्यधिक जटिल बना दिया है तथा विपणन के महत्व में अत्यधिक वृद्धि कर दी है। "विपणन विकास का सबसे अधिक प्रभावशाली गुणक है।" विपणन के द्वारा विकास की सम्भावनाओं को वास्तविक रूप प्रदान किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान **श्री पीटर ड्रकर** के अनुसार विपणन की उपेक्षा केवल पिछड़ेपन का परिणाम ही नहीं, अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण भी है। विपणन में पूरे आर्थिक ढाँचे को बदलने की अद्भुत क्षमता निहित है, अतः विपणन सम्बन्धी चिंतन एवं प्रक्रियाओं के विकास द्वारा विकासशील देशों की आर्थिक अभिवृद्धि में महान योगदान दिया जा सकता है।

आर्थिक विकास एक प्राकृतिक नहीं मानवीय प्रक्रिया है। भारत जैसा विकासशील राष्ट्र, जिसमें प्राकृतिक सम्पदा के विपुल भण्डार भरे पड़े हैं, में तो आर्थिक विकास की शत-प्रतिशत सम्भावनाएँ विद्यमान है। भारत के समक्ष समस्या केवल यह है कि यहाँ आवश्यकतायें, आर्थिक योग्यताएं तथा साधन अलग-अलग बिखरे हुए पड़े हैं। आर्थिक प्रयत्नों एवं शक्तियों के संगठन तथा कुशल व्यवस्था के द्वारा विकास को एक नई गति प्रदान की जा सकती है तथा इस कार्य को करने में विपणन हमारा

सर्वश्रेष्ठ महयोगी सिद्ध हो सकता है। विपणन से साहस तथा प्रबन्ध सम्बन्धी प्रतिभाओं के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। यदि उत्पादन, जनसंख्या और आय न भी बदलें तो भी अकेले विपणन में ही अर्थव्यवस्था के ढाँचे में अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने की आश्चर्यजनक शक्ति विद्यमान है।

विपणन केवल एक विशिष्ट वर्ग के लिये ही उपयोगी नहीं है, वरन् सम्पूर्ण समाज को उससे लाभ प्राप्त होता है। समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों को विपणन से जो लाभ प्राप्त होते हैं, उनका संक्षिप्त विवेचन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

I. **उपभोक्ताओं को लाभ**—समाज का प्रत्येक वर्ग एवं वर्ग में सम्मिलित प्रत्येक व्यक्ति और कुछ हो या न हो लेकिन उपभोक्ता अवश्य है। उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं ने ही समाज में अन्य वर्गों को जन्म देकर उनका विकास एवं विस्तार किया। सम्पूर्ण समाज उपभोक्ता है अतः विपणन से उपभोक्ताओं को जो लाभ प्राप्त होते हैं उन्हें हम 'विपणन से समाज को लाभ' के नाम से भी सम्बोधित कर सकते हैं।

1. **आवश्यकताओं की वस्तुओं की सुगम उपलब्धि**—विपणन से समाज अर्थात् उपभोक्ताओं को एक महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि उनको उनकी आवश्यकताओं की वस्तुएं आसानी से प्राप्त हो जाती हैं।

2. **उच्व जीवन स्तर प्रदान करना**—विपणन ने उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का पहले से अनुमान लगा कर समय-समय पर उनकी आवश्यकता की वस्तुओं को उनके हाथों में सौंप कर उन्हें उच्च जीवन स्तर प्रदान किया है।

3. **रोजगार प्रदान करना**—विपणन से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओं में व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होता है। उत्पादन क्रियाओं के अतिरिक्त फुटकर, थोक सेवाओं, यातायात, गोदाम, संवहन आदि क्रियाओं के द्वारा भी व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होता है।

4. **शोषण से मुक्ति**—यदि उपभोक्ता विपणन सम्बन्धी क्रियाओं की जानकारी रखता है तो वह कभी भी शोषण का शिकार नहीं होगा।

II. **उत्पादकों को लाभ**—विपणन सम्बन्धी क्रियाओं से उत्पादकों, फर्मों अथवा व्यवसायियों को निम्न-लिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

1. **लाभ अर्जन कराना**—विपणन सम्बन्धी क्रियायें एक व्यवसायी अथवा फर्म को लाभ अर्जित करने तथा लाभ में वृद्धि करने में सहायता प्रदान करती है।

2. **वितरण लागत में कमी**—उत्पादक के दृष्टिकोण से विपणन का अत्यधिक महत्व है। वितरण व्यय कुल लागत का एक अंश होता है। विपणन सम्बन्धी क्रियायें वितरण सम्बन्धी लागत में कमी करती हैं।

3. **सन्देश वाहक के रूप में सेवाएँ**—विपणन सम्बन्धी क्रियायें फर्म एवं समाज के मध्य एक सन्देश वाहक के रूप में कार्य करके उत्पादकों एवं व्यवसायियों को अपनी अमूल्य सेवाएं प्रदान करती हैं।

III **राष्ट्र अथवा देश को लाभ**—विपणन से राष्ट्र को निम्नलिखित लाभ होते हैं—

1. **उपलब्ध साधनों का सदुपयोग सम्भव**—विपणन सम्बन्धी क्रियाओं से देश में उपलब्ध साधनों का सदुपयोग किया जा सकता है। साधनों का उचित विदोहन एवं विवेकपूर्ण उपयोग देश के आर्थिक विकास के लिये आवश्यक है तथा साधनों का उचित विदोहन एवं विवेकपूर्ण उपयोग विपणन सम्बन्धी क्रियाओं के द्वारा ही संभव है।

2. **उद्योगों का समुचित विकास**—लाभार्जन के साथ-साथ उपभोक्ताओं की संतुष्टि भी विपणन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उद्योगों की स्थापना ऐसे स्थान पर की जाती है जहाँ उपभोक्ताओं को अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती हो। इस प्रकार विपणन सम्बन्धी क्रियायें देश में उद्योगों के समुचित विकास में सहायक होती हैं।

3. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि**—विपणन का एक उद्देश्य वस्तुओं का निर्माण एवं सेवाओं को उपलब्ध कराना होता है तथा इन क्रियाओं के निष्पादन से देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

प्रश्न 2. 'मानवीय शरीर में हृदय सदृश्य विपणन का स्थान है।' इस कथन की विवेचना कीजिये।

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर में सर्वप्रथम विपणन का अर्थ एवं परिभाषा देना है। इसके पश्चात् विपणन का महत्व समझाना है। इसके उत्तर के लिये पिछले प्रश्न में 'विपणन का अर्थ एवं परिभाषा' तथा 'विपणन का महत्व' शीर्षक देखिये।

प्रश्न 3. विपणन के अर्थ तथा उद्देश्य को स्पष्ट कीजिये तथा उसके महत्व को समझाइये।

उत्तर—

विपणन का अर्थ एवं महत्व

इसके उत्तर के लिए प्रश्न क्रमांक 1 के उत्तर में इनसे सम्बन्धित शीर्षकों का अध्ययन कीजिये।

विपणन का उद्देश्य

अन्य सभी उत्पादन क्रियाओं की भाँति विपणन का उद्देश्य भी मानवीय आवश्यकताओं को पूर्ति करना है। सभी प्रकार के उत्पादन का अन्तिम उद्देश्य मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है और इस लक्ष्य की पूर्ति तभी संभव है जबकि उत्पादित वस्तुओं का कुशलता के साथ वितरण किया जाय। 'विपणन' वितरण की क्रिया से ही सम्बन्धित होता है तथा कुशल विपणन के द्वारा ही उत्पादित वस्तुओं

का समुचित वितरण संभव है । इस प्रकार विपणन एक ऐसी आर्थिक क्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का विनिमय किया जाता है । विपणन को व्यवसाय का एक अभिन्न अंग माना जा सकता है तथा बिना विपणन के व्यवसाय का विकास एवं विपणन असंभव है । विपणन के प्रमुख उद्देश्य निम्न लिखित हैं—

1. मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि करना ।
2. वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय को आसान बनाना ।
3. वस्तुओं एवं सेवाओं का समुचित वितरण करना ।
4. ग्राहकों को उनकी आवश्यकताओं की वस्तुएँ प्रदान करना ।
5. व्यवसाय का विकास करना ।
6. उत्पादक द्वारा उत्पन्न की गई वस्तुओं एवं सेवाओं को अंतिम उपभोक्ताओं तक तत्परता के साथ पहुँचाना ।

प्रश्न 4. **विपणन संगठन के क्रमिक विकास का वर्णन कीजिए ।**
Describe the evolution of marketing organisation.

अथवा

"विपणन की वृद्धि क्रांतिकारी ढंग से न होकर विकासात्मक ढंग से हुई है ।" स्पष्ट करिये ।

"Marketing has developed in an evolutionary rather than a revolutionary fashion." Explain.

उत्तर—आर्थिक जीवन के विकास के उस स्तर पर जबकि मानव आत्म-निर्भर था, जीवन की आवश्यकतायें अति अल्प थीं जिन्हें मानव स्वयं के प्रयत्नों से ही पूर्ण कर लिया करता था । उस समय वस्तु के उत्पादन और विनिमय की कोई आवश्यकता नहीं थी । परिणामतः न तो बाजार थे न बाजार सम्बन्धी क्रियायें । परन्तु धीरे-धीरे मानवीय ज्ञान में विकास हुआ और जीवन की सुविधाओं को अधिक से अधिक प्राप्त करने की स्वाभाविक मानव प्रवृत्ति ने लोगों के मन में इस बात को जन्म दिया कि एक दूसरे की आवश्यकता पूर्ति के लिए सहयोग करना आवश्यक है । आज मानव अनेक युगों को जैसे—आखेट युग (Hunting), चरागाह (Pastoral), कृषि (Agricultural) और औद्योगिक अवस्था को पार करता हुआ आधुनिक युग में आया है । यन्त्रों के आविष्कारों से मानव जीवन के इतिहास में एक नया चरण आरम्भ हुआ, और श्रम-जीवन तथा विशिष्टीकरण (specialisation) ने एक ऐसे संगठन की आवश्यकता को जन्म दिया जो वस्तु विनिमय का कार्य कर सके ।

ऐसे संगठन, जहाँ पर कि वस्तुओं का आदान प्रदान हो सके । तथा क्रेता एवं विक्रेता व्यापारिक सौदे करने के लिए मिल सकें एक केन्द्रीय स्थान अथवा अन्य सुविधाजनक स्थान पर पाये जाने लगे । इस प्रकार बाजार का विकास एक विशेष स्थान के रूप में हुआ था । आरम्भ में वस्तुओं के क्रय-विक्रय हेतु बाजार नहीं थे, कुछ

समय तक यह आदान-प्रदान गाँवों की सीमाओं के अन्तर्गत ही लोगों की अपनी निजी आवश्यकताओं के आधार पर, वस्तुओं को आपस में बदल कर किया जाता था। धीरे-धीरे मुद्रा का चलन हुआ, विनिमय क्षेत्र में मुद्रा के प्रयोग से बाजारों के विकास में सहायता प्रदान की। बाजारों के विकास का अध्ययन दो दृष्टिकोणों से किया जा सकता है—

(अ) क्षेत्रीय अथवा भौगोलिक।

(ब) कार्यात्मक।

साधारण अथवा मिश्रित बाजार | विशिष्ट बाजार | नमूने पर आधारित बाजार | वर्गों पर आधारित बाजार
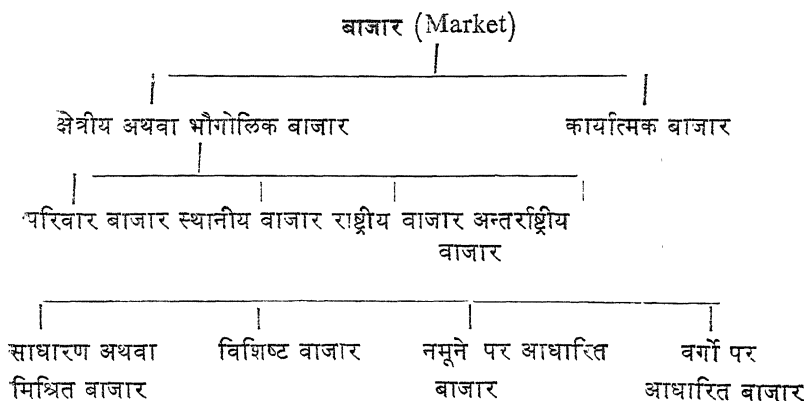
(अ) **क्षेत्रीय अथवा भौगोलिक** (Regional or Geographical)—क्षेत्रीय दृष्टिकोण को भौगोलिक दृष्टिकोण भी कहा जाता है। इसमें वस्तु की खरीद और बिक्री की क्रियाओं का क्षेत्र कहाँ तक फैला हुआ है, इसका ध्यान रखते हुए विकास की अवस्थायें बनाई जाती हैं।

(i) **परिवार बाजार** (Family market)—पारिवारिक बाजारों से हमारा अभिप्राय वस्तुओं के आदान-प्रदान की उस स्थिति से था जो परिवार के सदस्यों तक ही सीमित था।

(ii) **स्थानीय बाजार** (Local market)—इस प्रकार के बाजारों में वस्तुओं का आदान-प्रदान किसी विशेष स्थान तक ही सीमित था। एक गाँव या कस्बे को स्थानीय बाजार कहा जा सकता है।

(iii) **राष्ट्रीय बाजार** (National market)—आवागमन व यातायात के साधनों के देशव्यापी स्तर तक उपलब्ध होने से राष्ट्रीय बाजारों का जन्म हुआ।

(iv) **अन्तर्राष्ट्रीय बाजार**—जब कुछ वस्तुओं का आदान-प्रदान सम्पूर्ण विश्व के साथ होने लगता है तो विश्वव्यापी बाजार की स्थापना हो जाती है।

(ब) कार्यात्मक (Functional)—बाजार का कार्यात्मक विकास भी निम्नलिखित विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरा है—

(i) **साधारण अथवा मिश्रित बाजार** (General or mixed market)—इस प्रकार के बाजारों में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की खरीद एवं बिक्री होती थी तथा वस्तुओं का मूल्य विक्रेताओं द्वारा वस्तु की माँग व पूर्ति के आधार पर निश्चित किया जाता था।

(ii) **विशिष्ट बाजार** (Specialised market)—इस प्रकार के बाजारों में केवल एक ही प्रकार की वस्तुओं के क्रेता एवं विक्रेता पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ-कपास बाजार, कपड़ा बाजार, श्रम बाजार, मुद्रा बाजार आदि।

(iii) **नमूने पर आधारित बाजार**—आधुनिक युग में वस्तुओं की किस्मों और उत्पादन में वृद्धि हो जाने से सम्पूर्ण माल को विश्व के विभिन्न बाजारों में ले जाना सम्भव नहीं हुआ। अतः नमूने के आधार पर वस्तुओं की खरीद एवं बिक्री होने लगी।

(iv) **वर्गों पर आधारित बाजार**—यह पद्धति उन वस्तुओं के लिए ठीक है जिनका गुणों के आधार पर सरलता से वर्गीकरण किया जा सकता है।

इस प्रकार कार्य के आधार पर बाजार का विकास साधारण से विशिष्ट, विशिष्ट से नमूने और नमूने से वर्ग पर आधारित बाजार तक हुआ। इस प्रकार का विकास क्रेता और विक्रेताओं की सुविधा और व्यवसाय व व्यापार में उन्नति के कारण हुआ।

विपणन संगठन का विकास (Evolution of market)

विपणन संगठन के विकास को हम अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

1. औद्योगिक क्रांति से पूर्व (Frior to the Industrial Revolution)
2. आधुनिक औद्योगिक व व्यापारिक उन्नति (Modern Industrial and Commercial Developments)
3. विपणन संगठन व तरीकों में परिवर्तन (Change in marketing organisation Methods)

1. **औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व**—इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि प्राचीन युग में देश में सामाजिक वर्ग विभाजन था, समाज जाति-प्रथा द्वारा नियंत्रित था। समाज के सदस्यों का आचरण जाति में प्रचलित रीति-रिवाजों द्वारा नियंत्रित होता था। खेती से उत्पन्न अनाज केवल स्थानीय उपभोग के लिए प्रयुक्त होता था। बाजारों का अभाव था, न तो कोई मूल्य स्तर था और न ही विनिमय की उन्नत प्रणाली। खरीद व बिक्री में भुगतान वस्तुओं में ही हुआ करते थे। बाद में जाकर धीरे-धीरे नदियों व समुद्रों के किनारे आवागमन के साधन विकसित हुए और वहां के आस-पास के गाँव धीरे-धीरे छोटे-छोटे कस्बों में बदल गये। इन कस्बों में दो प्रकार की जातियों का आविर्भाव हुआ—दस्तकार व व्यापारी। शुरू में दस्तकार अपने हाथ से बनी वस्तुओं को स्वयं इन व्यापारियों को बेच देता था जो (दस्तकारों) और

लोथों को बेच देते थे किन्तु बाद में इन व्यापारियों ने दस्तकारों को मजदूरों पर रखना शुरू कर दिया जो उत्पादन कार्य का निरीक्षण करते थे तथा उत्पादित माल के विपणन की जोखिम सहन करते थे। परिवहन के साधन बहुत कम थे, सुरक्षा का अभाव था। अधिकाँश लोग निरक्षर थे। चलन प्रणाली (Currency system) का अभाव था तथा वर्तमान की भाँति संचार की सुविधायें भी नहीं थीं। उत्पादित माल की बिक्री आसपास लगने वाले हाटों (बाजार) में की जाती थी। हाट थोक व फुटकर दोनों प्रकार की खरीद के केन्द्र होते थे।

2. **आधुनिक औद्योगिक व व्यापारिक उन्नति**—औद्योगिक क्रांति के शुभारम्भ के बाद आर्थिक जगत में अनेक परिवर्तन हुए। कारखाना प्रणाली का उदय हुआ। जिन स्थानों पर कारखाने स्थापित हुए वे धीरे-धीरे शहरों में बदल गये। वहाँ जनसंख्या का जमाव होने लगा। इन शहरों में एक नए किस्म के व्यापारी वर्ग—पूँजीपति का उदय हुआ। बाद में जाकर कई सहायक सुविधाओं का विकास भी हुआ। जैसे बैंक, बीमा, भण्डार, परिवहन तथा संचार इत्यादि। इन सबके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने के उत्पादन (Large Scale Production) को प्रोत्साहन मिला। प्रथम महायुद्ध के बाद विक्रयकला और विज्ञापन का सबसे द्रुतगति से विकास हुआ। इस प्रकार विपणन का क्षेत्र विस्तृत बन गया। विज्ञापन के आधुनिक साधनों जैसे, समाचार-पत्र, रेडियो, सिनेमा, इत्यादि ने वस्तुओं के उपभोग को काफी आकर्षित किया। यही कारण है कि डाक द्वारा व्यापार को प्रोत्साहन मिला। फैशन का जन्म भी इन्हीं सब बातों के कारण ही हुआ। इस प्रकार औद्योगिक तथा वाणिज्यिक प्रगति के साथ-साथ विपणन संगठन अधिक जटिल और व्यापक बन गया है।

3. **विपणन संगठन और प्रणाली में परिवर्तन**—उत्पादन व मांग में परिवर्तन होने से विपणन क्रिया में परिवर्तन हुआ है। पुरानी प्रणाली में माल उत्पादक से थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी के हाथों में होकर उपभोक्ता तक पहुँचता था। अब यह शृंखला पहले की तरह दृढ़ नहीं रही है। आजकल उत्पादक अपनी वस्तुओं पर व्यापार चिन्ह डालकर विज्ञापन के द्वारा बाजार पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न कर रहे हैं। बड़े पैमाने पर फुटकर व्यापार करने वाली संस्थाओं का भी विकास हो रहा है। विभागीय भंडार, शृंखलाबद्ध दुकानें, सुपर बाजार, डाक द्वारा व्यापार इत्यादि का प्रचलन दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

प्रश्न 5. विपणन के अध्ययन के चार प्रमुख तरीकों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए और ऐसे विषयों के कुछ उदाहरण दीजिए जिनके अध्ययन के लिए कोई विशिष्ट तरीका उपयुक्त होता है ?

Briefly describe the major approachses to the study of marketing and give few examples of the topics which are suitable for a particular approch ?

अथवा

विज्ञापन प्रणाली की विवेचना तथा व्याख्या के लिए प्रायः चार आधारभूत दृष्टिकोण प्रयोग में लाये जाते हैं : वस्तुगत दृष्टिकोण, संस्थापन दृष्टिकोण, विपणन कार्य दृष्टिकोण तथा प्रबन्धकीय दृष्टिकोण। इन दृष्टिकोणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

"Four basic approaches are used customarily in describing and oxplaining the marketing system : The Commodity, the Institutional, functional and the managerial." Explain briefly these approaches.

अथवा

विपणन के अध्ययन के विभिन्न तरीकों (अप्रोचेस) में आपको क्या सादृश्य दिखलाई देता है? क्या आप कोई आदर्श तरीका सुझा सकते हैं?

In the variety of approaches to the study of marketing what homogeneity do you find? Can you suggest an ideal approach?

उत्तर—विपणन अध्ययन के तरीके (Approaches to the study of marketing)—**टुलसले** तथा **क्लार्क एवं क्लार्क** ने अपनी पुस्तक "विपणन के सिद्धान्त" में विपणन अध्ययन के तीन प्रमुख तरीकों का उल्लेख किया है—

1. पदार्थानुसार (Commodity approach);
2. संस्थानुसार (Institutional approach);
3. कार्यानुसार (Functional approach);
4. प्रबन्धकीय (Managerial)।

1. **पदार्थानुसार** (Commodity approach)—इसके अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि कोई विशिष्ट वस्तु को उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिए कौन कौन-सी बातें जरूरी हैं। उदाहरणार्थ, चावल को लेते हैं। चावल के विपणन के अध्ययन के पहले यह पता लगाया जाता है कि चावल का उत्पादन कहां हुआ। इसके पश्चात् उसके क्रेता एवं विक्रेताओं का पता लगाया जाता है। उसको किस प्रकार व किन साधनों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है तथा उसकी विज्ञापन, वित्त प्रबन्ध, संग्रह व जोखिम आदि की क्या समस्यायें हैं, उनका समाधान किस प्रकार किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ का अध्ययन पृथक्-पृथक् रूप से किया जाता है।

2. **संस्थानुसार** (Institutional approach)—आधुनिक युग में उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है तथा वृहत् उत्पादन के वितरण के लिये विभिन्न विपणन संस्थाओं की सहायता ली जाती है। इसके अन्तर्गत विभिन्न मध्यस्थ व विपणन संस्थाओं का जो विपणन कार्य संस्थाओं के रूप में सम्पादित करती हैं, अध्ययन किया जाता है जैसे व्यापारी व मध्यस्थ कितने प्रकार के हैं, उनके कार्य क्या-क्या हैं, उनकी कार्य-प्रणाली

क्या है, उनका पारिश्रमिक कितना व किस प्रकार दिया जाता है तथा उनकी विशेष कठिनाइयाँ क्या-क्या हैं ? यदि हम चावल के उदाहरण को पुनः लें तो इसके अन्तर्गत हमें यह अध्ययन करना पड़ता है कि थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी, आढ़तिया, दलाल आदि किस प्रकार कार्य करते हैं। वे पारिश्रमिक कितना व किस प्रकार लेते हैं तथा उनकी इन सम्बन्ध में क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं ?

3. **कार्यानुसार** (Functional approach)—विपणन अध्ययन के कार्यानुसार तरीके में उत्पादक से उपभोक्ता तक वस्तु के पहुँचने में जो भी विपणन कार्य किया जाता है, उनका अध्ययन किया जाता है। यदि हम चावल का उदाहरण फिर यहाँ लें तो हम पाते हैं कि कोई क्रेता होता है व कोई विक्रेता होता है। क्रय-विक्रय के अलावा अन्य कार्य जैसे—माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने में यातायात साधन, संग्रह, प्रमापीकरण व वर्गीकरण, जोखिम आदि का अध्ययन उनके कार्यानुसार किया जाता है।

4. **प्रबन्धकीय दृष्टिकोण**—वास्तव में प्रबन्धकीय दृष्टिकोण से विपणन क्रियाओं का अध्ययन करना उत्तम है। विपणन के अध्ययन का उक्त दृष्टिकोण काफी व्यापक है जिसमें उक्त वर्णित तीनों दृष्टिकोणों का समावेश हो जाता है। इस दृष्टिकोण को हम 'निर्णय लेने का दृष्टिकोण' भी कह सकते हैं क्योंकि इसके अन्तर्गत समस्त विचारों को निर्णय लेने के दृष्टिकोण से देखा जाता है। जैसे उत्पाद सम्बन्धी निर्णय, कार्य सम्बन्धी निर्णय; संस्था सम्बन्धी निर्णय आदि। विपणन के अध्ययन का यह दृष्टिकोण वर्तमान समय में अत्यधिक प्रचलित होता जा रहा है।

विपणन के अध्ययन में इन चारों तरीकों का बहुत महत्व है। पदार्थानुसार ढंग एक केन्द्र बिन्दु है, जिसके चारों ओर संस्था व प्रबन्ध सम्बन्धी विपणन संगठन कार्य करता है। वास्तव में विपणन के अध्ययन के इन चारों तरीकों में सादृश्य सा प्रतीत होता है। विपणन के अध्ययन में पदार्थ का विश्लेषण होना आवश्यक है। इसका गहरा अध्ययन करके अधिकाधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। यदि हम विपणन का प्रारम्भिक अध्ययन करना चाहते हैं तो पदार्थानुसार अध्ययन कार्यानुसार या संस्थानुसार तरीकों को साथ लेकर करें तो विपणन का यह अध्ययन सर्वोत्तम अध्ययन माना जायेगा।

अतः विपणन को भली भाँति समझने के लिए हम किसी एक तरीके को सर्वोत्तम नहीं मान सकते, यदि चारों ही तरीकों का समावेश कर विपणन का अध्ययन किया जाये तो उसमें विभिन्न पहलुओं का समावेश हो सकेगा।

2

विपणन की पद्धतियाँ
(METHODS OF MARKETING)

प्रश्न 6. **विपणन की विभिन्न पद्धतियों को समझाइये और इनके गुण-दोष बताइये।**

Explain the various methods of Marketing and discuss their merits and demerits.

उत्तर : विपणन की पद्धतियाँ (Methods of marketing)—आर्थिक जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में उत्पादन और वितरण की प्रणालियाँ अति सरल थीं. आज के समान जटिल नहीं थीं। उत्पादन माँग के अनुकूल ही किया जाता था। उत्पादक और उपभोक्ता के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध था। उपभोक्ता और उत्पादकों के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण उपभोक्ता उत्पादकों से अपनी आवश्यकता के अनुकूल वस्तु प्राप्त कर लेता था। दोनों का क्षेत्र सीमित था। अतः दोनों ही एक दूसरे की आवश्यकताओं से पूर्ण परिचित रहते थे। परन्तु धीरे-धीरे मानव की आवश्यकताओं, उत्पादन विधियों में परिवर्तन, कार्यों का विशिष्टीकरण आदि होने से उत्पादन प्रणाली इतनी जटिल हो गई कि उत्पादक और उपभोक्ताओं के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध समाप्त हो गया और दोनों कड़ियों को जोड़ने में कई मध्यस्थ उत्पन्न हो गए। आजकल उत्पादन कार्य विशाल पैमाने पर होता है। ज्यों-ज्यों उत्पादन क्रिया जटिल होती जा रही है। उत्पादक और उपभोक्ताओं के मध्य भौगोलिक दूरी बढ़ती जा रही है तथा साथ ही साथ दोनों के मध्य सीधे व्यापारिक सम्बन्ध भी टूटते जा रहे हैं। अब कई मध्यस्थ इनके बीच हो गए हैं। आज के युग में विपणन का कार्य कई मध्यस्थों द्वारा और कई प्रणालियों से किया जाने लगा है। इनमें से महत्वपूर्ण विपणन पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **प्रत्यक्ष पद्धति** (Direct method)—इस पद्धति के अन्तर्गत उत्पादक और उपभोक्ताओं के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। यह प्रणाली केवल सीमित बाजारों के लिये उपयुक्त है। विस्तृत बाजारों के लिये यह प्रणाली उपयुक्त नहीं है। यह प्रणाली दूध बाजार, सब्जी बाजार आदि के लिए ठीक है।

फल व सब्जी उत्पन्न करने वाले कृषक जोकि शहरों व कस्बों के पास ही रहते हैं स्वयं शहरों व कस्बों में जाकर माल बेचते हैं। वैद्य, डॉक्टर, मैकेनिक आदि

सेवा प्रदान करने वाले व्यक्ति भी उपभोक्ताओं से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। आजकल बड़े-बड़े कारखाने जो अधिकतर अपना माल मध्यस्थों के द्वारा ही बेचते हैं, स्वयं भी अपना निजी भण्डार (Sale Depo) स्थापित कर उपभोक्ताओं से सीधा सम्पर्क बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। इस प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यही है कि इसमें उत्पादकों और उपभोक्ताओं के मध्य सीधा सम्बन्ध रहता है, जिससे उत्पादकों को उपभोक्ताओं की रुचि और माँग के सम्बन्ध में पता चलता रहता है और तदनुसार वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। उपभोक्ताओं को भी उत्पादकों की कठिनाइयों और सीमाओं का ज्ञान रहता है।

2. **अप्रत्यक्ष पद्धति** (Indirect method)—इस पद्धति में उत्पादकों और उपभोक्ताओं के मध्य सीधा सम्बन्ध नहीं रहता है। इस पद्धति में विपणन-कार्यों को कई छोटे-छोटे उप-कार्यों में बाँट दिया जाता है और इस प्रकार उत्पादक से सीधे उपभोक्ता के हाथों में न पहुँचकर कई उप-कार्यों द्वारा जो कि विभिन्न मध्यस्थ सम्पादित करते हैं, अप्रत्यक्ष रूप से पहुँचती है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इन उपकार्यों को ऐसी संस्थाओं द्वारा सम्पादित किया जाता है जिनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता। जैसे, किसी माल को एकत्रित करना, किसी एक संस्था द्वारा उसका साफ या तैयार करना, संग्रह करना, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना आदि विभिन्न स्वतन्त्र संस्थाओं द्वारा किया जाय। इस प्रणाली का दोष यह है कि यह मितव्ययी नहीं है और निश्चितता और कार्यक्षमता की दृष्टि से जटिल प्रतीत होती है।

3. **विधि सम्पादन पद्धति** (Integrated method)—इस प्रणाली में भी उपर्युक्त प्रणाली की ही तरह विपणन कार्य छोटे-छोटे उपकार्यों के द्वारा ही किया जाता है। इसमें भेद केवल यह है कि यह उपकार्य केवल एक या कुछ संस्थाओं द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। परन्तु इन संस्थाओं में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि इस प्रणाली में विभिन्न उपकार्यों में सहयोग पाया जाता है। फलतः कार्यक्षमता बनी रहती है।

4. **सहकारी पद्धति** (Co-operative method)—इस पद्धति में विपणन कार्य सहकारिता के आधार पर किये जाते हैं। इससे मध्यस्थों को मिलने वाले लाभों की बचत हो जाती है। इसमें वस्तु से सम्बन्धित सभी पक्ष अपना सहयोग देते हैं और इससे जो कुछ लाभ प्राप्त होता है वह इस लाभ कमाने में सहयोग देने वाले पक्षों में वितरित कर दिया जाता है।

5. **राज्य नियमित पद्धति** (State control method)—इस पद्धति के अनुसार विपणन क्रियाओं पर राज्य की ओर से पूर्ण अथवा आंशिक रूप से राजकीय नियन्त्रण रखा जाता है। कभी-कभी राज्य भी विपणन सम्बन्धी कार्य करता है। कभी-कभी विपणन क्रियायें विभिन्न संस्थाओं द्वारा ही की जाती हैं परन्तु उनको अपने कार्य राज्य के निर्देशन के आधार पर ही करने पड़ते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि

विपणन सम्बन्धी क्रियायें स्वतन्त्र व्यापारियों के हाथों में ही छोड़ दी जायँ और कुछ क्रियाएँ सरकार स्वयं अपने द्वारा सम्पादित करें।

विपणन की कौन-सी प्रणाली अपनाई जावे इसके लिये निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जावे—

1. **माँग** (Demand)—यदि किसी वस्तु की माँग थोड़ी-थोड़ी मात्रा में एक बड़े क्षेत्र में हो तो अप्रत्यक्ष पद्धति (Indirect method) उपयुक्त रहती है। यदि उसकी माँग बड़ी-बड़ी मात्राओं में है और वह कुछ ही उपभोक्ताओं तक सीमित है तो प्रत्यक्ष पद्धति श्रेष्ठ रहेगी।

2. **भौगोलिक दूरी**—यदि किसी वस्तु के उत्पादकों और उसके उपभोक्ताओं में अधिक भौगोलिक दूरी है और उत्पादन कुछ स्थानों में ही केन्द्रित हो तो अप्रत्यक्ष पद्धति उचित रहेगी।

3. **वस्तु का स्वभाव**—विपणन पद्धति को अपनाते समय वस्तु के स्वभाव का भी ध्यान रखना जरूरी है। यदि वस्तु शीघ्र अथवा अतिशीघ्र नष्ट होने वाली है और उसे शीघ्र ही बेचना आवश्यक हो तथा बाजार भी अधिक विस्तृत न हो तो प्रत्यक्ष पद्धति ठीक रहेगी।

4. **लाभ**—यदि किसी व्यापार में लाभ की सम्भावना कम हो अर्थात् उत्पादन व्यय व विक्रय मूल्य में थोड़ा ही अन्तर हो तो प्रत्यक्ष प्रणाली उपयुक्त होगी।

5. **प्रतियोगिता** (Competition)—विपणन पद्धति को अपनाते समय प्रतियोगिता का भी ध्यान रखना चाहिये। कठिन प्रतियोगिता की परिस्थिति में ऐसी ही पद्धति अधिक उपयुक्त सिद्ध होगी जिसमें कम व्यय और अधिक बिक्री सम्भव हो।

●●

3

विपणन विधि

(MARKETING PROCESS)

प्रश्न 7. विपणन विधियों से आप क्या समझते हैं ? इनका संक्षेप में वर्णन कीजिए।

What do you understand by Marketing Processes ? Briefly describe them.

अथवा

विपणन प्रक्रिया से क्या आशय है ? इसमें कौन-कौनसी क्रियाएँ शामिल हैं ? समझाइये।

What is meant by Marketing Process ? What are the activities involved in it ? Explain.

उत्तर—समाज के आरम्भ में जबकि मानव स्वावलम्बित आर्थिक स्तर पर जीवन व्यतीत करता था, मानव की आवश्यकतायें बहुत कम थीं, न बाजार थे और न बाजार सम्बन्धी क्रियायें ही। उत्पादन प्रणाली सरल थी, विनिमय का क्षेत्र भी सीमित था। उत्पादक और उपभोक्ताओं का प्रत्यक्ष व्यक्तिगत सम्बन्ध था। उत्पादक उपभोक्ताओं की रुचियों का ध्यान रखकर ही वस्तुओं का उत्पादन करता था। उपभोक्ता उत्पादकों के स्थानों व गुणों से परिचित था। आधुनिक समाज की अर्थ-व्यवस्था ने उत्पादन व विपणन प्रणाली को बहुत ही जटिल बना दिया है। आज वस्तुओं को उत्पादकों से अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचने में विभिन्न अवस्थाओं को जो विपणन के छोटे-छोटे उपकार्यों में बँटे हुए हैं, गुजरना पड़ता है। विपणन विधि को निम्नलिखित तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है—

1. एकत्रीकरण (Cocentration)
2. वितरण (Dispersion)
3. समानीकरण (Equalisation)

1. **एकत्रीकरण** (Concentration)—एकत्रीकरण से हमारा अभिप्राय बिखरी हुई उत्पादक इकाइयों से छोटी वस्तुओं को एक केन्द्रीय स्थान या बाजार में बड़ी तादाद से एकत्रित करने से होता है। **पायले** (Pyle) ने लिखा है कि, "एकत्रीकरण वह क्रिया है जिसमें वस्तुयें अनेक उत्पादकों से एक केन्द्रित बिन्दु या

बाजार की ओर बहती हैं।"[1] आजकल उत्पादन केवल उपभोग के लिए ही नहीं किया जाता है बल्कि इसका उद्देश्य व्यापारिक भी होता है। कृषक केवल अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही फसलें पैदा नहीं करता, कोई भी मिल मालिक या कारखाना केवल अपने मिल या कारखाने के कर्मचारियों को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उत्पादन नहीं करता बल्कि दूर-दूर फैले हुए उपभोक्ताओं की माँगों को पूरा करने के लिये भी उत्पादन किया जाता है। वस्तुओं का उत्पादन विभिन्न बाजारों में विभिन्न स्थानों पर किया जाता है और उनकी माँग विभिन्न बाजारों में विभिन्न मात्राओं में होती है। आज के इस आधुनिक औद्योगिक युग में उत्पादक के लिए यह सम्भव नहीं हो सकता है कि वह अपने उत्पादन को असंख्य उपभोक्ताओं तक स्वयं पहुँचा सके अतः उत्पादन को कुशलतापूर्वक बेचने के लिए एकत्रित करना आवश्यक है।

एकत्रीकरण का महत्व उन वस्तुओं के लिए और भी अधिक है जो प्राकृतिक अवस्था में ही बेची जाती हैं जैसे कृषि उत्पादित वस्तुयें, रुई, ऊन, अनाज, मछली आदि। ये वस्तुयें छोटी-छोटी इकाइयों में विभिन्न कृषकों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न की जाती हैं। इन वस्तुओं का उपभोक्ताओं की माँग के अनुसार वितरण बिना एकत्रीकरण के सम्भव नहीं हो सकता है।

एकत्रीकरण केवल उन वस्तुओं का आवश्यक होता है जो अपने प्राकृतिक रूप में ही बेची जाती हों, निर्मित माल का एकत्रीकरण भी आवश्यक है। यह बात साधारणतया सभी क्षेत्रों में पायी जाती है लेकिन इसके अपवाद भी हो सकते हैं। आजकल संयोग (Integration) की भी प्रथा काफी पायी जाती है और यह भी हो सकता है कि एक कागज बनाने वाली मिल ने अपने कच्चे माल के लिए जंगल खरीद लिए हों।

ऐसी वस्तुओं का एकत्रीकरण भी आवश्यक है जो कि यद्यपि कारखाने में ही बनाई जाती हैं परन्तु उनका प्रयोग दूसरे बड़े कारखानों द्वारा कच्चे माल के रूप में किया जाता हो। ऐसे कारखानों और मिलों के सम्मुख एकत्रीकरण की समस्या नहीं रहती जहाँ वस्तुओं का उत्पादन उस अन्तिम अवस्था में पूर्णरूपेण किया जाता है कि जिस अवस्था में अन्तिम उपभोक्ता उनको चाहता है। बड़े-बड़े कारखानों एवं मिलों में चूंकि विशाल पैमाने पर एक ही स्थान पर उत्पादन होता है। अतः उसको एकत्र करने में कोई विशेष कठिनाई उत्पन्न नहीं होती। वस्तुओं के एकत्रीकरण का कार्य स्वयं इन कारखानों में ही हो जाता है।

एकत्रीकरण की विधि में क्रय, यातायात, संग्रह वर्गीकरण, वित्त प्रबन्ध, प्रमापीकरण, जोखिम आदि की क्रियाओं में से एक या अधिक क्रियाएँ इसके अन्तर्गत शामिल की जाती हैं।

---

1. "We may think of concentration as that activity in which goods flow from many Producers toward a central point or market."

Pyle : Market Principles

एकत्रीकरण का कार्य अन्तिम रूप से थोक व्यापारियों द्वारा विशेष रूप से किया जाता है। ये व्यापारी शहरों व कस्बों में पाए जाते हैं। ये अपना माल या तो स्वयं खरीदते हैं अथवा अपने विभिन्न प्रतिनिधियों द्वारा खरीदते हैं। माल को खरीद-कर ये अपने निजी गोदामों में एकत्रित करते हैं।

कृषि पदार्थों में एकत्रीकरण की क्रिया वस्तु के उत्पत्ति स्थान को छोड़ते ही आरम्भ हो जाती है। कृषक अपने उपभोग के लिए आवश्यक उपज को रोककर शेष उपज को प्राथमिक बाजारों में बेच देता है। प्राथमिक बाजारों में हाट, गाँव का बनिया, घूमता-फिरता व्यापारी आदि आते हैं। यह व्यापारी छोटे-छोटे कृषकों से माल खरीदकर थोक बाजार में ले जाते हैं। थोक व्यापारी अपने प्रतिनिधियों के द्वारा उस माल को उपभोक्ता या निर्यातकर्त्ता तक पहुँचा देता है। इस प्रकार इन सभी के द्वारा एकत्रीकरण की क्रिया की जाती है।

2. **वितरण** (Dispersion)—जब थोक विक्रेताओं के केन्द्रों में एकत्रित वस्तुओं का वितरण विभिन्न स्थानों पर स्थित उपभोक्ता या औद्योगिक उपभोक्ताओं की ओर होता है तो इस क्रिया को वितरण की क्रिया कहते हैं। एकत्रीकरण की क्रिया विपणन क्रिया का अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह तो केवल उत्पादित माल को उचित स्थानों पर वितरित करने के कार्य को अधिक कुशलतर बनाने के उद्देश्य से ही किया जाता है। वितरण की क्रिया के अन्तर्गत कच्चा माल निर्माताओं तक पहुँचाया जाता है व निर्मित माल मध्यस्थों से उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाता है।

एकत्रीकरण व वितरण की क्रिया में विभिन्न वस्तुओं के लिए विभिन्न तरीके अपनाये जाते हैं। कृषि पदार्थ कभी-कभी उत्पादक के द्वारा सीधे केन्द्रीय बाजार में ले जाये जाते हैं और कभी-कभी उनको विभिन्न स्थानीय बाजारों में विभिन्न माध्यम से बेचा जाता है। बड़े फुटकर व्यापारी भी कभी-कभी उत्पादकों से सीधे ही माल खरीद लेते हैं जिससे कि उन्हें मध्यस्थों के खर्चों की बचत हो जाती है। निर्मित वस्तुओं को छोटी-छोटी मात्राओं में विभाजित कर अन्तिम उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाता है अथवा उत्पादक के द्वारा सीधा अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाया जा सकता है।

वितरण की क्रिया में बिक्री, वित्त प्रबन्ध, यातायात, संग्रह, जोखिम, वर्गी-करण व प्रमापीकरण आदि कार्य आते हैं। वितरण की क्रिया में मुख्यतः थोक व्यापारियों द्वारा ही कार्य किया जाता है। यह माल को फुटकर व्यापारियों को बेचते हैं, जो उसे उपभोक्ता तक पहुँचाते हैं।

3. **समानीकरण** (Equalisation)—विपणन में एकत्रीकरण व वितरण के मध्य एक क्रिया और आती है जिसे हम समानीकरण (Equalisation) कहते

समायोजित करते हैं ।[1] समानीकरण में अलग-अलग क्षेत्र में उनकी स्थानीय माँगों की परिस्थिति के अनुरूप वस्तुओं की पूर्ति की उचित व्यवस्था की जाती है ताकि आर्थिक हानि न हो सके ।

बहुत-सी वस्तुयें जो कृषि में, कारखानों में व खानों में तैयार की जाती हैं, विभिन्न प्रकार की होती हैं जो विभिन्न उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं । वस्तुओं के एकत्रीकरण अथवा केन्द्रीयकरण के बाद उनका वितरण करते समय इस बात का ध्यान रखना अति आवश्यक हो जाता है कि अलग-अलग उपभोग बाजारों में वस्तुओं की वही किस्में और उतनी मात्रायें पहुँचे जो उन परिस्थितियों में आवश्यक हैं । अगर वितरण की उचित व्यवस्था नहीं होगी तो बाजारों में माँग और पूर्ति के मध्य सामंजस्य नहीं हो पायेगा और आर्थिक संकट उत्पन्न हो जावेगा । उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकतानुसार वस्तुयें प्राप्त नहीं हो पायेंगी और अनावश्यक वस्तुयें माँग के अभाव में बाजार में पड़ी रहेंगी । इसलिये यह आवश्यक है कि विपणन विधि के अन्तर्गत एकत्रीकरण और वितरण की विभिन्न अवस्थाओं में सामञ्जस्य रखा जावे । यह कार्य समानीकरण की क्रियाओं के द्वारा किया जाता है । इस कार्य के करने में भी थोक व्यापारियों का ही विशेष भाग होता है । समानीकरण की क्रिया द्वारा पूर्ति के आधार पर माँग और पूर्ति में थोक व्यापारी द्वारा सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है ।

टसले, क्लार्क और क्लार्क ने लिखा है—"एकत्रीकरण, वितरण व समानीकरण विपणन के हृदय है । इन क्रियाओं का सम्पादन विपणन को आवश्यक बना देता है ।"[2]

---

1. "Between these processes of concentration and dispersion occurs the activity which we call 'Equalization.' Equalization consists of adjustments of supply to demand on the basis of time, quantity and quality."

--Tousley, Clerk and Clerk.

2. "Concentration, equalization and dispersion are the heart of marketing. It is the need for the performance of these operations that

4 विपणन के कार्य
(MARKETING FUNCTIONS)

प्रश्न 8. **विपणन के कार्यों का वर्गीकरण करते हुए संग्रह के लाभ बताइए।**
Classify Marketing Functions and explain the advantages of assembling.

अथवा

"एकत्रीकरण, वितरण और समानीकरण विपणन के हृदय हैं। विपणन के लिए इन कार्यों का होना आवश्यक है।" (क्लार्क) समझाकर लिखिए।
"Concentration, Dispersion and Equalisation are the heart of marketing. It is the need for the performance of these operations that makes marketing necessary." (Cleark) Explain.

अथवा

विपणन की प्रक्रिया में कौन-कौन से महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किये जाते हैं ?
What are the important Functions to be performed in the Process of Marketing ?

उत्तर—विपणन कार्य का अर्थ (Meaning of Marketing Functions)—विपणन कार्य एक व्यवहार, क्रिया या सेवा है जिसके द्वारा मौलिक उत्पादक (Original Producer) और अन्तिम उपभोक्ता एक साथ सम्बद्ध हैं। किसी भी वस्तु के उत्पादन को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचते-पहुँचते विभिन्न हाथों से गुजरना पड़ता है तथा कई क्रियाओं से निकलना पड़ता है। वस्तुओं की इस मात्रा में जो क्रियायें पूरी की जाती हैं वे सभी विपणन क्रियायें कहलाती हैं। इन्हीं विपणन क्रियाओं को विपणन कार्य (Marketing Functions) कहा जाता है। **ह्यूगे और मिचेल के** अनुसार "विपणन कार्य एक व्यवहार, क्रिया या सेवा है जिसको माल व सेवा को वितरित करने की क्रिया में पूरा किया जाता है।" [1]

1. 'A Marketing function is an act, operation or service performed in the process of distributing goods and services." --Converse, Hugey and Mitchell : The Elements of Marketing.

किसी भी वस्तु के उत्पादन को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाने में विभिन्न प्रकार की क्रियायें की जाती हैं। उदाहरणार्थ, हम कृषि उत्पादन (Farm Produce) को लेते है। सर्वप्रथम विभिन्न छोटे-छोटे कृषकों से बड़े-बड़े कृषक उनके उत्पादन को एकत्रित कर लेते हैं और फिर उसको एक केन्द्रीय स्थान (Central place) पर जिसे कि बाजार कहते है ले आते हैं। इस **एकत्रीकरण** (Assembling) की क्रिया में उनके द्वारा बहुत से विपणन कार्य किये जाते हैं जैसे, खरीद (Buying), यातायात (Transportation), संग्रह (Storing), वित्त प्रबन्ध (Financing), प्रमापीकरण (Standardising) और वर्गीकरण आदि। एकत्रीकरण के पश्चात् उसके वितरण का प्रश्न उत्पन्न होता है। **वितरण** की क्रिया में भी अनेक कार्य किये जाते हैं जैसे बिक्री, यातायात, वर्गीकरण (grading), जोखिम सहन (Risk bearing) आदि, आदि। व्यापक रूप में बहुत से कार्य दोनों—एकत्रीकरण और वितरण—में सामान्य हैं और इन क्रियाओं को ही मोटे रूप में **"विपणन कार्य"** (Marketing Functions) कहते हैं। इस प्रकार एकत्रीकरण या केन्द्रीयकरण (Concentrating) से हमारा अभिप्राय कच्चे माल, खाद्य सामग्री अथवा निर्मित वस्तुओं को उत्पत्ति स्थान से केन्द्रीय स्थान पर अर्थात् बाजार में एकत्रित करने से है। वितरण (dispersion) से अभिप्राय इस एकत्रित एवं संग्रहित माल को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने से है। इन दोनों कार्यों में सन्निहित एक और कार्य भी है जिसे सन्तुलन (aqualisation) कार्य कहते है। इसका अर्थ वस्तुओं की पूर्ति को बाजार में माँग के अनुसार सन्तुलित करना है।

विपणन कार्यों का वर्गीकरण

(Classification of marketing Functions)

विपणन कार्य कितने हैं इस सम्बन्ध में विपणन विशेषज्ञ (Marketing authorities) एकमत नहीं है। ये कार्य 5 से लेकर 20 अथवा 30 तक बताये जाते हैं। फैंकलिन रेयन ने तो अपने एक लेख में 120 कार्य बताये हैं।[1] हम कुछ विद्वानों का वर्गीकरण आगे दे रहे हैं।

1. "The list ranges from 5 to as many as 20 or 30 and Rayan identifies 120 different kinds of functional elements that are associated with marketing."--Duddy and Revzan : Marketing, An Institutional Approach.

पायले (Pyle) का वर्गीकरण

विपणन प्रक्रिया
(Marketing Process)

केन्द्रीयकरण (Concentrating)	वितरण (Dispersing)
(i) क्रय एवं एकत्रीकरण (Buying or assembling)	(i) विक्रय (Selling)
(ii) यातायात (Transporting)	(ii) यातायात
(iii) संग्रहण (Storing)	(iii) संग्रहण
(iv) श्रेणी बन्धन (Grading)	(iv) श्रेणी बन्धन
(v) वित्त (Financing)	(v) वित्त
(vi) जोखिम (Risk bearing)	(vi) जोखिम
	(vii) बाँटना (Dividing)

कनवर्स और अन्य का वर्गीकरण

Functions Classified

1 **Physical Movement**	2 **Movement of Ownership**	3 **Market Management**
(Creating time and place utility)	(Creating possession utility)	1. Formulating Policies.
1. Transporting.	1. Determining needs. (Gathering information)	2. Financing (Providiing capital, accepting; credit; making Collections)
2. Storing.	2. Creating Demand.	3. Providing organisation and Equipment.
3. Packing	3. Finding buyers and Sellers.	4. Supervising.
4. Dividing.	4. Negotiating (Prices and Terms)	5. Accounting.
5. Grading (Inspecting, testing Storing)	5. Giving Advice (Adjusting goods and services to needs of buyers)	6. Securing information especially by Research.
6. Order Assembly.	6. Transporting title.	7. Risk.

विपणन सम्बन्धी कार्यों के सरल अध्ययन के दृष्टिकोण से **डुसले, क्लार्क और क्लार्क** का वर्गीकरण उचित है जो कि अग्रलिखित है :

विपणन-कार्य

(क) **विनिमय के कार्य**

1. विक्रय (Selling)।
2. एकत्रीकरण एवं क्रय (Assembling and Buying)

(ख) **भौतिक पूर्ति के कार्य**

1. परिवहन (Transportation)
2. संग्रहण (Storing)।

(ग) **सहायक कार्य**

1. वित्त प्रबन्ध (Financing)।
2. जोखिम उठाना (Risk Taking)।
3. बाजार सूचना (market Information)।
4. प्रमापीकरण (Standardisation)।

उक्त वर्गीकरण का विस्तृत विवरण हम नीचे दे रहे हैं।

(क) **विनिमय सम्बन्धी कार्य** (Exchange Functions)

विपणन सम्बन्धी कार्यों के लिये यह आवश्यक है कि वस्तुओं का स्वामित्व हस्तांतरित किया जावे चाहे वह वस्तुओं के स्थानांतरित करने से हो या केवल उनके अधिकार को हस्ताँतरित करने से। यदि वस्तुओं का हस्तांतरण सम्भव न हो तो उनका विपणन भी नहीं हो सकता। स्वामित्व के हस्तांतरण के लिये विपणन क्रिया में क्रय व विक्रय का होना जरूरी है, क्योंकि वस्तुओं के अधिकारों का हस्तांतरण दो मुख्य कार्यों—विक्रय और क्रय व एकत्रीकरण — द्वारा ही सम्पादित होता है जो कि निम्नलिखित हैं—

1. **विक्रय** (Selling)

आधुनिक व्यावसायिक जगत में विपणन सम्बन्धी कार्यों में विक्रय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि उत्पादन का अन्तिम लक्ष्य विक्रय ही होता है। विक्रय के अभाव में उत्पादन निष्प्रयोजन एवं निष्प्राण हो जाता है। दूसरे, बिना उचित विक्रय के स्वामित्व को अधिक लाभ नहीं हो सकता। व्यापार चालू रखने के लिये लाभ होना अति आवश्यक है। वास्तव में एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तुएँ और सेवायें उन उपभोक्ताओं तक जिन्हें उनकी आवश्यकता है अन्तिम रूप से पहुँचायी जाती हैं और जिसके द्वारा व्यावसायिक संस्था अपनी वस्तुओं को उपभोक्ताओं में वितरित करने का कार्य पूरा करती हैं।

इस प्रतियोगी युग में माल को उचित मूल्य पर बेचना कठिन कार्य है। उत्पादक को अपने माल के प्रति माँग बनाये रखने के लिये विभिन्न साधनों का सहारा लेना पड़ता है जैसे ग्राहकों को आकर्षित करने के लिये उन्हें इस बात की सूचना देना कि उसके पास बिक्री के लिये कौन-कौन-सी वस्तुएँ उपलब्ध हैं और वे किन-किन आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती हैं। इस सूचना को देने के लिए **विज्ञापन** का सहारा

लेना पड़ता है। साथ ही विक्रेता को **बाजार सर्वेक्षण** (Market Survey) करना पड़ता है और ग्राहकों को अपनी संस्था में आकर्षित करने के लिये **विक्रय-कला और विक्रय-प्रवर्त्तन** (Sales Promotion) का सहारा लेना पड़ता है। वास्तव में वस्तुओं के विपणन के लिए विक्रेताओं को ही अधिक सक्रिय रूप से भार वहन करना पड़ता है। विक्रेता को ही इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि क्रेता किस प्रकार का होगा तथा वस्तु के लिये उसके द्वारा क्या दिया जा सकेगा अर्थात् क्रेता की क्रय शक्ति कितनी होगी। विक्रय वह कला है जिसके द्वारा ग्राहकों को वस्तुओं को खरीदने के लिये प्रेरित किया जा सकता है।[1]

1. **एकत्रीकरण एवं क्रय** (Assembling and Buying)

एकत्रीकरण एवं क्रय उत्पादन व उपभोग की परिस्थितियों में एक आवश्यक विपणन कार्य है। प्रत्येक उत्पादक को उत्पत्ति कार्य आरम्भ करने से पूर्व कच्चा माल खरीदना पड़ता है। यह कच्चा माल उसे गाँवों, कस्बों व बाजारों से खरीदना पड़ता है। प्रत्येक व्यापारी या मध्यस्थ दुकानदार को अपना धन्धा चलाने के लिये अपने पास माल का संग्रह करना पड़ता है। उत्पादक और व्यापारी दोनों का लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि उन्होंने कौन-सा माल किस मूल्य पर खरीदा है। खरीदने की प्रक्रिया में क्रियाओं का समावेश किया जाता है वे हैं—यह निश्चय करना कि क्या खरीदना है, जो खरीदना है उसकी पूर्ति हमेशा प्राप्य होगी अथवा नहीं, कितने परिमाण (Quntity) में खरीदना है और किस विक्रेता से खरीदना है। एकत्रीकरण के द्वारा ही विभिन्न उपभोक्ताओं व निर्माताओं की माँग व पूर्ति के लिए वस्तुओं को उचित किस्मों और मात्राओं में इकट्ठा किया जाता है। एकत्रीकरण का महत्व कृषि पदार्थों में अधिक है क्योंकि कृषि पदार्थ विभिन्न स्थानों में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में फैले रहते हैं।

एकत्रीकरण यद्यपि खरीदने का समानार्थी नहीं है लेकिन यह इसका सहायक कार्य अवश्य है। एकत्रीकरण के निम्नलिखित लाभ हैं—

1. वस्तुओं का **प्रमापीकरण** तथा **श्रेणियों में विभाजन** सम्भव हो जाता है।
2. **यातायात** तथा उठाने-धरने के **व्यय में कमी** हो जाती है।
3. वस्तुओं का बड़ी मात्रा में एकत्रीकरण होने पर बड़ी मात्रा के **बिक्री के आदेश** (Order) **भी तुरन्त** पूरे किये जा सकते हैं।
4. एकत्रीकरण माल के संग्रहण (Warehousing) **खर्चों में कमी** हो जाती है।

---

1. "Selling is the impersonal or personal process of assisting and or persuading a prospective consumer to buy a commodity or service or to act upon an idea." —Converse, Huegey and Mitchell. Elements of Marketing.

5. एकत्रीकरण **बाजारों के विस्तृत** करने में सहायक होता है।

6. एकत्रीकरण द्वारा **माँग तथा पूर्ति में सन्तुलन** सम्भव हो जाता है।

क्रय के तरीके (Modes of Purchasing)

वस्तुओं का क्रय निम्नलिखित तरीकों में से किसी भी एक तरीके से किया जा सकता है–

(i) **निरीक्षण द्वारा क्रय** (Purchase by Inspection)—इसके अन्तर्गत खरीददार या उसका एजेन्ट (Agent) सम्बन्धित सारे माल को विक्रेता की दुकान पर देखता है और सौदा तय करता है।

(ii) **नमूने के द्वारा क्रय** (Purchase by Sample)—इस तरीके के अन्तर्गत खरीददार समस्त माल को नहीं देखता है बल्कि उसके नमूने (Sample) को देखकर माल की किस्म का अनुमान लगा लेता है और खरीददारी करता है।

(iii) **विवरण द्वारा क्रय** (Purchase by Description)—कई वस्तुयें ऐसी होती हैं जो कि उनके व्यापारिक नाम या ब्राण्ड से प्रसिद्ध हो जाती हैं और इनको खरीदने के लिये केवल इनका व्यावसायिक नाम ही पर्याप्त रहता है—जैसे अफगान स्नो, रेमी स्नो आदि।

(ख) भौतिक पूर्ति सम्बन्धी कार्य (Functions of Physical Supply)

विपणन का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है वस्तुओं को उन स्थानों से जहाँ पर वह उत्पादित की जाती है, उन स्थानों तक पहुँचाना जहाँ उनका उपभोग होता है। यह कार्य यातायात (Transportation) व संग्रह (Storage) की क्रियाओं द्वारा होता है। यातायात से अभिप्राय वस्तुओं के उत्पादन के स्थान से उन स्थानों तक ले जाने से होता है जहाँ उपभोग होता है। संग्रहण से हमारा अभिप्राय वस्तुओं को उस समय से जबकि उनका उत्पादन होता है उस समय तक सुरक्षित रखने से है जबकि उनका उपभोग किया जाए।

(1) यातायात (Transportation)

मानव जीवन के सम्पूर्ण विकास में यातायात का महत्वपूर्ण स्थान है। यातायात के कारण ही धन के वितरण (distribution of wealth) विश्व के बाजारों का विकास, श्रम विभाजन को प्रोत्साहन, विशिष्टीकरण तथा श्रम और पूंजी के उचित उपयोग में सहायता मिली है। सभी वस्तुओं का उपयोग चाहे वे कृषि से सम्बन्धित हों अथवा व्यावसायिक, उनके उत्पत्ति स्थान पर नहीं हो सकता। उनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना आवश्यक है ताकि उनमें स्थान उपयोगिता (Place Utility) पैदा की जा सके। यातायात से उत्पादित वस्तुओं की समय तथा स्थान सम्बन्धी उपयोगिता में वृद्धि हो जाती है। वस्तुओं को एक स्थान से, जहाँ उनकी माँग कम है, दूसरे स्थान पर ले जाकर, जहाँ उनकी माँग अधिक है, उनकी उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है। विपणन देश की प्रगति के लिए यातायात के

सुव्यवस्थित साधनों का होना आवश्यक है। इससे वस्तुयें शीघ्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जा सकती हैं। **मेमोरिया तथा जोशी** (Memoria and Joshi) ने लिखा है कि "व्यापार व परिवहन जुड़वाँ भाई की तरह हैं। दोनों का विकास साथ-साथ होना चाहिए। यदि इनमें से किसी एक की भी वृद्धि रुकती है तो दूसरे की स्वतः ही रुक जाती है।"[1]

2. **संग्रहण** (Storage)

वस्तुओं का संग्रहण जो इस श्रेणी का दूसरा विपणन कार्य है विपणन की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। अधिकांश वस्तुएँ नियमित रूप से तथा उपयोग के स्थान पर पैदा नहीं होती हैं, उनको उपभोक्ता के स्थान पर ले जाने एवं उपभोक्ता की आवश्यकता होने पर उसकी माँग पूरी करने के लिये संग्रह करना पड़ता है। आर्थिक दृष्टि से संग्रहण समय और स्थान उपयोगिता का सृजन करता है।

संग्रह के द्वारा ही किसी विशेष मौसम में उत्पन्न की जाने वाली वस्तुएँ सारे वर्ष उपभोग के लिए प्रस्तुत की जा सकती हैं। ऐसी वस्तुएँ जो किसी विशेष मौसम में बड़ी मात्रा में माँगी जाती हैं, वर्ष भर उत्पादित की जा सकती हैं यदि उनका संग्रह किया जा सके। आज तो आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से शीघ्र नाशवान वस्तुएँ भी लम्बे समय तक सुरक्षित रखी जा सकती हैं। इससे उनकी विपणन सम्बन्धी अनिश्चितता बहुत हद तक दूर हो गई है।

संग्रहण के कार्य (Function of Storage)

1. संग्रहण वस्तुओं को सुरक्षा प्रदान करता है।
2. संग्रहण उपभोक्ताओं को भी सुविधा प्रदान करता है। वे अपनी आवश्यकताओं की वस्तुओं को साल भर तक के लिए संग्रह कर सुरक्षित रख सकते हैं।
3. कुछ वस्तुओं का संग्रह इसलिए किया जाता है कि कुछ समय व्यतीत होने पर उनके किस्म (Quality) में सुधार हो जाता है जैसे चावल, शराब आदि।
4. संग्रहण वित्तीय सहायता भी प्रदान करता है, क्योंकि संग्रहित वस्तु पर कर्ज लिया जा सकता है।
5. आज अधिकांश उत्पादन, माँग की आशा में, माँग के उत्पन्न होने से पूर्व ही कर लिया जाता है। फलस्वरूप, ऐसे उत्पादक को ये वस्तुएँ तब तक संग्रहित करनी पड़ती हैं जब तक बाजार में इनके ग्राहक माँग न करने लगें।
6. कुछ अन्य कार्य—

(i) माँग और पूर्ति में संतुलन।

(ii) मूल्यों में स्थिरता।

---

1. "Trade and tranport are twin brothers and they should go side by side for their existence and anything which retards the development of one also hinders the progress of the other,"

—Principles and Practice of Marketing in India.

(iii) नई पूंजी का सृजन।

(iv) नियमित उत्पादन।

(v) श्रम को नियमित रोजगार में सहायता।

(vi) विपणन का विकास।

(vii) जोखिम का हस्तांतरण आदि।

(ग) सहायक कार्य Facilitaling Fuactions)

विनिमय कार्य व भौतिक पूर्ति सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कार्य हैं जो विपणन क्रिया पद्धति में केवल एक विशेष महत्व नहीं रखते बल्कि आवश्यक भी है। ये कार्य निम्नलिखित हैं—

1. **वित्त** (Financing)—जब कभी भी कोई सौदे किये जाते हैं, वित्त की आवश्यकता पड़ती है। **पायले** (Pyle) का कहना है कि विपणन मशीन को सुचारू रूप से चलाने के लिये मुद्रा अथवा साख, तेल का काम करती है। उत्पादकों, थोक विक्रेताओं, फुटकर व्यापारी, उपभोक्ता सभी को वस्तुओं के क्रय विक्रय के बदले में वित्त की आवश्यकता पड़ती है। जब कभी भी सौदा होता है दोनों क्रेता एवं विक्रेता उसी समय अथवा कुछ समय पश्चात वित्त प्राप्त करते हैं अथवा भुगतान करते हैं। मुद्रा के अभाव में साख द्वारा कार्य करते हैं। जैसा कि हम देखते हैं कि वस्तुओं के तैयार होते ही वह नहीं बिक जाती है। उपभोक्ताओं के पास पहुँचने में कुछ समय लगता है और जब तक उत्पादक की अपनी पूंजी उसमें लगी रहती है। इस कारण से व्यापारी को वित्तीय संस्थाओं से सहायता लेनी पड़ती है।

विपणन संस्था अपनी वित्तीय आवश्यकता को प्रायः तीन स्रोतों से पूरा करती है—स्वामित्व पूंजी, बैंकों से ऋण तथा व्यापार ऋण।

2. **जोखिम** (Risk Taking)—अन्य व्यापारिक क्रियाओं की तरह ही, विपणन क्रिया में भी कई प्रकार की जोखिम उठानी पड़ती है। यह जोखिम कई प्रकार की होती हैं जैसे—आग, बाढ़, आँधी से होने वाली हानि, वस्तु के गुणों में होने वाली क्षति, यातायात के मध्य प्रतिस्पर्धा की जोखिम, माँग और पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों की जोखिम आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि विपणन प्रक्रिया में व्यापारियों को कई प्रकार की जोखिम उठानी पड़तीं है। इसमें से कुछ जोखिम ऐसी हैं जिनको बीमा आदि से हटाया जा सकता है, कुछ के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

3. **बाजार सूचना** (Market Information)—विपणन सम्बन्धी कार्यों में बाजार की सूचनाओं का काफी महत्व है। यदि बाजार सूचनाओं का व्यापारी के पास अभाव है तो उनके व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। बाजार की सूचनाओं को एकत्रित कर उनके विश्लेपण द्वारा निष्कर्ष निकालना अति आवश्यक है। विभिन्न व्यापारिक समुदायों, सरकार व अन्य विशिष्ट संस्थाओं द्वारा वस्तु के

उत्पादन व उपभोग के सम्बन्ध में सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं। ग्राहकों की रुचि व आवश्यकताओं को समझने तथा उसके अनुसार वस्तुएँ बनाने व उपलब्ध कराने के लिए विपणन सम्बन्धी तथ्य एकत्र करना पड़ते हैं। वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक बेचने व हस्तान्तरित होने तक कई समस्यायें उत्पन्न होती हैं। इन सब समस्याओं से व्यापारी को अवगत रहना चाहिए, ताकि वह अपनी विपणन नीति व वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सके।

4. **प्रमापीकरण** (Standardisation)—विपणन में वस्तुओं को उनके गुणों के आधार पर समूहों में विभाजित करने की भी एक समस्या है। प्रमापीकरण से वस्तुओं की बिक्री सरल हो जाती है और ग्राहकों को भी वर्गीकृत तथा प्रमापित वस्तुओं में विश्वास रहता है। **टुसले, क्लार्क और क्लार्क** के अनुसार "प्रमापीकरण एक सामान्य शब्द है जिसमें निर्मित वस्तुओं के मापदण्ड स्थापित किये जाते हैं, उन वस्तुओं का निरीक्षण किया जाता है जिससे यह देखा जा सके कि वे किन मापदण्डों के अनुरूप हैं, और जहाँ आवश्यक हो इन वस्तुओं को निर्धारित मापदण्डों के अनुकूल समूहों में छाँटा जाता है।" दूसरे शब्दों में प्रमापीकरण की प्रक्रिया में वस्तु के गुण, किस्म, आकार व रंग आदि के आधार पर स्थायी मापदण्ड स्थापित किये जाते हैं और फिर यह देखा जाता है कि निर्मित वस्तुयें इस प्रमाप के अनुसार ही बनें। प्रमापीकरण का मुख्य उद्देश्य वस्तुओं की किस्म में एकरूपता लाना है।

प्रमापीकरण से लाभ

1. वस्तुओं के प्रमापित हो जाने पर ग्राहकों को वस्तु की एक निश्चित किस्म तथा उसके गुण के बारे में विश्वास हो जाता है, और उनकी माँग में वृद्धि हो जाती है।

2. प्रमापित वस्तुओं को अप्रमापित वस्तुओं की अपेक्षा अधिक मात्रा में दूर-दूर तक बेचा जा सकता है। इससे बाजार विस्तृत होता है और बाजारों के सम्बन्ध में नई-नई बातें पता लगती हैं।

3. प्रमापित वस्तुओं के विज्ञापन में सुविधा रहती है। विज्ञापन बड़े पैमाने पर किया जा सकता है।

4. प्रमापित वस्तुओं का आसानी से मूल्यांकन हो जाता है अतः रेलवे अथवा भण्डारगृहों द्वारा माल की हानि होने पर उनसे वसूली (Claim) करने में आसानी हो जाती है।

5. वस्तुओं का प्रमापीकरण हो जाने पर उनको केवल नमूने (Sample) अथवा संक्षिप्त वर्णन (description) से बेचना सम्भव हो जाता है; उनकी व्यक्तिगत जाँच करने की आवश्यकता नहीं रहती।

6. प्रमापीकरण से यातायात तथा संग्रह सम्बन्धी व्यय में कमी हो जाती हैं क्योंकि ग्राहक एक निश्चित प्रमाप[1] की वस्तु ही मँगाता है। इससे व्यर्थ की वस्तुओं का संग्रह नहीं करना पड़ता और व्यर्थ के व्यय नहीं होते हैं।

7. प्रमापित वस्तुओं से 'वायदा व्यापार' (Forward Trading) में सुविधा होती है। इसके क्रेता तथा विक्रेता दोनों ही वस्तुओं के किस्म तथा गुणों के विषय में निश्चित रहते हैं।

8. प्रमापित वस्तुओं के मूल्य ज्ञात रहने के कारण धन उधार लेने की सुविधा रहती है। बैंक संग्रहित वस्तुओं के बाजार मूल्य के बराबर धन केवल संग्रहालय की रसीद पर ही उधार दे देते हैं।

प्रश्न 9. **एकत्रीकरण से क्या तात्यपर्य है? एकत्रीकरण के लाभ समझाइये।**
What is meant by 'Assembling' 'Explain its advantages.

उत्तर—

एकत्रीकरण से तात्पर्य

एकत्रीकरण से तात्पर्य वस्तुओं के विभिन्न बिखरे हुए उत्पादक स्थानों से किन्हीं विशेष स्थानों में एकत्र करने से होता है। विपणन क्रियाओं में एकत्रीकरण की प्रक्रिया सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके दो पहलू होते हैं—पहला, व्यक्तिगत उत्पादक इकाइयों से छोटी-छोटी मात्रा में वस्तुओं को इकट्ठा करके एक बड़ी मात्रा में उपलब्ध करना, दूसरे उपभोक्ता, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारियों के स्थान पर वस्तुओं के विभिन्न किस्मों की माँगों के अनुसार इकट्ठा करना ताकि इनकी आवश्यकतायें पूरी की जा सकें। प्रत्येक उपभोक्ता अपनी मांगों के अनुमान पर वस्तुओं का संकलन करता है और यह भी एकत्रीकरण का ही रूप है। **श्री पायले** के अनुसार—"एकत्रीकरण वह क्रिया है, जिसमें वस्तुएँ बहुत से उत्पादकों से एक केन्द्रीय बिन्दु या बाजार की ओर प्रभावित होती हैं।" आज के इस आधुनिक युग में जबकि बाजारों का क्षेत्र विश्व-व्यापी हो गया है, उत्पादक के लिए यह सम्भव नहीं रहा है कि वह अपने उत्पादन को विश्व भर में फैले हुए उपभोक्ताओं तक स्वयं पहुँचा सके। उत्पादन की विभिन्न इकाइयों को उचित मात्रा एवं समय पर पहुँचाने के लिए एकत्रीकरण आवश्यक हो गया है।

एकत्रीकरण की क्रिया सिर्फ कृषि क्षेत्र व उत्पादित वस्तुओं के लिए ही आवश्यक नहीं है अपितु यह कारखानों में उत्पादित उन वस्तुओं के लिये भी आवश्यक

---

1. "Standardization is the General term which includes the establishment of standards for products, the inspection of products in order to determine the standards to which they conform and where necessary, the sorting of products into lots conforming to established standards."
Tousley, Clerk and Clerk : Principles of Marketing,

है जिन वस्तुओं का उपयोग अन्य कारखानों में कच्चे माल के रूप में किया जाता है। निर्मित वस्तुओं के एकत्रीकरण में क्षेत्रीय थोक-व्यापारी, स्थानीय थोक व्यापारी तथा फुटकर विक्रेता महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं। स्वयं अन्तिम उपभोक्ता भी अपनी माँगों के अनुसार अपने लिए वस्तुओं का संकलन करता है।

एकत्रीकरण से लाभ—एकत्रीकरण यद्यपि खरीदने का समानार्थी नहीं है लेकिन यह इसका सहायक कार्य अवश्य है। एकत्रीकरण से निम्नलिखित लाभ हैं—

1. **यातायात व्ययों में कमी**—एकत्रीकरण के अन्तर्गत एकत्रित किये हुए माल को एकत्र करने से केवल उत्पादन स्थानों से मण्डियों तक माल भेजने में सुविधा ही नहीं होती बल्कि बड़ी मात्रा के कारण यातायात, संग्रह आदि के व्ययों में वचत हो जाती है।

2. **मूल्यों के परिवर्त्तनों को रोकने में सहायक**—एकत्रीकरण के द्वारा बाजारों में मांगों के अनुसार ही माल की पूर्ति होती रहती है जिनसे मूल्यों के उतार-चढ़ाव की संभावनायें नहीं रहती। इस प्रकार मूल्यों के उतार-चढ़ाव को रोकने में एकत्रीकरण का वहुत अधिक सहयोग रहता है।

3. **वस्तुओं का प्रमापीकरण तथा श्रेणीकरण** सम्भव—कृषि पदार्थों में वस्तुओं के प्रमापीकरण और श्रेणीकरण की बड़ी महत्ता है, और यह एक बड़ी मात्रा में इकट्ठा करने के बाद अधिक कुशलता व कम खर्च पर सम्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार एकत्रीकरण के कारण वस्तुओं का प्रमापीकरण एवं श्रेणीकरण सम्भव हो जाता है।

4. **संग्रहण-व्यय में कमी**—बड़ी मात्रा में वस्तु को बेचने लिए अन्तिम रूप देने में जिनमें माल साफ करने व माल को बनाने की अनेक क्रियायें सम्मिलित हैं, कम व्यय पड़ता है। यह एकत्रीकरण द्वारा ही सम्भव है।

5. **माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन सम्भव**—एकत्रीकरण के द्वारा समय-समय पर होने वाले मांग व पूर्ति के मध्य के असंतुलनों को दूर किया जा सकता है।

6. **बाजार का विस्तार**—एकत्रीकरण होने से माल को दूर-दूर तक भेजा जाकर पूर्ति पूर्ण की जा सकती है। अतः बाजार का विस्तार होता है।

7. **उपभोक्ता को सुविधा**—आजकल एकत्रीकरण करने वाली संस्थायें स्वयं ही लोगों की आवश्यकताओं के अनुमानों पर एकत्रीकरण करती रहती हैं जिससे उपभोक्ताओं को कोई कठिनाई नहीं होती।

8. **कृषि एवं उद्योग दोनों में सम्भव**—एकत्रीकरण कृषि व उद्योग दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है, और कई मध्यस्थों के सहयोग से किया जाता है। कृषि क्षेत्र में इसका महत्व और भी अधिक है क्योंकि कृषि क्षेत्र में एकत्रीकरण की समस्या कठिन और जटिलतम रूप ले लेती है।

प्रश्न 10. 'वैज्ञानिक क्रय' की परिभाषा दीजिये। एक बड़े व्यवसाय में उत्पादन परिव्यय लेखों तथा विक्रय की योजनाओं में यह किस प्रकार सहायक होता है ?

Define 'Scientific Purchasing.' How does it help in production, costing and schemes of a big business ?

उत्तर—

सामग्री का वैज्ञानिक क्रय
(Scientific Purchasing of Materials)

अर्थ—क्रय करना वास्तव में एक कला ही है। कुशलता से क्रय करके उपक्रम के उत्पादन व्यय में पर्याप्त कमी की जा सकती है। **क्रय से हमारा तात्पर्य, "क्रय की जाने वाली वस्तुओं की किस्में, मात्रा, क्रय करने का समय व उन स्त्रोतों का जिनसे उनका क्रय किया जावे, के चुनाव के निर्णय करने से होता है।"** सरल शब्दों में, क्रय करने का अर्थ खुले बाजार में जाना, किसी वस्तु का न्यूनतम मूल्य पता लगाना तथा इस मूल्य पर बेचने वाले विक्रेता का चुनाव करना है। **डॉ. वाल्टर्स** के शब्दों में, "वैज्ञानिक क्रय से आशय किसी उत्पादन के निर्माण में प्रयोग की जाने वाली उचित सामग्रियों, मशीनों, उपकरणों एवं स्टोर्स को प्राप्ति से है, जिनकी किस्म, मात्रा, मूल्य एवं खरीद का समय सब विचाराधीन उद्देश्य के अनुरूप हों।"

अलबर्ट एवं बीटी के मतानुसार—"क्रय करने से आशय किसी निर्माणी संस्थान की साज-सज्जा, भरण-पोषण एवं संचालन के लिए आवश्यक सामग्रियों स्टोर्स, मशीनें, उपकरण एवं सेवायें प्राप्त करने से है।"

वैज्ञानिक क्रय के उद्देश्य

(1) सर्वोत्तम कीमत पर (आवश्यक नहीं कि सबसे सस्ती कीमत हो) एक दी हुई मात्रा एवं किस्म की सामग्रियाँ खरीदना। (2) ऐसी सामग्रियाँ खरीदना जो उत्पादन एवं उद्देश्य के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हो। (3) उत्पादन विभाग की मांग आने से पर्याप्त पहिले ही एक कार्यक्रम के अनुसार सामग्रियाँ खरीदना जिससे उत्पादन कार्य में रुकावट नहीं आवे। (4) इतनी मात्रा में माल खरीदना कि न तो स्टाक में अधिक होने से पूँजी बेकार फँसी रहे और न इतना ही कम रहे कि उत्पादन के लिये नियमित पूर्ति में कठिनाई पड़े। (5) पर्याप्त अच्छी किस्म की सामग्री खरीदकर उत्पादन का गुण बढ़ाने में सहायक होना।

वैज्ञानिक क्रय का महत्व एवं लाभ

वैज्ञानिक क्रय का आधार महत्व है। इसका महत्व एवं लाभ निम्न कारणों से है—(1) विक्रय उचित कीमत पर तब ही सम्भव होगा जबकि उत्पादन के निर्माण में लगने वाली सामग्रियाँ उचित कीमत पर क्रय की जावें। (2) क्रय विभाग की कुशलता पर विनियोजना की उलट-फेर निर्भर है। (3) अन्तिम उत्पादन तभी अच्छी किस्म का हो सकता है जबकि सामग्री की किस्म अच्छी हो, क्योंकि

अन्तिम उत्पाद की किस्म बहुत हद तक सामग्री की किस्म पर निर्भर करती है। इसके लिये वैज्ञानिक क्रय की आवश्यकता होती है। (4) उत्पादन विभागों को सामग्री की यथासम्भव उपलब्धि भी वैज्ञानिक क्रय पर ही निर्भर करती है। (5) एक वैज्ञानिक क्रय प्रणाली के द्वारा ही यह सम्भव हो सकता है कि न तो सामग्री इतनी अधिक मात्रा में खरीदी जाये कि वह लम्बे समय तक गोदामों में पड़ी रहे, और इस प्रकार पूँजी बेकार फँसी रहे और न ही इतनी कम मात्रा में या देर से खरीदी जावे कि सामग्री के अभाव में उत्पादन कार्य में रुकावट आवे। (6) बाहरी एजेन्सियों से सम्पर्क होने के कारण क्रय विभाग कम्पनी को यह सलाह दे सकता है कि कौनसी नई सामग्रियाँ अपेक्षाकृत लाभदायक रहेंगी या किन नये उत्पादों का निर्माण प्रारम्भ किया जावे, कीमत की प्रवृत्ति कैसी चल रही है आदि। (7) अपने बाहरी संसार के अनुभव के आधार पर क्रय विभाग कम्पनी को उत्पादन योजना बनाने में भी महत्वपूर्ण परामर्श दे सकता है।

अच्छी क्रय-नीति के अनिवार्य तत्व या क्रय के सिद्धान्त

एक अच्छी क्रय-नीति के अनिवार्य तत्व या क्रय के सिद्धांत या गुण निम्न-लिखित हैं—

1. **उचित मूल्य पर क्रय किया जावे**—उचित मूल्य वह होता है जो क्रेता व विक्रेता दोनों के दृष्टिकोण से उचित हो। उचित मूल्य का अर्थ यह है कि सामग्री का मूल्य प्रतियोगितापूर्ण होना चाहिए तथा उसकी शर्तें आसान एवं उचित होनी चाहिए। इसका अर्थ न्यूनतम मूल्य से नहीं है। सामग्री के गुण, स्थायित्व, सुपुर्दगी का समय एवं स्थान विक्रय के पश्चात् सेवायें आदि तत्वों को विचार करके उचित मूल्य पर ज्ञात किया जाता है। क्रय का यह सबसे महत्वपूर्ण तत्व या सिद्धान्त है, क्योंकि उपक्रम का लाभ बहुत कुछ इसकी उपयुक्तता पर निर्भर करता है। उचित मूल्य पर सामग्री का मिलना बहुत कुछ क्रय विभाग की योजना तथा अनुभव पर निर्भर करता है।

2. **उचित गुण वाली वस्तु का क्रय किया जावे**—गुण के अन्तर्गत देखी जाने वाली बातें हैं—कलाकारी, आकार, डिजायन, नमूना, रंग आदि। जो भी सामग्री खरीदी जावे वह आवश्यकता के अनुसार उचित गुण की होनी चाहिए। औद्योगिक संस्थाओं में यह सामग्री उत्पादन की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। इसके विपरीत, व्यावसायिक संस्थाओं में यह ग्राहकों की मांग के अनुसार होना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि सर्वश्रेष्ठ गुण की सामग्री सदैव से उचित नहीं होती है। किसी-किसी कार्य के लिये सर्वश्रेष्ठ गुण की सामग्री उचित रहती है तो किसी दूसरे कार्य के लिये घटिया किस्म का माल। दैनिक प्रयोग की वस्तुओं के क्रय के लिये क्रय विभाग को छूट दी जानी चाहिए कि वह एक श्रेष्ठ गुण का माल क्रय करले। अन्य सामग्री के लिये क्रय विभाग को सम्बन्धित विभाग से गुणादि के लिये निर्देश प्राप्त करना चाहिए।

वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि कुछ विभाग की क्रय योग्यता तथा सामग्री विशेषज्ञ के विशिष्ट ज्ञान के मध्य तालमेल बैठाया जाये। समग्रियों के उचित गुण की होने से कच्ची सामग्री एवं खराब हुए काम की मात्रा के सम्बन्ध में होने वाले अपव्यय कम हो जाते हैं। निर्माण क्रिया निर्बाध एवं समान गति से होती रहती है और विक्रय में सुविधा रहती है।

3. **उचित मात्रा में क्रय किया जावे**—एक समय में वस्तुओं का क्रय उचित मात्रा में किया जाना चाहिए। एक साथ इकट्ठा क्रय करने से सामग्री कुछ कम मूल्य पर मिल जाती है, उसकी ढुलाई आदि पर कम व्यय होता है एवं हाथ में काफी स्टॉक रहने से उत्पादन विभाग को शीघ्र ही सामग्री पहुँचाई जा सकती है पर इससे बहुत समय तक कार्यशील पूँजी उलझी रहती है, सामग्री के क्षय एवं अप्रचलित हो जाने का सदा डर भरा रहता है तथा यह सामग्री गोदाम में मूल्यवान जगह भी घेरती है। इसके विपरीत, छोटी खेपों में क्रय करने से पूँजी की बचत होती है, सामग्री के क्षय होने का समय वीतने के साथ अप्रचलित हो जाने का डर नहीं रहता है तथा गोदाम में स्थान भी कम घिरता है पर निम्न स्थितियों में सामग्री को इकटठा क्रय किया जा सकता है (i) जहाँ सामग्री की लागत कुल लागत का बहुत बड़ा अंश होती है। (ii) जहाँ सामग्री का बहुत वड़ी मात्रा में निरन्तर उपयोग होता रहता है एवं (iii) जहाँ निर्माण प्रक्रिया में विशेष परिवर्तन होने की सम्भावना नहीं होती। साधारणतया खरीदी हुई सामग्री की मात्रा न तो इतनी कम ही होनी चाहिए कि यथासम्भव उत्पादन विभागों को सामग्री न पहुँच सके और न इतनी अधिक होनी चाहिए कि व्यर्थ में ही उसमें पूँजी लगी रहे और उसका ह्रास होता रहे। एक समय में क्रय की जाने वाली उचित मात्रा वह है जो सामान्य माँग, वित्तीय साधनों, बाजार की दशाओं एवं विक्रय-फेर की दृष्टि से उपयुक्त हो।

4. **उचित समय पर क्रय किया जावे**—क्रय के सम्बन्ध में समय भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह आवश्यक है कि किसी कार्य के लिए जिन-जिन सामग्रियों की आवश्यकता हो, वह सब समय पर आ जावे जिससे उत्पादन कार्य में देरी न हो। अतः उचित समय से यह तात्पर्य है कि सामग्री का स्टॉक जव न्यूनतम सीमा के करीब हो, सामग्री का क्रय किया जावे। सामग्री क्रय करने का उचित समय वह है जब उसकी आवश्यकता हो, उसको क्रय करने के लिए पर्याप्त धन हो तथा जब वह आसानी से मिल सकती हो।

5. **उचित स्रोत से क्रय किया जावे**—सामग्री क्रय करते समय यह भी निश्चित करना होता है कि सामग्री किस विक्रेता से खरीदी जाये। सामग्री क्रय करते समय यह भी नितान्त आवश्यक है कि जिस विक्रेता से वह खरीदी जा रही है वह अच्छी किस्म तथा सन्तुष्टि का माल, नियत समय पर तथा उपयुक्त शर्तों, जैसे—उधार, कमीशन आदि पर दे सकता है कि नहीं। अतः सुस्थापित फर्मों से सामग्री क्रय की जानी चाहिये।

6. क्रय **की गई सामग्री का सत्यापन**—क्रय की गई सामग्री की जाँच का काम प्रायः प्राप्त करने वाले विभाग द्वारा किया जा सकता है। प्राप्तकर्ता विभाग सामान्यतः स्टोर विभाग की ही एक शाखा होती है।

क्रय के प्रकार

उपक्रम की आवश्यकताओं एवं नीतियों तथा बाजार की स्थितियों से क्रय का तरीका प्रभावित होता है। क्रय के प्रमुख ढंग या प्रकार निम्नलिखित हैं—

1. **बाजार के अनुसार क्रय**—बाजार के अनुसार क्रय करने का अर्थ यह है कि जब भी बाजार की परिस्थितियाँ अनुकूल हों अर्थात् मूल्य कम हों तब ही क्रय करना। ऐसे क्रय में बाजार की परिस्थितियों का ध्यान रखा जाता है न कि एक पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार या एक निर्धारित अवधि के लिए क्रय किया जाता है। ऐसे क्रय में कम मूल्य पर सामग्री प्राप्त हो जाती है एवं उत्पादन की तुरन्त आवश्यकताओं के अनुसार ही क्रय करना आवश्यक नहीं होता पर बाजार की परिस्थिति का अनुमान गलत हो जाने पर अपेक्षित लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना रहती है। सामग्री के क्षय या अप्रचलित हो जाने का डर रहता है साथ ही गोदाम में मूल्यवान जगह घिरी रहती है।

2. **परिकल्पनात्मक क्रय**—परिकल्पनात्मक क्रय का आशय ऐसे क्रय से है कि जब बाजार में सामग्री का मूल्य कम हो तब उत्पादन की आवश्यकताओं से कहीं अधिक इस उद्देश्य से क्रय करना कि जब बाजार में तेजी आवेगी तो अधिकांश सामग्री लाभ पर बेच दी जायगी। परन्तु साधारणतः सट्टे से ऐसे क्रय में लाभ उठाना क्रय विभाग का काम नहीं है अतः ऐसे क्रय को हतोत्साहित करना चाहिए। क्योंकि ऐसे क्रय में बाजार मूल्य अनुकूल होने पर ही अधिक लाभ कमाया जा सकता है अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। फिर सामग्री के क्षय या अप्रचलित हो जाने का डर रहता हैं। गोदाम में मूल्यवान जगह घिरी रहती है एवं विशाल मात्रा में पूँजी फँसी रहती है।

3. **अनुबन्ध के अनुसार क्रय**—ऐसे क्रय में सामग्री विक्रेता से निश्चित समय तक निश्चित मात्रा में तथा निश्चित मूल्य पर सामग्री की पूर्ति करने के अनुबन्ध किये जाते हैं। इस प्रकार के अनुबन्धों का उद्देश्य निश्चित मूल्य पर वर्ष भर कच्ची सामग्री की उपलब्धि की व्यवस्था करना है। इससे संयंत्र में सामग्री का निरन्तर प्रभाव बना रहता है। सरकार इसी प्रकार से सामग्री क्रय करती है। इससे सामग्री की पूर्ति के लिये निविदा आमन्त्रित किये जाते हैं तथा न्यूनतम मूल्य वाले निविदा स्वीकार कर लिये जाते हैं, इस प्रकार के अनुबन्धों को रोक अनुबन्ध कहते हैं।

4. **सौदेबाजी से क्रय करना**—ऐसे क्रय से क्रेता बाजार में जाकर उत्पादकों या विक्रेताओं से सौदेबाजी करता है। जूते के निर्माता इसी प्रकार से सामग्री क्रय करते हैं।

सामग्री क्रय करने की कार्यविधियाँ एवं नीतियाँ

सामग्री क्रय करने की कार्यविधि में निम्नलिखित कदम सम्मिलित रहते हैं—

1. **क्रय का मांग-पत्र या क्रय का अधिकार देना**—क्रय कार्य क्रय के माँग-पत्र से आरम्भ होता है। क्रय माँग-पत्र क्रय विभाग को सामग्री के क्रय के लिए आदेश देने का अधिकार देता है। इसमें यह बतलाया जाता है कि कितनी सामग्री प्लान्ट में कब और कहाँ चाहिए।

4. **निर्ख प्राप्त करना**—क्रय के लिए अधिकार मिलने पर क्रय विभाग पूर्ति के स्रोतों से सम्पर्क स्थापित करता है और उससे कीमत, सुपुर्दगी, मात्रा, सामग्री का पूर्ण विवरण एवं निर्ख माँगता है।

3. **आर्डर देना**—निर्ख आने पर क्रेता उस विक्रेता का चुनाव करता है, जिससे कि सामगी खरीदी जावेगी। फिर उसे क्रय आदेश दिया जाता है। इस आदेश में सारी सूचनाएँ तथा शर्तें जैसे—विक्रेता का नाम, पता, सामगी की मात्रा, मूल्य, सामग्री पहुचाने का स्थान एवं समय आदि स्पष्टतः बतलाए जाते हैं। प्रायः क्रय आदेश की 5-6 प्रतियाँ प्रयोग की जाती हैं।

2. **अनुसरण**—सामग्री के क्रय करने में अनुसरण का कार्य भी करना पड़ता है। अनुसरण विक्रेता को विक्रय की शर्तों के अनुसार सामग्री भेजने के लिए तकाजा करने की क्रिया होती है।

5. **निरीक्षण**—सामग्री की प्राप्ति के पश्चात यह देखने के लिए कि वह किस्म, मात्रा तथा अन्य बातों में आर्डर की शर्तों के अनुसार है या नहीं उसका निरीक्षण करना आवश्यक होता है।

प्रश्न 11. "माँग की उत्पत्ति का कार्य तीन प्रमुख आकृति लेता है—व्यक्तिगत बिक्री, विज्ञापन एवं बिक्री प्रवर्तन।" विस्तारपूर्वक समझाइये।

"The work of demand creation takes three major forms—personal selling, advertisement and sales promotion," Discuss fully.

उत्तर : माँग की उत्पत्ति से आशय (Meaning of Demand Creation)—विशाल पैमाने के उत्पादन व प्रतिस्पर्द्धा के इस युग में वस्तुओं और सेवाओं को विशाल पैमाने पर बेचने के लिए उनकी माँग को उत्पन्न करना अति आवश्यक है। कुछ वस्तुएँ जैसे—अनाज, कपड़ा, मकान आदि की माँग तो स्वयं ही पायी जाती है केवल इन माँगों को पूरा करने के लिए वस्तुओं के क्रेताओं तक पहुँचने भर की आवश्यकता होती है। किन्तु बहुत-सी वस्तुयें ऐसी होती हैं जिनकी माँग को उत्पन्न करना पड़ता है। जैसे नयी निर्मित मशीन, नई प्रकाशित पुस्तकें व अन्य आराम व विलासिताओं की वस्तुएँ। इनकी माँग स्वतः पैदा नहीं होती बल्कि पैदा करनी पड़ती है। माँग की उत्पत्ति को परिभाषित करते हुए **टूसले, क्लार्क एवं क्लार्क** ने लिखा है, "अन्त में, लाभप्रद मूल्यों पर बेचने के उद्देश्य से किए गए व सब विशेष

प्रयत्न जो वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा में वृद्धि कर सकें, मांग की उत्पत्ति के रूप में परिभाषित किये जा सकते हैं।"[1]

टुसले, क्लार्क एवं क्लार्क ने मांग की उत्पत्ति के निम्न उद्देश्य बतलाये हैं—

(i) जनता जितना उपभोग करती है उससे अधिक उपभोग करने लगे।

(ii) जिन वस्तुओं का उपभोग करती है उनके स्थान पर अन्य वस्तुओं का उपभोग करने लगे।

(iii) एक ही प्रकार की वस्तुओं में से किसी विशेष वस्तु को खरीदे; या किसी विशेष विक्रेता से ही वस्तु खरीदे आदि।

परिवहन साधनों व शिक्षा का विकास हो जाने से मांग[2] उत्पन्न करने का क्षेत्र भी विस्तृत होता जा रहा है। मांग उत्पन्न करने के विभिन्न तरीके हैं। इनमें मुख्य निम्नलिखित हैं—

1. बिक्री करने वाले कर्मचारियों के सहयोग से या व्यक्तिगत बिक्री (Solicitation by Salesmen or Personal Selling)

2. विज्ञापन के सहयोग से (Solicitation by Advertising)।

3. विक्रय प्रवर्तन (Sales Promotion)।

1. **बिक्री करने वाले कर्मचारियों के सहयोग से** (Soliciation by Sales-man)—यह मांग उत्पन्न करने का सबसे पुराना तरीका है। आज भी छोटे-छोटे व्यापारियों द्वारा इस तरीके को अपनाया जाता है। इस बिक्री के तरीके के अन्तर्गत कुछ कुशल विक्रेताओं को रखा जाता है। ये लोगों से सम्पर्क स्थापित कर वस्तुओं की मांग उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। इसके अन्तर्गत ग्राहकों को वस्तु के नमूने (Samples) दिखाये जाते हैं तथा उसकी कार्य-प्रणाली आदि का प्रदर्शन व विवेचन किया जाता है। कभी-कभी वस्तु उसी समय बेच दी जाती है और मूल्य प्राप्त कर लिया जाता है तो कभी-कभी आर्डर ले लिया जाता है जिसकी पूर्ति निर्माता के द्वारा बाद में कर दी जाती है। ग्राहक को आकर्षित करना और उसको वस्तु खरीदने के

---

1. "Thus demgnd creation may be defined as all special efforts to stimulate a desire for goods with the ultimate objective of sale at a profit."
-Tousley Clerk and Clerk : Principles of Marketing,

2. "It is the province of demand creation to make public more of the things it is accustomed to consume, to purchase other products than is its habit, to buy one article in preference to another or several other things of the same general kind or to patronizc one vendor rather than ano ther"
--Tousley Clerk and Clerk,

लिए बाध्य कर देना विक्रेता के व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करता है। वर्तमान प्रतिस्पर्द्धा के युग में ग्राहकों को ही व्यवहार का केन्द्र-बिन्दु माना जाता है। ग्राहक के प्रति विक्रेता का व्यवहार सौम्य एवं मधुर होना चाहिए। **प्रो. रसल** (Prof. Russell) ने लिखा है कि "कर्मचारियों द्वारा विक्रय अर्थात् व्यक्तिगत विक्रय मानव के उन गुणों की ओर इशारा करता है जिससे विक्रेता क्रेता की इच्छा को आवश्यकता में आसानी से परिवर्तित कर उसको खरीदने के लिए प्रेरित करता है। यह वह कला है जिसके द्वारा क्रेता को केवल माल ही नहीं बेचा जाता बल्कि उसमें माल के प्रति उतनी ही श्रद्धा उत्पन्न कर दी जाती है जितनी कि विक्रेता स्वयं रखता है। इस प्रकार यह क्रेता की आवश्यकताओं को अपनी वस्तुओं और सेवाओं द्वारा सन्तुष्ट करता है।"[1] **रिपले** (Ripley) के शब्दों में "यह वह शक्ति है जिसके द्वारा असंख्य व्यक्तियों का प्रसन्नतापूर्वक तथा स्थायी रूप से क्रय करने के लिये अनुग्रह किया जाता है।"[2]

2. **विज्ञापन के सहयोग से** (Solicitation by Advertising)—साधारण शब्दों में विज्ञापन का अर्थ किसी वस्तु विशेष का ज्ञान कराने से है। आरम्भ में विज्ञापन से तात्पर्य केवल 'सूचना देना' माना जाता था। परन्तु आजकल विज्ञापन केवल सूचना देने का साधन मात्र नहीं है, यह बिक्री बढ़ाने का साधन भी है। **प्रो० वेब्स्टर** के शब्दों में, "किसी भी प्रकार की कोई सार्वजनिक घोषणा जिसका उद्देश्य प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी वस्तु के विक्रय आदि को बढ़ाने, किसी सिद्धांत एवं विचार की ओर सार्वजनिक ध्यान को आकर्षित करने एवं जनता को एक विशेष प्रकार से कार्य करने के लिये अनुरोध करने से हो, उसे विज्ञापन कहते हैं।" **अमरीका की मार्केटिंग एसोसियेशन** की परिभाषा समिति के अनुसार, विज्ञापन का अर्थ है—"विचारों, वस्तुओं या सेवाओं का एक स्पष्ट प्रतिपादक के द्वारा धन खर्च करके किया गया कोई व्यक्तिगत प्रवर्तन या प्रस्तुतीकरण।"[3]

---

1. "Personal selling has been defined as "the ability to persuade people to want what they already need, as the mutual profitable service of exchange between the producer and consumer, is nothing more or less than making the other fellow feel as you about the thing you have to sell, is the art of satisfying the need of a customer with goods and services."

   —Prof. Russel.

2. "Salesmanship is a power to persuade plenty of people to pleasurably and permanently to purchase your product at a profit."

   —Repley

3. "Advertisement is any paid form of non-personal presentation and promotion of ideas, goods or services by an identified sponsor. —American Marketing Association.

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि विज्ञापन अव्यक्तिगत (Nonpersonal) होता है। यह संस्था के सन्देश को अधिक लोगों तक पहुँचा सकता है और उन्हें इसकी वस्तु अथवा सेवा को स्वीकार करने के लिए प्रेरित कर सकता है ।

विज्ञापन के उद्देश्य—व्यापारिक जगत में विज्ञापन का बहुत महत्व है। विज्ञापन का उद्देश्य उत्पादन तथा वितरण की प्रतिशत लागत में कमी करना है। विज्ञापन के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हो सकते हैं—

(i) नव-निर्मित वस्तुओं के गुणों और उपयोगिता के सम्बन्ध में जनता को जानकारी देना।

(ii) वस्तुओं की उपयोगिता के संबंध में संशयों को दूर करना और स्थानापन्न वस्तुओं को हतोत्साहित करना।

(iii) नयी माँग पैदा करना।

(iv) वस्तुओं की मांग में वृद्धि करना।

(v) व्यापारी सम्बन्धों में सुधार करना।

ई. एफ. एल. ब्रेच. (E. F. L. Brech) ने विज्ञापन के उद्देश्य में लिखा है कि "विज्ञापन का उद्देश्य उत्पादक को लाभ पहुँचाना, उपभोक्ता को शिक्षित करना, विक्रेता की सहायता करना, स्पर्धा को समाप्त कर व्यापारियों को अपनी ओर आकर्षित करना और सबसे अधिक तो उत्पादक और उपभोक्ता के सम्बन्ध अच्छे बनाना है।"1

विज्ञापन के विभिन्न साधन (Different medias of Advertisement)—विज्ञापन के साधन अथवा माध्यम से हमारा अभिप्राय वस्तुओं एवं सेवाओं की क्रेता तक सूचना पहुंचाने के सभी उपकरणों एवं विधियों से है। विज्ञापन के माध्यम से सही चुनाव पर ही विज्ञापन की सफलता निर्भर होती है। आजकल विज्ञापन के विभिन्न तरीके प्रचलित हैं जिनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(i) समाचारपत्रीय विज्ञापन (Press Advertisement)।

(ii) बाह्य या दीवारों के विज्ञापन (Outdoor or Mural Advertisement)।

(iii) डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन(Direct mail Advertisement।

(iv) अन्य विविध साधन (Miscellaneous Advertisement)।

---

1. "Advertisement aims at committing the producer, educating the consumer, supplementing the salesman, connecting the dealer to eliminate the competitor, but above all it is a link between the producer and the consumer." —E. F. L. Brech.

(i) **समाचारपत्रीय विज्ञापन** (Press Advertisement)—आधुनिक युग में समाचारपत्रीय विज्ञापन, विज्ञापन का अत्यन्त लोकप्रिय साधन है क्योंकि इसके द्वारा सर्वसाधारण जनता को वस्तु का ज्ञान हो जाता है। समाचार-पत्र दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक होते हैं। इनकी भाषा एवं चलन क्षेत्र भिन्न-भिन्न होता है। ये स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं। आजकल कई व्यापारी स्वयं ही या संगठित होकर केवल विज्ञापन के लिए समाचार सूत्र प्रकाशित करते हैं। प्रत्येक उत्पादक अथवा व्यापारी जो अपनी वस्तु की जानकारी कराने के लिए इस साधन को वैज्ञानिक रूप से अपनाता है पूर्णतया लाभ उठाता है, क्योंकि इसके द्वारा वस्तु सम्बन्धी सूचना सहस्त्रों व्यक्तियों तक आसानी से पहुँच जाती है।

समाचारपत्रीय विज्ञापन का वर्गीकरण (Classification of Newspaper Advertising)—

(1) **वर्गीकृत विज्ञापन** (Classified Advertisement)—इस प्रकार के विज्ञापन से साधारणतया वस्तुओं के नाम, पते, विवरण, प्राप्ति स्थान तथा अन्य विशेषतायें दी जाती हैं। इस प्रकार के विज्ञापन देखने से ग्राहक को वस्तु विशेष का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

(2) **अवर्गीकृत विज्ञापन** (Unclassified Advertisement)—इस प्रकार के विज्ञापन में केवल वस्तु के गुण तथा निर्माण का नाम दिया रहता है और अन्य बातें नहीं दी हुई रहती हैं। इस प्रकार के विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य जनता को सूचना देना एवं वस्तु विशेष की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना होता है। इस प्रकार के विज्ञापन सामयिक पत्रिकाओं में बहुत होते हैं।

समाचार-पत्र अनेक प्रकार के होते हैं। अतः विज्ञापनदाता को इस बात का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए कि उन समाचार-पत्रों का प्रचार किस जन-समुदाय का है और उनकी क्या आदत अथवा रुचि है। कुछ समाचार-पत्र देशव्यापी होते हैं और कुछ स्थानीय होते हैं। कुछ समाचार-पत्र श्रमिकों में लोकप्रिय होते हैं और कुछ उच्च वर्ग के समुदायों में, व्यापारियों में तथा विद्यार्थियों आदि में। विज्ञापन उसी समाचार-पत्र अथवा पत्रिका में देना चाहिए जिसे उसके ग्राहक अधिक रुचि से पढ़ते हों।

समाचार-पत्रों की किस्म—

(i) दैनिक समाचार-पत्र (Daily Newspaper) :
   (अ) प्रातःकालीन,
   (ब) सायंकालीन,
   (स) रविवारीय।
(ii) साप्ताहिक (Weekly)।
(iii) पत्रिकायें (Magazines)।
(iv) विक्रेताओं के समाचार-पत्र।

(A) स्थानीय प्रकाशन ।
(B) महाविद्यालयीन ।
(C) मार्गदर्शिका ।
(D) मासिक ।
(E) पाक्षिक ।
(F) अर्द्ध साप्ताहिक ।

(ii) **बाह्य या दीवारों के विज्ञापन** (Outdoor or Mural (Advertisement)—विज्ञापन का यह साधन बहुत पुराना है । 'मूरल' (Mural) शब्द का अर्थ दीवारों से होता है इसलिए इसे दीवारी विज्ञापन भी कहते हैं । बाह्य विज्ञापन के अन्तर्गत न केवल दीवारों पर चिपकाये जाने वाले विज्ञापन ही आते हैं वरन् पोस्टर्स, बिजली द्वारा सजावट करना, बस, ट्रेन तथा ट्राम के विज्ञापन, गलियों व सड़कों के विज्ञापन फलक (Street Hordings) आदि भी सम्मिलित किये जाते हैं ।

अधिकांशतः विज्ञापन बाह्य विज्ञापन द्वारा ही किया जाता है । यह बहुत ही साधारण भाषा में किया जाता है जिससे सर्वसाधारण की समझ में आसानी से आ सके । ऐसे विज्ञापन वस्तु के सम्बन्ध में एक ऐसा वातावरण निर्माण करते हैं जिससे कि जनता उसका नाम याद रख सके । इन विज्ञापनों में वस्तु के नाम, उसके एक या दो विशेष गुण तथा प्राप्ति स्थान का उल्लेख होता है ।

दीवारों के विज्ञापन द्वारा केवल सर्वसाधारण के उपभोग एवं आमोद-प्रमोद की वस्तुओं का ही प्रचार करना उचित है क्योंकि ये विज्ञापन सब प्रकार के उपभोक्ताओं को आकर्षिक करते हैं । इस साधन के द्वारा गृहस्थ की वस्तुओं, भोज्य पदार्थों, पेय वस्तुओं, नाच-गान कार्यक्रम, सर्कस, सिनेमा, जूते, कपड़े, लेखन-सामग्री और खेलकूद जैसे हाकी, फुटबाल, क्रिकेट आदि का बड़े पैमाने पर प्रचार किया जाता है । जो वस्तुयें सर्वसाधारण के उपयोग की नहीं हैं उनके लिये इस साधन को अपनाना उचित नहीं है । जब विज्ञापन करने के लिए सीमित धनराशि हो या किसी सीमित क्षेत्र के भीतर ही विज्ञापन करना हो तो यह साधन सर्वोत्तम है । फुटकर विक्रेताओं को आकर्षित करने के लिए इस साधन को अपनाया जाता है ।

(iii) **डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन** (Direct Advertisement)—**रिचार्ड मैसनर** (Richard Messner) के शब्दों में, "डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन विज्ञापनदाता के सन्देश को जो स्थायी छपा हो, लिखित अथवा विधिवत रूप में हो, नियन्त्रित वितरण द्वारा, सीधे चुने हुए व्यक्तियों तक पहुँचाने का एक साधन है ।"[1]

1, Direct mail advertising is a vehicle for transmitting a public's message in permanent printed written or processed form, with controlled distribution, direct to selected individuals."

—Richard Messner.

इसका अर्थ यह है कि इसमें विज्ञापन कुछ व्यक्तियों को सन्देश समय-समय पर भेजता रहता है। इसका उद्देश्य ग्राहकों के आर्डर डाक के द्वारा मंगाना है, प्रत्यक्ष ग्राहक को दुकान पर आने का निमन्त्रण देना नहीं है। जिन व्यक्तियों को विज्ञापन-दाता अपनी वस्तुओं से प्रभावित करना चाहता है, उनके पास अपना विक्रय साहित्य जैसे सूचीपत्र, पुस्तिकाएँ (Booklets), डाक कार्ड (Mailing card), विवरण पत्र, फोल्डर आदि डाक द्वारा सीधे भेजा करता है। इस प्रकार का विज्ञापन साधारण जनता के लिए नहीं रहता है। यह कुछ विशेष व्यक्तियों तक ही सीमित रहता है। जिन व्यक्तियों से प्रत्यक्ष डाक द्वारा सम्पर्क स्थापित करना होता है, उनकी एक सूची बना ली जाती है। फिर इन्हीं व्यक्तियों को सीधे वस्तुओं के विवरण-पत्र कुछ समय पश्चात् मूल्य सूची आदि भेजते रहते हैं। इस प्रकार ग्राहक को डाक द्वारा ही वस्तु का ज्ञान कराया जाता है और विश्वास दिलाया जाता है कि वस्तु उनके मनपसन्द होगी अन्यथा निश्चित अवधि में वापिस की जा सकती है।

(iv) **अन्य विविध साधन** (Miscellaneous Advertisements)—विज्ञापनदाता अपने विज्ञापन प्रयत्न को सफल बनाने के लिए विज्ञापन के उक्त साधनों के अतिरिक्त निम्नलिखित विविध साधनों को भी अपनाता है—

(1) रेडियो। (2) टेलीविजन।
(3) मेले व प्रदर्शनी। (4) सेण्डविच बोर्ड विज्ञापन।
(5) सिनेमा स्लाइड, विशिष्ट फिल्म। (6) आकाश लेख।
(7) प्रदर्शन एवं नमूने। (8) नाटकीय कार्यक्रम आदि।

प्रचार के इन विविध साधनों का प्रयोग तब ही किया जाता है जबकि किसी वस्तु का अधिक प्रचार करना हो। भारतवर्ष में मेले एवं प्रदर्शनियों के विज्ञापन का इस दृष्टि से विशेष महत्व है। महत्वपूर्ण पर्वों एवं तिथियों पर हमारे देश में मेले लगते ही रहते हैं। राज्य एवं केन्द्रीय सरकारें भारत-निर्मित माल के प्रदर्शन हेतु समय-समय पर प्रदर्शनियाँ लगाती रहती हैं।

3. **विक्रय प्रवर्तन** (Sales Promotion)—विक्रय बढ़ाने की दिशा में किये गये सभी प्रयत्नों को विक्रय प्रवर्तन के नाम से पुकारा जाता है। इसके अन्तर्गत उन समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनका उद्देश्य विक्रय वृद्धि करना है। **जार्ज डब्ल्यू. हॉप्किन्स** (George W. Hopkins) के मतानुसार, "विज्ञापन को अधिक प्रभावशाली बनाने एवं विक्रय वृद्धि की दिशा में किये गये सभी प्रयत्न विक्रय प्रवर्तन के अन्तर्गत आते हैं।"

मौरिस ई. हक्सले के शब्दों में, "विक्रय प्रवर्तन वस्तुओं और सेवाओं के सम्बन्ध में विभिन्न योजनाओं में उसी प्रकार व्यवहार करता है जिस प्रकार कि विज्ञापन तथा विक्रय कला। यह इन दोनों क्रियाओं का समान स्तर पर एक विस्तार है।"

इस प्रकार विक्रय प्रवर्तन विज्ञापन तथा विक्रय-कला का ही एक विस्तृत रूप है। विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय, उत्पाद में नवीनता लाना, विक्रय-पुस्तिका का प्रकाशन, प्रदर्शनों व प्रति-पत्रकों का विकास, उपदेशक विक्रय व्यक्तियों तथा प्रदर्शकों की नियुक्ति, निदर्शनों का वितरण, वाणिज्य प्रदर्शनियों का प्रयोग तथा अन्य प्रयत्न, जिनका उद्देश्य विक्रय में वृद्धि करना है, विक्रय प्रवर्तन के अन्तर्गत आते हैं।

विक्रय प्रवर्तन के लिये जो विभिन्न उपाय काम में लाये जाते हैं वे हैं—(1) विज्ञापन चित्रपट, (2) चलचित्र गृहों में स्लाइड दिखाना, (3) रेडियो व टेलीवीजन द्वारा विज्ञापन देना, (4) लाउडस्पीकर द्वारा विज्ञापन, (5) मेले तथा प्रदर्शनियाँ, (6) उपहार बाँटना, (7) विशेष छूट प्रदान करना, (8) नमूने का मुफ्त वितरण, (9) प्रीमियम देना, (10) आकर्षक पैकिंग बनाना, (11) इनामी प्रतियोगितायें, (12) ग्राहकों को विशेष सेवा प्रदान करना आदि।

प्रश्न 12. **"विज्ञापन व्यापार के लिए केवल वाणिज्य योजना ही नहीं है जिनके कारण जनता वस्तुओं को खरीदती है, वह शिक्षाप्रद और शिक्षा प्रचारण शक्ति है जो उपभोक्ता कौन-सी वस्तु खरीदे, निश्चय करने में सहायता करती है।" इस कथन को समझाइये।**

Explain the statement, "Advertising is not merely commercial device through the use of which business gets people to buy Products. It is an informative and educational force that aids the Consumer to form judgements on what to buy."

उत्तर—विज्ञापन के द्वारा वस्तुओं को बेचने का प्रयास ही नहीं किया जाता है परन्तु अन्य लाभों के साथ-साथ यह एक शिक्षाप्रद और शिक्षा-प्रचारण शक्ति भी है जो उपभोक्ता कौन-सी वस्तु खरीदे निश्चय करने में सहायता करती है।

व्यावसायिक जगत में विज्ञापन को एक शक्ति का रूप स्वीकार किया जाने लगा है (Advertisment is now an accepted Power in Business World)—विज्ञापन ने जनता की रुचि को इतना प्रभावित किया है कि वह वस्तु, जिसका विज्ञापन नहीं हुआ या जिसका विज्ञापन होना बन्द हो गया, अनुपयोगी बन गई। इसी प्रकार उन वितरकों को जिन्होंने विज्ञापन नहीं किया किसी ने न जाना व जिन्होंने विज्ञापन करना बन्द कर दिया वे जनता द्वारा भुला दिये गये। अच्छे वितरक वस्तुओं के विक्रय हेतु विक्रेताओं को भोजन या अन्य व्यवस्था करने से पूर्व विज्ञापन द्वारा उनकी माँग उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं।

विज्ञापन वस्तुओं के गुणों का भी परिचय कराता है। विज्ञापन आज के व्यापारिक जगत का एक अभिन्न अंग हो गया है। विज्ञापन के माध्यम से उत्पादक या व्यापारी उपभोक्ताओं के जीवन में पहुँचता है और उन्हें विभिन्न वस्तुओं के सम्वन्ध में

सूचना देता रहता है। उपभोक्ताओं तथा विक्रेताओं को निरन्तर सूचना मिलते रहने से उनकी माँग में वृद्धि होती है परिणामस्वरूप समाज को रोजगार मिलता है, उसकी आय में वृद्धि होती है तथा उसकी क्रय-शक्ति में वृद्धि होती है।

अतः स्पष्ट है कि वर्तमान युग में विज्ञापन का प्रत्येक क्षेत्र में बोलबाला है। यहाँ तक कि चुनावों में विजय प्राप्त करने, पंचवर्षीय योजनाओं का प्रचार करने, नौकरी की तलाश करने, विवाह आदि के लिए भी विज्ञापन का सहारा लिया जाता है।

विज्ञापन के लाभ
(Advantages of Advertisement)

वर्तमान युग विज्ञापन का युग है। आज प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञापन का उपयोग किया जाता है। इसकी उपयोगिता केवल किसी एक वर्ग अथवा क्षेत्र विशेष के लिए न होकर सम्पूर्ण समाज तथा क्षेत्र के लिए है। विज्ञापन एवं प्रकाशन का दावा है कि "मैं वर्तमान की आवाज हूं........मैं भूतकाल के आवरण का ताना तथा भविष्य का बाना हूं। मैं शांति और युद्ध दोनों की समान रूप में कहानियाँ बताता हूं........मैं प्रकाश, ज्ञान तथा शक्ति हूं।"

"I am the voice of today, the herald of tomorrow, I weave into the wrap of the past, the woof of the future. I tell the stories of pelace and of war alike......I am light, knowledge and power."

—claim of Advertisement and Publicity.

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विज्ञापन के लाभों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) उत्पादकों एवं निर्माताओं को लाभ

1. **उत्पादन व्यय में कमी**—उत्पादन के क्षेत्र में भी विज्ञापन का बहुत महत्व है। विज्ञापन के फलस्वरूप ग्राहकों की संख्या में वृद्धि होती है तथा वस्तुओं की माँग भी अधिक होती है। ऐसा होने से उत्पत्ति एक बहुत बड़ी मात्रा में की जाती है। अधिक मात्रा में किसी वस्तु का उत्पादन करने से यह निश्चित है कि वस्तु का उत्पादन मूल्य कम हो जाता है। उत्पादन मूल्य के कम होने से वस्तुओं का मूल्य भी कम हो जाता है। इससे ग्राहकों और विक्रेताओं दोनों को ही लाभ रहता है।

2. **नव-निर्मित वस्तुओं की माँग में वृद्धि**—विज्ञापन के द्वारा जनता को नव-निर्मित वस्तुओं का ज्ञान कराया जाता है। आज का युग प्रतिस्पर्धा का युग है। ऐसे समय में आवश्यक है कि अपनी वस्तुओं के गुणों को इस प्रकार से बताया जाये कि ग्राहकों पर यह प्रभाव पड़े कि जो भी वस्तु चलन में आई है वह अवश्य ही पहली वस्तुओं की अपेक्षा अच्छी होगी। ऐसा हो जाने से पुरानी वस्तुओं की माँग कम हो जाती है तथा नई वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। यह सब कुछ विज्ञापन की

कला के ऊपर निर्भर है। विज्ञापन के द्वारा ग्राहकों को वस्तु सम्बन्धी पूर्ण जानकारी करा देनी चाहिये। ऐसा करने से वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है।

3. **अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा का विनाश**—वस्तुओं का विज्ञापन विभिन्न व्यापारिक संस्थाओं द्वारा पृथक-पृथक तो किया ही जाता है किन्तु उनका सामूहिक विज्ञापन भी होता है। सामूहिक विज्ञापन से अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है और समय की भी पर्याप्त बचत हो जाती है उदाहरणार्थ वनस्पति घी व सीमेंट का विज्ञापन।

4. **वस्तुओं के लिए स्थायी माँग**—विज्ञापन एक ऐसा साधन हो गया है जिसके द्वारा किसी वस्तु की माँग को स्थायी रखा जा सकता है। उदाहरण के लिये हम 'चाय' को लेते हैं। समाचार-पत्रों में इस प्रकार का विज्ञापन निकला करता है कि "ब्रुक बाण्ड चाय पीजिये—यह गर्मियों में ठंडक और जाड़ों में गर्मी पहुँचाती है।" अनेक लोग इस प्रकार के विज्ञापनों से प्रभावित होकर बारहों महीने चाय पीने लगते हैं। इससे चाय की माँग स्थायी बन जाती है।

5. **व्यवसाय की ख्याति में वृद्धि**—विज्ञापन से केवल वस्तुओं का ही प्रचार नहीं होता है, निर्माताओं एवं विक्रेताओं का नाम भी साथ में प्रत्येक की दृष्टि में आता है और इस नाम की इतनी ख्याति हो जाती है कि भविष्य में भी यदि किसी नवीन वस्तु के साथ उस नाम का प्रयोग किया जाता है तो वह वस्तु आसानी से बिक जाती है। उदाहरण के लिए आज 'गोदरेज' का नाम सिर्फ स्टील फर्नीचर के साथ ही नहीं लिया जाता है वरन् तालों, साबुन तथा तेल के साथ भी लिया जाता है।

6. **विक्रेताओं को लाभ**—विज्ञापन से विक्रेताओं का कार्य अति सरल हो जाता है। उसका यह कार्य है कि वे उपभोक्ताओं और दुकानदारों को अपनी वस्तुओं के गुणों को समझाकर प्रभावित करें एवं विक्रय-वृद्धि करें। उनका यह कार्य बहुत कुछ विज्ञापन द्वारा सरल हो गया है। अब उन्हें वस्तु के गुणों को समझाने की बहुत अधिक आवश्यकता नहीं रहती है क्योंकि यह कार्य विज्ञापन द्वारा हो जाता है। अब तो उन्हें केवल माल का आदेश प्राप्त करने का ही कार्य बाकी रह गया है। इससे स्पष्ट है कि विज्ञापन के द्वारा विक्रेताओं को बहुत प्रोत्साहन मिलता है।

7. **उत्पादन में गति**—विज्ञापन द्वारा वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है और इस प्रकार वे बड़ी मात्रा में बिकने लगती हैं। इस विक्रय वृद्धि के कारण उत्पादन अधिक मात्रा में होने लगता है और उत्पादकों एवं वितरकों आदि के लाभ में वृद्धि हो जाती है।

8. **वस्तु के प्रति विश्वास तथा ग्राहकों की नियन्त्रण माँग**—विज्ञापन के द्वारा जनता में वस्तु के प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाता है। विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों

को देखकर दुकानदार और उपभोक्ता इस बात का अनुमान लगा लेते हैं कि किस वस्तु में अधिक गुण है एवं किसमें कम। विज्ञापन से पूर्व यह कार्य विक्रेता को स्वयं करना पड़ता था। उसे विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ ग्राहकों को दिखानी पड़ती थीं और उनका तुलनात्मक वर्णन करने के पश्चात् यह बताना पड़ता था कि उसकी वस्तु सर्वश्रेष्ठ है किन्तु अब यह बात नहीं रही है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं की माँग निरन्तर होने लगती है क्योंकि वस्तु के गुणों से सन्तुष्ट हो जाने के पश्चात् ग्राहक उसी वस्तु को खरीदना पसन्द करेगा।

9. **थोक एवं फुटकर मूल्यों में कमी**–उत्पादन व्यय में कमी हो जाने से वे अपने माल को कम मूल्य में थोक विक्रेता को बेचने के लिये तैयार हो जाते हैं अतएव थोक

विज्ञापन के लाभ

(अ) **उत्पादकों एवं निर्माताओं को**–1. उत्पादन व्यय में कमी। 2. नव-निर्मित वस्तुओं की माँग में वृद्धि। 3. अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा का विनाश। 4. वस्तुओं के लिये स्थायी माँग। 5. व्यवसाय की ख्याति में वृद्धि। 6. विक्रेताओं को लाभ। 7. उत्पादन में गति। 8. वस्तु के प्रति विश्वास तथा ग्राहकों की नियन्त्रण माँग। 9. थोक एवं फुटकर मूल्यों में कमी।

(ब) **उपभोक्ताओं को**–1. मध्यस्थों की संख्या में कमी। 2. शिक्षाप्रद एवं ज्ञानवर्द्धक। 3. उपभोक्ताओं के श्रम एवं समय में बचत। 4. उचित मूल्य पर वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। 5. जीवन स्तर में वृद्धि।

(स) **समाज को**—1. आजीविका का साधन। 2. स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का विकास। 3, अन्य क्षेत्रों में सहायक। 4. प्रबन्धकों व मजदूरों को प्रोत्साहन।

(द) **मध्यस्थों को**—1. आय में वृद्धि। 2. समाचार-पत्रों की आय में वृद्धि। 3. निर्माताओं तथा उत्पादकों से सम्पर्क।

व्यापारी फुटकर व्यापारी को कम मूल्य पर माल देने के लिए तैयार हो जाते हैं। साथ ही वस्तुओं का विज्ञापन हो जाने से सभी में आपस में प्रतिस्पर्द्धा हो जाती है, जिसके कारण सभी कम से कम मूल्य पर वस्तु बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं।

(ब) उपभोक्ताओं को लाभ

विज्ञापन से केवल उत्पादकों व निर्माताओं को ही लाभ नहीं पहुँचता है वरन् उपभोक्ताओं को भी लाभ पहुँचता है। उपभोक्ताओं को निम्नलिखित लाभ होते हैं—

1. **मध्यस्थों की संख्या में कमी**—मध्यस्थों की एक लम्बी कड़ी होने से वस्तुओं के मूल्य में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। इससे उपभोक्ताओं पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। विज्ञापन से मध्यस्थों की संख्या में कमी हो जाती है क्योंकि इसके द्वारा उपभोक्ताओं से उत्पादनकर्ताओं का प्राय: प्रत्यक्ष संबंध स्थापित हो जाता है।

इसका परिणाम यह होता है कि बिक्रय एवं वितरण व्यय में कमी हो जाती है तथा वस्तुओं का मूल्य कम हो जाता है। ऐसा हो जाने से उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर वस्तु प्राप्त हो जाती है तथा बिक्री में भी वृद्धि हो जाती है।

2. **शिक्षाप्रद तथा ज्ञानवर्द्धक**—विज्ञापन से उपभोक्ताओं को नई से नई वस्तुओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हो जाती है। आजकल व्यापार क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है अर्थात् व्यापार का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। ऐसी स्थिति में बिना विज्ञापन की सहायता के दूर-दूर की वस्तुओं का ज्ञान बिल्कुल कठिन होता है। आजकल विज्ञापन को शिक्षाप्रद एवं ज्ञानवर्द्धक बनाने में रेडियो का विशेष महत्व है। इसके द्वारा अनेक नवीन बातों का पता चलता है। दिल्ली और लखनऊ के आकाशवाणी केन्द्रों से ऐसे प्रोग्राम प्रसारित किये जाते है जोकि महिलाओं और बच्चों के लिए बहुत शिक्षाप्रद एवं ज्ञानवर्द्धक होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि आधुनिक युग में विज्ञापन का बहुत अधिक महत्व है।

3. **उपभोक्ताओं के श्रम एवं समय में बचत**—उपभोक्ताओं को अब अपनी आवश्यक वस्तुओं को खरीदने के लिए इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं रही। वह विज्ञापन देखकर उपयुक्त वस्तुओं का चुनाव कर लेता है और यह भी जान लेता है कि वे वस्तुयें कहाँ से प्राप्त हैं। वह चाहे तो टेलीफोन या पत्र द्वारा भी इच्छित वस्तुओं का क्रय कर सकता है। इस प्रकार समय व श्रम दोनों की ही बचत होती है।

4. **उचित मूल्य पर वस्तुयें प्राप्त होती हैं**—विज्ञापन से उपभोक्ताओं को वस्तुओं के मूल्यों के सम्बन्ध में जानकारी हो जाती है जिससे वह उचित मूल्य चुका कर वस्तु प्राप्त कर लेता है। उससे कोई अधिक मूल्य लेने का साहस नहीं कर सकता तथा प्रतिस्पर्धा के कारण कम से कम मूल्य पर अच्छी से अच्छी वस्तु मिल सकती है।

5. **जीवन स्तर में वृद्धि**—विज्ञापन से उपभोक्ताओं को नवीन वस्तुओं के सम्बन्ध में जानकारी होती रहती है फलतः उपयोग में वृद्धि होती है और इस प्रकार उनके जीवन स्तर में वृद्धि होती है।

(स) समाज को लाभ

विज्ञापन से समाज के विभिन्न अंगों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अनेक लाभ होते हैं, जो निम्न हैं—

1. **आजीविका का साधन**—आर्थिक दृष्टिकोण से विज्ञापन का निःसन्देह अत्यन्त महत्व है। अधिकाँश जनता विज्ञापन एवं तत्सम्बन्धी कार्यों से ही अपना जीवन-निर्वाह करती है। विज्ञापन के लिए चित्रादि बनाने के लिये कलाकारों, लेखकों व विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। इन लोगों की जीविका का एकमात्र साधन विज्ञापन ही है। आजकल तो कई कम्पनियाँ ऐसी खुल गई हैं जिनका कार्य विज्ञापन

करना ही है। इनका प्रचार विदेशों में अधिक है। अब हमारे देश में भी इनका प्रचार होता जा रहा है।

2. **स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का विकास**—प्रतिस्पर्धा के युग में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का होना लाभकर है। इससे व्यवसाय में वृद्धि होती है।

3. **अन्य क्षेत्रों में सहायक**—विज्ञापन का महत्व केवल उत्पादकों, निर्माणकों व उपभोक्ताओं के लिए ही नहीं है, वरन् इसका महत्व सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में भी है। चुनाव जीतने व सरकारी योजनाओं का प्रचार करने के लिये भी विज्ञापन का सहारा लिया जाता है। यदि कोई समाज-सुधारक देश की भलाई के लिए कोई कार्य करना चाहता है तो उसके लिए जनता के सम्पर्क में आकर अपने भावों को प्रकट करने का सबसे सरल व अच्छा साधन विज्ञापन ही होता है।

4. **प्रबन्धकों व मजदूरों को प्रोत्साहन**—किसी वस्तु के बारम्बार विज्ञापन से प्रबन्धकों एवं मजदूरों को प्रोत्साहन मिलता है। वे इस बात का प्रयास करते हैं कि उन्होंने अपनी वस्तु के जो गुण विज्ञापन में बताये हैं उन्हें पूर्ण रूप से पूरा करें जिससे कि बाजार में उनकी वस्तु की ख्याति कम न हो। प्रबन्धकों एवं मजदूरों द्वारा तैयार की गई वस्तुओं की अधिक बिक्री होने से उन्हें यह प्रेरणा मिलती है कि उनके द्वारा किया गया प्रयास सफल रहा और वे भविष्य में उस वस्तु को अधिक अच्छा बनाने का प्रयास करते हैं।

(द) मध्यस्थों को लाभ

विज्ञापन से मध्यस्थों को भी लाभ होता है जो निम्न है—

1. **आय में वृद्धि**—कोई भी व्यापार चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा बिना विज्ञापन दिये उन्नति नहीं कर सकता। आजकल विज्ञापन को बहुत ही श्रृंगारमय व चित्ताकर्षक तरीकों में किया जाता है। इससे ग्राहक उनकी ओर आकृष्ट होते हैं और इस प्रकार से उनकी बिक्री में वृद्धि होती है। इससे व्यापारी, आढ़तियों व दलालों की आय में वृद्धि होती है।

2. **समाचार-पत्रों की आय में वृद्धि**—आधुनिक समय में विज्ञप्ति कराने के लिए प्राय: विभिन्न प्रकार के समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं का सहारा लेना पड़ता है। इससे उनकी आय में वृद्धि होती है। इस बात का अनुमान लगाया गया है कि समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं की आय का लगभग 70 प्रतिशत भाग केवल विज्ञापन द्वारा ही प्राप्त होता है। शेष 30 प्रतिशत भाग केवल पत्र पत्रिकाओं के पढ़ने वालों से प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि विज्ञापन के द्वारा समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं को कितना लाभ है। इस लाभ के भागीदार पाठकगण भी हैं क्योंकि यह विज्ञापन के लाभ द्वारा ही सम्भव है कि पत्र व पत्रिकाओं को इतने सस्ते मूल्य पर बेचा जा सके। यदि समाचार-पत्रों में विज्ञप्ति देना बन्द हो जाय तो यह निश्चित है कि उनका मूल्य बहुत बढ़ जायेगा। इसके फलस्वरूप पाठकों की संख्या भी कम हो जायेगी और इससे व्यापार को भी हानि पहुँचेगी क्योंकि ग्राहकों को वस्तुओं के विषय में कुछ भी

मालूम नहीं हो सकेगा। अतः हम कह सकते हैं कि विज्ञापन का महत्व समाचार-पत्र-पत्रिकाओं के लिए बहुत अधिक है।

3. **निर्माताओं तथा उत्पादकों से सम्पर्क**—विज्ञापन के द्वारा मध्यस्थ लोग निर्माताओं तथा उत्पादकों के सम्पर्क में आ जाते हैं। विज्ञापन द्वारा निर्माताओं, उत्पादकों व बड़े वितरकों आदि के सम्बन्ध में व्यापारियों व उपभोक्ताओं को सूचना मिलती रहती है। अतः वे वस्तुओं के सम्बन्ध में परस्पर पत्र-व्यवहार करते हैं अथवा व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। इससे उनके व्यापारिक सम्बन्ध में वृद्धि होती है और सभी पक्षों को लाभ होता है।

उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि विज्ञापन का महत्व आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक व राजनैतिक सभी क्षेत्रों में है।

प्रश्न 13. "संग्रह माल रखने व रक्षा करने की रीति है। संग्रह की आवश्यकता मौलिक रूप से माल के उत्पादन समयों व उपयोग समयों में अन्तर को ठीक बिठाने के कारण उत्पन्न होती है। इसका मौलिक कार्य माल को रखना व इस सन्तुलन को प्राप्त करना है।"

इस कथन की व्याख्या कीजिये, भण्डारों के प्रमुख प्रकार दीजिए और भारत में केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा भण्डारगृहों को सुधारने की दिशा में किये गये प्रयत्नों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

"Storage is the process of adding and preserving goods. The need for storage arises fundamentally out of the lack of adjustment between the time of production and the time of consumption of goods. Its primary service is to hold goods to bring about this adjustment."

Explain this statement, mention important types of warehouse and give a brief account of the afforts of being made by the Central and State Governments in India to improve warehousing facilities.

उत्तर—संग्रह का अर्थ (Meaning of Storage)—विपणन कार्यों में संग्रह भी एक महत्वपूर्ण कार्य है। संग्रह से हमारा अभिप्राय वस्तुओं को उत्पादन के समय से उस समय तक सुरक्षित रखने से है जब तक कि उपभोक्ता उसकी माँग न करे। उत्पादन और उपभोग की क्रियाओं के सम्पादन के बीच कुछ समय का अन्तर होता है। यह अन्तर कहीं कम और कहीं अधिक होता है। प्रत्येक वस्तु का उत्पादन होते ही उपभोग नहीं कर लिया जाता है बल्कि उपभोग के समय तक प्रस्तुत करने के लिये इसे कुछ समय तक सुरक्षित रखने की जरूरत पड़ती है। वस्तुओं के उपभोग के समय तक सुरक्षित रखने की क्रिया को ही **संग्रह** कहते हैं। वस्तुओं का संग्रह कितने समय के

लिये और किसके द्वारा किया जावे यह वस्तु के उत्पादन और उपभोग की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

संग्रह की परिभाषाएँ

1. **डडी एवं रेवजान** (Duddy and Revzan) के शब्दों में, "संग्रह मानवीय दूरदर्शिता का प्रयोग है जिसके द्वारा वस्तुओं को क्षति से सुरक्षित रखा जाता है तथा अभाव के समय भविष्य में उपभोग करने के लिये बचत सामग्री आगे ले जायी जाती है।"[1]

2. **टुसले, क्लार्क और क्लार्क** (Tousley, Clerk and Clerk) ने लिखा है, "संग्रह माल रखने व रक्षा करने की एक रीति है।"[2]

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि संग्रह वस्तुओं को रखने की पद्धति है, जिससे वह खराब न हो तथा भविष्य में आवश्यकता के समय उपयोग कर लिया जाय जबकि या तो उसका उत्पादन होता ही नहीं है या होता भी है तो कम होता है या माँग के अनुरूप नहीं होता। इस प्रकार संग्रह समय और स्थान उपयोगिता का सृजन करता है। यह उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकता की वस्तुएँ उस समय और उस स्थान पर उपलब्ध कराने में सहायता करता है जब उन्हें उसकी आवश्यकता पड़ती है।

संग्रह की आवश्यकता (Need for Storage)

संग्रह की आवश्यकता अनेक कारणों से होती है जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

1. कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनका उत्पादन एक विशेष ऋतु में ही होता है जैसे गेहूँ, चावल, चना आदि परन्तु इनकी माँग पूरे वर्ष रहती है। अतः ऐसी स्थिति में इन वस्तुओं का संग्रह करना आवश्यक रहता है ताकि पूरे वर्ष इनको माँग के अनुसार बाजार में प्रस्तुत किया जा सके।

2. दूसरी ओर कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका उत्पादन तो पूरे वर्ष होता है परन्तु उनकी माँग एक विशेष ऋतु में ही होती है, जैसे ऊनी कपड़े, बिजली के पंखे आदि।

3. आजकल हम देखते हैं कि अधिकाँश उत्पादन माँग की आशा में माँग के उत्पन्न होने के पूर्व ही कर लिया जाता है। अतः उत्पादक को इन वस्तुओं को तब तक संग्रह करके रखना पड़ेगा जब तक कि उपभोक्ता इनकी माँग न करें।

---

1. "Storage is an exercise of human foresight by means of which commodities are protected from deterioration and surplus supplies are carried over for future consuption in seasons of scarcity."

—Duddy & Revzan.

2. "Storage is the process of holding and preserving goods,"

--Tousley. Clerk & Clerk.

4. औद्योगिक संस्थानों को अपनी योजनानुसार उत्पादन कार्य चलाने के लिये कच्चे माल का संग्रह करना आवश्यक होता है। अन्यथा कच्चे माल के अभाव में उत्पादन कार्य बन्द हो जावेगा और कारखाने के स्थायी खर्चों की हानि उठानी पड़ेगी।

5. फुटकर तथा थोक व्यापारियों को वस्तुओं का वितरण आसान तथा सुविधाजनक रूप से हो सके इसलिए भी संग्रह की आवश्यकता पड़ती है। इसके अभाव में उपभोक्ताओं की छोटी-छोटी माँगें स्वयं उत्पादकों को पूरी करनी पड़ेगी जो कि उचित नहीं जान पड़ती।

6. उपभोग व उत्पादन के क्षेत्र में कभी-कभी काफी दूरी पाई जाती है अतः उपभोक्ता की तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये संग्रह करना आवश्यक हो जाता है।

7. ऐसी वस्तुओं की स्थिति में जो एक विशेष ऋतु में पैदा की जाती हैं परन्तु उसका उपयोग पूरे वर्ष होता है। अतः यदि संग्रह की अच्छी व्यवस्था न की जाये तो उस समय जब वस्तुयें तैयार होकर बाजार में बिकने के लिये आती हैं उनका मूल्य माँग की अपेक्षा, पूर्ति अधिक होने के कारण कम हो जावेगा। इसके विपरीत, दूसरे समय जब उनका उत्पादन नहीं होता परन्तु माँग बनी रहती है, पूर्ति की अपेक्षा माँग अधिक होने के कारण इनका मूल्य बढ़ जायेगा। अतः मूल्यों में स्थिरता लाने के लिये यह आवश्यक है कि उत्पादन की ऋतु में इनका संग्रह कर लिया जाय और इनकी पूर्ति को माँग के अनुसार नियमित कर दिया जाये।

8. अनेक वस्तुएँ ऐसी हैं जोकि जिस रूप में पैदा की जाती हैं उसी रूप में में प्रयोग में नहीं लाई जाती है, उनके रूप में परिवर्तन करना आवश्यक होता है। परन्तु इनके रूप में परिवर्तन या सुधार इन वस्तुओं के उत्पादक नहीं कर पाते क्योंकि या तो उनके पास इनके साधन नहीं हैं या ये इसमें समर्थ नहीं हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि वे विशिष्ट संस्थायें, जो ये सेवायें प्रदान कर सकती हैं उन्हें प्राथमिक उत्पादकों से खरीद लें और उनका संग्रह करलें और फिर उनको उपभोग के लिये तैयार कर दें। अतः ऐसी स्थिति में संग्रह करना आवश्यक हो जाता है।

9. कुछ अन्य कारणों से भी संग्रह की आवश्यकता पड़ती है जैसे ट्रक भर कर या डिब्बा भरकर भेजने के लिये, भावी सौदों (Transaction) को पूरा करने के लिये, वस्तुओं का प्रदर्शन करने के लिए, अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिये आदि।

टुसले, क्लार्क और क्लार्क (Tousley, Clerk and Clerk) ने संग्रह की आवश्यकता के सम्बन्ध में लिखा है कि, "संग्रह की आवश्यकता मौलिक रूप से

माल के उत्पादन समयों व उपभोग समयों में अन्तर को ठीक बिठाने के कारण उत्पन्न होती है।"[1]

पाइले (pyle) ने लिखा है कि, "संग्रह समय की उपयोगिता प्रदान करता है तथा वस्तुओं के एक समय या ऋतु में उत्पन्न होने और दूसरे समय में उपयोग किये जाने के मध्य में जो समय का असन्तुलन उत्पन्न होता है उसको ठीक करता है।"[2]

संग्रह व भण्डारगृह (Storage and Warehouses)

साधारणतया संग्रह व भण्डारगृह (Warehouse) में कोई अन्तर नहीं किया जाता है परन्तु भण्डार शब्द का विस्तृत रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें संग्रह भी आ जाता है।

भण्डारों के प्रकार (Types of Warehouses)

भण्डारगृह वे स्थान हैं जहाँ वस्तुओं का सुरक्षापूर्वक संग्रह किया जाता है। भण्डारगृहों को उनके स्वामित्व व उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के आधार पर विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। स्वामित्व के आधार पर भण्डारगृह निम्न प्रकार के हो सकते हैं—

1. **निजी भण्डारगृह** (Private Warehouse)—इस प्रकार के भण्डारगृहों का निर्माण निजी संस्थाओं अथवा व्यापारियों द्वारा अपना माल रखने के उद्देश्य से किया जाता है।

2. **सार्वजनिक भण्डारगृह** (Public Warehouse)—इस प्रकार के भण्डार गृहों का निर्माण साधारण जनता व व्यापारियों का माल रखने के लिए किया जाता है। इनका निर्माण साधारणतया वे व्यापारी अथवा संस्थाएँ करती हैं जिनका मुख्य कार्य किराया या शुल्क लेकर संग्रह सुविधायें प्रदान करना है। इनका स्वामित्व निजी, सहकारी या सार्वजनिक कम्पनी के रूप में हो सकता है। ये भण्डारगृह सभी व्यापारियों और संस्थाओं के लिए उपलब्ध रहते हैं।

3. **सरकारी भण्डारगृह** (Government Warehouse)—इस प्रकार के भण्डारगृहों का निर्माण केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकार अथवा अर्द्ध सहकारी संस्थाओं जैसे—नगर पालिकायें, जिला परिषद आदि द्वारा कराया जाता है। इनमें से बहुत

---

1. "The need for storage arises fundamentally out of the lack of adjustment between the times of production and the times of consumption of goods,"
Tousley, Clerk and Clerk,

2. "Storage provides time utility, which corrects the time maladjusrment resulting from goods being produced at one time or session and used at another time,"
--Pyle.

से भण्डारगृह ऐसे होते हैं जो केवल सरकार के निजी माल को ही रखने के उद्देश्य से बनाये जाते हैं। जैसे सेना सम्बन्धी भोजन सामग्री व अन्य वस्तुयें रखने के लिए सरकारी भण्डारगृह। इसके अतिरिक्त ऐसे भी सरकारी भण्डारगृह होते हैं जो सर्व-साधारण के लिए होते हैं।

4. **बन्धक भण्डारगृह या चुंगी गोदाम घर** (Bonded Warehouse)—इस प्रकार के भण्डारगृह विशेषतः सरकार के आधीन और सरकारी नियन्त्रण के अन्तर्गत ही संचालित किये जा सकते हैं। इस प्रकार के भण्डारगृह प्रायः बन्दरगाहों पर या उनके नजदीक आयातकों द्वारा अपने माल को सुरक्षित रखने के दृष्टिकोण से स्थापित किये जाते हैं। माल के आयात करने पर आयातक उस माल को गोदी-बाड़े (dock-yard) से बाहर तब तक नहीं ले जा सकता जब तक कि उस पर आयात कर (Import Duty) नहीं चुका दी जाय। इन भण्डारगृहों का मुख्य कार्य ऐसे माल को सुरक्षित रखना होता है जिस पर आयात-कर अथवा आबकारी (Excise duty) न चुकायी गयी हो। इन भण्डारगृहों में तब तक माल रखा रहता है जब तक कि उत्पादनकर्त्ता उन पर कर चुका नहीं देता। ये वस्तुयें बाजार में बिना कर चुकाये नहीं आ सकती। कर अधिकारियों की आज्ञा पर ही इस प्रकार के भण्डार गृहों से माल उनके स्वामी को दिया जाता है। ऐसे भण्डार-गृहों को बन्धक भण्डारगृह (Bonded Warehouse) कहते हैं और इनमें रखा गया माल सरकार के पास बन्धक स्वरूप रहता है।

5. **शीतल भण्डारगृह** (Refrigerated Warehouse)—इस प्रकार के भण्डारगृहों में उचित तापमान बनाये रखने की मशीनें लगी रहती हैं। इन भण्डार-गृहों में वे वस्तुयें रखी जाती हैं जोकि शीघ्र नष्ट होने वाली होती हैं जैसे—फल, सब्जी, अण्डे आदि।

भारत में भण्डारगृह (Warehouses in India)—भारत एक कृषि प्रधान देश है परन्तु यहाँ के कृषक अभी भी वस्तु संग्रह के पुराने तरीके ही अपनाते हैं। आज भी गाँवों में संग्रह के लिए कच्ची या पक्की खत्तियाँ या कुठले काम में लाये जाते हैं। शहरों में कुछ पक्के गोदामों की व्यवस्था अवश्य है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार ने भण्डारगृहों की स्थापना की ओर ध्यान दिया। रिजर्व बैंक ने प्रारम्भ से ही भण्डारगृहों की स्थापना की ओर ध्यान दिया। परन्तु फिर भी भण्डार सुविधाओं में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। सन् 1954 में रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त की गई 'अखिल भारतीय ग्रामीण साख जाँच समिति' (All India Rural Credit Survey) की सिफारिशों के आधार पर सन्

1. एक बोर्ड की स्थापना की जावेगी। इसका नाम 'राष्ट्रीय सहकारी विकास एवं भण्डार बोर्ड' (National Co-operative Development & Warehousing Board) रखा जावेगा। इसमें 22 सदस्य होंगे—10 केन्द्रीय सरकार के सदस्य, 1 फारवर्ड मार्केट कमीशन (Forward Market Commission) का अध्यक्ष, 1 रिजर्व बैंक का प्रतिनिधि, 1 स्टेट बैंक का प्रतिनिधि और गैर सरकारी सदस्य होंगे जो केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किये जावेंगे।

2. इस बोर्ड का कार्य कृषि से उत्पादित वस्तुओं के उत्पादन, संग्रह, विपणन, परिवहन व निर्यात के लिए योजना बनाना व उनको कार्य रूप में परिणत करना है।

3. इस बोर्ड को केन्द्रीय सरकार 5 करोड़ रुपये का अनुदान (Non-recurring grant) देगी और पहले 5 वर्षों तक 5 करोड़ रु. प्रतिवर्ष चालू व्यय को पूरा करने के लिए सहायता देगी।

4. इन दोनों सहायताओं से दो कोष स्थापित किये गये—राष्ट्रीय सहकारी विकास कोष (National Co-operative Development Fund) व राष्ट्रीय भण्डार विकास कोष (National Warehousing Development Fund)। पहले कोष से राज्य सरकारों को दीर्घकालीन ऋण व अनुदान दिया जाता है जिसे वे अपने राज्यों में सहकारी समितियों के विकास पर व्यय कर सकें। दूसरे कोष से केन्द्रीय भण्डार निगम के लिए पूँजी दी जाती है तथा राज्य सरकारों को उनके यहाँ स्थापित होने वाले राज्य भण्डार निगमों की पूँजी में हिस्सा बँटाने के लिए ऋण दिये जाते हैं।

5. **केन्द्रीय सरकार द्वारा एक केन्द्रीय भण्डार निगम** (Central Warehousing Corporation) की स्थापना जावेगी। इसका मुख्य कार्यालय देहली में होगा। इसकी अधिकृत पूँजी 20 करोड़ रुपये होगी। जिसे भारत सरकार, स्टेट बैंक, अन्य अनुसूचित बैंक, बीमा कम्पनियाँ व वित्तीय संस्थाओं के द्वारा विनियोग किया जावेगा। निश्चित दर पर लाभांश देने की गारन्टी केन्द्रीय सरकार देगी। इस निगम के निम्नलिखित कार्य होंगे—

1. राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के स्थानों पर भण्डार सुविधायें प्रदान करना।
2. कृषि वस्तुओं व अन्य सम्बन्धित वस्तुओं जैसे बीज, खाद, कृषि औजार आदि की खरीद करना, संग्रह करना एवं उनकी बिक्री करना। इसके साथ ही इन कार्यों के लिए सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करना।
3. राज्य के भण्डार निगमों के अंशों को खरीदना व आवश्यकता के समय वित्तीय या अन्य प्रकार की सहायता करना।

4 भण्डारगृहों से या भण्डारगृहों तक यातायात व्यवस्था का प्रबन्ध करना।

6. **राज्य भण्डार निगम** (State Warehousing Corporation)—राज्य सरकारों को अपने-अपने राज्यों में भण्डार निगम स्थापित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी। परन्तु इसके लिए उसको केन्द्रीय भण्डार निगम से आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक होगा तथा उनकी अधिकृत पूँजी 2 करोड़ रुपये से अधिक नहीं होगी। राज्य भण्डार निगम का प्रबन्ध एक बोर्ड के आधीन होगा जिसके सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत होंगे।

केन्द्रीय भण्डार निगम (Central Warehousing Corporation)—केन्द्रीय भण्डार निगम की स्थापना 1 अप्रैल 1957 को हुई। इसकी अधिकृत पूँजी 20 करोड़ रुपये है जो 1,000 मूल्य वाले दो लाख अंशों में विभाजित है। इसका रजिस्टर्ड कार्यालय नई दिल्ली में है।

1966-67 तक केन्द्रीय भण्डार निगम द्वारा "भण्डारगृह स्थापित किये जा चुके थे जिनकी संग्रह क्षमता 30·746 हजार मीट्रिक टन थी। उचित देखभाल के लिए निगम ने 4 अन्य स्थानों पर अपनी शाखायें खोल दी हैं।

कुछ विशेष वस्तुओं के रखने के लिए भी केन्द्रीय भण्डार निगम ने व्यवस्था की है जैसे गुड़। गर्मी और नमी के कारण गुड़ के रंग तथा स्वाद में खराबी आ जाती है। इस कारण इनको रखने के लिये विशेष व्यवस्था आवश्यक है। कोल्हापुर के केन्द्रीय भण्डारगृह में गुड़ के संग्रह की विशेष व्यवस्था की गई और सन् 1969 में वहाँ 2300 गुड के भेले रखे गये। हल्दी और गुड़ को सुरक्षित रखने के लिए निगम सांगली में भी विशेष प्रबन्ध कर रहा है। इस प्रकार का प्रबन्ध और भी वस्तुओं के लिए अन्य स्थानों पर किया जावेगा।

राज्य भण्डार निगम (State Warehousing Corporation)—इस समय राज्य भण्डार निगमों के पास 471 भण्डार व 131 उप-भडार हैं।

प्रश्न 14. भारत में यातायात के विभिन्न साधनों की तुलनात्मक उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।

Clearly state the comparative utility of the various means of transport.

अथवा

परिवहन के तीन साधनों—रेल, सड़क तथा आन्तरिक जल मार्गों के सापेक्षिक गुणों का परीक्षण उनकी लागत, गति, लोच और भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं को लाने ले जाने में उपयुक्तता की दृष्टि से कीजिये।

Explain the relative merits of the three modes of transportation Rail, Road and Internal waterways as. regard their cart, Speed, flexibility and Suitability for transporting different kinds of foods.

अथवा

भारत में यातायात के विभिन्न साधनों के तुलनात्मक महत्व एवं उपयोगिता की विवेचना कीजिये।

Discuss the relative importance and utility of defferent means of transport in India.

अथवा

"संतुलित आर्थिक विकास के लिए परिवहन के विभिन्न साधनों का विकास एक अनिवार्यता है।" इस कथन के प्रकाश में परिवहन के विभिन्न साधनों की तुलनात्मक उपयोगिता की विवेचना कीजिए।

Development of different means of transport is a must for a balanced economic growth. In the light of this statement. discuss the comparative utility of the defferent means of transport.

उत्तर—परिवहन के साधन किसी देश के आर्थिक ढांचे के स्थायी संस्थान कहे जाते हैं। परन्तु इन साधनों का सापेक्षिक महत्व है। विभिन्न समय एवं दृष्टिकोण से यदि परिवहन का एक साधन उपयुक्त है तो कभी दूसरा साधन।

परिवहन के साधनों में रेलें अद्वितीय साधन हैं। रेलों के सापेक्षिक लाभ निम्नलिखित हैं—

1. दूरवर्ती एवं उपनगरीय यात्री परिवहन के लिए रेलें परिवहन के साधनों में उत्तम मानी जाती है।

2. अधिक गति से चलाने के लिए रेलों को कम चालक शक्ति की आवश्यकता होती है।

3. बड़े आकार की एवं सस्ती वस्तुओं के यातायात के लिए रेलें उत्तम साधन हैं।

4. रेलें नहरों की अपेक्षा कम व्यय से बनाई जा सकती हैं, किन्तु सड़कों की अपेक्षा इनका व्यय अधिक होता है।

5. रेलें पाइप लाइनों के अलावा ऋतु परिवर्तन से सबसे कम प्रभावित होने वाले परिवहन के साधनों में हैं। अत्यधिक वर्षा, आँधी, कुहरा आदि के कारण सड़क परिवहन, वायु परिवहन और समुद्री परिवहन सबके कार्यक्रम रुक जाते हैं, परन्तु रेलों का आना-जाना तब तक नहीं रुकता जब तक कि बाढ़ आदि के कारण रेलवे लाइन टूट नहीं जाती है। इस प्रकार रेलें अधिक विश्वसनीय परिवहन सेवायें प्रदान करती हैं।

6. अधिक मात्रा में परिवहन के लिए रेलों का महत्व माल और वायु परिवहन के किसी भी साधन से अधिक है, बड़ी माल गाड़ियों में लाखों मन बोझ लदा चला जाता है। केवल जलयान ही भारी माल वहन में रेलों की कुछ समता कर सकते हैं। रेल परिवहन की सापेक्षिक हानियाँ निम्नलिखित हैं—

1. रेलों में माल लादने एवं गाड़ियाँ पूरी करने में बहुत धन एवं समय की बर्बादी होती है जो परिवहन के अन्य साधनों में नहीं होती।

2. माल लादने व उतारने में समय अधिक लगने से भाड़ा बहुत अधिक बढ़ जाता है।

3. माल गाड़ियाँ मोटरों की अपेक्षा धीमी चाल से चलती हैं।

4. थोड़े माल व कम अन्तर के परिवहन के लिये रेलें महँगी हैं।

5. रेलों में सड़कों के समान लचक का अभाव पाया जाता है।

6. रेलें मोटरों की भाँति द्वार से द्वार तक सेवाएँ प्रदान नहीं करती हैं।

सड़क परिवहन और रेल परिवहन—रेलों के भूतपूर्व कमिश्नर एफ. सी. बंधवार के अनुसार सड़कें रेलों की तुलना में अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण हैं। उनके विचार प्रस्तुत करना सर्वथा युक्तिसंगत होगा–

1. **अधिक सेवा**—एक सड़क रेल लाइन के तिगुने ट्रेफिक के लिए उपयुक्त होती है। ऐसा इसलिये है कि एक लाइन पर एक समय में एक ही गाड़ी गुजर सकती है जबकि सड़क पर निरन्तर मोटरें चलती रहती हैं, उन्हें न तो कहीं रुकना पड़ता है, न दूसरी मोटर के गुजर जाने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

2. **व्यय**—अनुमान लगाया जाता है कि एक बढ़िया दो पटरी वाली सड़क बनाने में 3.5 लाख रुपये प्रति मील खर्च आता है, जबकि चौड़े गेज की एक मील लम्बी लाइन पर 10 लाख रुपये व्यय होता है।

श्री बधवार का अनुमान पूर्णतः सही नहीं है क्योंकि वास्तव में रेल मार्ग सड़क से छः गुना अधिक महँगा है, क्योंकि न केवल रेल मार्ग बनाने में तिगुना खर्च आता है, बल्कि सड़कों पर उसी समय में रेलों से दुगुना माल ढोया जा सकता है।

3. **गति एवं लाभ**—रेलों की औसत दैनिक गति 50 मील है जबकि सड़कों (मोटरों) की गति इससे 3 से 6 गुनी है। इसका तात्पर्य यह है कि सड़क मार्गों पर लगायी गई पूँजी पर रेलों में लगाई गई पूँजी से अधिक एवं तीव्र गति से लाभ प्राप्त होता है। हिन्दुस्तान लीवर ने यह अनुमान लगाया है कि अपनी कुल बिक्री का आधा भाग सड़क मार्ग से भेजने पर उसकी कुल आय में 25 प्रतिशत की वृद्धि हो गयी।

एक अन्य अनुमान के अनुसार रेल व्यवसाय में पूँजी पर 5 प्रतिशत प्राप्ति होती है जबकि सड़कों (मोटरों) पर लगायी गयी पूँजी पर लाभ की मात्रा 19 प्रतिशत है।

4. **रोजगार**—यह अनुमान लगाया गया है कि समान मात्रा में सामान ढोने पर मोटर व्यवसाय में रेलों की तुलना में 7 गुना रोजगार मिल सकता है।

5. **संचालन व्यय**—जहाँ तक मोटर व्यवसाय पर संचालन व्यय का प्रश्न है रेल तथा सड़क, दोनों व्यवसायों का संचालन व्यय समान ही होता है, किन्तु मोटर की हालत अच्छी होनी चाहिए।

सड़क परिवहन से हानियाँ हैं—(1) कम भरोसा, (2) कम सुरक्षित, (3) हितों की विभिन्नता, (4) खर्चों पर नियन्त्रण न होना, (5) ट्रेफिक पर संगठन का नियन्त्रण न होना,(6) लचीलेपन की सीमा, (7) अधिक माल के लिए अनुपयुक्त (8) अधिक व्यय व गिरावट, (9) अधिक दूरी के लिए अनुपयुक्त ।

वायु परिवहन के सापेक्षिक लाभ निम्नलिखित हैं—

1. वायु-परिवहन की चाल परिवहन के अन्य साधनों की तुलना में सबसे अधिक रहती है जो कि औसतन 600 मील प्रति घण्टा है । इतनी चाल परिवहन के अन्य साधनों में नहीं होती ।

2. थल परिवहन की भाँति जल परिवहन में किसी विशेष प्रकार के परिवहन मार्ग की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

3. वायु-परिवहन में भौगोलिक रुकावट कोई बाधा उपस्थित नहीं करती और वायुयान नदी-नालों को पार करता हुआ चला जाता है । यह गुण परिवहन के अन्य साधनों में उपलब्ध नहीं है ।

4. जहाज एवं रेल की तुलना में वायुयान एक छोटी इकाई होती है और इसकी सेवाएँ सरल व सुविधाजनक होती हैं ।

5. वायु-मार्ग परिवहन के अन्य मार्गों की अपेक्षा छोटे होते हैं क्योंकि ये मार्ग घुमावदार नहीं होते जबकि परिवहन के अन्य साधनों के मार्ग घुमावदार होने से असुविधाजनक होते हैं ।

6. हवाई परिवहन में मार्गों के निर्माण पर कोई खर्च नहीं होता । थल परि-वहन की भाँति इसमें सड़क, पटरी निर्माण पर कोई खर्च नहीं आता ।

7. विदेशों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए वायु परिवहन सबसे उपयुक्त साधन है, क्योंकि इसमें मार्ग सम्बन्धी कोई बाधा उपस्थित नहीं होती ।

8. बाढ़, अकाल, आग लगने, महामारी फैलने आदि के समय वायु परिवहन मनुष्यों की प्राण रक्षा का सबसे सुगम उपाय है । वायुयान द्वारा बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में लोगों को खाद्य वस्तुएँ प्रदान करने, टिड्डियों को दवाई छिड़ककर नष्ट करने आदि बातों में वायु परिवहन बड़ी लाभदायक सेवायें प्रदान करता है ।

9. वायु परिवहन युद्ध-कालीन परिस्थितियों के लिए बड़ा उपयुक्त है । युद्ध काल में वायु चित्रण, लड़ने वाले सिपाहियों को आवश्यक सामान पहुँचाने, घायलों को युद्ध से उठाकर लाने आदि बातों के लिए वायुयान अनुपमेय सेवाएँ प्रदान करते हैं ।

वायु परिवहन की सापेक्षिक हानियाँ निम्न है—

1. वायु परिवहन में यातायात क्षमता सड़क व रेलों की अपेक्षा बहुत कम होती है और अधिक संख्या में यात्रियों को ले जाना सम्भव नहीं होता है ।

2. वायुयान धनिकों का वाहन है । निर्धन लोगों के लिए इनकी सेवाएँ प्राप्त करना कल्पनालोक की बातें हैं ।

3. वायु परिवहन केवल मूल्यवान वस्तुओं के परिवहन के लिए ही अनुकूल

पड़ता है ।

4. इसके द्वारा भारी और अधिक मात्रा में माल नहीं ढोया जा सकता ।

5. जोखिम—वायु परिवहन में अन्य परिवहन की तुलना में सबसे अधिक जोखिम होती है ।

9. ऋतु का वायु परिवहन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है और कोहरे में वायु परिवहन अवरुद्ध हो जाता है । यह बात अन्य परिवहन के साधनों में नहीं है ।

7. वायु परिवहन में रेलों की अपेक्षा कम आराम मिलता है ।

8. वायुयान सड़कों की भाँति पूर्ण सेवाएँ प्रदान नहीं करते एवं माल को निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाने के लिए अन्य साधनों की सहायता लेनी पड़ती है ।

जल परिवहन के तुलनात्मक लाभ निम्नलिखित हैं—

1. यह यातायात का सबसे सस्ता साधन है क्योंकि इसमें न्यूनतम चालक शक्ति की आवश्यकता होती है । इन पर पूँजीगत एवं पोषण व्यय भी परिवहन के अन्य साधनों की अपेक्षा बहुत कम होता है । रेलों एवं सड़कों पर यह व्यय बहुत अधिक होता है ।

2. भारी सामान तथा अधिक मात्रा वाले सामान तथा अधिक घनत्व वाले सामान के लिए जल परिवहन बहुत अनुकूल है ।

3. टूटने-फूटने और सड़ने-गलने वाली वस्तुओं का परिवहन भी जल परिवहन के साधनों से अधिक उपयुक्त पड़ता है, क्योंकि उतरने-चढ़ने और ऊँचे-नीचे रास्ते आदि के कारण माल की टूट-फूट का प्रश्न उपस्थित नहीं होता ।

4. जल परिवहन थल परिवहन की अपेक्षा माल उतारने-चढ़ाने, विभिन्न गाड़ियों में बदलने आदि प्रकार के खर्च होने वाले समय की बचत हो जाती है ।

5. जल यातायात अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विकास का आधार है । थल मार्गों का दूरस्थ देशों तक विकास नहीं किया जा सकता । परन्तु जल परिवहन में नदी, नाले, पर्वत आदि के द्वारा मार्ग अवरोध की समस्या उदय नहीं होती ।

जल परिवहन की तुलनात्मक सापेक्षिक हानियाँ—

1. जल परिवहन की सबसे प्रमुख बाधा इसका प्राकृतिक कारणों से बहुत अधिक प्रभावित होना है । जिन मार्गों में सर्दियों में बर्फ जम जाती है उन मार्गों में उस समय जलयानों या नावों को नहीं चलाया जा सकता ।

2. जल परिवहन रेलों व सड़कों की तरह पूर्ण सेवा प्रदान नहीं करता क्योंकि माल को नदी से निर्दिष्ट स्थान तक ले जाने के लिये सड़कों या रेलों की सहायता ली जाती है ।

3. जल मार्गों पर ऋतु परिवर्तन का बहुत असर पड़ता है, बर्फ जम जाने या पानी सूख जाने से मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, ये कठिनाइयाँ रेल या सड़क परिवहन में नहीं हैं ।

4. जल परिवहन की सेवाओं का क्षेत्र भी बहुत सीमित होता है, केवल वे ही भाग जल यातायात से लाभ उठा सकते हैं, जो समुद्र और बड़ी नदियों के किनारे स्थित होते हैं ।

5. जल परिवहन में सड़क परिवहन की भाँति लचक का अभाव पाया जाता है ।

नल परिवहन के तुलनात्मक लाभ निम्नलिखित हैं—

1. तेल या पेट्रोल ले जाने के लिए नलों से सस्ता व अच्छा परिवहन का कोई भी साधन नहीं है ! सड़कें व रेलें इतनी सुविधापूर्वक इसे नहीं ले जा सकती ।

2. नल लाइनों का संचालन कम परिश्रम से हो जाता है ।

3. एक बार नल लाइन बन जाने पर शताब्दियों तक उससे तेल बहता रहता है ।

4. नल लाइनों द्वारा परिवहन से आग लगने, वाहन के फट जाने, भाप से फटने आदि प्रकार की हानि की आशंका नहीं रहती ।

5. इनके निर्माण से मार्ग की भूमि नष्ट नहीं होती । नल लाइनों को भूमि से नीचे गाड़ा जा सकता है ।

6. नलों की भाड़ा दरें, रेलों व सड़कों की अपेक्षा बहुत कम होती हैं ।

इसके साथ ही साथ नलों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसे केवल पेट्रोल जैसे तरल पदार्थ के परिवहन के लिए ही प्रयोग किया जा सकता है । ●●

5

सहकारी विपणन
(CO-OPERATIVE MARKETING)

प्रश्न 15. "सहकारी बाजार व्यवस्था कृषक की स्थिति को विक्रेता के रूप में शक्तिशाली बना देती है और उसके लिए एक स्थायी बाजार की स्थापना करके अधिक मूल्य प्राप्त करा देती है ।" इस कथन को समझाइये और भारतीय सहकारी बाजार व्यवस्था के विकास पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए ।

"Co-operative Marketing strengthens the farmer's position as a seller, assures him of a regular trade outlet and enables him to obtain better prices." Explain and describe briefly the progress of Co-operative Marketing in India.

अथवा

कृषि पदार्थों की सहकारी विपणन की व्यवस्था और संचालन का वर्णन कीजिए । इसके कारण सदस्यों को निजी व्यापारियों द्वारा शोषित होने से कहाँ तक मुक्ति मिली है ?

Describe the organisation and working of Co-operative Marketing of farm products. How far has it succeeded in freeing members from exploitation of private traders ?

अथवा

भारत की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में सहकारी विपणन का क्या महत्व है ? इसको विस्तार रूप से तथा सफलता के साथ चलाने में क्या बाधायें आती हैं ? इन बाधाओं के सुलझाने के लिए अपने सुझाव प्रस्तुत कीजिए ।

What is the importance of Co-operative Marketing in the rural economy of India ? What are the difficulties in making it more widespread and successful ? Give your suggestions to remove these difficulties.

अथवा

"अधिकांश राज्यों में सहकारी विपणन का विकास एकांगी है।" भारत में सहकारी विपणन के दोषों को बताइये और स्पष्ट करिये कि इनका निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है ?

"In most of the States, the development of Co-operative Marketing has been one sided." Enumerate the shortcomings of Co-operative Marketing Movement in India and explain how these can be removed ?

उत्तर—

सहकारी विपणन से आशय

जब कुछ उत्पादक अपनी उपज को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग न बेचकर सहकारी विपणन समितियाँ बनाकर, उनके द्वारा इस उपज को बेचते हैं, तो इसे सहकारी विपणन कहते हैं।

यद्यपि यह सत्य है कि भारतीय सहकारी आंदोलन का जन्म सहकारी साख समितियों की स्थापना से प्रारम्भ हुआ लेकिन गत दो-तीन दशकों में वितरण एवं विपणन के क्षेत्र में भी सहकारी समितियों का काफी प्रयोग हो रहा है।

भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सहकारी विपणन का महत्व

भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सहकारी विपणन का बहुत महत्व है। इसके द्वारा कृषि विपणन की समस्याओं को भली-भाँति हल किया जा सकता है। यह निर्विवाद सत्य है कि कृषि विपणन प्रणाली के अन्तर्गत जितनी भी बुराइयाँ हैं उन सबको दूर करने की एकमात्र औषधि सहकारी विपणन है। **वास्तव में सहकारी विपणन ही निर्धन, दुर्बल एवं शक्तिहीन कृषक के पास मूल अस्त्र है जिसके द्वारा वह धनी, सम्पन्न एवं चतुर लोगों पर विजय कर सकता है।** इसके महत्व को समझने के लिए, इसके लाभों को समझ लेना आवश्यक है जो कि निम्नलिखित हैं—

(1) **भाव-ताव करने की क्षमता में वृद्धि**—जब अधिक या सभी किसानों की फसल समितियों द्वारा बेची जाती है तो केवल इन्हीं समितियों से ही माल खरीदा जा सकता है। इन समितियों के हाथ में सबकी सब पूँजी होने के कारण क्रेता उचित मूल्य देने के लिए मजबूर हो जाता है।

(2) **मध्यस्थों का लोप होना**—सहकारी विपणन समितियाँ, सदस्य उत्पादकों की उपज को, एकत्रित कर सीधे थोक बाजारों में बेचती हैं। इससे अनावश्यक मध्यस्थ समाप्त हो जाते हैं और किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिल जाता है।

(3) **वस्तु पूर्ति पर नियन्त्रण**—इन समितियों से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वस्तु पूर्ति पर नियन्त्रण हो जाता है। अतः माल को कुछ समय तक रोककर उसकी कीमत को बढ़ाया जा सकता है।

(4) **धोखेबाजों से रक्षा**—सहकारी विपणन समिति अनियमित मण्डी में चलने वाली धोखेबाजियों से सदस्यों की रक्षा करती हैं जिससे सदस्यों को अपनी उपज का अधिक मूल्य प्राप्त हो जाता है।

(5) **उपभोक्ताओं को उत्तम कोटि का माल मिलना**—समितियों द्वारा माल के श्रेणीकरण व प्रमाणीकरण करने से उपभोक्ताओं को उत्तम माल मिल जाता है तथा माल में मिलावट की कोई संभावना नहीं रहती है।

(6) **वस्तु के बाजार को विस्तृत करना**—ये समितियाँ पर्याप्त विज्ञापन एवं प्रचार भी कर सकती हैं जो कि अकेला किसान ज्ञान एवं पैसों के अभाव में नहीं कर पाता। इससे बाजार का क्षेत्र बढ़ता है।

(7) **साख व्यवस्था**—इन समितियों को बैंक से फसल के आधार पर आसानी से ऋण मिल जाता है और ब्याज की दर भी उचित होती है। प्रत्येक किसान जो इन समितियों का सदस्य होता है, ऋण ले सकता है। परिणामस्वरूप किसानों को महाजनों के पंजे से छुटकारा मिल जाता है।

(8) **कम खर्च करने पर मंडियों से सम्बन्ध**—सहकारी समितियों के पास अधिक मात्रा में फसल होने के कारण ट्रकों या रेलों का उचित उपयोग फसलों को मण्डी तक ले जाने में किया जा सकता है। प्रत्येक किसान अलग-अलग माल को ट्रक द्वारा नहीं भेज सकता क्योंकि थोड़ा माल भेजने में ले जाने का खर्चा अधिक बैठता है। समितियों के पास अधिक माल होने से यह संभव हो जाता है कि थोक व्यापारी से सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

(9) **प्रमाणीकरण एवं श्रेणीकरन में सुविधा**—इन समितियों के पास अधिक मात्रा में अनाज एकत्रित होने के कारण प्रमाणीकरण एवं श्रेणीकरण भी सुविधाजनक हो जाती है। इस सुविधा के कारण माल का उचित मूल्य तो प्राप्त होता ही है साथ ही साथ कर आदि जो कटौतियां होती हैं वे भी समाप्त हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त, दूर की मंडियों में नमूने के अनुसार बिक्री सम्भव होने के कारण माल को उस मण्डी में वेचने में सुविधा होती है जहाँ पर वस्तु का मूल्य सबसे अधिक हो।

(10) **गोदामों का निर्माण**—उपर्युक्त लाभों के अतिरिक्त इन सहकारी समितियों से एक लाभ यह भी होगा कि ये फसल को सुरक्षित रखने के लिये अच्छे गोदामों का निर्माण करवा सकती हैं जो अकेला किसान नहीं करवा पाता और इस प्रकार एक ओर अनाज को सुरक्षित रखा जा सकता है और दूसरी ओर वस्तु की पूर्ति पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। पूर्ति के नियन्त्रण के कारण अधिक मूल्य भी प्राप्त हो जाता है।

(11) **कुटीर उद्योगों का विकास**—ये समितियाँ कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देती हैं और उनके उत्पादित माल को कुशलतापूर्वक व अधिक मूल्य पर बेचने का भी प्रबन्ध करती हैं। इससे कुटीर उद्योगों का विकास होता है।

(12) **नाप, तौल की उचित व्यवस्था**—सहकारी विपणन समितियाँ मण्डियों में नाप-तौल की उचित व्यवस्था करके कृषि विपणन के एक प्रमुख दोष का अन्त करके कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार करती हैं।

13. **अनधिकृत, अनुचित एवं अवैज्ञानिक कटौतियों से मुक्ति**—भारतीय मण्डियों में अनेक प्रकार की अनुचित एवं अनधिकृत कटौतियाँ करने का प्रचलन है। सहकारी बाजार समितियां इस दुर्व्यवस्था का अंत करके प्रमाणित कटौतियाँ ही करती हैं।

14. **अन्य लाभ**—सहकारी विपणन समितियां इस बात की भी व्यवस्था करती है कि कृषक को उचित समय पर तथा उचित मूल्य पर अच्छे बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक औषधियाँ आदि आवश्यक सामग्री प्राप्त हो सके।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में सहकारी विपणन समितियों का बहुत महत्व है। इन सब लाभों से भारतीय कृषक के आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

भारत में सहकारी विपणन समितियों का विकास

भारत में सहकारी विपणन समितियाँ सन् 1912 के नियम के पास होने के पश्चात् बनना आरम्भ हुई हैं। भारत में ये तीन प्रकार की पायी जाती हैं—

1. **प्राथमिक सहकारी विपणन समितियाँ**—ये समितियाँ कृषि तथा गैर कृषि दोनों प्रकार की है। ये समितियाँ एक या अधिक वस्तुओं का विक्रय कर सकती हैं। परन्तु भारत में एक वस्तु की बिक्री करने वाली समितियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं।

2. **केन्द्रीय विपणन संघ**—प्राथमिक समितियों के ऊपर जिला स्तर पर केन्द्रीय विपणन संघ है जिनमें निजी व्यक्ति तथा प्राथमिक समितियाँ दोनों ही सदस्य होते हैं। वे स्वतन्त्र रूप में माल भी बेचती हैं तथा प्राथमिक समितियों को ऋण एवं अन्य प्रकार की सहायता भी देती हैं। 3. **राज्य विपणन समितियाँ**—सबसे ऊपर राज्य विपणन समितियाँ होती है। जिनका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण राज्य होता है। ये स्वतन्त्र रूप से माल भी बेचती हैं तथा राज्य भर के केन्द्रीय विपणन संघों व प्राथमिक समितियों को ऋण तथा अन्य प्रकार की सहायता भी देती हैं व इन पर नियन्त्रण भी रखती हैं।

भारत में सहकारी विपणन समितियों की कठिनाइयाँ

1. **शिक्षा एवं अनुभवी कर्मचारियों का अभाव**—सहकारी विपणन समितियों के कर्मचारी अप्रशिक्षित होते हैं। उनमें अनुभव व बाजार की दशा का ज्ञान नहीं होता जिसके कारण उनकी प्रगति सन्तोषजनक नहीं है।

2. **सदस्यों की गैर वफादारी**—बहुत से सदस्य अपना माल चुपके से समितियों द्वारा न बेचकर आढ़तियों द्वारा बेच देते हैं।

3. **व्यापारियों का विरोध**—निजी व्यापारियों के लाभ का अंश इन समितियों द्वारा हड़प लिया जाता है। इसलिये निजी व्यापारी इनका विरोध करते हैं, इस कारण इनका पूर्ण विकास नहीं हो पाया है।

4. **धन की कमी**—सहकारी विपणन समितियों को धन का सदैव अभाव रहता है। इनकी अंश-पूँजी (Share-Capital) बहुत कम होती है। इससे उनको धन के अभाव का भी सामना करना पड़ता है।

5. **भंडारगृहों की कमी**—इन समितियों के पास अनाज रखने के लिये उचित भण्डारगृहों की कमी है। इनके स्वयं के गोदाम न होने के कारण ये किराये पर गोदाम लेते हैं। यह भी उनके विकास में बाधक है।

6. **संगठन का अभाव**—समितियों में परस्पर संगठन नहीं है इससे भी उनके विकास में बाधा आती है।

7. **व्यापारी संघों में प्रतिनिधित्व का अभाव**—आज के युग में व्यापार-संघों का बोलबाला है। परन्तु खेद की बात है कि इन संघों में सहकारी समितियों का प्रतिनिधित्व नहीं होता। यदि इन संघों में समितियों का प्रतिनिधित्व किया जावे तो इनकी शिकायत दूर हो सकती है और इनके संगठन में भी सरलता हो सकती है। इनके हितों की सुरक्षा उसी समय हो सकती है जब इन समितियों का व्यापार संघों में प्रतिनिधित्व हो।

8, **विपणन की दशाओं का मन्द विकास**—विपणन के विकास के लिये कुछ आधारभूत आवश्यकतायें होती हैं जिनके बिना विपणन का विकास नहीं हो सकता है। ये आवश्यक बातें हैं—यातायात के साधन, एक तौल व नाप, प्रामाणिक ग्रेड, साख की सुविधायें, एक भण्डारगृह आदि। भारतवर्ष में ये समस्त बातें अभी विकसित अवस्था में नहीं हैं और इसलिए विपणन का विकास नहीं हो सका है।

9. **वस्तुओं के मूल्य के ज्ञान का अभाव**—इन समितियों को बाजार की दशाओं के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। यह भी उनके विकास में बाधक है।

भारत में सहकारी विपणन समितियों की उन्नति के लिये सुझाव

1. **सहकारी साख समितियों से सम्बन्ध**—सहकारी विपणन समितियों का सहकारी साख समितियों (Co-operative Credit Societies) के साथ सम्बन्ध स्थापित होना चाहिये। सहकारी समिति के सदस्यों को चाहिये कि वे अपनी उपज इन्हीं समितियों द्वारा बेचें।

2. **यातायात एवं सम्वादवाहन के साधनों का विकास**—सरकार को चाहिये कि गाँवों एवं मण्डियों के बीच यातायात या सम्वादवाहन के साधनों का विकास करे।

3. **पर्याप्त भण्डारगृह**—मण्डियों में पर्याप्त संख्या में भण्डारगृह होने चाहिये जिससे कि सहकारी विपणन समितियाँ कृषि उपज को इन भण्डारों में रखकर बैंक से रुपया प्राप्त कर सकें।

4. **विपणन संघ का निर्माण**—सहकारी विपणन समितियों को विपणन संघ (Marketing Unions) बनाने चाहिये। इन संघों का संगठन राज्य स्तर पर होना चाहिये।

5. **सहकारिता की भावना का विकास**—सरकार को चाहिये कि वह इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करे जिसके द्वारा किसान सहकारिता के महत्व को समझें और सहकारिता के सिद्धान्त पर काम करें। इसके लिये शिक्षा प्रचार की आवश्यकता है।

6. **वस्तुओं की किस्म में सुधार**—वस्तुओं की किस्म में सुधार किया जावे एवं मिलावट को रोका जावे।

6. **बाजार की दशाओं का ज्ञान**—सहकारी विपणन समितियों को बाजार की दशाओं का ज्ञान होना चाहिये।

8. **कुशल प्रबन्ध एवं संचालन**—सहकारी विपणन समितियों का प्रबन्ध व संचालन शिक्षित एवं कुशल व्यक्तियों के हाथों में होना चाहिये। इसके लिये शिक्षा एवं प्रशिक्षण (Training) का प्रबन्ध होना चाहिये।

9. **एक ही वस्तु का विक्रय**—एक सहकारी विपणन समिति को साधारणतया एक ही वस्तु के विक्रय में विशिष्टता प्राप्त करनी चाहिये। सदस्यों की वफादारी प्राप्त करने के लिये साधन अपनाने चाहिये।

10. **अन्य संस्थाओं से सम्बन्ध**—सामुदायिक विकास योजनाओं (Community Development Projects) एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा (National Extension Services) के क्षेत्रों में सहकारी विपणन पर विशेष जोर दिया जाना चाहिये।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ (1969) में 3300 प्राथमिक विपणन समितियाँ, 20 शीर्ष विपणन समितियाँ और 173 विपणन संघ और सबसे शिखर पर राष्ट्रीय कृषि विपणन संघ था।

चतुर्थ योजना में सहकारी विपणन समितियों में श्रेणीकरण एवं पूलिंग की व्यवस्था व्यापक पैमाने पर प्रचलित की जान थी। 1973 में सहकारी विपणन और प्रोसेसिंग समितियों द्वारा लगभग 900 करोड़ रु. की कृषि उपज का व्यापार किया गया।

प्रश्न 16. मध्य-प्रदेश में सहकारी विपणन की प्रगति पर एक टिप्पणी लिखिए।

Write a note on, Progress of Co-operative Marketing in Madhya Pradesh.

उत्तर—सहकारी विपणन संगठन स्वेच्छा से विपणन सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने के लिए बनाये जाते हैं। गत कुछ समय से उत्पादित वस्तुओं के वितरण (Distribution) एवं साख (Credit) के क्षेत्र में सहकारी समितियों का संगठन बहुत ही लोकप्रिय हो रहा है। सहकारी विपणन व्यवस्था से आशय विपणन कार्य सहकारी समितियों द्वारा किये जाने से है। यद्यपि भारत में सहकारी आन्दोलन का सूत्रपात

सहकारी साख समितियों की स्थापना से प्रारम्भ हुआ किन्तु विगत 25-30 वर्षों से वितरण एवं विपणन क्षेत्र में भी सहकारी समितियों का व्यापक प्रयोग हो रहा है। सहकारी विपणन समितियों का ढाँचा इस प्रकार से है कि सबसे नीचे प्रारम्भिक कृषि क्रय-विक्रय समितियाँ (Primary Agricultural Purchase and Sale Societies), उत्पादन तथा विक्रय समितियाँ (Production and Sales Societies) और गैर कृषि सम्बन्धी पदार्थों के क्रय-विक्रय की समितियाँ होती हैं। इन समितियों का कार्य-क्षेत्र भी सीमित होता है और वे प्राय: एक ही वस्तु में व्यवहार करती हैं।

सहकारी विपणन के उद्देश्य (Objects of Co-operative Marketing)–सहकारी विपणन के बहुंत से उद्देश्य होते हैं लेकिन हमने अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित पाँच उद्देश्य दिये हैं—

1. **उचित प्रतिफल** (Just return)—सहकारी विपणन का सबसे पहला व प्रमुख उद्देश्य अपने सदस्यों को उनकी उत्पत्ति का उचित प्रतिफल दिलाना है।

2. **संग्रह सुविधा** (Storage Facility)—सहकारी विपणन का दूसरा उद्देश्य अपने सदस्यों को उत्पत्ति के संग्रह की सुविधा दिलाना है जिससे बाजार के अपने हित में आने तक उत्पत्ति सुरक्षित रखी जा सके।

3. **वित्तीय सहायता** (Financial Facility)—सहकारी विपणन का तीसरा उद्देश्य आवश्यकता के समय सदस्यों को आर्थिक सहायता प्रदान करना है।

4. **बाजार सूचना** (Marketing Information)—सहकारी विपणन का चौथा उद्देश्य अपने सदस्यों को बाजार की सही सूचना देना, जिसने उत्पादन को माँग और पूर्ति के आधार पर समायोजित किया जा सके।

5. **कच्चा माल उपलब्ध** (Supply of Raw Materials)—सहकारी विपणन का पाँचवाँ व अन्तिम उद्देश्य अपने सदस्यों को आवश्यक कच्चा माल, तांत्रिक योग्यता, उन्नत बीज आदि उपलब्ध कराना है।

मध्य प्रदेश में सहकारी विपणन—मध्य प्रदेश में सहकारी विपणन की प्रगति के अध्ययन को हम सुविधा की दृष्टि से तीन शीर्षकों में बाँट सकते हैं—

1. मध्य प्रदेश राज्य सहकारी विपणन संघ के क्रियाकलापों में प्रगति।
2. प्राथमिक विपणन समितियों की प्रगति।
3. विपणन कार्यों में विस्तार एवं वृद्धि।

मध्य प्रदेश राज्य सहकारी विपणन संघ—20 अक्टूबर 1958 को इसे वर्तमान स्वरूप प्रदान किया था। वर्तमान में इसकी शाखायें जिला स्तर पर भी कार्यरत हैं। यह समिति राज्य में रासायनिक खाद के वितरण का कार्य कर रही है। इसके अलावा आयल इंजिन, कृषि उपकरण, बीज एवं उपज विपणन का कार्य भी यह समिति करती है।

प्राथमिक विपणन समितियाँ—इस समय प्रदेश में लगभग 350 से अधिक प्राथमिक विपणन समितियाँ कार्य कर रही हैं। कृषि के लिए आवश्यक **बीज एवं**

खाद सुलभ करना तथा कृषि की उपजों का सुव्यवस्थित विपणन एवं प्रक्रिया कर कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाने का भार इन प्राथमिक विपणन समितियों पर है। नवीन मध्यप्रदेश के पुनर्गठन की तुलना में वर्ष 1978-79 में इन समितियों की संख्या 76 से बढ़कर 350 एवं प्रदत्त अंश पूँजी 66 लाख रु० से बढ़कर 325 लाख रु० हो गई।

विपणन कार्यों की प्रगति—इन सहकारी संस्थाओं ने विपणन के क्षेत्रों में जो प्रगति की है एवं अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जो उपाय अपनाये हैं वे निम्न-लिखित हैं—

1. **कृषि उपज का विपणन**—कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए कृषकों को अपनी उपज का उचित मूल्य दिलाना आवश्यक है। वर्तमान में सभी प्रमुख मण्डियाँ सहकारी विपणन समितियों के क्षेत्र में आ चुकी हैं। 1978-79 में लगभग 4,245 लाख रु. की कृषि उपज का विपणन संस्थाओं द्वारा किया गया।

2. **रासायनिक खाद का वितरण**—रासायनिक खाद के वितरण का कार्य ये समितियाँ आरम्भ से ही कर रही हैं। इन संस्थाओं ने 1978-79 में करीब 525 हजार मि. टन खाद का वितरण किया।

3. **कृषि उत्पादन का प्रोसेसिंग**—कुछ कृषि उपज ऐसी होती हैं जिन्हें बेचने से पहिले संवारने की जरूरत होती है। किन्तु इस दिशा में द्वितीय पंचवर्षीय योजना से पहिले विशेष प्रगति नहीं हुई। वर्तमान में प्रदेश में लगभग 200 से अधिक प्रोसेसिंग यूनिट हैं, जिनमें से 125 धान मिलें, 35 दाल मिलें, 16 काटन एण्ड जिनिंग मिलें एवं 11 तेल मिलें हैं।

4. **सहकारी गोदाम**—संग्रह भी विपणन का एक आवश्यक अंग है। कृषि उपज तथा कृषि आवश्यक सामग्री के उचित संग्रह हेतु इन सहकारी विपणन संस्थाओं ने ग्रामीण तथा विपणन गोदामों का निर्माण करवाया। 1978-79 तक इन संस्थाओं के पास 1,972 ग्रामीण एवं 563 विपणन गोदाम थे।

5. **कृषि आवश्यक वस्तुओं का विपणन**—विपणन का कार्य तभी सफल हो सकता है जबकि कृषि उपज में वृद्धि हो और कृषक के पास अपनी उपभोग की आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् बेचने योग्य अधिक्य (surplus) रहे। 1978-79 में इन संस्थाओं ने कुल मिलाकर 3,250 लाख रु. की कृषि आवश्यक वस्तुओं का विपणन किया।

मध्यप्रदेश में सहकारी विपणन के क्षेत्र में नवीनतम उपलब्धियाँ

मध्य प्रदेश में सहकारी विपणन की नीति एवं कार्यक्रम को निर्धारित करने तथा उसके कार्यान्वियन का उत्तरदायित्व मध्य प्रदेश राज्य सहकारी विपणन संघ का है। इस विपणन संघ के नेतृत्व में राज्य में सहकारी विपणन के क्षेत्र में आशा-तीत प्रगति हुई है। वर्तमान समय में राज्य में सहकारी विपणन के लिये इस संघ

के अतिरिक्त 255 सहकारी विपणन संस्थाएँ भी कार्यरत हैं। शासन द्वारा विपणन संस्थाओं को 187 प्रक्रिया इकाइयाँ स्थापित करने के लिये सहायता दी गई है। उक्त प्रक्रिया इकाइयों में से 161 पूर्ण हो गई हैं तथा शेष अभी अपूर्ण हैं। कृषि उपज एवं साख के संग्रहण के लिये 3.72 लाख टन संग्रहण क्षमता के भण्डारों के निर्माण के लिये अभी तक 2555 गोदामों के लिये शासन द्वारा आर्थिक सहायता दी गई है। सन् 1977-78 में खरगोन जिले में 'सालवेन्ट एक्सट्रेक्शन प्लाण्ट' की स्थापना के लिये 78 लाख रुपये की आर्थिक सहायता दी गई तथा इन्दौर जिले में निर्माणाधीन बरलाई शक्कर कारखाने को अंश पूंजी के रूप में 60 लाख रुपये की आर्थिक-सहायता प्रदान की गई।

विपणन एवं प्रक्रिया इकाइयों द्वारा वर्ष 77-78 में 14-38 करोड़ रुपये की कृषि उपज का क्रय किया गया, 26.87 करोड़ रुपये की रासायनिक खाद का वितरण किया गया। विपणन संघ द्वारा वर्ष 1974-75, व 75-76 में क्रमशः 4,386-04 तथा 2,82 लाख टन धान खरीदी गई तथा इन वर्षों में क्रमशः 35-33 तथा 4.25 लाख टन चाँवल तैयार किया गया।

इण्डियन फार्मर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव्ह लि., (इफको) को उसकी स्थापना के समय से ही मध्य प्रदेश राज्य का विशेष सहयोग प्राप्त होता रहा है। मध्य-प्रदेश की 1100 से अधिक सहकारी समितियाँ 'इफको' की सदस्य हैं, जिनका अंश पूंजी में 1.37 करोड़ रुपये का योगदान है। मध्य-प्रदेश में 'इफको' खाद का विशाल पैमाने पर उपयोग होता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रदेश में सहकारी विपणन के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति हुई है। मध्यप्रदेश में भी सहकारी आन्दोलन वयस्कता प्राप्त कर चुका है। फिर भी प्रदेश के आकार-प्रकार और आर्थिक संरचना को देखते हुए यह प्रगति धीमी है। मध्य प्रदेश में सहकारी विपणन की धीमी प्रगति के वही कारण हैं जो भारत के सहकारी विपणन की धीमी प्रगति के हैं। प्रदेश को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध करने के लिए सहकारी विपणन पर जोर देना आवश्यक है, क्योंकि प्रदेश की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के सर्वांगीण विकास एवं कृषकों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने में सहकारी विपणन संस्थायें एक सक्षम एवं प्रभावी भूमिका अदा कर सकती हैं। ●●

6 विपणि अनुसन्धान
(MARKET RESEARCH)

प्रश्न 17. विपणन अनुसन्धान की परिभाषा दीजिये। इसके क्षेत्र, लाभ, लक्ष्य व उद्देश्यों की विवेचना कीजिये।

Define the term Market Research. Discuss its scope and advantages.

अथवा

विपणि अनुसन्धान पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

Write an exhaustive article on 'Market Research.'

अथवा

एक निर्माता के लिये विपणि अनुसन्धान का क्या महत्व है ? इस प्रकार के अनुसन्धान करने के आधुनिक ढंगों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

How is market research important to a manufacturer ? Describe briefly modern methods of conducting such research.

उत्तर—

विपणि अनुसंधान का अर्थ
(Meaning of Market Research)

विपणि अनुसंधान का पृथक्करण करने से स्पष्ट हो जाता है कि यह दो शब्दों का योग है—पहला विपणि एवं दूसरा अनुसन्धान। अतः इन दोनों शब्दों का विश्लेषण करने से विपणि अनुसन्धान का अर्थ स्पष्ट हो जायेगा।

विपणन शब्द के अन्तर्गत कारखाने से अन्तिम उपभोक्ता तक वस्तुओं तथा सेवाओं को पहुँचाने से सम्बन्धित समस्त क्रियायें सम्मिलित हैं। इसमें वे समस्त साधन एवं क्रियायें सम्मिलित होती हैं जिनसे वस्तुएँ एवं सेवायें उत्पादक से लेकर उपभोक्ता तक पहुँचती हैं। अनुसंधान का अर्थ किसी क्रिया का अन्वेषण एवं अनुसंधान हेतु आलोचनात्मक सूक्ष्म अध्ययन है। अतः **विपणन अनुसंधान विपणन क्षेत्र की किसी समस्या के सारगर्भित तथ्यों का क्रमबद्ध, उद्देश्यपूर्ण एवं विस्तृत अन्वेषण हेतु अध्ययन है। सरल शब्दों में, विपणि अनुसन्धान से आशय वस्तुओं तथा सेवाओं**

को उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक बेचने व हस्तांतरित करने से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में समस्त तथ्य संकलित करना व उनका विश्लेषण करना है।

क्लार्क एवं क्लार्क (Clerk and Clerk) के अनुसार, "वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन केन्द्रों के उपभोक्ताओं तक स्थानांतरण करने से सम्बन्धित समस्याओं के तथ्यों के संकलन, संलेखन और विश्लेषण को विपणि अनुसन्धान कहते हैं।" (Market Research is defined as gathering, recording and analysis of all facts about problems relating to the transfer and sales of goods and services from producer to consumer.)

डॉ. ब्लैकनशिप (Dr. Blankenship) के अनुसार, "विपणि अनुसन्धान वह सहायक सेवा है जिसके सहयोग से प्रबन्ध वर्ग इस विषय में अधिक स्पष्ट व दृढ़ विचार के साथ निर्णय कर सकता है कि वह क्या बेच सकता है एवं कितना बेच सकता है। इस विषय में भी उसकी स्पष्टता व दृढ़ता होती है कि क्षति को न्यूनतम करने के लिए विक्रय के विविध उपकरणों का संयोग किस प्रकार किया जाए।"

आर. एस. वेल तथा पी. एस. स्लेग्सवोल्ड (R. S. Vaile and P. S. Slagsvold) के अनुसार, "विपणि अनुसन्धान बाजार की जोखिम को कम करने का एक संगठित साधन है·······विपणि अनुसन्धान का प्रमुख कार्य तथ्यों के कम आधार को व्यापक एवं विस्तृत करना होता है जिस पर व्यावसायिक योजनाओं का निर्माण किया जाता हैं।"

ए. एच. आर. डेलेन्स (A. H. R. Delens) के मतानुसार, "विपणि अनुसन्धान किसी भी व्यावसायिक परिचालन, जिसमें उत्पादक से उपभोक्ता को वस्तुओं का हस्तांतरण निहित होता है, से सम्बन्धित सभी घटकों का विधिवत व सतत अध्ययन तथा मूल्यांकन है।"

डॉ. आर. ब्राउन (Dr. R. Brown) के अनुसार, "विपणन व वितरण अनुसन्धान उस वैज्ञानिक विधि का नाम है जिसका प्रयोग बिक्री बढ़ाने, विपणन व वितरण लागत कम करने तथा आय को अधिकतम बनाने के उद्देश्य से विपणन एवं वितरण की समस्याओं का समाधान करने के लिये किया जाता है।" (Marketing and distribution research is the use of scientific method in the solution of marketing and distribution problems for the purpose of increasing sales, decreasing marketing and distribution costs and maximising profits.)

एडलेर (Adler) के अनुसार, "विपणन अनुसन्धान व्यापारिक जीवन की कुछ अनिश्चितताओं को तथ्य में बदलने का तरीका है जिससे ये तथ्य व्यापारिक निर्णयों के लिये आधार की तरह कार्य करते है।" (Market research is a method

संक्षेप में, विपणन अनुसन्धान एक वैज्ञानिक तरीका है जिसमें वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन से लेकर उपभोक्ता तक पहुंकने की समस्याओं के तथ्यों का संकलन एवं विश्लेषण होता है।

विपणि अनुसन्धान का लक्ष्य एवं उद्देश्य
(Aims and Objects of Market Research)

लक्ष्य—विपणि अनुसन्धान का प्रमुख लक्ष्य सर्वाधिक मूल्य प्राप्ति के लिये, क्या बेचना है, कहाँ बेचना है, कब बेचना है एवं किस प्रकार बेचना है, होता है ? दूसरे शब्दों में, विपणि अनुसन्धान का लक्ष्य वस्तु की विशेषता है, उसके प्रयोग का समय, स्थान एवं विधि तथा प्रयोग करने वाले व्यक्तियों का विवरण एवं उसके प्रयोग करने के कारणों का पता लगाना है। विपणि अनुसन्धान का लक्ष्य भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग हो सकता है, जैसे—

1. जब कोई नई वस्तु बाजार में विक्रय के लिये उपलब्ध कराई जाती है तब विपणि अनुसन्धान का प्रमुख लक्ष्य उस वस्तु के सम्बन्ध में उपभोक्ता की प्रतिक्रिया की जानकारी प्राप्त करनी होती है जिससे उसके गुण, आकार, किस्म, डिजाइन आदि में अनुकूल सुधार किया जा सकें।

2. जब कोई वस्तु बाजार में चल रही हो तब वस्तु के उपभोक्ताओं की आवश्यकता का पता लगाकर उसके उत्पादन में वृद्धि की जा सके या उसी स्तर की अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके।

3. यदि किसी वस्तु के निर्माण की योजना सामने है या उत्पादन क्षमता को बढ़ाना है तब ऐसी स्थिति में उस वस्तु की आवश्यकता का अध्ययन करना।

4. यदि कोई वस्तु बाजार में प्रस्तुत की गई है परन्तु वह नहीं चल सकी हो तो इस सफलता के कारणों का पता लगाना।

5. विदेशों में बाजार खोजने तथा विदेशी विनिमय के अर्जन के उद्देश्य से निर्यात मात्रा में वृद्धि करना।

उद्देश्य—पी. डी. कन्वर्स (P. D. Converse) के अनुसार, विपणि अनुसंधान के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं —(1) उत्पादन का नियोजन एवं विक्रेता के माल का विभिन्न क्षेत्रों में वितरण करने के लिए आवश्यक आँकड़े संकलित करना। (2) बजट का निर्माण करने के लिये आवश्यक तथ्य व आँकड़े एकत्र करना। (3) विज्ञापन के साधन का चुनाव करना। (4) विक्रय वार्ता का निर्माण करना। (5) विक्रय में वृद्धि की सम्भावनाओं के विकास के लिए विविध मध्यस्थों से आवश्यक तथ्यों का संकलन करना। (6) उपभोक्ता की रुचि एवं अरुचि का पता लगाना। (7) व्यावसायिक दशाओं की प्रवृत्तियों का पूर्वानुमान लगाना। (8) मध्यस्थों के पास स्टाक का पता लगाना। (9) विक्रय के मध्यस्थों द्वारा अपनाये गये विज्ञापन व प्रचार आदि के साधनों की रिपोर्ट देना। (10) विक्रय नीति के सम्बन्ध में मध्यस्थों की प्रतिक्रियाओं का पता लगाना। (11) उन आँकड़ों का संकलन एवं सारणीयन

करना जिनमें संस्था को विशेष रुचि है, (12) मध्यस्थ विक्रेताओं का कोटा (Quota) एवं क्षेत्र निश्चित करना। (13) किसी क्षेत्र विशेष के निवासियों की क्रय शक्ति का पता लगाना। (14) वस्तु के नये प्रयोग की खोज करना। (15) परिवर्तन या सुधार के उद्देश्य से विविध संस्थाओं के संगठन का अध्ययन करना। (16) अन्य उद्योगों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी एकत्र करना। (17) उपलब्ध प्रकाशित आँकड़ों का विश्लेषण करना।

जी. बी. गिल्स (G. B. Giles) के अनुसार, "विपणि अनुसंधान का आधारभूत उद्देश्य प्रबन्ध को ऐसी जानकारी देना है जिससे वितरण, वर्तमान तथा संभावित क्रेताओं व उपयोगकर्ताओं की आदतों व दृष्टिकोणों व उनकी उत्पादों, पैकिंग, विक्रय तथा विज्ञापन विधियों के प्रति प्रतिक्रियाओं को पूरी तरह समझा जा सके।

विपणन अनुसंधान का क्षेत्र

वर्तमान समय में विपणन अनुसंधान क्षेत्र काफी विस्तृत होता जा रहा है। सांख्यिकीय तकनीकों तथा क्रियात्मक शोध के विकास के साथ-साथ इसके क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। वर्तमान समय में लगभग 34 से अधिक प्रकार की विभिन्न विपणन अनुसंधान क्रियायें संचालित की जा रही हैं जिनमें से बाजार सम्भावनाओं का विकास अध्ययन, विक्रय विश्लेपण, बाजार भाव विश्लेपण तथा विक्रय प्रणालियों पर शोध के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। विपणन अनुसंधान के क्षेत्र के अन्तर्गत मुख्य रूप से निम्न बातों का समावेश किया जाता है—

1. **निर्मित उत्पाद या सेवा पर शोध**—इसके अन्तर्गत उपभोक्ताओं की माँगों, उनकी आवश्यकताओं तथा रुचियों को ध्यान में रखकर नयी-नयी वस्तुओं के निर्माण एवं सेवाओं के विकास पर विचार-विमर्श किया जाता है।

2. **बाजार सम्बन्धी शोध**—बाजार सम्बन्धी शोध को भी विपणन अनुसंधान के क्षेत्र के अन्तर्गत बाजारों के आकार-प्रकार, प्रकृति, भिन्न-भिन्न बाजारों की लाभप्रदता तथा बाजार परिवर्तनों आदि का अध्ययन किया जाता है।

3. **विक्रय प्रणालियों तथा नीतियों पर शोध**—विक्रय प्रणालियों तथा विक्रय नीतियों से सम्बन्धित शोध को भी विक्रय अनुसंधान के क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। इसके अन्तर्गत मूल्य नीतियों, कटौती दर नीति, वितरण की लागतें, विज्ञापन कार्यक्रम, विक्रेताओं के संगठन आदि से सम्बन्धित अनुसंधानों को शामिल किया जाता है।

विपणि अनुसंधान का महत्व एवं लाभ
(Advantages and Importance of Market Research)

आधुनिक औद्योगिक, तकनीकी एवं व्यावसायिक जगत में प्रायः प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। यदि उत्पादक को अपनी वस्तु के लिये बाजार प्राप्त करना है या उसे आगे भी बनाये रखना है तो गहन बाजार अध्ययन आवश्यक है।

कोई नये उपक्रम या उत्पाद केवल इसलिये असफल रहते हैं कि वे बाजार के अनुमान सम्बन्धी ऐसी सम्भावनाओं पर प्रारम्भ किये जाते हैं, जो सही नहीं उतरती हैं। अतः सावधानी सहित बाजार का अध्ययन करना असफलताओं के विरुद्ध सुरक्षा का एक सस्ता बीमा है। वास्तव में विपणि विश्लेषण किसी भी उद्योग में एक जीवनदायिनी शक्ति है। बिक्री में वृद्धि करने का इसका विशेष योग रहता है तथा यह विक्रय विभाग का मार्गदर्शन करता है। आधुनिक व्यवसाय में विपणि अनुसंधान के निम्न-लिखित लाभ हैं—

1. **माँग के अनुसार उत्पादन**—विपणि अनुसन्धान की सहायता से यह अधिक सम्भव हो जाता है कि (i) वस्तुओं का उत्पादन उपभोक्ताओं की मांग के अनुसार हो, (ii) वस्तुओं का मूल्य उपभोक्ताओं की माँग के अनुसार हो तथा उन विशिष्ट बाजारों में ही वस्तुयें प्रस्तुत की जायें जहाँ उनके विक्रय की सबसे अधिक सम्भावनायें हैं।

2. **विक्रय में वृद्धि**—विपणि अनुसन्धान में उत्पादन उपभोक्ता की रुचि एवं माँग के अनुसार किया जाता है जिससे स्वभावतः विक्रय में वृद्धि हो जाती है। उपभोक्ता की रुचि का पता लग जाने पर उसी प्रकृति की दूसरी वस्तु का उत्पादन भी किया जा सकता है तथा इस प्रकार विक्रय में और भी वृद्धि की जा सकती है।

3. **विक्रय नीति एवं उसकी प्राप्ति**—विपणि अनुसन्धान से विक्रय की नीति निर्धारित की जाती है जिससे विक्रय लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। कौन-सी वस्तु कहाँ बेचना है, कितनी बेचना है तथा किस प्रकार बेचना है, आदि बातों के निर्धारण से आगे के क्रिया-कलापों का मार्ग स्पष्ट हो जाता है। बाद में प्राप्त परिणामों एवं पहले से निर्धारित लक्ष्यों के मध्य तुलना करके विक्रय की नीति का सही मूल्यांकन केवल विपणि अनुसन्धान के अन्तर्गत ही सम्भव हो सकता है।

4. **नए अवसरों की खोज**—विपणि अनुसन्धान के परिणामस्वरूप (i) वस्तु के उत्पादन की सम्भावनाओं (ii) नयी सहायक वस्तुओं के उत्पादन की सम्भावनाओं (iii) नयी-नयी मण्डियों (iv) विक्रय वृद्धि की नयी युक्तियों आदि के सम्बन्ध में पता चलता है। वस्तु विक्रय के नये बाजार मिलने से उत्पादन में वृद्धि होती है जिससे उत्पादक व उपभोक्ता दोनों को लाभ होता है।

5. **जोखिम में कमी**—विपणि अनुसन्धान से उपभोक्ता की रुचि में परिवर्तन, फैशन में परिवर्तन आदि बातों की जानकारी प्राप्त होती है जिसके अनुसार भविष्य में उत्पादन की योजना बनाई जाती है। उत्पादन केवल कल्पनाओं पर आधारित रहता है। इस प्रकार विपणि अनुसंधान से जोखिम में कमी हो जाती है।

6. **जन-साधारण के जीवन स्तर में वृद्धि**—विपणि अनुसन्धान से माँग में वृद्धि होने के कारण अधिक उत्पादन किया जाता है जिससे लागत मे कमी आती है तथा उपभोक्ताओं को वह वस्तु सस्ते मूल्य पर मिल जाती है। सस्ती वस्तु मिलने पर

उस वस्तु का उपभोग अधिक लोग अधिक से अधिक मात्रा में करने लगते हैं। उपभोग में वृद्धि होने से उपभोक्ताओं के जीवन स्तर में वृद्धि होती है।

7. **विपणि व्ययों में मितव्ययिता**—विपणि अनुसन्धान से विक्रय एवं वितरण व्यय वहीं किये जाते हैं जहाँ इसकी आवश्यकता होती है। विपणि अनुसन्धान से विक्रय का क्षेत्र निर्धारित हो जाता है। परिणामस्वरूप जो भी व्यय होते हैं वे सब उचित रूप से होते हैं एवं अनावश्यक व्ययों के न होने के कारण विपणि व्ययों में मितव्ययिता आ जाती है।

8. **उत्पादन एवं विक्रय नियोजन में सहायक**—विपणि अनुसन्धान से बाजार की सम्भावित माँग का अनुमान लगाया जा सकता है। इससे उत्पाद एवं विक्रय नियोजन में सहायता मिलती है।

9. **उपभोक्ता मत सर्वेक्षण**—विपणि अनुसन्धान में उपभोक्ता मत सर्वेक्षण (Consumer opinion survey) भी किए जाते हैं। इससे वस्तुओं के प्रति उपभोक्ताओं का क्या रुख है, यह ज्ञात किया जाता है तथा उनकी इच्छानुसार वस्तु की किस्म आदि में परिवर्तन किया जाता है।

10. **वितरण के माध्यमों की प्रभावशीलता ज्ञात करना**—विपणि अनुसंधान से यह पता लगाया जा सकता है कि विक्रय की व्यवस्था संतोषजनक है अथवा नहीं और यदि नहीं है तो क्या कारण है। इस जानकारी के मिलने पर विक्रय व्यवस्था को अधिक कुशल व प्रभावशाली बनाया जा सकता है जिससे फिर अनावश्यक विपणि व्यय समाप्त हो जायेंगे।

11. **ग्राहकों के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ**—विपणन अनुसंधान से उत्पादकों को ग्राहकों के बारे में अनेक महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, जैसे—उनकी वस्तुओं के ग्राहक कौन हैं, वे वस्तु को क्यों खरीदते हैं तथा उसका क्या उपयोग करते हैं आदि।

12. **मांग सम्बन्धी जानकारी**—विपणन अनुसंधान से उत्पादकों को उनकी वस्तुओं की मांग की प्रकृति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हो जाती है अर्थात् उन्हें यह पता चल जाता है कि उनकी वस्तुओं की मांग स्थायी है अथवा अस्थायी, लोचदार है अथवा बेलोचदार आदि।

13. **वस्तुओं में सुधार**—विपणन अनुसंधान से वस्तुओं के आकार प्रकार, रूप-रंग तथा किस्म में परिवर्तन करने में सहायता मिलती है।

उक्त विवरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि, "बिना विपणन अनुसंधान के व्यावसायिक क्रियाओं का सुचारु रूप से संचालन कठिन ही नहीं वरन् असंभव भी है। विपणन अनुसंधानकर्त्ता एक ऐसा व्यावसायिक चिकित्सक एवं सलाहकार

विपणि अनुसंधान के तत्व या प्रकार
(Elements or Kinds of Market Research)

विपणि अनुसंधान में अनेक कार्य किये जाते हैं। इनका मुख्य कार्य विभिन्न सूचनाओं को एकत्रित करके उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। अनुसंधान में प्राय: निम्न चार प्रकार के विश्लेषणों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें विपणि अनुसंधान के मुख्य तत्व कह सकते हैं—

1. **उत्पाद-विश्लेषण** (Produet Analysis)—उत्पाद-विश्लेषण का अभिप्राय उत्पादक द्वारा अपने उत्पादों के सम्बन्ध में यह जानना होता है कि उत्पाद किस सीमा तक ग्राहकों की रुचि के अनुसार है तथा किस प्रकार ग्राहकों के लिये उनकी उपयोगिता को बढ़ाया जा सकता है तथा उन्हें उनकी पसन्द के अनुरूप बनाया जा सकता है। इसका प्रमुख उद्देश्य यह अध्ययन करना होता है कि उपभोक्ता किस उत्पाद को सर्वाधिक पसन्द करता है। यह अध्ययन मितव्ययिता, टिकाऊपन, उपयोगिता, सरलता, सुविधा, पैकिंग के आकर्षण आदि दृष्टिकोण से करना चाहिये। नये उत्पाद की स्थिति में यह देखना चाहिये कि यह उत्पाद ग्राहकों की आवश्यकता पूरी कर सके। इसी प्रकार वर्तमान उत्पाद के सम्बन्ध में उसका विकास करने, सुधार करने, प्रतियोगी से अच्छा उत्पादन बनाने के नये प्रयोग मालूम करने, पैकिंग पद्धति निश्चित करने आदि के लिए विपणि अनुसन्धान महत्वपूर्ण कार्य करता है।

2. **बाजार या उपभोक्ता विश्लेषण** (Market or Consumer's Research) का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं की आदतों एवं क्रय सम्बन्धी प्राथमिकताओं का अध्ययन करना है। अत: यह उपभोक्ताओं की भूतकालीन, वर्तमान एवं भावी आदतों के अध्ययन पर ही केन्द्रित रहता है। **डा. ब्लैकनशिप** (Dr. Blankenship) के शब्दों में, "बाजार विश्लेषण एक ऐसी अतिरिक्त सेवा है जो प्रबन्धकों को इस योग्य बनाती है कि क्या बेचा जा सकता है, कितना बेचा जा सकता है तथा कैसे बेचा जा सकता है? इस स्पष्ट जानकारी के साथ वस्तुओं का निर्माण करें तथा अपव्यय को न्यूनतम करने के लिए विक्रय के विभिन्न उपकरणों को किस प्रकार सम्मिलित ढंग से प्रयोग किया जा सकता है, इस बात के उत्तम ज्ञान सहित वस्तु बेचें।

डा. टी. एन. रस्तोगी ने बाजार विश्लेषण की परिभाषा निम्न ढंग से दी है—"बाजार विश्लेषण का अर्थ प्रथमत: यह है कि एक निर्माता के विक्रय-आँकड़ों का सावधानी से विश्लेषण किया जाय ताकि यह पता लग सके कि कौन-कौन से घटकों (व्यवसाय में अथवा व्यवसाय के बाहर क्रियाशील) ने भूतकाल में माँग को प्रभावित किया है तथा उस कारण भविष्य में भी कर सकते हैं। मूल्य परिवर्तन, शर्तों में परिवर्तन, नयी संस्थाओं से प्रतियोगिता, मौसम-परिवर्तन आदि अनेक जटिल घटक

सक्रिय हो सकते हैं; जिनका पता एक चतुर सांख्यिक लगा सकता है, दूसरे, बाजार-विश्लेषण में निर्माता के अपने या तत्सम्बन्धी व्यापारों के बारे में या व्यावसायिक हलचलों के बारे में अन्य प्रकाशित आँकड़ों का अध्ययन करना भी सम्मिलित है। तीसरे, बाजार विश्लेषण में निम्न भी सम्मिलित हैं—(i) निर्माता द्वारा अपने उत्पादकों की अच्छाई व बुराई का पता लगाने हेतु विशेष जाँच-पड़ताल का प्रयोग करना; (ii) नयी किस्मों का निश्चय करना जो पसन्द आ सके; तथा ऐसे सुधारों की छानबीन करना, जिससे पुराने उत्पाद समयानुकूल बन सकें; (iii) वितरण के विभिन्न ढंगों के सापेक्षिक गुणों का मूल्यांकन करना; तथा (iv) किसी विपणन समस्या के विषय में सांख्यिकी आधार पर जांच-पड़ताल करना।

बाजार या उपभोक्ता विश्लेषण मात्रा या गुण सम्बन्धी हो सकता है। मात्रा से तात्पर्य ग्राहकों की संख्या बढ़ाने की संभावनाओं का पता लगाना है व गुण से तात्पर्य बाजार का मनौवैज्ञानिक अध्ययन करने से है जिससे उपभोक्ता की खरीद सम्बन्धी आदत व उद्देश्य का पता लगाया जा सके। बाजार अनुसन्धान में जिन बातों की विशेष जानकारी प्राप्त की जाती है वे हैं—(1) ग्राहकों की संख्या एवं संरचना, (2) ग्राहकों की आय का वितरण, (3) तकनीकी परिवर्तन एवं (4) ग्राहकों की रुचि तथा उनके स्तर में परिवर्तन।

3. **वितरण विश्लेषण** (Distribution Analysis)—वितरण विश्लेषण में वितरण सम्बन्धी विभिन्न बातों का अध्ययन किया जाता है जैसे वितरण के ढंग, भण्डार, विक्रय-नियन्त्रण, विक्रय संवर्द्धन, मूल्य निश्चित करने की विधियाँ तथा ऐसी ही अन्य नीतियाँ। वितरण विश्लेषण के द्वारा वितरण क्रिया का विवेकीकरण किया जाता है जिनसे ग्राहकों की सुविधा में वृद्धि हो जाये तथा संख्या के वितरण व्यय में भी कमी हो। इसके द्वारा सम्पूर्ण विक्रय क्रिया पर उचित नियन्त्रण रखने में सहायता मिलती है। जिसके परिणामस्वरूप वस्तुयें उचित समय, स्थान व मूल्य पर प्राप्त कराई जा सकती हैं। वितरण विश्लेषण का ध्येय विभिन्न वितरण तरीकों की कार्यक्षमता का विश्लेषण करना है जिससे अधिकतम मात्रा का वितरण कम से कम लागत पर किया जा सके।

4. **प्रतिस्पर्धा विश्लेषण** (Competition Analysis)—प्रतिस्पर्धा विश्लेषण में प्रतियोगी के उत्पाद, कुल बाजार में उसके अंश, उसके वितरण-ढंग, उसकी विज्ञापन रीति, मूल्य नीति आदि अनेक विषयों पर अध्ययन किये जाते हैं। इस अध्ययन के आधार पर संस्था अपनी भावी गतिविधियों के लिए आधारभूत नीति एवं योजना बना सकती है जिससे उसमें अपने वर्तमान बाजार को बनाये रखने की शक्ति बनी रहे तथा भविष्य में अपने प्रतियोगियों पर विजय प्राप्त करने का साहस जुट सके।

विपणि अनुसन्धान के कार्य
(Functions of Market Research)

विपणि अनुमन्धान के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

1. **वस्तु सम्बन्धी कार्य**—इसमें ये कार्य सम्मिलित होते हैं—(i) नयी वस्तुओं के विकास की सम्भावनायें देखना। (ii) विद्यमान वस्तुओं की जाँच व उसमें सुधार। (iii) वस्तुओं के नये-नये उपायों की खोज करना। (iv) प्रतिस्पर्धा करने वाली अन्य वस्तुओं का अध्ययय करना। (v) पैकिंग के रूप में सुधार करना। (vi) वस्त्र के नाम, ब्रान्ड, लेबिल, ट्रेडमार्क या अन्य भौतिक गुणों में सुधार करना। (vii) उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का अध्ययन करना।

2. **बाजार सम्बन्धी कार्य**—इसमें निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं—(i) अपनी वस्तुओं का उपभोग करने वाले ग्राहकों का संख्यात्मक ज्ञान प्राप्त करना। (ii) अपने ग्राहकों का स्त्री-पुरुष, ग्रामीण-शहरी, शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन आदि के आधार पर वर्गीकरण करना। (iii) ग्राहकों की आय के वितरण का विश्लेषण करना। (iv) वर्तमान तथा भावी उपभोक्ताओं की रुचियों या अरुचियों के सम्बन्ध में तथ्य एकत्र करना। (v) फैशन में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना। (vi) नई मण्डियों की खोज करना। (vi) नयी वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग का पूर्वानुमान करना। (viii) सम्पूर्ण बाजार में अपने भाग की गणना व विश्लेषण करना। (ix) विभिन्न क्षेत्रों के लिये बिक्री कोटा निर्धारित करना। (x) बाजार की विशेषताओं का अध्ययन करना आदि।

3. **नीति सम्बन्धी कार्य**—इसमें निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं—(i) उपयुक्त नीति का निर्धारण करना। (ii) वितरण नीति का निर्धारण करना तथा समय-समय पर उसमें सुधार करना। (iii) विक्रय को बढ़ाने के लिये नीति निर्धारित करना। (iv) उचित विज्ञापन कार्य के लिये विज्ञापन नीति का निर्धारण करना। (v) उपभोक्ताओं से सम्पर्क की नीति निर्धारित करना।

4. **विज्ञापन सम्बन्धी कार्य**—इसमें निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं—(i) विज्ञापन के विभिन्न साधनों का अध्ययन करना। (ii) विज्ञापन साधनों की कुशलता व प्रभावोत्पादकता का अध्ययन करना। (iii) प्रेरणात्मक विज्ञापन रीति की खोज करना आदि।

5. **विक्रय सम्बन्धी कार्य**—इसमें निम्नलिखित कार्य हैं—(i) बिक्री विश्लेषण करना। (ii) विक्रय नीतियों का अध्ययन करना। (iii) वितरण लागत का अध्ययन करना। (iv) वितरण सम्बन्धी मार्गों (Channels) का अध्ययन करना। (v) विक्रय क्षति-पूर्ति का अध्ययन करना। (vi) विक्रय-संवर्द्धन के लिये अपनाये गये साधनों का अध्ययन करना आदि।

विपणि अनुसन्धान की विधियाँ
(Techniques of Market Research)

विपणि अनुसन्धान एक ऐसा कार्य है जिस पर व्यवसाय की सफलता निर्भर करती है। अतः विपणि अनुसन्धान का कार्य अत्यन्त सावधानीपूर्वक योजनाबद्ध विधि से करना चाहिये—

1. **वस्तु की प्रकृति की जानकारी लेना**—वस्तु को बाजार में प्रस्तुत करने से पूर्व उसकी प्रकृति पर ध्यान देना आवश्यक है। वस्तु की प्रकृति का तात्पर्य है कि वस्तु पूर्णतः नयी है या किसी विद्यमान वस्तु की कोई नयी किस्म है। नयी वस्तु से तात्पर्य उस वस्तु से है जो अभी तक बाजार में नहीं थी, जैसे—नई पुस्तक, नई मशीन आदि जिसे उत्पादक द्वारा विक्रय के लिये पहली बार बाजार में प्रस्तुत किया जा रहा है जबकि नयी किस्म से आशय उस वस्तु से है जो बाजार में पहले से तो है परन्तु प्रस्तुत की जाने वाली वस्तु उसका नया किस्म (Brand) है। जैसे फिलिप्स रेडियो का कोई नया माडल जो बाजार में प्रस्तुत किया जावे तो वह नयी किस्म है। वस्तु की प्रकृति का ज्ञान होना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि एक नयी वस्तु की अपेक्षा नयी किस्म को बाजार में प्रस्तुत करने में संस्था को अधिक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। नयी वस्तुओं का प्रचार, उनके लिए मण्डियों की खोज आदि अपेक्षाकृत सरल कार्य है परन्तु नयी किस्म प्रस्तुत करते समय प्रतियोगी वस्तुओं की लोकप्रियता, नयी किस्म की प्रभावोत्पादक शक्ति, उसका तुलनात्मक मूल्य, उसके सम्भावित ग्राहक आदि के सम्बन्ध में अध्ययन करना आवश्यक होता है।

2. **वस्तु का विश्लेषण करना**—वस्तु की प्रकृति जानने के बाद उसके गुणों-अवगुणों, उसकी उपयोगिता तथा अन्य विशेषताओं का अध्ययन करना चाहिये। इस विश्लेषण में, वस्तु में किए जा सकने वाले सम्भावित सुधारों एवं संशोधनों, प्रतियोगी वस्तु से गुणात्मक तुलना तथा उसको अधिक लोकप्रिय बना सकने वाले ढंगों का भी अध्ययन किया जाता है। इस विश्लेषण से नयी वस्तु की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता का ठीक-ठीक अनुमान लग जाता है और अन्ततः उसकी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस विश्लेषण का एक लाभ यह भी है कि इसके आधार पर नयी वस्तु के लिये एक रचनात्मक विक्रय योजना बनाने में बहुत सहायता मिलती है।

3. **प्रतिस्पर्धी उत्पादकों का विश्लेषण करना**—केवल अपने उत्पादन का वस्तु-विश्लेषण कर लेना ही पर्याप्त नहीं है वरन् अपनी वस्तु का विश्लेषण प्रतिस्पर्धी के उत्पादन की वस्तु तुलनात्मक उपयोगिता को ध्यान में रखकर करना चाहिये। यह पता लगाने का प्रयास करना चाहिये कि प्रतिस्पर्धी के उत्पाद में ऐसे कौन-कौन से विशेष गुण हैं जिससे वह उपभोक्ता को अधिक सन्तुष्टि दे रहा है एवं उसके बीच में अधिक लोकप्रिय है। इस प्रकार के विश्लेषण से उत्पाद में सुधार किया जा सकता है एवं उसमें निहित कमियों को दूर किया जा सकता है जो दीर्घकाल तक सफलता-पूर्वक विपणन में सहायक होगा।

4. **उपभोक्ता विश्लेषण**—उपभोक्ता के दृष्टिकोण एवं उनके मनोविज्ञान का मूल्यांकन करना भी आवश्यक है। किसी वस्तु के एक बार लोकप्रिय हो जाने का यह अर्थ नहीं है कि वह वस्तु सदैव ही उपभोक्ता को पसन्द आती रहेगी। वास्तव में लोकप्रियता को बनाए रखना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिये उपभोक्ता की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को समय-समय पर जाँच करते रहना चाहिये। इस बात का पता लगाना चाहिये कि वस्तु उपभोक्ताओं को किस सीमा तक सन्तुष्ट कर रही है।

5. **उपभोक्ताओं की अतृप्त आवश्यकताओं का पता लगाना**—विपणन अनुसन्धान में उपभोक्ता की अतृप्त आवश्यकताओं का पता लगाना बहुत उपयोगी विधि है। अनुसन्धान के द्वारा यदि उपभोक्ता की अतृप्त आवश्यकताओं का पता लगा लिया जाय तो नये एवं सम्भावित ग्राहकों का पता लगाने में बहुत सहायक होता है। अतृप्त आवश्यकताओं का पता लगने के बाद वर्तमान उत्पाद में सुधार करके या नये उत्पादकों के माध्यम से अच्छा बाजार प्राप्त करना सरल हो सकता है।

6. **उत्पादक के बाजार का विस्तार करना**—बाजार अनुसन्धानकर्त्ता को विभिन्न पहलुओं पर विचार करके ऐसे प्रयत्न करना चाहिए जिससे उस उत्पाद का बाजार क्षेत्र बढ़ जाये। व्यापारिक छूट, मूल्य में कमी, वस्तु के गुण में वृद्धि आदि अनेक तरीके हैं जिनके सन्दर्भ में उसे यह देखना चाहिये कि ये तरीके किस सीमा तक बाजार का विस्तार कर सकेंगे।

7. **विपणन माध्यमों का चयन करना**—उत्पाद की बिक्री में सफलता प्राप्त करने के लिये सर्वोत्तम विपणन माध्यम का चयन किया जाना चाहिए। बिक्री स्वयं की जाय या वह थोक तथा फुटकर विक्रेताओं के माध्यम से की जाय या कमीशन एजेन्टों के माध्यम से की जाय इसका पता बाजार की व्यावहारिक परिस्थितियों का अध्ययन करके लगाना चाहिये।

8. **उत्पादकों के विभिन्न उपयोगों का अध्ययन करना**—उत्पादक किसी निश्चित उपभोग के लिए बाजार में वस्तु प्रस्तुत करता है। उपभोक्ता वर्ग उस वस्तु का अन्य उपभोग भी कर सकते है। नये उपयोगों के बारे में ज्ञान प्राप्त करके उनका प्रचार करना चाहिये जिससे बिक्री में वृद्धि होती है।

9. **वितरकों, थोक विक्रेताओं एवं फुटकर व्यापारियों की कुशलता जाँचना**—समय-समय पर इन मध्यस्थों की कुशलता की जाँच करते रहना चाहिये। इनके कार्य निष्पादन के लिए कुछ सिद्धान्त एवं ढंग निश्चित कर देना चाहिये। बाजार अध्ययन के पश्चात् उनमें सुधार या परिवर्तन करना भी आवश्यक है। इससे उनकी विपणन कुशलता बढ़ जावेगी। इन लोगों से विभिन्न सुझाव प्राप्त करना चाहिए जिससे विपणन क्रिया को अधिक प्रभावशाली तथा मितव्ययी बनाया जा सके।

विपणन अनुसन्धान के ढंग

(Methods of Market Analysis)

विपणन अनुसन्धान के निम्न ढंग हैं—

1. **सर्वेक्षण ढंग** (Survey Method)-जिन व्यक्तियों, समुदायों एवं संस्थाओं से सूचनाएँ प्राप्त करनी हैं उनसे प्रश्नावली (Questionnaire) या तालिका (Schedule) की सहायता से प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके उत्तर अनुसन्धानकर्त्ता उस तालिका या प्रश्नावली में स्वयं लिख लेता है या लिखवा लेता है। इस ढंग को सर्वेक्षण ढंग कहते हैं। इस ढंग में प्रश्नों की संख्या व प्रकृति, प्रश्नों के पूछने का ढंग तथा प्रश्न पूछे जाने वाले व्यक्तियों का चुनाव सम्बन्धी समस्याओं का उचित समाधान करना पड़ता है। इन समस्याओं का समाधान करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि प्रश्न स्पष्ट हों, कम से कम हों एवं इस प्रकार के हों कि सूचना देने वाले को उत्तर देने में हिचकिचाहट न हो। यह सर्वेक्षण तीन प्रकार का हो सकता है—(i) प्रारम्भिक सर्वेक्षण (Preliminary Survey), (ii) व्यापार सर्वेक्षण (Trade Survey) एवं गहन विपणि सर्वेक्षण (Intensive Trade Survey)।

2. **अवलोकन ढंग** (Observation Method)—इस ढंग में जो भी होते हुए देखा जाता है उसको ही अभिलिखित कर लिया जाता है। इस ढंग से अधिक सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

3. **प्रयोगात्मक ढंग** (Experimental Method)—जब सूचनायें विभिन्न प्रयोग करके प्राप्त की जाती हैं तो उसे प्रयोगात्मक ढंग कहते हैं। यह प्रयोग नीति, मूल्य, पैकिंग, विज्ञापन आदि के सम्बन्ध में हो सकता है।

4. **वर्णनात्मक शोध**—वर्णनात्मक शोध का उद्देश्य किसी भी समस्या से सम्बन्धित तथ्यों को प्रकाश में लाना होता है। इस प्रकार की शोध में सिर्फ इस बात की ओर संकेत किया जाता है कि स्थिति क्या है? अथवा कहां है? लेकिन क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर शोध से इस तरीके से नहीं मिल सकता है।

5. **आकस्मिक शोध**—इस प्रकार के शोध का उद्देश्य दो दलों के बीच के सम्बन्ध को ज्ञात करना होता है। दो दलों में से एक चल स्वतन्त्र तथा दूसरा चल आश्रित होता है।

6. **पूर्वानुमान शोध**—पूर्वानुमान शोध का उद्देश्य भावी वस्तु की मांग का पूर्वानुमान लगाना होता है। इस सम्बन्ध में आश्रित चल का अनुमान लगाने के साथ-साथ स्वतन्त्र चलों का भी पूर्वानुमान परिवर्तित समय को ध्यान में रखकर करना पड़ता है।

7. **ऐतिहासिक शोध**—पहले से एकत्रित किये गये तथ्यों का विश्लेषण करना ऐतिहासिक शोध कहलाता है। इस प्रकार के शोध में उन तथ्यों एवं सूचनाओं का अध्ययन किया जाता है जो पहले से एकत्र की गई हैं।

8. **अभिप्रेरणा शोध**—अभिप्रेरणा शोध से आशय ऐसे शोध से है जिसके अन्तर्गत विभिन्न तकनीकों या विधियों के प्रयोग द्वारा उपभोक्ताओं की आदतों, रुचियों, क्रय प्रेरणाओं का आदि का पता लगाया जाता है।

7 | प्रमापीकरण एवं श्रेणीबन्धन या वर्गीकरण
(STANDARDISATION AND GRADING)

प्रश्न 18. वस्तुओं के लिए प्रमाप (Standard) और वर्ग (Grade) क्यों निर्धारित किये जाते हैं ? भारतीय मानक संस्थान के संगठन, कार्य प्रणाली और प्रगति की विवेचना कीजिए।

Why are Standards and grades fixed for marketing of various commodities ? Describe the organisation, working and progress of Indian Standard Institution.

अथवा

"विपणन के कार्य में कुछ महत्वपूर्ण समस्याओं का सम्बन्ध प्रमापीकरण से है अर्थात् विक्रय वस्तुओं का इस प्रकार का वर्गीकरण किन समान लक्षणों और विशेषताओं वाली वस्तुओं का एक स्पष्ट सामूहिक वर्ग निश्चित किया जा सके।"

विपणन की क्रिया में प्रमापीकरण के महत्व को समझने के लिए इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा भारतीय मानक संस्थान (Indian standard Institute) के कार्यों का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

अथवा

वस्तुओं के उत्पादक एवं निर्माता के लिए प्रमापीकरण एवं वर्गीकरण का क्या महत्व है ? स्वतन्त्रता के पश्चात भारत सरकार ने वस्तुओं के प्रमापीकरण के लिए क्या कदम उठाये हैं ?

What is the significance of standardisation and grading to the manufacturer of Commodities ? What steps have been taken by Government of India after independence for the standardisation of commodities ?

उत्तर—आधुनिक युग विशिष्टीकरण एवं प्रमापीकरण का युग है। औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ प्रमापीकरण का महत्व बढ़ा है। जैसे-जैसे उत्पादन के आकार में वृद्धि होती जा रही है तथा विशिष्टीकरण होता है जाता वैसे-वैसे प्रमापी-

करण का महत्व बढ़ता जाता है। उद्योगों में प्रमापीकरण का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आज उन्हीं उद्योगों का बोलबाला है जिन्होंने उत्पादन विधियों तथा उत्पादन की किस्म दोनों का ही प्रमापीकरण कर लिया हो।

एक प्रमाप (Standard) एक नाप या गुण का पद है।[1] प्रमापीकरण का अर्थ उपक्रम के विभिन्न क्षेत्रों में प्रमाप निश्चित करना एवं उनका उपयोग करना है।

एल. पी. एल्फोर्ड के शब्दों में, "प्रमापीकरण का अर्थ प्रमाप निश्चित करना है जिनके द्वारा सीमा, मात्रा, क्स्मि, मूल्य, उत्पादन या सेवा का अनुमान लगाया जाता है और सामान्य प्रयोग की भाषा में उत्पादन के सर्वोत्तम स्वरूप को मूर्त रूप दिया जाता है।"

ट्सले, क्लार्क और क्लार्क के अनुसार, "प्रमापीकरण एक सामान्य शब्द है जिसमें निर्मित वस्तुओं के मापदण्ड स्थापित किये जाते हैं, उन वस्तुओं का निरीक्षण किया जाता है जिससे यह देखा जा सके कि वे किन मापदण्डों के अनुरूप हैं, और जहाँ आवश्यक हो उन वस्तुओं को निर्धारित मापदण्डों के अनुकूल समूहों में छाँटा जाता है।" दूसरे शब्दों में प्रमापीकरण की प्रक्रिया में वस्तु के गुण, किस्म, आकार व रंग आदि के आधार पर स्थायी मापदण्ड स्थापित किये जाते हैं और फिर यह देखा जाता है कि निर्मित वस्तुयें इस प्रमाप के अनुसार ही बने। प्रमापीकरण का मुख्य उद्देश्य वस्तुओं की किस्म में एकरूपता लाना है।

वर्गीकरण या श्रेणीबन्धन (grading) प्रमापीकरण का ही भाग है। इनका आशय वस्तुओं को उनमें पायी जाने वाली सामान्य विशेषताओं के आधार पर समूह में काटना होता है। **ट्सले, क्लार्क और क्लार्क** के अनुसार श्रेणीबन्धन का अर्थ है— "वस्तुओं का ऐसी श्रेणी में बाँटना जो रूप, आकार या किस्म की दृष्टि से लगभग एक सी हों अर्थात् वस्तुओं को उन प्रमापित श्रेणियों में छाँटना जिनके वे अनुकूल हैं।"

निर्मित माल के सम्बन्ध में पहले प्रमाप निर्धारित कर लिये जाते हैं तब उत्पत्ति को उनके अनुरूप बनाया जाता है परन्तु कृषि एवं खनिज पदार्थों में प्रमाप निर्धारित नहीं किये जाते परन्तु उत्पत्ति का श्रेणीबन्धन किया जाता है। इसका कारण यह है कि खेतों या खदानों से प्राप्त होने से प्राप्त होने वाले पदार्थ एक ही किस्म के नहीं होते जैसे गेहूं, कपास, कोयला, लोहा आदि। यदि इन वस्तुओं को ऐसे ही बेचा जावे तो न तो कीमत ही अच्छी मिलेगी और न वह क्रेता की आवश्यकता की पूर्ण संतुष्टि कर सकेगा। अतः इनका श्रेणीबन्धन करना आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए, कपास को छोटे रेशे वाली, मध्यम रेशे वाली तथा लम्बे रेशे वाली भाग में, कोयले को कोकिंग, नान कोकिंग, हार्ड, सोफ्ट आदि वर्गों में बाँटा जाता है।

---

1. "A standard is a measure or designation of quality."

प्रमापीकरण व श्रेणीबन्धन का महत्व या लाभ

(अ) वस्तुओं के उत्पादक एव निर्माताओं के लिए

1. **मांग में वृद्धि**—वस्तुओं के प्रमापित हो जाने पर ग्राहकों को वस्तु की एक निश्चित किस्म तथा उसके गुण के बारे में विश्वास हो जाता है, और उनकी माँग में वृद्धि हो जाती है।

2. **विस्तृत बाजार**—प्रमापित वस्तुओं को अप्रमापित वस्तुओं की अपेक्षा अधिक मात्रा में दूर-दूर तक बेचा जा सकता है। इससे बाजार विस्तृत होता है और बाजारों के सम्बन्ध में नई-नई बातें पता लगती है।

3. **विज्ञापन की सुविधा**—प्रमापित वस्तुओं के विज्ञापन में सुविधा रहती है। विज्ञापन बड़े पैमाने पर किया जा सकता है।

4. **हानि होने पर वसूली**—प्रमापित वस्तुओं का आसानी से मूल्यांकन हो जाता है। अतः रेलवे अथवा भण्डारगृहों द्वारा माल की हानि होने पर उनसे वसूली (Claim) करने में आसानी हो जाती है।

5. **विक्रय में सुविधा**—वस्तुओं का प्रमापीकरण हो जाने पर उनको केवल नमूने (Sample) अथवा संक्षिप्त वर्णन (Description) से बेचना सम्भव हो जाता है; उनकी व्यक्तिगत जांच की आवश्यकता नहीं रहती।

6. **वायदा व्यापार में सुविधा**—प्रमापित वस्तुओं से वायदा व्यापार (Forward Trading) में सुविधा होती है। इससे क्रेता तथा विक्रेता दोनों ही वस्तुओं के किस्म तथा गुणों के विषय में निश्चित रहते है।

7. **वित्त सुविधा**—वस्तुओं के मूल्य ज्ञात रहने के कारण धन उधार लेने की सुविधा रहती है। बैंक संग्रहित वस्तुओं के बाजार मूल्य के बराबर धन केवल संग्रहालय की रसीद पर ही उधार देते है।

8. **जोखिम में कमी**—प्रमापित वस्तुओं के मूल्यों के उतार-चढ़ाव कम होते हैं अतः इन वस्तुओं के क्रय-विक्रय में जोखिम कम रहती है।

(ब) उपभोक्ता को लाभ

1. **माल खरीदने में सुविधा**—प्रमापित वस्तुओं व श्रेणीबद्ध वस्तुओं की बिक्री केवल वर्णन द्वारा ही की जा सकती है। इसके लिये नमूने की आवश्यकता नहीं होती। खरीदने के लिए आदेश तार, टेलीफोन, पत्र आदि के द्वारा दिया जा सकता है।

2. **मूल्य-तुलना**—उपभोक्ता प्रमापित व श्रेणीबद्ध वस्तुओं के बाजार-भावों का तुलनात्मक अध्ययन कर जिस दुकान से सस्ती वस्तुयें मिलें, वहाँ से खरीद सकता है।

(स) समाज को लाभ

वस्तुओं के प्रमापीकरण व श्रेणीबन्धन से समाज को भी लाभ होते हैं—(i) इन्हें वस्तुओं के हस्तांतरण में सुविधा रहती है। (ii) यातायात व्यय कम होता है। (iii) प्रमापित वस्तुओं के बारे में सूचना आसानी से दी जा सकती है।

(iv) उपभोक्ताओं की रुचियों में सुधार होता है एवं (v) उत्पादन व वितरण बड़े पैमाने पर होने से इनके व्ययों में कमी आती है, जिससे वस्तुओं के मूल्य में कमी आती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार द्वारा वस्तुओं के प्रमापीकरण के सम्बन्ध में उठाए गए कदम।

स्वतन्त्रता के पूर्व सन् 1937 में कृषि उपज (श्रेणीवन्धन एवं चिन्ह) अधिनियम (Agricultural Prodcts) कृषि पदार्थों के प्रमापीकरण के लिए पास किया, इसे एग्मार्क (Agmark) योजना कहते हैं परन्तु स्वतन्त्रता के बाद सरकार ने प्रमापीकरण के लिये कई कदम उठाए हैं, उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं।

1. निर्यात को बढ़ावा देने, गुण (qualiti) सम्बन्धी शिकायतें कम करने, विदेशी क्रेता को माल के प्रमाप के अनुसार होने व निर्यात से पहले उसका निरीक्षण होने का विश्वास दिलाने आदि के उद्देश्य से सन् 1963 में अनिवार्य गुण-नियन्त्रण एवं निरीक्षण अधिनियम (The Export Quality Control and Inspection Act) बनाया गया।

अनिवार्य गुण नियन्त्रण योजना के अन्तर्गत वे वस्तुयें जिनका निर्यात होता है, प्रमापित वर्गों के आधार पर उनका अनिवार्य रूप से वर्गीकरण करना होता है। वर्गीकरण के बाद उन वस्तुओं का निरीक्षण होता है और एक प्रमाण-पत्र (Certificate) लेना होता है। बिना इस प्रमाण-पत्र के उन वस्तुओं का निर्यात अवैधानिक होता है। इन शर्तों को तोड़ने वाले के लिए प्रथम अपराध पर 5,000 रुपये जुर्माने या दो वर्ष की कैद या दोनों तरह की सजा दी जा सकती है। दुबारा अपराध पर कड़ी सजा दी जा सकती है।

2. निर्मित पदार्थों के प्रमापीकरण के लिए भारतीय मानक संस्थान की स्थापना की गई।

भारतीय मानक संस्थान

सितम्बर 1947 में भारतीय मानक संस्थान की स्थापना की गई। उत्पादकों की बिक्री की वस्तुओं, सामग्रियों आदि से सम्बन्धित मानकों का निर्धारण और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सामान्य रूप से अनेक अधिग्रहण को बढ़ावा देना, सामग्रियों, उत्पादों में प्रयुक्त साधनों, प्रक्रमों और पद्धतियों की समुन्नति के लिए उत्पादकों और उपभोक्ताओं के प्रयत्नों में समन्वय स्थापित करना, उत्पादकों, बिक्री की वस्तुओं इत्यादि पर प्रमापन की मुहर लगाने की व्यवस्था करना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है।

संगठन-ढाँचा—भारतीय मानक संस्था का एक स्वायत्त निकाय है और इस पर सर्वोपरि नियंत्रण महापरिषद का है। भारत सरकार के अद्यौगिक विकास तथा आन्तरिक व्यापार के मन्त्री इसके पदेन सभापति हैं।

महापरिषद में उद्योग, केन्द्र और राज्य सरकारों, वैज्ञानिकों तथा तकनीकी संगठनों, चंदादायी सदस्यों और संस्था की विभाग-परिषदों के प्रतिनिधि होते हैं।

भारतीय मानक क्या है ?—भारतीय मानक वे छपे प्रलेख हैं, जिनमें निर्धारित किस्म का माल तैयार करने के नियम में आवश्यक अपेक्षायें—सामग्री, संरचना, माप, कार्य-प्रदत्ता, फिनिश, परीक्षण पद्धतियाँ इत्यादि दी रहती हैं। किसी भी तैयार माल का मानक 'मानक, किस्म' का होने के लिये जरूरी है कि वह उपर्युक्त अपेक्षाओं के अनुरूप हों।

भारतीय मानकों के निर्धारण के लिये बहुत बड़ी संस्था में तकनीकी समितियाँ होती हैं। इनमें विभिन्न हितों, जैसे—उत्पादक, उपभोक्ताओं, शिल्पियों और सरकार तथा निजी दोनों प्रकार के अनुसंधान और परीक्षण संगठनों के विशेषज्ञ प्रतिनिधि रूप में लिये जाते हैं। ये अवैतनिक काम करते हैं तथा एक राय से राष्ट्रीय मानक तैयार करते हैं।

ये मानक कैसे होते हैं ?—कोई भी अधिकृत निकाय, व्यापार अथवा औद्योगिक संघ, सरकारी विभाग या चन्दा देने वाले सदस्य मानक स्थापित करने का प्रस्ताव भेज सकता है। आवश्यक जाँच-पड़ताल के बाद यदि उसकी जरूरत समझी जाती है तो वह विषय किसी वर्तमान तकनीकी समिति को सौंप दिया जाता है।

यह समिति एक मसौदा तैयार करती है जो देश और विदेश में संबद्ध हितों को सम्मतियों के लिये भेजा जाता है। सम्मतियों पर विचार करके, उनके अनुसार आवश्यक परिवर्तन करके उसे अवग्रहण के लिये तत्सम्बन्धी विभाग-परिषद के पास भेज दिया जाता है।

चंदादायी सदस्य—संस्था के कार्यों और उद्देश्यों में रुचि रखने वाले विभिन्न संगठन तथा व्यक्ति, जो भी मानवीकरण से प्राप्त सुविधाओं का लाभ उठाना चाहते हैं, संस्था के किसी भी कोटि के सदस्य बन सकते हैं, संरक्षक बन सकते हैं, उसके लिये चन्दा होता है।

शाखायें एवं आय-व्यय—नई दिल्ली स्थित मुख्यालय के अतिरिक्त संस्था ने देश भर में आठ शाखायें खोल रखी हैं। दो नई शाखायें–चंडीगढ़ और भुवनेश्वर में इसी वर्ष खुलने वाली हैं। कुल मिलाकर 1,300 कर्मचारी हैं, जिनमें 250 वैज्ञानिक तथा इंजीनियर हैं।

मानक तैयार करने में ये सभी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रयोगशालायें तथा प्रदर्शिनी-भवन—दिल्ली स्थित मुख्यालय में प्रदर्शिनी-भवन सबके लिये खुला है। वहाँ संस्था की आज तक की प्रगति और कार्यों की जानकारी का प्रबन्ध है। सम्बन्धित विषयो में परीक्षण करने हेतु प्रयोगशालाएँ हैं। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के कार्यालयों में भी प्रयोगशालायें है।

प्रशिक्षण एवं प्रचार—संस्था मानक इंजीनियरी में प्रशिक्षण-कार्य भी चलाती है जिसमें देश-विदेश के (एशिया-अफ्रीका) प्रतिनिधि भाग लेते रहते हैं। साथ ही उत्पादन एवं क्रय कार्यक्रमों में भारतीय मानकों की प्रसिद्धि के लिये निर्माताओं ने उपभोक्ताओं के लाभ के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की योजनायें चलायी हैं।

ये प्रयोगशालायें भारतीय मानक विशिष्टियों और इनके संशोधन से सम्बन्धित अन्वेषण कार्य भी करती हैं। विभिन्न तकनीकी समितियों को नयी, सरल कम खर्च और कम समय वाली विश्लेषण-तकनीकी के विषय में सुझाव देना भी इनका कार्य है।

भारतीय मानक संस्था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत के व्यापार को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से मानकीकरण के क्षेत्र में संलग्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों—आई० एस० ओ० तथा आई० ई० सी० से निकटतम सहयोग रखती है। इसे राष्ट्रमंडल की भी सदस्यता प्राप्त है।

विभिन्न वस्तुओं के प्रमापीकरण के लिए निम्न कानून भी बनाये गये हैं—

(i) फल-पदार्थ आदेश 1946.
(Fruit Product Order 1946)

(ii) वेजीटेविल आयल पदार्थ नियंत्रण आदेश 1947.
(Vegetable Oil Product Order 1947)

(iii) खाद्य मिलावट विरोध अधिनियम 1954
(Prevention of Food Adulteration Act 1954)

8 विपणन की जोखिमें

(MARKET RISKS)

प्रश्न 19. विपणन की जोखिमें क्या हैं ? वे कैसे उत्पन्न होती हैं ? इस प्रकार की जोखिमों को न्यूनतम करने तथा उसका निवारण करने के लिए क्या किया जा सकता है ?

What are Market risks and how do they arise ? How can such risks be minimised and eliminated ?

उत्तर—

विपणन जोखिम का अर्थ एवं प्रकार
(Meaning and Kinds of Market Risks)

लागत, हानि या क्षति के सम्बन्ध में अनिश्चितता को ही जोखिम कहते हैं। जिस प्रकार से मृत्यु के बारे में पता नहीं होता है कि मृत्यु कब, किस स्थान पर व किस प्रकार होगी, ठीक उसी प्रकार व्यापारिक परिस्थितियों के बारे में भी पता नहीं होता कि वे कब, किस प्रकार और कहां बदलेंगी। **व्यापारिक हानि की सम्भावना जो विभिन्न प्रकार की "अनिश्चितताओं से उत्पन्न हो तथा जिसका प्रभाव उन घटकों पर पड़े जो विपणन क्रियाओं से सम्बन्धित हों तो ऐसी ऐसी सम्भावना को विपणन जोखिम कहते हैं।"** यह सम्भावना विभिन्न कारण जैसे—आग, चोरी, बाढ़, फैशन परिवर्तन, रुचि परिवर्तन, माँग व पूर्ति में असन्तुलन आदि से हो सकती है।

आज व्यावसायिक आवश्यकताओं पर काबू पाना तथा जोखिम को न्यूनतम करना प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य समझा जाता है। प्राचीन समय में किसी व्यवसाय की असफलता किसी एक व्यक्ति या उसके परिवार के सदस्यों पर ही आपत्ति लाती थी परन्तु एक आधुनिक बड़े पैमाने की असफलता का प्रभाव आज अनेक व्यक्तियों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं, विनियोजकों, व्यापारियों एवं सारे समाज तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। अत: यह नितान्त आवश्यक है कि व्यावसायिक जोखिमों की रोकथाम की जाय।

व्यवसाय में जोखिमें प्राय: (i) **प्राकृतिक कारणों** (Natural Risks) से जैसे वर्षा, तूफान, भूचाल, बाढ़ आदि। (ii) **मानवीय कारणों** (Human Risks) से जैसे कर्मचारियों की अकुशलता, या बेईमानी से हानि, ग्राहक द्वारा माल खरीदने के पश्चात् भुगतान न किये जाने के कारण हानि, सरकारी कार्यवाहियों जैसे कर, कीमत नियंत्रण

आदि तथा (iii) **आर्थिक कारणों** (Economic Risks) जैसे समय जोखिम, स्थान जोखिम, प्रतियोगिता जोखिम आदि के कारण उत्पन्न होती हैं। व्यवसाय की जोखिमें मुख्यतः दूषित संगठन एवं प्रबन्ध, माल के उत्पादन तथा विपणन से सम्बन्धित होती हैं। इन जोखिमों की रोकथाम करने पर ही किसी व्यवसाय की सफलता निर्भर करती है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से व्यावसायिक जोखिमों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

1. उत्पाद से सम्बन्धित जोखिमें (Risks relating to Product)
2. उत्पादन सम्बन्धी जोखिमें (Risks relating to Production)
3. आर्थिक प्रणाली की अनिश्चितता से सम्बन्धित जोखिमें (Risks relating to the uncertanties of the Economic System)
4. संग्रहण तथा परिवहन से सम्बन्धित जोखिमें (Risks relating to Storage and Transportation)।

उत्पाद से सम्बन्धित जोखिमें
(Risks ralating to Product)

उत्पाद से सम्बन्धित जोखिम से आशय स्वयं वस्तु में ऐसे आधारभूत दोष होने से जिसके कारण उसकी बिक्री में रुकावट आये उसकी पर्याप्त माँग न हो।

रोकथाम की विधि—उत्पाद सम्बन्धी जोखिमों को उत्पाद नियोजन एवं विश्लेषण तथा विपणि अनुसन्धान के द्वारा दूर किया जा सकता है। (1) वस्तु का निर्माण उपभोक्ताओं की आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार हो। (2) वस्तु को उपयोगी एवं आकर्षक बनाया जाय तथा उसका पैकिंग, डिजाइनिंग तथा ब्रैन्डिग आदि विक्रय योग्य बनाया जाये। (3) विपणि अनुसन्धान द्वारा बाजार की माँग का अनुमान लगाया जाय। (4) विक्रय संवर्द्धन के प्रयास किये जायें।

उत्पादन सम्बन्धी जोखिमें
(Risks Relting to Production)

उत्पादन सम्बन्धी जोखिम से आशय उत्पादन की किस्म में गिरावट या मूल्य में वृद्धि से है। एक नियत प्रमाप की वस्तु का उत्पादन करने के लिए यह आवश्यक है कि कच्चा माल, संयन्त्र एवं सामग्री, श्रमिक, उत्पादन विधि आदि सभी श्रेष्ठतम एवं प्रमाप के अनुसार हों। ऐसा न होने पर उत्पाद की किस्म में गिरावट आना स्वाभाविक है। सामग्री के मूल्य में वृद्धि से भी उत्पादन में रुकावट आती है। यही नहीं, उपक्रम की विक्रय व्यवस्था सुचारु रूप से संगठित नहीं होने पर उपयुक्त उत्पाद के बावजूद भी उपक्रम को असफलता का सामना करना पड़ता है।

रोकथाम की विधि—उत्पादन सम्बन्धी जोखिमों की रोकथाम के लिये निम्न उपाय काम में लाना चाहिये : (1) वैज्ञानिक ढंग पर सामग्री खरीदी जाय, (2) उत्पादन विधि, श्रमिक, संयन्त्र आदि श्रेष्ठतम एवं प्रमाप के अनुसार हो, (3) भण्डर

प्रवन्ध की उपयुक्त व्यवस्था हो एवं (4) वितरण प्रणाली सुचारु रूप से संगठित की जावे । संक्षेप में, उत्पादन नियोजन एवं नियन्त्रण के द्वारा इन जोखिमों की रोकथाम की जा सकती है ।

आर्थिक प्रणाली की अनिश्चितता से सम्बन्धित जोखिमें
(Risks Relating to the Unceratnties of the Economic System)

आर्थिक जीवन की अनिश्चिततायें एक उपक्रम के लिए अनेक जोखिमें उत्पन्न करती हैं । आर्थिक जीवन पर प्रभाव तीन प्रकार की शक्तियों या प्रभावों का पड़ता है । अतः उन पर नियन्त्रण करके इन जोखिमों की रोकथाम की जा सकती है—

1. **ऋतुकालीन प्रभाव** (Seasonal Influences)–विभिन्न ऋतुओं तथा उनसे सम्बन्धित रीति-रिवाजों का उत्पादों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है । ऋतुकालीन प्रभावों के अध्ययन के आधार पर उत्पादन कार्यक्रम एवं विक्रय प्रयत्नों का आयोजन किया जाता है जैसे जाड़ों मे ऊनी कपड़ों की माँग अधिक होती है तथा त्यौहारों के अवसरों पर विशिष्ट पदार्थ के उत्पादन एवं विक्रय की योजना बना लेता है । साथ ही विपरीत ऋतु के उत्पादों (Off-Season Products) के नये उपयोगों का पता लगाकर तथा उनके मूल्य में कमी करके या विक्रय संवर्द्धन के अन्य प्रयासों द्वारा ऋतुकालीन प्रभावों को सीमित करने का प्रयत्न किया जाता है ।

2. **दीर्घकालीन प्रवृत्तियाँ** (Long-term Trends)—दीर्घकालीन प्रवृत्तियाँ अर्थ-व्यवस्था को धीरे-धीरे परन्तु आधारभूत रूप में परिवर्तित कर देते हैं । जनसंख्या में परिवर्तन, तकनीकी विकास, प्राकृतिक साधनों की स्थिति एवं उपयोग, सामाजिक संस्थायें, रीति एवं रिवाज आदि दीर्घकालीन प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं । इन दीर्घकालीन प्रवृत्तियों का अध्ययन करके (1) उत्पाद को व्यवस्थित किया जा सकता है । (2) उत्पाद में आवश्यक परिवर्तन करके उसे नवीन परिस्थितियों के अनुसार बनाया जा सकता है । (3) उत्पाद के नये प्रयोगों का पता लगाया जा सकता है । (4) उत्पाद के उचित मूल्य को ज्ञात किया जा सकता है । (5) ठीक समय पर उत्पादन किया जा सकता है । (6) विक्रय प्रयासों को पुनर्गठित किया जा सकता है । संक्षेप में दीर्घकालीन प्रवृत्तियों का अध्ययन कर व्यापारिक असफलताओं को बहुत हद तक दूर किया जा सकता है ।

3. **व्यापार चक्र** (Business Cycle)—व्यापारिक जगत में इन उतार-चढ़ावों को जिनमें तेजी के बाद मन्दी और मन्दी के बाद तेजी आती है, व्यापार चक्र कहते हैं । व्यापार चक्र की अवधि ऋतुकालीन अवधि से अधिक होती है तथा दीर्घकालीन प्रवृत्तियों से कम अर्थात् एक व्यापार चक्र में अनेक परिवर्तन आते हैं तथा एक दीर्घकालीन प्रवृत्ति में अनेक व्यापार चक्र आते हैं । सामान्यतः व्यापार चक्र अपने निश्चित समय पर आते हैं तथा निश्चित समय तक रहते हैं । साधारणतया व्यापार चक्र का जीवन

काल 7 से 10 वर्ष तक का होता है परन्तु युद्ध आदि के कारण यह अवधि निश्चित नहीं रह पाती है। इन व्यापार-चक्रों के अतिरिक्त, अलग-अलग उद्योगों के लिये अलग-अलग विशिष्ट कालचक्र (Specfic Cycle) भी आते हैं जिनसे व्यवसायियों की कठिनाइयाँ और भी बढ़ जाती हैं।

रोकथाम की विधि-आर्थिक प्रणाली की अनिश्चितता से सम्बन्धित जोखिमों पर नियन्त्रण पाना बहुत कठिन है किन्तु फिर भी उनकी रोकथाम के लिये निम्न उपाय किये जा सकते हैं—(1) व्यापारिक मापदण्ड (Business Barometers) या आर्थिक निर्देशक (Economic Indicators) तैयार करना–पिछली आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करके भविष्य की आर्थिक क्रियाओं के अनुमान को व्यापारिक मापदण्ड या आर्थिक निर्देशन कहते हैं। इन निर्देशकों के आधार पर व्यावहारिक आर्थिक नीति बनाई जाती है जिससे आर्थिक प्रणाली की अनिश्चितता सम्बन्धी जोखिमों की रोक-थाम की जा सके। (2) विक्रय सम्बन्धी पूर्वानुमान लगाने से उत्पादन के पश्चात् ठीक समय एवं ठीक मूल्य पर माल के न बिक सकने की एक बड़ी जोखिम को सीमित किया जा सकता है। (3) सामग्री, साज-सामान, रोकड़, उपभोक्ता सामान के कोष बनाने से भी आकस्मिक जोखिमों से बचा जा सकता है। (4) ऋतुकालीन प्रभावों के अध्ययन से भी अनेक जोखिमों को कम किया जा सकता है।

संग्रहण तथा परिवहन से सम्बन्धित जोखिमें
(Risks Relating to Storage and Transportation)

भण्डारगृह में रखी कच्ची सामग्री एवं स्टाक-कक्ष में रखे निर्मित माल को पर्याप्त सावधानी न रखने से आग लगने, विस्फोट होने आदि का डर रहता है और इससे उनको क्षति पहुँच सकती है। परिवहन के समय भी अनेक प्रकार की जोखिमें होती हैं जैसे जहाज का डूब जाना, दुर्घटनायें होना आदि।

रोकथाम की विधि—संग्रहण तथा परिवहन से सम्बन्धित जोखिमों से छुट-कारा पाने के उपाय हैं—(1) इन जोखिमों को बीमा कम्पनी को सौंपकर उपक्रम उससे मुक्त हो सकता है। अग्नि बीमा, समुद्री बीमा, चोरी बीमा आदि कराने से जोखिमों से सुरक्षा हो जाती है। (2) उचित भण्डार व्यवस्था की जाए। (3) जलने वाली वस्तुओं को समुचित ढंग से भण्डारगृह में रखा जाए एवं प्रयोग किया जाए तथा अग्निशामकों की उचित व्यवस्था की जाए।

9 स्कन्ध विनिमय

(STOCK EXCHANGE)

प्रश्न 20. "स्कन्ध विनिमय केवल व्यापारिक सौदे की मुख्य नाट्यशाला ही नहीं है, वे बेरोमीटर भी हैं जो व्यापार रूपी वायुमंडल की दशाओं को दर्शाते हैं।" इसकी विवेचना करिये और एक सुसंगठित प्रतिभूति बाजार के आर्थिक कार्यों को बताइये।

"Stock exchanges are not merely the chief theatres of business transactions. they are also the barometers which indicate the atmospere of business." Dsicuss and also give the economic functions of an organised security market.

अथवा

स्कंध विनिमय क्या है ? उसकी सेवाएँ एवं दोष बतलाइए।

What is a Stock Exchange ? Discuss its services and drawbacks.

अथवा

"स्कंध विनिमय एक देश की समृद्धि का मापक यन्त्र है।" विवेचना कीजिए।

"Stock Exchange is the barometer of a country's prosperity" Discuss.

उत्तर

स्कन्ध विनिमय
(Stock Exchange)

'स्टॉक एक्सचेन्ज' का हिन्दी अनुवाद 'स्कन्ध विनिमय' अथवा 'स्कन्ध विपणि' है। इसे विभिन्न देशों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, परन्तु कार्य एवं अर्थ, लगभग सभी के एक समान हैं। भारत में उन्हें 'स्कन्ध विपणि', 'शेयर बाजार' 'सट्टा बाजार' आदि नामों से पुकारा जाता है। इंगलैंड, अमेरिका व कनाडा में स्कन्ध विनिमय को 'Stock Exchange' तथा अन्य यूरोपीय देशों में इसे 'Bourse' कहते हैं।

स्कन्ध विनिमय का अर्थ
(Meaning of Stock Exchange)

स्कन्ध विनिमय से हमारा अभिप्राय एक ऐसे स्थायी सुसंगठित बाजार से है जहाँ संयुक्त स्कन्ध वाली कम्पनियों के अंश स्कन्ध (Stock) व ऋण-पत्र (Debentures) तथा जनोपयोगी संस्थाओं व सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय होता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह एक संस्था है जहाँ पर दलाल और आढ़तियों के द्वारा प्रतिभूतियाँ (Securities) बेची जाती हैं और उन व्यक्तियों से दलाली और आढ़त लेते हैं जिनके लिए वे क्रय-विक्रय करते हैं। ये अढ़ातिया तथा दलाल उस संस्था के सदस्य होते हैं तथा इनका विक्रय करते हैं। स्कन्ध विपणि को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिभूति विपणि भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें बिकने वाली प्रतिभूतियाँ संसार भर में अपना मूल्य रखती है।

स्कन्ध विनिमय विपणि की कुछ प्रमुख परिभाषायें इस प्रकार है—

1. **हार्टले विदर्स** (Hartly Withers) के अनुसार, "स्कन्ध विपणि एक बड़े भण्डारगृह की तरह है, जहाँ विभिन्न प्रतिभूतियों का मूल्य पर क्रय-विक्रय किया जाता है।"

2. **डॉ. के. एल. गर्ग** (Dr. K. L. Garg) के अनुसार, "स्कन्ध विनिमय विपणि वह मण्डी है जहाँ विभिन्न प्रकार की औद्योगिक अथवा आर्थिक प्रतिभूतियों, जैसे—संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी के अंशों और ऋण-पत्रों, राजकीय पत्रों, म्युनिसिपिल और अन्य संस्थाओं के ऋण-पत्रों और बन्धकों आदि का क्रय-विक्रय होता है।"

3. **एक अन्य विद्वान** के अनुसार, "स्कन्ध विनिमय-विपणि विश्व का भण्डारगृह है, वह राजनीति तथा अर्थव्यवस्था की नाड़ी है तथा किसी राष्ट्र की समृद्धि एवं दरिद्रता का मापक यन्त्र है।"

4. **प्रतिभूति प्रसंविदा (निगमन) अधिनियम** 1956 के अनुसार, "स्कन्ध विनिमय का आशय व्यक्तियों की समामेलित अथवा असमामेलित संस्था से है जिसका संगठन प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय या उनमें व्यवहार करने के कार्य में सहायता करने और उसे नियमित अथवा नियन्त्रित करने के उद्देश्य से किया गया हो।"

प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय कोई नवीन चीज नहीं है। यह कार्य कितनी ही शताब्दियों से होता आ रहा है, किन्तु पहले ऐसे क्रय-विक्रय के लिए कोई निश्चित स्थान नहीं था। उस समय प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय ऐसे स्थानों पर होता था, जहाँ पर कुछ व्यक्ति मनोरंजन एवं विश्राम के लिए आया करते थे। ये लोग क्रेता तथा विक्रेता के मध्य में कुछ कमीशन लेकर दलाल के समान कार्य करते थे। संयुक्त स्कन्ध वाली कम्पनियों के साथ-साथ प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय भी बढ़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि इनका क्रय-विक्रय करने वाले व्यक्तियों ने अपने-अपने संघ

(Association) स्थापित किये और उन्हें सुचारु रूप से चलाने के लिए व्यापार सम्बन्धी कुछ नियम भी बनाये। धीरे-धीरे स्कन्ध विनिमय के बाजार का क्षेत्र भी बढ़ा और इसने एक सुसंगठित रूप धारण कर लिया। आजकल प्रत्येक प्रगतिशील देश में ऐसी संस्थायें स्थापित हो गई हैं।

स्कन्ध विनिमय का महत्व
(Importnce of Stock Exchange)

स्कन्ध विनिमय-विपणि एक देश की समृद्धि का मापक यन्त्र है। इसके द्वारा किसी राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक एवं राजनीतिक स्थिति का पता लगता है। इसी कारण जर्मनी के एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ **बिस्मार्क** ने कहा था कि—

"यदि कोई व्यक्ति इंगलैंड की आर्थिक एवं राजनीतिक दशा को जानना चाहता है, तो उसे हाउस ऑफ कामन्स का अध्ययन नहीं करना चाहिए बल्कि वहाँ के स्कन्ध-विनिमय-विपणि का अध्ययन करना चाहिए।"

इन शब्दों से स्कन्ध-विनिमय-विपणि का महत्व स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में, यह एक ऐसा मूल्यवान दर्पण है जिसमें कभी भी राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक औद्योगिक तथा राजनीतिक स्थिति प्रतिबिम्बित हो जाती है। **प्रो. मार्शल** (Marshall) ने ठीक ही लिखा है, "स्कन्ध विपणियाँ केवल व्यापारिक व्यवहारों की प्रमुख दर्शनकर्त्ता ही नहीं हैं बलिक वे मापदण्ड हैं जो व्यापारिक वातावरण की सामान्य दशाओं को दर्शाती हैं।" **डब्ल्यू टी. सी. किंग** ने स्कन्ध-विनिमय-विपणि के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, 'स्कन्ध-विनिमय-विपणि के अभाव में समाज की बचतों, जोकि आर्थिक उन्नति एवं उत्पादन क्षमता की प्रतीक हैं, का वर्तमान की तुलना में अधिक अपूर्ण एवं वर्बादीपूर्ण उपयोग होगा।"

स्कन्ध विनिमय के लाभ
(Advantages of Stock Exchanges)

1. **पूँजी का सदुपयोग**—स्कन्ध-विपणियों द्वारा विनियोजक (Investors) अपनी बचाई हुई पूँजी का सदुपयोग कर सकते हैं। अपनी उस पूँजी को जिसे कि उन्होंने काफी परिश्रम के बाद में बचाया है, उत्पादन कार्य में लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे अलाभप्रद उद्योगों में से अपनी पूँजी को निकालकर, लाभप्रद उद्योगों में लगा सकते हैं। ऐसा करने से अवश्य ही लाभ अधिक होगा।

2. **स्वतन्त्र बाजार की प्राप्ति**—इसके द्वारा विभिन्न प्रतिभूतियों के लिए एक स्वतन्त्र बाजार मिल जाता है। जो व्यक्ति अपने रुपयों को उद्योगों में लगाना चाहते हैं, वे इन बाजारों में अपनी पूँजी के द्वारा अंशों (Shares) और प्रतिभूतियों को खरीद सकते हैं। उनको इस बात की स्वतन्त्रता होती है कि यदि वे चाहें तो फिर से उन अंशों व प्रतिभूतियों को बेचकर रुपया प्राप्त कर सकते हैं।

3. **मध्यस्थ**—स्कन्ध-विपणि विनियोग एवं कम्पनी के बीच मध्यस्थ का कार्य करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस संस्था के दलालों के द्वारा नई-नई कम्पनियों के अंश तथा प्रतिभूतियों को बाजार में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया जाता है। कभी-कभी ये दलाल अभिगोपन (Underwriting) का कार्य भी करते हैं और नवनिर्मित कम्पनियों को इनके द्वारा पूँजी प्राप्त होती है।

4. **प्रतिभूतियों को विपणीय** (Marketing) **सुविधा प्रदान करना**—स्कन्ध विनिमय विपणि के द्वारा पूँजी की गतिशीलता बढ़ती है क्योंकि वह प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय के लिए एक निरन्तर खुला बाजार प्रस्तुत करती है। कोई भी विनियोजक (Investor) जब भी चाहे तुरन्त ही इन बाजारों में अपनी प्रतिभूतियों को बेचकर धन प्राप्त कर सकता है। इस सुविधा के कारण पूँजी की गतिशीलता में वृद्धि होती है तथा उद्योग-धन्धों का विकास होता है क्योंकि इनके द्वारा पूँजी सुगमता से उपलब्ध हो जाती है। **डॉ. पी. जे. थॉमस** के शब्दों में, "यह एक निश्चित समय में उद्योगों के लिए पर्याप्त वित्त (Finance) उपलब्ध करता है तथा जब उद्योग अनार्थिक अथवा घटते परिणाम प्रदर्शित करता है, पूँजी के प्रवाह (Flow) को रोकता है।"

5. **आर्थिक सलाह**—स्कन्ध-विनिमय-विपणियों द्वारा विनियोजकों को विभिन्न उद्योगों की आर्थिक स्थिति का ठीक-ठीक पता चल जाता है। अतः वह ऐसे उद्योगों की प्रतिभूतियों में अपने धन का सदुपयोग करना चाहेगा जोकि वर्तमान तथा भविष्य की दृष्टि से लाभप्रद है। इस प्रकार उन्नतिशील उद्योगों को पूँजी आसानी से प्राप्त हो जाती है।

6. **प्रतिभूतियों का सूचीयन** (Listing)—स्कन्ध-विपणि इस सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण सेवायें प्रस्तुत करती हैं। प्रतिभूतियों का व्यापार करने से पूर्व प्रत्येक व्यापारिक संस्था अथवा कम्पनी को पहले स्कन्ध-विपणि-समिति (Stock Exchange Committee) से अनुमति लेनी पड़ती है। बिना अनुमति के कोई भी संस्था प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय नहीं कर सकती है। इसका लाभ यह है कि विनियोजकों को यह लाभ हो जाता है कि इन सूचीयन प्रतिभूतियों में विनियोग सुरक्षित रहता है। प्रतिभूतियों के सूचीयन के सम्बन्ध में प्रत्येक स्कन्ध-विपणि के अलग-अलग नियम होते हैं। इनकी पूर्ति के अभाव में किसी भी कम्पनी और संस्था की प्रतिभूतियों को सूची में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। प्रतिभूतियों के सूचीयन से यह पता लगता है कि वह एक सुदृढ़ संस्था है। ऐसा होने से प्रतिभूतियों का निर्गमन (Issue) सर्वथा सुलभ हो जाता है। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रहे कि सूचीयन का तात्पर्य यह नहीं है कि उस संस्था की लाभार्जन शक्ति अच्छी है। इसमें तो केवल किसी उद्योग के निर्माण व विकास सम्बन्धी बातों का ज्ञान होता है।

7. **मूल्य-सूची** (Quotation List) **का प्रकाशन**—स्कन्ध विपणियों में मूल्य-सूची विशेषज्ञों द्वारा तैयार की जाती है और इस सूची को प्रकाशित कर दिया जाता है। इससे विनियोजकों को उनकी प्रतिभूतियों के मूल्य के विषय में समय-समय पर जानकारी प्राप्त होती रहती है। अतः वह इस जानकारी के आधार पर अपनी पूँजी को अलाभकारी क्षेत्रों से निकाल कर दूसरे लाभकारी स्थानों पर लगा सकता है।

8. **विदेशी विनियोग की सुविधा**—इसके द्वारा अपने ही देश में नहीं वरन् अन्य देशों में भी सरलता से पूँजी का विनियोग किया जा सकता है।

9. **झूठी प्रतिभूतियों से सुरक्षा**—स्कन्ध-विनिमय-विपणियों के द्वारा गलत अथवा झूठी प्रतिभूतियों का चलन बहुत कठिन है क्योंकि इनके द्वारा बनाये नियम, उपनियम व शर्तें बहुत कठिन होती हैं।

10. **आयात-निर्यात में सुविधा**—स्कन्ध-विपणियों द्वारा आयात व निर्यात बहुत सुगम हो जाता है क्योंकि उनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान बिना सोने व चाँदी के वास्तविक आयात-निर्यात से हो जाते हैं।

11. **मूल्यों के उतार-चढ़ाव में कमी**—एक स्कन्ध विपणि में समस्त कार्य व्यवस्थित ढंग से चलता है; इसलिए प्रतिभूतियों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव कम होकर उनका मूल्य नियमित हो जाता है।

12. **धन के एकत्रीकरण की सुविधा**—स्कन्ध विनिमय विपणि के कारण धन इकट्ठा करने वाली कम्पनियों को विनियोक्ताओं (Investors) के पास व्यक्तिगत रूप से नहीं जाना पड़ता है।

13. **औद्योगिक विकास को प्रेरणा**—स्कन्ध विनिमय विपणि के अभाव में किसी भी देश का व्यापारिक तथा औद्योगिक जीवन आज की प्रगति को नहीं पहुँच सकता था क्योंकि स्कन्ध विनिमय देश के आर्थिक औद्योगिक विकास के लिए पूँजी की व्यवस्था कर देश की आर्थिक समृद्धि में सहायता देते हैं।

14. **कम्पनियों की साख में वृद्धि**—स्कन्ध-विनिमय विपणि से कम्पनियों की साख में वृद्धि होती है। विनियोक्ता कम्पनी के ऊपर पूरा-पूरा भरोसा करते हैं।

15. **विनियोक्ताओं को शिक्षित करना**—अधिकांश स्कन्ध विनिमय जन-सम्पर्क विभाग की स्थापना करके जन-साधारण में प्रमण्डलीय विनिमय (Company Investment) प्रथा का प्रचार करते हैं। नये निर्गमनों के सम्बन्ध में समीक्षा प्रकाशित करते हैं जिससे विनियोक्ता को उनके बारे में विशेषज्ञों के मत ज्ञात हो जाते हैं।

स्कन्ध विनिमय के दोष
(Disadvantages of Stock Exchanges)

स्कन्ध विपणियों का कोई विशेष दोष नहीं है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनके द्वारा सट्टे बाजी (Speculation) को प्रोत्साहन मिलता है। उ.

सट्टेबाजों के लिये तो ये संस्थाएँ लाभप्रद हैं जिन्होंने इनके द्वारा पर्याप्त धन कमा लिया है, किन्तु जिन्होंने अपने धन को खो दिया है, उनके लिए ये बड़ी हानिकारक हैं : तात्पर्य यह है कि यदि सट्टा स्वस्थ रूप से रहे तब तो ठीक है अन्यथा यह बहुत हानिकारक सिद्ध होता है। वास्तव में, यदि अस्वस्थ एवं हानिप्रद सट्टेबाजी को समाप्त कर दिया जाये तो ये संस्थायें बहुत लाभप्रद हैं।

प्रश्न 21. भारतवर्ष में किसी स्कन्ध विनिमय के संगठन एवं कार्य-प्रणाली का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

Briefly describe the organisation and working of Stock Exchange in India.

अथवा

बम्बई स्कन्ध विनिमय विपणि की कार्यविधि और संगठन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

Critically discuss the working and organ'sation of Bombay Stock Exchange.

उत्तर—भारत वर्ष में बम्बई स्कन्ध विपणि (Bombay Stock Exchange) सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण हैं। इसकी स्थापना सन् 1887 में हुई। इसका पुराना नाम 'दी बॉम्बे नेटिव शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर्स एसोशियेशन, (The Bombay Native Share and Stock Brokers Association) था। इस विपणि का महत्व केवल राष्ट्रीय ही नहीं है वरन् अन्तर्राष्ट्रीय भी है। सन् 1889 ई. से पूर्व भी बम्बई के अन्दर प्रतिभूतियों का व्यापार होता था, किन्तु उसका कोई नियम या संविधान नहीं था।

सदस्यता (Memlership)—महाराष्ट्र-स्कन्ध-विपणि के परिनियमों के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो कि भारतीय नागरिक हो, जिसकी न्यूनतम उम्र 21 वर्ष हो और जो प्रतिष्ठित तथा आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ हो, सदस्य बन सकता है। यह सदस्य दलाल के रूप में ही कार्य कर सकता है। इसका मुख्य कार्य प्रतिभूतियों में व्यवहार करना होता है। प्रत्येक नये सदस्य से प्रवेश शुल्क लिया जाता है तथा उसे एक सदस्यता-पत्र खरीदना पड़ता है। इस पर दो व्यक्तियों की सिफारिशें होनी चाहिये जो कि कम से कम पाँच वर्षों से विपणि के सदस्य हों। प्रवेश के साथ में प्रत्येक नये सदस्य को 20 हजार रुपये की प्रतिभूति जमा (Security deposit) देनी होती है। सामान्य रूप से कोई भी सदस्य विपणि के प्रांगण (Floor) में उस समय तक व्यवहार नहीं कर सकता है जब तक कि उसे कम से कम दो वर्ष का अनुभव न हो गया हो।

इन स्कन्ध-विपणियों में केवल इनके सदस्य तथा अधिकृत लिपिक (Authorised Clerks) ही व्यवहार कर सकते हैं। प्रत्येक सदस्य को निर्धारित नियमों व

आदेशों का पालन करना पड़ता है। नियमों के उल्लंघन की दशा में उनकी सदस्यता स्थगित की जा सकती है, वापिस ली जा सकती है अथवा उनको अर्थदण्ड दिया जा सकता है। किस प्रकार का दण्ड दिया जावेगा, यह विपणि की संचालक सभा द्वारा निर्धारित किया जाता है। कोई व्यक्ति जो दिवालिया घोषित कर दिया हो अथवा पागल हो गया हो, स्कन्ध विपणि का सदस्य नहीं रह सकता। वर्तमान समय में महाराष्ट्र स्कन्ध विपणि के 504 सदस्य हैं।

सदस्यों का संगठन (Organisation of Members)—स्कन्ध विपणि के सदस्य निम्न प्रारूपों में से किसी भी एक प्रारूप में कार्य कर सकते हैं—

(अ) व्यक्तिगत रूप में,

(ब) साझेदारी रूप में,

(स) प्रतिनिधिक सदस्य के रूप में।

साझेदारियों का निर्माण तथा प्रतिनिधिक सदस्यों की नियुक्ति शासन समिति की अनुमति से ही हो सकती है। बम्बई स्कन्ध विपणि पर प्रत्येक सदस्य को अपने दो सहायक (Assistants) को नियुक्त करने का अधिकार है, परन्तु इसके लिए उन्हें प्रवेश शुल्क तथा मासिक चन्दा देना पड़ता है। ऐसे सहायकों को रैमिसायर्स (Remisiers) कहते हैं।

प्रबन्ध एवं संचालन (Management and Administration)—प्रत्येक स्कन्ध विपणि के सामान्य कार्यों का प्रशासन एवं संचालन एक प्रबन्धक समिति के द्वारा होता है। इस समिति को विभिन्न विपणियों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। जैसे—महाराष्ट्र स्कन्ध विपणि में इसे 'शासक संघ' (Governing Body) तथा मद्रास में 'प्रबन्ध परिषद' (Council of Management) तथा दिल्ली स्कन्ध विपणि में इसे 'संचालनसभा' (Board of Directors) के नाम से पुकारते हैं। समिति का निर्माण प्रतिवर्ष विपणि के सदस्यों में से निर्वाचित सदस्यों द्वारा ही होता है। इस समिति को नियन्त्रण एवं प्रबन्ध सम्बन्धी समस्त अधिकार सौंप दिये जाते हैं और यह वर्ष भर नियमानुसार कार्य करती है। इस सभा के अतिरिक्त विशेष कार्यों की देखरेख के लिए अनेक उपसमितियों का निर्माण किया जाता है, जो संचालक सभा को विभिन्न प्रकार से सहायता पहुँचाती है।

बम्बई स्कन्ध विपणि की शासक समिति के अधिकार नियम संख्या 118 से 121 में दिये हुए हैं। महाराष्ट्र की वर्तमान शासक समिति में 18 सदस्य हैं जिनमें से 16 सदस्यों द्वारा निर्वाचित तथा 2 सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत (Nominate) किये गये हैं। मनोनीत सदस्यों को छोड़कर शेष सदस्यों को प्रतिवर्ष अवकाश ग्रहण करना होता है। उन्हें पुनः निर्वाचित किया जा सकता है। बम्बई विपणि में इस समय तीन उप-समितियाँ हैं—(i) मध्यस्थ समिति, (ii) अनुशासन समिति तथा (iii) सूचीयन समिति।

बम्बई स्कन्ध विपणि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके प्रशासन में सबसे अधिक स्थायित्व रहा है।

समाशोधन गृह (Clearing Houses)—जिस प्रकार किसी स्थान के लिए एक बैंकिंग व्यापार को समाशोधन गृह की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार स्कन्ध विपणियों के सदस्यों के व्यवहार का निर्णय करने के लिए समाशोधन गृह की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में सबसे पहला समाशोधन गृह सन् 1921 में बम्बई स्कन्ध विपणि में आरम्भ किया गया था। ये प्रतिभूतियों की वास्तविक सुपुर्दगी के लिए अनुबन्ध-पत्र तैयार करते हैं तथा सदस्यों के धन का समाशोधन भी करते हैं। समाशोधन गृह अपनी सेवाओं के लिये कुछ पारिश्रमिक भी प्राप्त करते हैं।

बम्बई स्कन्ध विनिमय के दोष

बम्बई स्कन्ध विपणि विशेष रूप से सट्टे के लिए बदनाम है। यह सट्टेबाजी का प्रमुख स्थान है। यहाँ पर अधिक सट्टा निम्नलिखित कारणों से होता है तथा ये ही यहाँ के दोष हैं—

1. अधिकांश जनता धनी तथा व्यापारी-वर्ग से सम्बन्धित है। वे अपने रुपये को सट्टे के कामों में अधिक लगाते हैं।

2. यहाँ पर धोखेबाजी एवं कपटपूर्ण व्यवहार खूब होते हैं। उन पर स्कन्ध विपणि की ओर पर्याप्त नियन्त्रण नहीं है।

3. यहाँ की संचालक सभा में बहुत ढील-ढाल है। संचालकगण अपने अधिकारों का पूर्ण रूप से सदुपयोग नहीं करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि परिकल्पिक अनुचित लाभ उठाते हैं और अनायास अहितकर परिकल्पना की वृद्धि हो जाती है।

4. यहाँ पर कुछ ऐसे सदस्य पाए जाते हैं जिन्हें **तरावनी वाले** (Tarawani Walas) कहते हैं। ये लोग वास्तव में दलाल नहीं होते हैं। ये व्यक्ति कृत्य (Jobber) जैसे होते हैं और प्रतिभूतियों का व्यापार करते हुए परिकल्पना की वृद्धि करते रहते हैं। ये लोग दलालों के समान ही क्रय-विक्रय करते रहते हैं और प्रतिभूतियों के मूल्य में तनिक भी उतार-चढ़ाव देखते हैं तो तुरन्त व्यापार कर बैठते हैं। इसका परिणाम प्रतिभूतियों के मूल्य पर बहुत बुरा पड़ता है तथा विनियोक्ताओं को हानि उठानी पड़ती है। ये लोग जैसे दलाओं को खरीदते तथा विक्रय करते देखते हैं वैसे ही स्वयं भी करने लगते हैं और थोड़े ही अन्तर में व्यापार करते हैं। वास्तव में ये एक प्रकार का जुआ खेलते है।

5. बहुत से सौदे निजी समझौते के आधार पर किये जाते हैं। इससे व्यापार को हानि होती है।

6. व्यापार करते समय किसी की अन्तरराशि (Margin Money) निक्षेप के रूप में नहीं रखी जाती है। इससे अस्वस्थ सट्टे को प्रोत्साहन मिलता है।

7. यहाँ रिक्त (Blank) प्रतिभूतियों के हस्तांतरण पर कोई रोक-टोक नहीं है। इससे अहितकर में वृद्धि होती है।

8. यहाँ बहुत से व्यवहार उधार होते हैं। भुगतान तुरन्त न करने के कारण परिकाल्पनिक व्यवहारों को खूब प्रोत्साहन मिलता है।

9. यहाँ सदस्यों के अधिकृत-क्लर्क अपना निजी व्यापार करते हैं।

10. बम्बई-स्कन्ध-विपणि का एक दोष यह भी है कि यहाँ केवल उन्हीं कम्पनियों की प्रतिभूतियों में व्यवहार किया जाता है जो बम्बई में रजिस्टर्ड होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बम्बई-स्कन्ध-विपणि में पर्याप्त रूप से दोष पाये जाते हैं जिनका शीघ्रातिशीघ्र निवारण करना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार के अस्वस्थ सट्टे रोकने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं—

1. **अग्रिम व्यवहारों** (Forward Trading) **पर रोक**—अधिकतर सट्टा वायदे के सौदों तथा उनको अगली मिति के लिए बदलने की सुविधाओं के कारण होता है। वायदे के सौदों के कारण सट्टे का व्यापार इतना अधिक बढ़ जाता है कि उस पर नियन्त्रण रखना बड़ा कठिन हो जाता है। अतः परिकल्पना को रोकने के लिये इन अग्रिम व्यवहारों को पूर्णतः बन्द कर देना चाहिये। परन्तु यह बात सन्देहात्मक है क्योंकि तैयार सौदों में भी असली मिति के लिये सौदों को बदलने की आवश्यकता होती है और वायदे के सौदे नकद भुगतान पर भी होते हैं। इसलिये अग्रिम व्यवहार और 'बदल करना' दोनों ही स्कन्ध-विपणि के आवश्यक अंग हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखने में आता है कि जिन विपणियों में अग्रिम व्यवहार नहीं भी होता है, वे भी इस परिकल्पना से बचे हुए नहीं हैं। अतः अग्रिम व्यवहार को बन्द करने की अपेक्षा उस पर नियन्त्रण रखना चाहिये। भारतवर्ष के औद्योगीकरण के लिये आवश्यक है कि यहाँ औद्योगिक संस्थाओं की प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय के लिए विस्तृत बाजार हो अथवा विनियोजकों को पर्याप्त सुविधायें प्रदान की जायें। यह सब कुछ नियन्त्रित अग्रिम व्यापार द्वारा सम्भव हो सकता है। अतः सरकार को चाहिये कि वह राष्ट्रीय विनियोग सभा (National Investment Board) की स्थापना करे जो भारतीय स्कन्ध विपणियों पर नियन्त्रण रख सके। गत वर्षों में सरकार ने इस प्रकार नियन्त्रण करने के लिये जिन उपायों का प्रयोग किया था, वे इस समस्या को सुलझाने में सर्वथा असमर्थ रहे। अग्रिम व्यवहारों पर नियन्त्रण रखने के लिये उन पर विक्रय-कर भी लगाया जा सकता है, किन्तु इससे पूँजी की गति धीमी होने की आशंका है अतएव यह कर बहुत सोच-समझने के उपरान्त ही लगाना चाहिये।

2. **धोखेबाजी पर रोक**—स्कन्ध विपणि में की जाने वाली धोखेबाजी एवं कपटपूर्ण व्यवहार पर नियन्त्रण होना चाहिये। दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध कठोरता से

पेश आना चाहिए, जिससे कि वे भविष्य में कोई दोषयुक्त व्यवहार दुबारा न करें। बम्बई-स्कन्ध-विपणि में यद्यपि धोखेबाजों व कपटपूर्ण व्यवहार करने वालों को उचित दण्ड देने की व्यवस्था की गई है; किन्तु उन नियमों का पालन सख्ती के साथ नहीं किया जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि अस्वस्थ परिकल्पना में वृद्धि हो जाती है। इसके अतिरिक्त बम्बई-स्कन्ध-विपणि में एक अपराध निरोधक समिति (Defaulter's Committee) भी है, किन्तु उसकी कार्य-पद्धति में बहुत शिथिलता पाई जाती है। अतः यह आवश्यक है कि इन नियमों का पालन उचित रूप से किया जाये जिससे कि धोखेबाजी के व्यवहारों को प्रोत्साहन न मिले।

3. **संचालक-सभा की ढील-ढाल पर रोक-** –बम्बई-स्कन्ध-विपणि की संचालक सभा परिकाल्पनिक व्यवहारों पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण नहीं रखती है। इसका कारण यह है कि कुछ संचालकगण स्वयं भी परिकाल्पनिक व्यवहारों के चक्कर में रहते है। अपने स्वार्थ के कारण ये पर्याप्त नियन्त्रण नहीं रखते हैं। वास्तव में ऐसा नहीं होना चाहिये। संचालकों को चाहिये कि वे अपने कर्त्तव्य का पालन बड़ी तत्परता से करें जिससे देश की उन्नति हो।

4. **तरावली वालों का नियन्त्रण**—बम्बई की स्कन्ध-विपणि में कुछ ऐसे भी सदस्य हैं जो वास्तव में दलाल नहीं हैं, किन्तु प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करके सट्टेबाजी को बढ़ाते हैं। उन व्यक्तियों को तरावनी वाले कहते है। इनके व्यवहारों से प्रतिभूतियों के मूल्यों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी तो विनियोक्ताओं को इन्हीं के कारण बड़ी हानि उठानी पड़ती है। अतः यह आवश्यक है कि इन पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण रखा रखा जाए। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक है कि सदस्यों से वर्ष के आरम्भ में यह घोषणा ले ली जाय कि वे किस स्थिति में (अर्थात् दलाल, कृत्यकी या तरावनी) अपना व्यवहार करेंगे। इस बात की घोषणा स्पष्ट शब्दों में होनी चाहिये। बाद में उनसे सम्बन्धित नियमों का पालन कठोरता के साथ कराना चाहिये।

5. **निजी समझौते पर प्रतिबन्ध**—बम्बई-स्कन्ध-विपणि में बहुत से सौदे निजी समझौते के आधार पर किए जाते है। समझौता इस प्रकार का होता है कि यदि अधि-व्यापार (Over Trade) से हानि होगी तो उसका पूरा-पूरा भुगतान नहीं करना पड़ेगा। इस प्रकार व्यक्तिगत समझौतों को कदापि नहीं होने देना चाहिये. क्योंकि ये ही परिकल्पना को प्रोत्साहन देते है। नियमानुसार इनको इस बात पर बाध्य करना चाहिए कि वे हानि का पूरा-पूरा भुगतान करें। भुगतान न देने वालों के साथ कड़ा व्यवहार करना चाहिए।

6. **अनिवार्य अन्तरराशि**–प्रतिभूतियों का व्यवहार करते समय स्कन्ध-विपणि में अन्तर-निक्षेप राशि (Margin Money) जमा करना भी अनिवार्य नियम होना चाहिए। यदि ऐसा न किया जाय तो प्रतिभूतियों के मूल्यानुसार इसका निश्चित प्रतिशत

निर्धारित कर देना चाहिए। यदि इस प्रकार का नियन्त्रण नहीं रखा जायगा तो कम सीमित आय वाले व्यक्ति भी परिकल्पना करना आरम्भ कर देंगे। इससे अहितकर परिकल्पना को प्रोत्साहन मिलता है जो देश के लिए लाभप्रद नहीं होती है। अन्तरराशि का प्रतिशत किसी भी दशा में कम नहीं होना चाहिए। केवल कुछ रियायत उन व्यक्तियों को दी जा सकती है जो दूर के स्थानों से ग्राहक बनने आते हैं। इस प्रकार का नियन्त्रण लगाने से केवल वे ही व्यक्ति आयेंगे जो आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ होंगे। इससे व्यर्थ की परिकल्पना को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा।

7. **निरंक (Blank) हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध**—निरंक (Blank) हस्तांतरण पर नियन्त्रण होना चाहिए क्योंकि इससे सट्टे को प्रोत्साहन मिलता है। इस पद्धति को बिल्कुल ही समाप्त करना तो ठीक नहीं है, किन्तु इसके चलन की अवधि को सीमित कर देना चाहिए तथा मुद्रांक कर (Stamp duty) भी कम कर देनी चाहिए। ऐसा करने से इनके हस्तांतरण में शिथिलता आ जाएगी एवं परिकाल्पनिक व्यवहार में भी कम हो जायेंगे।

8. **उधार व्यवहारों पर रोक**—स्कन्ध-विपणियों में उधार व्यवहारों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए अन्यथा व्यर्थ की परिकल्पना बढ़ती है।

9. **अधिकृत लिपिकों पर व्यवहार सम्बन्धी प्रतिबन्ध**—सदस्यों से अधिकृत लिपिकों को निजी व्यापार करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। ऐसा करने से उनके स्वामियों को हानि होने की सम्भावना रहती है। अधिकृत लिपिकों को तो केवल सदस्य की ओर से प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय करने की आज्ञा होती है और जैसी सदस्य की आज्ञा होती है उसी के आदेशानुसार वह काम करता है। अत: लिपिकों को निजी व्यवहार करने की आज्ञा नहीं मिलनी चाहिए।

10. **अंशों का समुचित वर्गीकरण**—अंशों का वर्गीकरण ठीक प्रकार से करना चाहिए तथा प्रतिभूतियों का क्षेत्र भी विस्तृत होना चाहिए। बम्बई-स्कन्ध-विपणि का एक प्रमुख दोष यह भी है कि यहाँ केवल उन्हीं कम्पनियों की प्रतिभूतियों में व्यवहार किया जाता है जो बम्बई में रजिस्टर्ड होती हैं। परिकाल्पनिक व्यवहारों का निरोध करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रतिभूतियों की सूची में सभी कम्पनियों के अंशों का समावेश होना चाहिए। इसके अतिरिक्त विनियोजकों को भी अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए। ऐसा करने से प्रतिभूतियों के मूल्यों के उतार-चढ़ाव में सन्तुलन आ जाएगा। अतः बम्बई स्कन्ध-विपणि में इन सुधारों का होना आवश्यक है।

11. **स्कन्ध विपणि के समय पर नियन्त्रण**—स्कन्ध-विपणि के व्यावहारिक समय को सीमित कर देना चाहिये। यह समय अधिक से अधिक पाँच घण्टे का होना चाहिए।

12. **ऋणादि पर प्रतिबन्ध तथा मूल्य-सूची सम्बन्धी सुविधायें**—सरकार को चाहिए कि वह बैंकों पर प्रतिबन्ध लगा दे कि वे परिकाल्पनिक व्यवहारों के लिए जनता को रुपया उधार न दें। ऐसा करने से व्यर्थ की परिकल्पना को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। आजकल रिजर्व बैंक इस ओर पग उठा रहा है। इसके अतिरिक्त विधियोक्ताओं की सुविधा के लिए प्रचलित मूल्य-सूची सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करनी चाहिये। ऐसा करने से उनकी संख्या में वृद्धि होगी। साथ ही यह भी आवश्यक है कि अंश छोटे से छोटे मूल्य के हों जैसा कि कलकत्ते में है। इससे मध्यम श्रेणी के लोगों को भी विनियोग करने का साहस हो सकता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यदि इन नियन्त्रणों को ठीक प्रकार से कार्यान्वित किया जाये तो स्कन्ध-विपणियों में पाये जाने वाले दोष अवश्य दूर हो जायेंगे। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों का मत है कि परिकल्पना को बिलकुल ही समाप्त कर देना चाहिए और उसके स्थान पर एक स्वतन्त्र बाजार स्थापित कर दिया जाये किन्तु वास्तव में उनका यह मत ठीक नहीं है। परिकल्पना को मूल रूप से समाप्त न करके उस पर नियन्त्रणों का लगाना ही देश के हित में है।

प्रश्न 22. एक मनुष्य टाटा आयरन एण्ड स्टील कं. लि. के पाँच साधारण अंश खरीदना चाहता है। विस्तारपूर्वक यह बताओ कि उसे अंशों के स्वामी होने तक क्या-क्या कार्यवाहियाँ करनी पड़ेंगी ?

A person wishes to buy five ordinary shares of the Tata Iron & Steel Co., Ltd, Trace in detail the course of events that will make him the owner of those shares.

उत्तर—1. प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय से पूर्व उन प्रतिभूतियों में व्यवहार करने वाले कृत्यकी (Jobbers) से उनके क्रय-विक्रय में सलाह लेता है। ऐसा करते समय उसे कृत्यकी को यह नहीं बताना चाहिये कि वह स्वयं प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करना चाहता है। प्रतिभूतियों के मूल्य के सम्बन्ध में अन्य कृत्यकियों से भी सलाह लेनी चाहिए। पूर्णतः सन्तुष्ट होने के पश्चात् उसे अपना मत प्रकट करना चाहिए। इस व्यवहार के पूर्ण होते ही वे उसे अपनी नोट बुक में लिख लेते हैं, जिससे की उनमें कोई त्रुटि न रह जाये। मध्यस्थ ग्राहक के पास 'कॉन्ट्रेक्ट नोट' (Contract Note) भेजता है जिसमें अनुबन्ध की तिथि, प्रतिभूतियों की संख्या, मूल्य व राशि, मुद्रांक-कर, भुगतान की तिथि व मध्यस्थ का कमीशन आदि लिखा रहता है।

2. अब श्री अभय कुमार, टाटा कम्पनी के पाँच साधारण अंशों को बाजार भाव पर खरीदने के लिए श्री सुदर्शन एण्ड सन्स नामक फर्म को एक पत्र लिखेंगे। इस पत्र को लिखने के साथ-साथ उन्हें उन अंशों का पूरा मूल्य तथा दलाली इत्यादि भी भेजनी पड़ेगी। इसके लिए वे एक बैंक ड्राफ्ट भेज सकते हैं।

3. जैसे ही वह पत्र व बैंक ड्राफ्ट दलाल के पास पहुँचेगा वह उसको अपनी नोट-बुक में लिख लेगा। इसके पश्चात् वह किसी ऐसे ग्राहक को ढूँढ़ेगा जिसे टाटा कम्पनी के साधारण अंश बेचने हों। यदि दलाल की निगाह में एसा कोई व्यक्ति होता है तो वह स्कन्ध-बाजार में न जाकर क्रेता व विक्रेता को उसके सम्बन्ध में सूचित कर देगा। ऐसे व्यवहार को पारस्परिक व्यवहार (Cross Transaction) कहते हैं। इसके विपरीत यदि दलाल की निगाह में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होता है जो टाटा कम्पनी के साधारण अंशों को बेचना चाहता हो तो वह इसकी सूचना अपने अधिकृत-लिपिक को स्कन्ध टिप्पणी में भेज देगा। अब उन अंशों का क्रय स्कन्ध-बाजार में किया जायेगा। दलाल की ओर से सूचना पाने पर अधिकृत लिपिक बाजार में जाकर ऐसे सदस्यों से बातचीत करेगा जो उन अंशों को बेचना चाहते हों। जिस समय सम्पूर्ण बातचीतें हो चुकेंगी तथा अंशों का मूल्य इत्यादि सब नियत हो जायेगा, तब अधिकृत लिपिक उन अंशों को खरीद लेगा। अंशों को खरीदने के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचना दलाल की ओर से पहले ही भेज दी गई होगी। अंशों का क्रय होने पर अधिकृत लिपिक तथा विक्रेता दोनों ही अंशों के क्रय-विक्रय सम्बन्धी सम्पूर्ण विवरण अपनी-अपनी नोट-बुक में लिख लेंगे। अब लिपिक इस सारे व्यवहार को कागज पर लिखेगा और फिर उसे एक सन्दूक में डाल देगा जो कि स्कन्ध-विपणि में रखा रहता है। इस सन्दूक में से उस कागज को निकाला जायेगा तथा उस सौदे के विषय में सब विवरण एक ब्लैक बोर्ड पर लिख दिया जायगा जो कि सन्दूक के ही पास रखा रहता है। स्कन्ध-विपणियों में अंशों के मूल्य के अन्दर एक दिन में कई बार उतार-चढ़ाव आते हैं। उन सब को एक रजिस्टर में लिखा जाता है तथा आवश्यक भावों को रेडियो द्वारा प्रसारित किया जाता है तथा उसका विज्ञापन समाचार-पत्रों में भी किया जाता है।

4. अंशों के खरीदे जाने के उपरान्त अधिकृत-लिपिक इस बात की सूचना अपने दलाल को देगा तथा वह इसकी सूचना श्री राजेश कुमार को देगा। इसके पश्चात् अगले दिन उस सौदे की पुनः जाँच-पड़ताल की जायेगी, जिससे कि क्रय-विक्रय करने में कोई त्रुटि न रह जाये। पूर्ण रूप से जाँच करने के पश्चात् वे अनुबन्ध (Contract Note), क्रय तथा विक्रय-पत्र (Bought Note and Sold Note) बनाकर अपने-अपने ग्राहकों के पास भेज देंगे। अनुबन्ध के ऊपर श्री राजेश कुमार हस्ताक्षर करेंगे तथा उसे पुनः मध्यस्थ के पास भेज देंगे।

अन्त में श्री अभय कुमार के पास मध्यस्थ के द्वारा एक हस्तान्तरण संलेख (Transfer Deed) भेजा जायेगा। इसी के आधार पर विक्रेता को बेचे हुए अंशों का मूल्य प्राप्त होता है। इस संलेख को विक्रेता टाटा कम्पनी में भेज देगा और यह प्रार्थना करेगा कि कम्पनी उन अंशों के क्रेताओं का नाम अपने रजिस्टर में लिख ले। जिस समय कम्पनी के अन्दर रजिस्ट्री का कार्य हो जायेगा, तो कम्पनी का सेक्रेटरी श्री राजेश कुमार के पास नये अंश प्रमाण-पत्र भेज देगा।

इस प्रकार से घर बैठे हुए ही अंशों का क्रय-विक्रय किया जा सकता है। ●

प्रश्न 23. "समुद्र की भाँति स्कन्ध विनिमय बाजारों में भी नाना प्रकार की हवाएँ चलती हैं तथा वे सभी भिन्न एवं अनियमित होती हैं। प्रायः वे हवाएँ उन्हीं के समान उत्पादन करने वाली होती हैं। मूल्ल-स्तर अत्यन्त नाजुक तथा लचीले होते हैं और उनसे प्रभावित हो जाते हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए और प्रतिभूतियों के मूल्यों में घट-बढ़ करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए।

"The wind that plays upon the Stock Exchange markets are varying and inconstant as those that blow upon the ocean. They are frequently just as disturbing. The Price Levels are extremely sensitive and susceptible to their influences." Discuss this statement and state factors which cause fluctuations in security prices.

अथवा

एक स्कन्ध-विपणि में मूल्यों के उतार-चढ़ाव करने वाले कारणों का उल्लेख कीजिए। क्या तुम्हारी सम्मति में इस उतार-चढ़ाव का प्रभाव देश के व्यापार तथा उसकी आर्थिक स्थिति पर पड़ता है।

Mention and explain some of the factors that rule fluctuations in prices in a Stock Exchange. Do you think that trade and economic conditions of a country are affected by such fluctuations ?

उत्तर—स्कन्ध-विपणि में मूल्य के उतार चढ़ाव का आशय उस मूल्य से है जो प्रतिभूति के अंकित मूल्य से कम अथवा अधिक होता है। प्रतिभूतियों का मूल्य दो प्रकार का होता है—(1) अंकित मूल्य (Face Value) और (2) विपणि मूल्य (Market price)। अंकित मूल्य वह होता है जिस पर किसी प्रतिभूति को निर्गमित किया जाता है। वह मूल्य कम्पनी द्वारा निर्धारित रहता है जैसे 100 रुपये या 50 रुपये। विपणि मूल्य अंकित मूल्य से कम या अधिक हो सकता है जैसे 100 रुपये पर निर्गमित की गई प्रतिभूति 105 रुपये की भी बिक सकती है तथा 90 रुपये की भी बिक सकती है। इन 105 और 90 रुपये को विपणि मूल्य कहते हैं। प्रतिभूतियों के मूल्य के उतार-चढ़ाव के सम्बन्ध में **श्री आर्मस स्ट्रोंग** ने एक स्थान पर लिखा है कि, "समुद्र की भाँति स्कन्ध-विनिमय विपणियों में नाना प्रकार की हवायें चलती हैं तथा वे सभी क्रमबद्ध नहीं होती हैं। प्रायः वे हवायें आँधी के समान उत्पात पैदा करने वाली होती हैं—कुछ दिनों में व्यापार बड़ी शान्ति एवं विघ्नबाधा रहित चलता रहता है, परन्तु शीघ्र ही फिर विनिमय-विपणियों में ऐसी घटा घिर आती है कि विनिमय के जो सदस्य इस घटाटोप से पूर्व परिचित रहते हैं वे भी इसमें गिर जाते हैं। वहाँ बहुत अभिनयात्मक गति से अच्छी और बुरी खबरें फैला करती

हैं जिनसे मूल्यों में भयंकर परिवर्तन पैदा हो जाते हैं। वह ऐसी दशा होती है कि उसके परिणामस्वरूप बचना दुष्कर होता है। सारे बाजार में बार-बार धक्के से लगते हुए दिखाई देते हैं और जो प्रतिभूतियाँ इसके प्रभाव से अलग होती हैं, वे भी प्रभावित हुए बिना नहीं बचतीं।"

1. **मांग और पूर्ति**—प्रतिभूतियों के विपणि-मूल्य में उतार-चढ़ाव होने के अनेक कारण होते हैं। अर्थशास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उसकी माँग और पूर्ति (Demand and Supply) पर निर्भर रहता है। यदि पूर्ति की अपेक्षा माँग अधिक होगी तो मूल्य बढ़ेगा और यदि माँग की अपेक्षा पूर्ति अधिक होगी तो मूल्य घटेगा। इनके अतिरिक्त यदि इन दोनों में संतुलन होगा तो मूल्य स्थिर रहेगा परन्तु **माँग और पूर्ति** के अतिरिक्त भी इन कारणों से प्रतिभूति के मूल्यो में उतार-चढ़ाव होता रहता है।

2. **बैंक की दर**—स्कन्ध-विपणि के मूल्य को प्रभावित करने में बैंक की दर का बहुत बड़ा हाथ है। यदि बैंक की दर कम होगी तो सट्टेबाज तथा दूसरे व्यक्ति अधिक ऋण लेकर अधिक व्यवहार करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि प्रतिभूतियों की माँग बढ़ जायेगी और इसकी वजह से उनका मूल्य भी बढ़ जायेगा। इसी प्रकार यदि ऊँची ब्याज की दर पर ऋण मिलने लगे तो प्रतिभूतियों का क्रय भी कम हो जायगा। माँग कम हो जाने पर उनका मूल्य भी गिर जाता है।

3. **मुद्रा चलन की परिस्थिति**—जब चलन में रुपया अधिक होता है तो मुद्रा प्रसार (Inflation) के कारण जनता के हाथ में अधिक क्रय-शक्ति (Purchasing Power) आ जाती है। धन की अधिकता के कारण माँग अधिक हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतिभूतियों का मूल्य भी बढ़ जाता है। इसके विपरीत यदि मुद्रा संकुचन (Deflation) की दशा होगी तो प्रतिभूतियों का मूल्य गिर जायेगा। इस प्रकार के मुद्रा चलन का प्रतिभूतियों के मूल्य के उतार-चढ़ाव पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

4. **व्यापार चक्र** (Trade Circles)—व्यापार में प्रायः तेजी व मन्दी का प्रभाव प्रतिभूतियों के मूल्य पर बहुत गहरा पड़ता है। व्यापार में अभिवृद्धि (Boom) के समय व्यापार बढ़ता है, उत्पादन की मात्रा अधिक होती है, बेकारी की समस्या दूर होती है तथा जनता अपने रुपये का सदुपयोग करने के लिए उसे विभिन्न प्रकार के उद्योगों में लगाती है। इसका प्रभाव प्रतिभूतियों के मूल्यों पर यह पड़ता है कि वह प्रायः बढ़ जाता है। इसी प्रकार अवसाद (Depression) के समय व्यापार में हानि होने लगती है तथा प्रतिभूतियों की माँग भी कम हो जाती है उससे उसका मूल्य भी कम हो जाता है।

5. **राजनैतिक परिस्थिति**—वित्त एवं राजनीति एक दूसरे पर निर्भर हैं। अतः आर्थिक परिस्थिति के अनुसार राजनीति में परिवर्तन होते रहते हैं तथा राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन होते रहते हैं। किसी भी

राजनैतिक घटना का प्रभाव स्कन्ध-विपणि पर पड़े बिना नहीं रहता है। किसी नेता का भाषण, युद्ध के विभिन्न समाचार अथवा शान्ति आन्दोलन इन सबका प्रभाव स्कन्ध विपणि पर पड़ता है। युद्धकाल में तो शासन का प्रभाव इतना बलवान हो जाता है कि मूल्यों के बारे में उसी का नियन्त्रण स्वीकार करना पड़ता है। गत महायुद्ध में तथा पाकिस्तान बनते समय प्रतिभूतियों के मूल्य में जो भी परिवर्तन हुए हैं वे सब इसी के कारण थे। युद्ध की अवधि में यदि मित्र राष्ट्रों की विजय होती है, तो प्रतिभूतियों का मूल्य बढ़ जाता है और यदि मित्र-राष्ट्रों की हार होती है तो उसका मूल्य गिर जाता है।

6. **सरकारी नीति**—देश के वित्त (Finance) एवं उद्योग के ऊपर सरकार की नीति का गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी के परिणामस्वरूप प्रतिभूतियों के मूल्य पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। सरकारी नीति के अन्दर राष्ट्रीयकरण, नियन्त्रण संबंधी आदेश, कर (Tax) प्रणाली व संरक्षण (Protection) नीति आदि आती है। प्रायः हम देखते हैं कि देश के बड़े-बड़े नेता इसके उपर भाषण दिया करते हैं। एक साधारण व्यक्ति के लिए तो इन भाषणों का कोई विशेष महत्त्व नहीं है, किन्तु विपणिकर्त्ताओं के लिये यह करोड़ों के लाभ-हानि का प्रश्न हो जाता है। अतएव यह निश्चित है कि उस उद्योग की प्रतिभूतियों का मूल्य गिर जायगा।

7. **परिकाल्पनिक स्थिति**—(Speculative Conditions)—सट्टे के व्यापार का प्रतिभूतियों के मूल्य पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये माना कि प्रतिभूतियों का मूल्य स्थिर है। यदि कुछ सट्टेबाज कुछ प्रतिभूतियों में अधिक रुचि लेने लगते हैं तो उनका मूल्य चढ़ जाता है। कुछ सट्टेबाज ऐसे भी होते हैं जो तेजी की आशा में प्रतिभूतियों की खरीदारी प्रारम्भ कर देते हैं और जब वे अपनी शक्ति से अधिक खरीदारी कर लेते है तो उसे क्रयाधिक्य स्थिति (Over bought position) कहते हैं। इसके विपरीत, यदि विक्रय होने लगता है तो उसे विक्रयाधिक्य स्थिति (Over sold Position) कहते हैं। ऐसी परिस्थितियों का प्रभाव प्रतिभूतियों के मूल्य पर बहुत पड़ता है।

8. **बाजार की प्रवृत्ति**—(Market psychology)—प्रतिभूतियों के मूल्य पर बाजार की प्रवृत्ति का प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ क्रेता किसी विशेष प्रतिभूति को लाभप्रद समझकर खरीदने लगते हैं उनकी देखा-देखी अन्य लोग भी उन्हें खरीदने लग जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रतिभूतियों का मूल्य बढ़ जाता है। इसके विपरीत, जब उनका विक्रय आरम्भ हो जाता है तो अन्य लोग भी उसका अनुसरण करके अपनी प्रतिभूतियों को बेचने लगते हैं। इससे उनका मूल्य कम हो जाता है।

9. **विपणियों की परस्पर निर्भरता**—समस्त पूँजी बाजार आपस में सम्बन्धित रहते हैं। एक स्कन्ध-विपणि के मूल्य का प्रभाव दूसरे-स्कन्ध-विपणि के मूल्य

पर भी पड़ता है। आजकल तो सन्देश-वाहन के साधनों में सुधार हो जाने के कारण सब विपणियों में सामान्य मूल्य रहते हैं। एक बाजार में काम करने वाले तार तथा टेलीफोन के द्वारा दूसरे बाजारों से भी सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। इससे प्रतिभूतियों के मूल्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। लन्दन अथवा न्यूयार्क में मूल्य परिवर्तन का प्रभाव भारतीय मूल्य पर भी होता है। इसी प्रकार समस्त भारतीय बाजारों का भी एक-दूसरे पर प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त एक प्रकार के उद्योगों के अंशों के मूल्य परिवर्तन का प्रभाव अन्य उद्योगों के अंशों पर भी पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि प्रतिभूतियों के मूल्यों पर विपणियों की परस्पर निर्भरता का प्रभाव पड़ता है।

10. **कम्पनी की आर्थिक स्थिति**—प्रतिभूतियों के मूल्य का उतार-चढ़ाव बहुत कुछ कम्पनी की आन्तरिक स्थिति पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये यदि किसी कम्पनी की आन्तरिक दशा अच्छी हो, पूँजी का कलेवर भी स्वस्थ हो, प्रबन्ध एवं व्यवस्था ठीक हो तथा अन्य कार्य भी ठीक प्रकार से चलते हों, तो उस कम्पनी के अंशों का मूल्य स्वभावतः बढ़ जायेगा। इसके विपरीत यदि कम्पनी की आन्तरिक दशा अच्छी नहीं होती तो जनता का विश्वास उसमें नहीं रहेगा और इसके फलस्वरूप इस कम्पनी की प्रतिभूतियों के मूल्य भी कम हो जायेंगे।

11. **लाभांश तथा आय** (Dividends and Incomes)—किसी कम्पनी की आय उसके अंशों के मूल्य को निर्धारित करती है। कभी-कभी अच्छे लाभांश वितरण की आशा में भी मूल्य बढ़ जाता है। कम्पनी की आय अथवा लाभांश वितरण में वृद्धि की घोषणा मात्र से ही उसके अंशों का मूल्य बढ जाता है तथा लाभांश वितरण में कमी के समाचार से उसके अंशों का मूल्य गिर जाता है। इसी प्रकार कम्पनी की लाभाँश शक्ति के अनुसार भी प्रतिभूतियों के मूल्य घटते-बढ़ते रहते हैं।

12. **समाचार-पत्रों के मत**—आधुनिक युग में प्रत्येक समाचार-पत्र में व्यापारिक सूचनाओं को प्रकाशित किया जाता है। इन समाचारों के आधार पर विपणियों से प्रतिभूतियों के मूल्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन समाचार-पत्रों में विभिन्न प्रतिभूतियों एवं उद्योगों के विषय में आँकड़े प्रकाशित किये जाते हैं। इनका अध्ययन करने के उपरान्त यह मालूम हो जाता है कि किसउद्योग की दशा अच्छी है तथा किसकी नहीं। जिन उद्योगों की स्थिति इन समाचार-पत्रों के द्वारा जम जाती है, उनके अंशों का मूल्य भी बढ़ जाता है। यदि भविष्य लाभप्रद प्रतीत नहीं होता है तो अंशों का मूल्य कम हो जाता है।

13. **झूठी अफवाहें**—कभी-कभी अपने हित के लिये सट्टेबाज विपणि में झूठी अफवाहें फैलाकर मूल्य को अपने पक्ष में करना चाहते हैं। युद्धकाल में इस प्रकार की अनेक अफवाहें उड़ा करती हैं। इससे प्रतिभूतियों के मूल्यों में पर्याप्त रूप से उतार-चढ़ाव होते हैं।

14. **तांत्रिक स्थित** (Technical Position)–इसका भी प्रतिभूतियों के मूल्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि बाजार की तांत्रिक स्थिति बहुत सुदृढ़ होती है अर्थात् जब बाजार में विक्रय अधिक होता है और अन्य किसी प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव बाजार पर नहीं होता है तो प्रतिभूतियों का मूल्य स्वतः बढ़ जाता है। इसके विपरीत यदि बाजार की तान्त्रिक स्थिति अस्थिर होती है तो प्रतिभूतियों के मूल्य में भारी कमी हो जाती है।

15. **अन्य कारण**—इसके अतिरिक्त और भी अन्य कारण हैं जिनका मूल्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, जैसे आग लग जाना या ऋण-पत्रों (Debentures) का निर्गमन करना आदि। कम्पनी के व्यवस्थापक मण्डल में परिवर्तन होने से भी मूल्य पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि इसका प्रभाव कम्पनी की लाभार्जन शक्ति पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त मजदूर के झगड़े और हड़तालें भी प्रतिभूतियों के मूल्यों को प्रभावित करती हैं।

उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रतिभूतियों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव का प्रभाव देश के व्यापार तथा उसकी आर्थिक स्थिति पर बहुत पड़ता है। देश के व्यापार को उन्नत करने के लिए तथा आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि स्कन्ध विपणियों में प्रतिभूतियों के मूल्यों को स्थिर रखा जाय। ●

प्रश्न 24. प्रतिभूति प्रसंविदा (नियमन) अधिनियम 1956 की प्रमुख व्यवस्थाओं का वर्णन कीजिये। यह अधिनियम कहां तक भारतीय स्कन्ध विपणियों की व्यवस्था और कार्य विधि में सुधार करने में सफल हुआ है?

Point out the silent features of the Securities contracts (Regulation) Act, 1956, How far this Act has succeeded in improving the organisation and working of stock exchanges in India.

उत्तर– प्रतिभूति सम्बन्धा अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम 1956 प्रावधान के
(Provisions of Securities Contracts) (Regulation) Act 1957

प्रतिभूति प्रसंविदा (नियमन) अधिनियम 1956, 20 फरवरी, 1957 से लागू हुआ। इस अधिनियम द्वारा भारत सरकार का देश के समस्त स्कन्ध विपणियों पर नियन्त्रण स्थापित हुआ। इस अधिनियम में 21 धारायें हैं। इनकी अधिकांश धारायें स्कन्ध विपणियों पर केन्द्रीय सरकार के अधिकारों से ही सम्बन्धित हैं। इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित है—

1. **स्कन्ध विनिमयों को मान्यता**—केवल सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त स्कन्ध विनिमयों में ही प्रतिभूतियों का व्यवहार हो सकता है। अमान्यता प्राप्त स्कन्ध-विनिमय गैर-कानूनी होंगे। मान्यता प्राप्त करने के लिए स्कन्ध विनिमय को एक प्रार्थना-पत्र केन्द्रीय सरकार के पास भेजना होगा। मान्यता देने से पूर्व सरकार इन बातों से

सन्तुष्ट हो लेगी कि—(i) इस स्कन्ध विनिमय के नियम व उपनियम विनियोक्ताओं के हितों के अनुकूल हैं, (ii) स्कन्ध विनिमय केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाई गई अन्य शर्तों का पालन करने के लिए तत्पर हैं, तथा (iii) मान्यता देना व्यवसाय एवं जनता के हित में होगा।

किसी भी स्कन्ध विनिमय को मान्यता देने के बाद, यदि सरकार उसे रद्द करना जनता या व्यवसाय के हित में उचित समझती है, तो वह मान्यता रद्द कर देगी।

यदि केन्द्रीय सरकार किसी स्कन्ध विनिमय के मान्यता प्राप्त करने के प्रार्थना पत्र को अस्वीकार करती है तो स्कन्ध विनिमय को अपने विचार प्रकट करने का पूरा-पूरा अवसर दिया जायगा।

2. **केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण**—प्रतिभूति सम्बन्धी अधिनियम के अन्तर्गत स्कन्ध विपणियों की कार्यप्रणाली पर नियन्त्रण रखने के लिए केन्द्रीय सरकार को निम्नलिखित अधिकार प्रदान किये गये हैं—

(i) मान्यता प्राप्त स्कन्ध विपणियों को ऐसी जानकारी व स्पष्टीकरण देने होंगे जो केन्द्रीय सरकार माँगती है।

(ii) स्कन्ध विपणियों को अपने कार्यों का सामयिक लेखा-जोखा (Periodical Returns) सरकार को भेजना होगा।

(iii) प्रत्येक स्कन्ध विपणियों को अपनी वार्षिक रिपोर्ट की एक प्रति सरकार को भेजनी होगी।

(iv) यदि सरकार उचित समझे तो मान्यता प्राप्त स्कन्ध-विपणि के कार्यों की जाँच के आदेश भी दे सकती है।

(v) प्रत्येक स्कन्ध विपणि तथा उसके सदस्यों को हिसाब-किताब की पुस्तकें व अन्य कागजात अधिक से अधिक से अधिक 5 वर्ष तक रखने पड़ेंगे।

(vi) सरकार यदि आवश्यक समझे तो, स्कन्ध विपणि किसी नियम का पालन करने या बने हुए नियम में संशोधन करने का आदेश दे सकता है।

(vii) केन्द्रीय सरकार मान्यता प्राप्त स्कन्ध विपणि की प्रशासन समिति को भंग कर सकती है तथा संकटकालीन परिस्थितियों में स्कन्ध विपणि के कार्य व्यवहार को बन्द करा सकती है। पर जनता के और व्यापार के हित के लिए इस अवधि को बढ़ाया भी जा सकता है।

(viii) केन्द्रीय सरकार स्कन्ध विपणि प्रशासन में अपने सदस्यों को मनोनीत कर सकती है। ऐसे मनोनीत अदस्यों की संख्या तीन से अधिक नहीं हो सकती है।

(ix) यदि सरकार व्यवसाय व जनहित में यह आवश्यक समझती है कि किसी सार्वजनिक कम्पनी की प्रतिभूतियों का सूचीयन (Listing of Securities) होना चाहिये तो वह उस कम्पनी को सूचीयन करने के लिए बाध्य करा सकती है।

(x) प्रतिभूति में व्यवहार करने वाले किसी ऐसे सदस्य को जो मान्यता प्राप्त स्कन्ध विपणि का सदस्य नहीं है, लाइसेन्स लेने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

(xi) अस्वस्थ परिकल्पना (Speculation) को रोकने के लिए किसी क्षेत्र अथवा राज्य में प्रतिभूतियों में व्यवहार करने पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है।

(xii) केन्द्रीय सरकार कुछ प्रतिभूतियों के व्यवहार करने पर प्रतिबन्ध लगा सकती है।

(xiii) यद्यपि हाजिर सौदों के अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते हैं, परन्तु फिर भी केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि इस प्रकार के अनुबन्धों को व्यापार एवं जनता के हित में नियमित एवं नियंत्रित कर सके।

(xiv) केन्द्रीय सरकार इस बात के लिए भी आग्रह कर सकती है कि स्कन्ध विपणि के सदस्य अपने समस्त व्यवहार का पूरा लेखा-जोखा रखें एवं चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट से अंकेक्षण करावें।

3. **स्कन्ध विपणि की कार्य-प्रणाली पर नियन्त्रण**—स्कन्ध विपणियों की कार्य प्रणाली पर नियन्त्रण रखने के लिए सरकार निम्नलिखित बातों का निर्धारण कर सकती है—

(i) स्कन्ध विपणि पर कार्य व्यवहार के लिए समय।

(ii) स्कन्ध विपणि में किये गये व्यवहारों का निबटारा करने के लिए समाशोधन गृह (Clearing House) की स्थापना करना।

(iii) कोरे या निरंक हस्तान्तरणों (Blank Transfers) को नियमित करना या सीमित करना या उनको समाप्त करना तथा बदली व्यवहारों पर नियन्त्रण करना।

(iv) बाजार दरों का निर्धारण करना।

(v) 'तारावनी' व्यापार को नियमित करना।

(vi) व्यक्तिगत सदस्यों द्वारा किये गये व्यवहारों को सीमित करना।

(vii) दलाली, अर्थदण्ड, फीस, दण्ड तथा अन्तर-धन की दरों को निश्चित करना।

(viii) झगड़ों व दावों का पंचायत द्वारा निबटारा करवाना। केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि निर्धारित नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को अर्थ-दण्ड लगाये या उसे मान्यता प्राप्त विनिमय की सदस्यता से अलग कर दे।

4. **सदस्यों को अनुज्ञा-पत्र प्रदान करना**—कोई भी व्यक्ति किसी मान्यता प्राप्त स्कंध विनिमय विपणि के माध्यम से उस समय तक व्यवहार नहीं कर सकता है जब तक कि वह भारत सरकार से इस सम्बन्ध में अनुज्ञा-पत्र प्राप्त न कर लें। स्कंध विनिमय विपणियों के सदस्य सिर्फ व्यक्ति ही हो सकते है फर्म अथवा कम्पनी नहीं।

5. **पुस्तकें एवं प्रलेख**—पुस्तकें एवं प्रलेखों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(A) **विपणि द्वारा रखी जाने वाली पुस्तकें**—एक मान्यता प्राप्त स्कंध विनिमय विपणि को निम्न लिखित पुस्तकें पाँच वर्ष तक सुरक्षित रखना पड़ती हैं—(i) सदस्यों का रजिस्टर (ii) अधिकृत लिपिकों का रजिस्टर(iii) सदस्यों, शासक मण्डल तथा अन्य समितियों की सभा से सम्बन्धित विवरण पुस्तक (iv) उपदलालों का रजिस्टर (vi) अंतर्राशि जमा पुस्तक, (vii) बही खाते (viii) रोजनामचा, (ix) कैशबुक; (x) बैंक पास बुक।

(B) **सदस्यों द्वारा रखी जाने वाली पुस्तकें**—मान्यता प्राप्त स्कन्ध विनिमय विपणि के प्रत्येक सदस्य को निम्न लिखित पुस्तकें एवं प्रलेख पाँच वर्ष तक सुरक्षित रखना पड़ती हैं—

(ii) सौदे की किताव, (ii) ग्राहकों का लेजर (iii) सौदों की एक प्रतिलिपि (iv) रोजनामचा तथा वही खाता (v) कैशबुक, (vi) बैंक की पास बुक आदि।

6. **अन्य प्रावधान**—यद्यपि इस अधिनियम में निरंक हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है, परन्तु उसका उद्देश्य ऐसे हस्तान्तरणों को हतोत्साहित करना अवश्य है। अधिनियम के अन्तर्गत हस्तान्तरण होने वाले व्यक्ति को लाभांश देने का अधिकार नहीं होगा बशर्ते कि लाभांश घोषित होने से कम से कम 15 दिन पूर्व ऐसे हस्तान्तरण की रजिस्ट्री न हो गई हो। अधिनियम के अन्तर्गत सभी विकल्प सौदों (Option) को गैर-कानूनी बना दिया गया है। अधिनियम में स्कन्ध विपणि के बाहर (Kerl Trading) होने वाले त्यौहारों को भी गैर कानूनी ठहराया गया है।

आशा है इस विधान से हमारे स्कन्ध विनिमयों में नैतिकता को अधिक स्थान प्राप्त होगा और अनुचित व्यवहारों का दमन करके स्कन्ध विनिमय अपने को दृढ़ तथा स्वावलम्बी बनाने में सफल सिद्ध होंगे और देश की आर्थिक समृद्धि में प्रमुख स्थान प्राप्त करेंगे।

प्रश्न 25. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

1. **प्रतिभूतियों का सूचीयन** (Listing of Securities)
2. **स्कन्ध विपणि निर्देशालय** (Directorate of Stock Exchange)
3. **सट्टा या परिकल्पना** (Speculation)

4. **विकल्प या ऐच्छिक सौदे** (Option Transaction)

5. **सुरक्षात्मक सौदे या रोक लगाना** (Hedging)

उत्तर—

प्रतिभूतियों का सूचीयन

(Listing of Securities)

प्रतिभूतियों के सूचीयन से अभिप्राय उस विधि (Procedure) से है जिसके माध्यम से कोई कम्पनी किसी मान्यता प्राप्त स्कन्ध विपणि पर अपनी प्रतिभूतियों में व्यवहार किये जाने की अनुमति प्राप्त करती है। कोई भी प्रतिभूति उस समय से सूचीयत (Listed) कहलाने लगती है जब से कि किसी स्कन्ध विपणि को प्रतिभूतियों की उस सूची में जोड़ दिया जाता है जिनमें कि व्यवहार करने की आज्ञा हो।

प्रत्येक व्यावहारिक संस्था को जो भी स्कन्ध विपणि में प्रतिभूतियों का व्यापार करना चाहती है उसे सर्वप्रथम स्कन्ध विपणि समिति (Stock Exchange Committee) से अनुमति लेनी पड़ती है। बिना अनुमति प्राप्त किये हुए कोई भी संस्था अपनी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय नहीं कर सकती है। उन नई कम्पनियों को जिनके अंश व ऋण-पत्र सूची में नहीं हैं, स्कन्ध विपणि की सूचीयन समिति को आवेदन-पत्र प्रेषित करना पड़ता है। अपने आवेदन-पत्र पर अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् वह कम्पनी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय कर सकती है। प्रायः प्रत्येक कम्पनी अपने 'प्रविवरण' (Prospectus) के प्रकाशन के समय उसके मुख-पृष्ठ पर यह उल्लेख करती है "अमुख स्कन्ध-विपणि पर अंश सम्बन्धी व्यवहार करने के लिए आवेदन-पत्र दिया गया है।" ऐसी अनुमति प्राप्त होने पर ही उस कम्पनी की प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय नियमानुसार कराया जा सकता है।

सूचीयन की विधि

(Procedure of Listing of Securities)

इस अधिनियम के अनुसार सूचीयन के विषय में निम्न व्यवस्थाएँ लागू की गयी हैं—

1. जो भी कम्पनी अपनी प्रतिभूतियों का सूचीयन करना चाहती है उसे इस आशय के आवेदन-पत्र के साथ निम्नलिखित प्रलेखों की प्रमाणित प्रतिलिपि भेजी जानी चाहिए—

(i) पार्षद सीमा नियम (Memorandum of Association)।

(ii) पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association) और एक ट्रस्ट संलेख (Trust Deed)

(iii) प्रविवरण (Prospectus)।

(iv) पूँजी निर्गमन के लिये नियन्त्रण की अनुमति (Consent of Controller of Capital Issues)।

(v) विक्रेताओं, प्रवर्तकों अभिगोपकों और दलालों के साथ हुए अनुबन्धों की प्रतियाँ।

(vi) प्रबन्ध-अभिकर्त्ता, सचिव एवं कोषाध्यक्ष, विक्रय प्रतिनिधियों, प्रबन्ध संचालकों और टेक्नीकल संचालकों, जनरल मैनेजरों बिक्री मैनेजर व सचिव के साथ हुए अनुबन्धों की प्रतियाँ।

2. कम्पनी के पिछले वर्षों की आर्थिक प्रगति के विषय में पूर्ण विवरण जिसमें निम्नलिखित तथ्यों का समावेश किया जाना आवश्यक है—

(i) पिछले पाँच वर्षों से (नई कम्पनी होने पर इससे कम अवधि, और अंकेक्षित खातों की प्रतियाँ।

(ii) पिछले पाँच वर्षों में वितरित लाभांश का विवरण, तथा

(iii) कम्पनी की प्रगति, सम्पत्ति एवं पूँजी रचना के विषय में एक संक्षिप्त विवरण।

3. अंशों के स्वामित्व के विषय में विवरण। इस विवरण में यह स्पष्ट किया जाय कि अंश पूँजी केवल कुछ व्यक्तियों के हाथों में ही केन्द्रित (Concentrated) है अथवा अनेक व्यक्तियों द्वारा धारित (Widley held) है। सूचीयन के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने वाली कम्पनी के लिये यह आवश्यक होता है कि उसकी अंश पूँजी के 49 प्रतिशत भाग का अभिदान (Subscription) समाचार पत्रों में प्रकाशित सार्वजनिक प्रस्ताव द्वारा प्राप्त किया गया हो। इसका आशय है कि स्कन्ध-विनिमय निकटस्थ-धारित (Closely held) कम्पनियों के बजाय ऐसी कम्पनियों को महत्व देता है जिनकी अंश पूँजी में सार्वजनिक हित की मात्रा अधिक होती है।

4. ऐसी कम्पनी के लिये यह आवश्यक होता है कि वह अंशों व ऋण-पत्रों के हस्तान्तरण की व्यवस्था उसी शहर में करेगी जहाँ स्कन्ध विपणि स्थित है।

5. अनुसूचित कम्पनियों को एक निर्धारित फार्म पर सूचीयन समझौता पूरा करना होगा जिनमें उन शर्तों का उल्लेख होगा जिन्हें वह कम्पनी पूरा करने के लिये वाध्य होगी।

यदि किसी स्कन्ध विपणि द्वारा किसी कम्पनी द्वारा सूचीयन के लिए प्रस्तुत आवेदन-पत्र अस्वीकृत कर दिया जाता है तो कम्पनी, केन्द्रीय सरकार के समक्ष अपील कर सकती है जो उस पर विचार करके उचित निर्णय देगी।

प्रतिभूतियों के सूचीयन से लाभ (Advantages of Listing of Securities)

प्रतिभूतियों का सूचीयन हो जाने से कम्पनी व प्रतिभूतिधारक (Security-holder) अथवा विनियोक्ताओं (Investors) सभी को लाभ होता है—

1. **कम्पनी की दृष्टि से लाभ**—(i) सूचीयन से विज्ञापन (Advertisement) के लाभ प्राप्त होते हैं।

(ii) सूचीयन कम्पनी को वित्त (Finance) प्राप्त करने में सहायता करता है।

(iii) सूचीयन से कम्पनी की ख्याति (Goodwill) बढ़ जाती है।

(iv) भविष्य में अतिरिक्त पूंजी (Additional Capital) प्राप्ति में सुविधा रहती है।

(v) कम्पनी की प्रतिभूतियों का सही-सही मूल्यांकन (Valuation of Securities) होता है।

(vi) कम्पनी के सम्मिश्रण व संविलियन (Amalgamation and Liquidation) की दशा में सूचीयन क्रय-प्रतिफल (Purchase Consideration) निर्धारित करने में विशेष सहायता पहुँचाता है।

(vii) अधिकार अंशों (Rights shares) के विक्रय में सुविधा रहती है।

2. प्रतिभूतिधारकों तथा विनियोक्ताओं की दृष्टि से लाभ—स्कन्ध विपणि पर प्रतिभूतियों का सूचीयन हो जाने से प्रतिभूतिधारियों तथा विनियोक्ताओं को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं–

(i) प्रतिभूतियों का सूचीयन हो जाने से क्रेता तथा विक्रेता दोनों को अपनी प्रतिभूतियों का उचित मूल्य प्राप्त हो जाता है।

(ii) सूचीयन से प्रतिभूतियों में अधिक तरलता, विक्रय में निरन्तरता तथा क्रय एवं विक्रय मूल्यों में न्यूनतम अन्तर रह जाता है।

(iii) सम्बन्धित कम्पनी के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(iv) सौदे स्वतन्त्र रूप से किये जाते हैं और ग्राहक को प्रतिभूतियों के मूल्यों में होने वाले उच्चावचन (Fluctuations) पहले से ही मालूम होते रहते हैं।

(v) क्रेताओं के सौदों के सम्बन्ध में पूर्ण विश्वास रहता है, क्योंकि ये प्रमाणित दलालों द्वारा किये जाते हैं।

(vi) प्रतिभूतिधारकों (Security-holders) को सूचीयत प्रतिभूतियों के क्रय एवं विक्रय मूल्यों के सम्बन्ध में पूर्ण सूचनायें प्राप्त होती रहती हैं क्योंकि इनका प्रकाशन करना आवश्यक होता है।

(vii) सब प्रतिभूतिधारकों को समान रूप से लाभ प्राप्त होता है, चाहे वे किसी भी स्तर के हों और कहीं भी रहते हों।

(viii) विनियोक्ताओं को विनियोगों से सम्बन्धित अधिकतम सुरक्षा मिलती है।

(ix) सूचीयन प्रतिभूतियों का अतिरिक्त जमानती (Collateral value) मूल्य बढ़ जाता है।

(x) प्रतिभूतियों का बाजार-मूल्य (Market-value) किसी भी समय जाना जा सकता है।

स्कन्ध विपणि निर्देशालय
(Directorate of Stock Exchange)

'Indian Securities Act, 1956' के प्रावधानों के प्रशासन हेतु भारत सरकार ने वित्त मंत्रालय के अन्तर्गत एक 'स्कन्ध विपणि निर्देशालय' (Directorate

of Stock Exchange) की स्थापना सन् 1959 में की। इसका मुख्य कार्यालय बम्बई में है तथा शाखायें कलकत्ता, मद्रास व दिल्ली में हैं। यह निर्देशालय अधिनियम के नियन्त्रण एवं नियम सम्बन्धी व्यवस्थाओं का समुचित पालन कराने में सहायता पहुँचाता है। प्रतिभूतियों में व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को लाइसेंस देने का कार्य भी इसी निर्देशालय को सौंपा गया है। प्रायः सभी स्कन्ध विपणियों में सदस्यों द्वारा उनके सौदों के सम्बन्ध में दैनिक विवरण प्रेषित किये जाने की व्यवस्था है। निर्देशालय इनका अध्ययन एवं विश्लेषण (Analysis) करता है और यदि कुल सदस्य निश्चित सीमा में अधिक सौदे करते हैं तो उसके विरुद्ध उचित कार्यवाही करने के लिए परामर्श देता है। निर्देशालय यह भी देखता है कि निर्धारित सीमा से अधिक सौदे करने पर सदस्यगण बोर्ड द्वारा निर्धारित सीमान्त धनराशि (Margin deposit) जमा कराते हैं या नहीं। यदि किसी अनुसूचित कम्पनी के साथ स्कन्ध विपणि द्वारा पक्षपात किया जाता है अथवा दुर्व्यवहार किया जाता है तो उसकी सुनवाई भी यही निर्देशालय करता है। यह निर्देशालय अस्वस्थ परिकल्पना (Unhealthy Speculation), विकल्प-सौदे तथा अनियन्त्रित क्रय-विक्रय (Kerb-trading) आदि की रोकथाम के लिए भी आवश्यक कदम उठा सकता है और स्कन्ध विपणि की सामान्य कार्य-प्रणाली को सुधारने के लिए सुझाव भी प्रस्तुत कर सकता है।

उक्त नियमन एवं नियन्त्रण के परिणामस्वरूप भारत में स्कन्ध विपणियों की कार्य प्रणाली में काफी सुधार हो गया है और भारत में अंश स्वामित्व (Share (Ownership) में भी काफी वृद्धि हो गयी है, जिससे सट्टेबाजी की प्रवृति भी कम हो गई है।

सट्टा परिकल्पना
(Speculation)

'परिकल्पना' अथवा 'सट्टा' का अभिप्राय भविष्य में अंशों या प्रतिभूतियों के मूल्य परिवर्तन के विषय में कल्पना या अनुमान करने से है। परिकाल्पनिक व्यवहारों का स्कन्ध-विपणि के व्यवहारों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्कन्ध विनिमय-विपणि में अधिकांश व्यवहार परिकल्पना के द्वारा ही होता है। अतः स्कन्ध-विपणि के व्यवहारों में तथा परिकाल्पनिक व्यवहारों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। विभिन्न प्रतिभूतियों के वर्तमान तथा गत मूल्यों की तुलना से इस बात का अनुमान लगाया जाता है कि भविष्य में उसका मूल्य क्या होगा? लाभार्जन की दृष्टि से किये गये इस व्यवहार को परिकल्पना या सट्टा कहते है। परिकाल्पनिक व्यवहारों के अन्दर वस्तुओं का क्रय अथवा विक्रय किया जाता है। सट्टेबाज वस्तुओं के आगामी मूल्यों के विषय में अनुमान लगाता है। उदाहरण के लिए माना कि कोई व्यक्ति यह अनुमान लगाता है कि भविष्य में अमुक प्रतिभूति का मूल्य चढ़ जायेगा और वह वर्तमान कम मूल्य

पर उसे खरीद लेता है, यदि उसके अनुमानानुसार उस प्रतिभूति का मूल्य चढ़ जाता है तो उसे लाभ होगा और यदि किसी कारणवश उसका मूल्य कम हो जाता है तो उसे हानि होगी। इसी को सट्टा कहते हैं।

परिकल्पना के निम्नलिखित तीन लक्षण होते हैं—

(अ) ऐसे व्यवहार सदैव प्रचलित मूल्य पर किये जाते हैं।

(ब) सौदे का भुगतान भविष्य में किसी निश्चित तिथि पर किया जाता है।

(स) व्यवहारों का मुख्य उद्देश्य लाभ प्राप्त करना होता है।

परिकाल्पनिक व्यवहार प्रत्येक वस्तु का नहीं किया जा सकता है। उन वस्तुओं में जिनमें सट्टा किया जा सकता है निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

(i) वस्तु की माँग सदैव घटने-बढ़ने वाली होनी चाहिए। इसके साथ-साथ माँग-पूर्ति सरलता से नहीं हो जानी चाहिए। यदि ऐसा होगा तो अधिक लाभ की सम्भावना नहीं रहेगी।

(ii) उस वस्तु की माँग का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए।

(iii) वस्तु का ग्रेडिंग (Grading) सुगमता से किया जाना चाहिये जिससे कि वस्तु के स्वभाव के विषय में कोई त्रुटि न हो सके।

(iv) वस्तु की मात्रा की माप सरलतापूर्वक की जानी चाहिये।

परिकल्पना दो प्रकार की होती है—(1) स्वस्थ (Healthy) व (2) अस्वस्थ (Unhealthy)। एक स्वस्थ परिकल्पना वह है जो केवल परिकल्पक के लिये ही नहीं वरन् समस्त समाज के लिये लाभप्रद हो। इस प्रकार का सट्टा व्यापारिक दशा के वैज्ञानिक ज्ञान एवं समुचित दूरदर्शिता पर निर्भर रहता है। इसके विपरीत, अस्वस्थ परिकल्पना वह है जो समाज के लिये हितकर न हो। इसके द्वारा धन का अपव्यय होता है। ऐसे परिकल्पकों में दूरदर्शिता व भावी-ज्ञान का अभाव रहता है। इससे रुपये का दुरुपयोग होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वस्थ परिकल्पना समाज के लिये हितकर एवं कल्याणकारी है। अतः इस प्रकार की परिकल्पना पर ही जोर दिया जाना चाहिये।

स्वस्थ परिकल्पना के लाभ

स्कन्ध विपणियों में परिकल्पना का होना आवश्यक है, किन्तु वह स्वस्थ होनी चाहिए। **वास्तव में, यदि देखा जाये तो स्वस्थ परिकल्पना ही विपणि का जीवन-रक्त** (Life blood) है, परिकल्पना का प्रभाव देश की आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक सभी परिस्थितियों पर पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि देश की स्थिति को सुदृढ़ रखने के लिये परिकल्पना स्वस्थ हो जानी चाहिये। इस कार्य के लिये बड़ी तीव्र बुद्धि और दूरदर्शिता की आवश्यकता है।

स्वस्थ परिकल्पना के निम्नलिखित लाभ हैं —

1. परिकल्पना के द्वारा प्रतिभूतियों का बाजार विस्तृत हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक सट्टेबाज परिस्थिति के अनुकूल प्रतिभूतियों का क्रय-

विक्रय व्यवहार खूब करता है। यह सब कुछ स्वस्थ परिकल्पना द्वारा ही सम्भव है यदि परिकल्पना अस्वस्थ होगी तो परिकल्पों को प्रतिभूतियो का क्रय-विक्रय करने के लिये कोई प्रोत्साहन नहीं मिलेगा।

2. स्कन्ध परिकल्पना के द्वारा पूँजी की गतिशीलता (Mobility) बढ़ती है क्योंकि सूचीबद्ध प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय के लिए स्थायी विपणि हो जाती है। ऐसा होने से विनियोगकों को भी लाभ होता है।

3. स्वस्थ परिकल्पना द्वारा वस्तुओं के मूल्य में सन्तुलन स्थापित हो जाता है। इससे उपभोग, उत्पत्ति व विनिमय के क्षेत्र में बड़ी सुविधा हो जाती है। जिस समय वस्तुओं के मूल्य में कम उतार चढ़ाव होता है, उस समय विपणि में व्यवहार करने वालों को अधिक लाभ होता है।

इससे स्पष्ट है कि परिकल्पना का स्वस्थ होना बहुत आवश्यक है। स्वस्थ परिकल्पना देश व समाज के लिए लाभप्रद ही होती है। कुछ लोगों का यह मत है कि परिकल्पना चाहे स्वस्थ हो अथवा अस्वस्थ, उसे अवश्य ही समाप्त कर देना चाहिये किन्तु वास्तव में यह उनकी भूल है।

परिकल्पना एवं विनियोग में अन्तर

1. परिकल्पना एवं विनियोग में बहुत अन्तर है। विनियोक्ता वह व्यक्ति है जो प्रतिभूतियों का क्रय इस उद्देश्य से करता है कि उनसे उसे आमदानी हो। उसका लक्ष्य यह रहता है कि वह अपनी संचित राशि पर एक निश्चित तथा स्थायी आय प्राप्त करता रहे। प्रतिभूतियों के मूल्य के उतार-चढ़ाव से उसको अधिक सम्बन्ध नहीं। किन्तु परिकल्पक (Speculator) का ध्यान निश्चित तथा स्थायी आय की ओर नहीं रहता है। उसका मुख्य उद्देश्य प्रतिभूतियों के मूल्य पर उतार-चढ़ाव से अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है।

2. परिकल्पित व्यवहारों का क्रेता न तो प्रतिभूतियाँ वास्तविक रूप से क्रय ही करता है और न ही उसका मूल्य देता है। इसी प्रकार विक्रेता के पास न तो प्रतिभूतियाँ ही होती हैं जिन्हें कि वह बेच रहा है और न ही वह उनका मूल्य लेता है। केवल मूल्य के अन्तर के लेने-देने से व्यवहार तय हो जाता है, किन्तु यह बात एक विनियोक्ता के लिए नहीं है।

3. विनियोक्ता अपनी पूँजी द्वारा ही व्यवहार करता है किन्तु परिकल्पक ऋण लेकर भी रुपया चुका सकता है।

4. परिकल्पना में प्रतिभूतियों के मूल्यों के वर्तमान एवं भावी अन्तरों में व्यवहार होता है किन्तु विनियोग में ऐसा नहीं होता।

इससे यह स्पष्ट होता है कि परिकल्पक और विनियोक्ता में केवल इतना ही अन्तर है कि विनियोक्ता तो यह चाहता है कि उसकी आय निरन्तर एवं स्थायी

रूप से बनी रहे, किन्तु परिकल्पक का ध्यान मूल्य-वृद्धि की ओर होता है, आय की ओर नहीं।

परिकल्पना तथा जुए में अन्तर

1. कुछ व्यक्तियों की धारणा है कि परिकल्पना और जुए में कोई अन्तर नहीं है। उनका कहना है कि कोई व्यक्ति जिस प्रकार से जुए में हार-जीत सकता है, उसी प्रकार से परिकल्पना में भी लाभ-हानि हो सकती है। किन्तु वास्तव में इन दोनों के अन्दर अन्तर है। यह ठीक है कि आर्थिक दृष्टि से इन दोनों में जो अन्तर पाया जाता है वह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। नैतिक दृष्टि से दोनों में महान् अन्तर है। परिकल्पना को समाज कुदृष्टि से नहीं देखता है, किन्तु जुए को कोई भी सभ्य समाज पसन्द नहीं करता है।

2. जुए में लोग अनावश्यक तथा बनावटी जोखिम उठाते हैं और कभी-कभी तो जोखिम स्वयं पैदा करते हैं, किन्तु परिकल्पना में केवल आवश्यक जोखिम ही उठाई जाती है। इसमें सदैव इस बात का प्रयास किया जाता है कि जोखिम कम से कम हो।

3. परिकल्पना में वैज्ञानिक व आर्थिक दृष्टि से दूरदर्शिता होती है, किन्तु जुए में भविष्य के विषय में कोरी कल्पना होती है उसमें तो यह है कि दाव जम गया तब तो ठीक है वरना हार होती है। जुए में किसी विपणि के अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं होती है। वह तो भाग्य की आजमाइश है। लेकिन परिकल्पना में भाग्य को नहीं आजमाया जाता। उसमें तो विभिन्न विपणियों का अध्ययन करने के पश्चात् भाग्य के विषय में अनुमान लगाया जाता है।

4. जुआ खेलना वैधानिक दृष्टि से अनुचित है परन्तु परिकल्पना पर सरकार की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं है। कोई भी व्यक्ति स्कन्ध-विनिमय में या अन्य मण्डियों में जाकर परिकल्पना कर सकता है।

5. स्कन्ध विनिमय विपणि में जो कार्य किया जाता है वह उचित और न्याय-संगत होता है किन्तु जुए में प्रत्येक कार्य न्यायसंगत नहीं होता।

6. जुए में वस्तुओं का आदान-प्रदान तनिक भी नहीं होता। ये लोग केवल मूल्यों पर दाव लगाते हैं, वस्तु का लेन-देन कभी नहीं करते। इसके विपरीत परिकल्पना में अंशों एवं प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय भविष्य के अनुबन्ध पर किया जाता है।

7. जुए में एक पक्ष हारता है तथा दूसरा जीतता है। हारने या जीतने वाले पक्ष को दाव लगाते समय परिणाम का तनिक भी पता नहीं रहता है। यदि दाव बैठ गया तो जीत वरना हार, किन्तु परिकल्पना में परिकल्पक को परिणाम के विषय में पहले से ही अनुमान रहता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन दोषों में व्यवहार सम्बन्धी अन्तर पाया जाता है। यदि व्यवहार को भविष्य के विषय में सोच-समझकर एवं न्याय-संगत रीति

से किया गया है तो वह परिकल्पना की कोटि में आता है अन्यथा वह जुए की कोटि में ही आयगा।

विकल्प या ऐच्छिक सौदे
(Option Transaction)

स्कन्ध-विपणियों में साधारण व्यवहारों के अतिरिक्त ऐच्छिक सौदे भी किये जाते हैं। ऐच्छिक सौदा अथवा तेजी-मन्दी लगाना भी एक सट्टे का व्यवहार है। इस प्रकार के सौदे स्कन्ध-विपणियों में सट्टेवालों के द्वारा किये जाते हैं तथा उनके लिये ये बड़े सुविधाजनक होते हैं। ये सौदे देखने में पेचीदा मालूम होते हैं किन्तु वास्तव में ये बहुत आसान होते हैं। इनके द्वारा हानि की आशंका बहुत कम होती है क्योंकि ये सौदे उन अंशों तथा प्रतिभूतियों में कम से कम भय पर अधिक से अधिक लाभ कमाने में सहायक होते हैं जिनका मूल्य घटता-बढ़ता रहता है। इस प्रकार के सौदे नए तथा कम अनुभवी सट्टेवालों के लिए लाभप्रद हैं क्योंकि इनके द्वारा उनका दायित्व सीमित रहता है।

इन ऐच्छिक सौदों में क्रय तथा विक्रय का अधिकार व्यापारी की इच्छानुसार दिया जाता है जो किसी निश्चित सीमा के अन्दर और एक निश्चित प्रतिभूति के लिए ही उपयोग किया जा सकता है। ये साधारण सौदों से भिन्न होते हैं तथा इनको एक निश्चित मिति पर अवश्य निबटाया जाता है। इस अधिकार के प्रयोग के लिए जो शुल्क देना पड़ता है उसे 'विकल्प शुल्क' या 'विकल्प प्रब्याजि' (Option Premium) कहते हैं। इस शुल्क की दर प्रतिभूतियों के मूल्य पर निर्भर रहती है।

विकल्प व्यवहारों को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. तेजी लगाना या क्रय विकल्प (Call option)।
2. मन्दी लगाना या विक्रय विकल्प (put option)।
3. दोहरा अथवा नजराना विकल्प (Duble option or Call and Put option)।
4. अधिक्रय विकल्प (Call of more option)।
5. अधिविक्रय विकल्प (Put of more option)।

अब इन सबका अलग-अलग वर्णन किया जायगा।

तेजी लगाना या क्रय विकल्प

इस प्रकार के व्यवहार में तेजी वाला अपने मध्यस्थ के द्वारा कृत्यकी से यह अनुबन्ध कर लेता है कि भुगतान दिवस पर एक निश्चित मात्रा में तथा एक निश्चित मूल्य पर प्रतिभूतियों का क्रय करना या न करना उनकी इच्छा पर निर्भर करता है। इसके लिए उसे आवश्यक शुल्क जमा कराना पड़ता है। शुल्क जमा कर देने के पश्चात् तेजी लगाने वाला भाव देखता रहता है। यदि, सम्भावित तेजी आ जाती है

तो निश्चित मूल्य से जितनी अधिक तेजी आती है उसमें से तेजी लगाने का शुल्क काटकर उसको लाभ होता है। उदाहरण के लिए एक तेजी वाला यह आशा करता है कि अमुक अंशों का मूल्य दो माह के भीतर काफी चढ़ जाएगा तो वह बाजार भाव पर दो माह के अन्दर खरीदने का लाभ प्राप्त करने के लिए तेजी लगाता है। यदि उसका अनुमान ठीक निकलता है तो वह निश्चित अवधि के भीतर अंशों को अधिक मूल्य पर बेचकर लाभ कमाता है। यदि उसकी आशा के विरुद्ध मूल्य गिरता है तो वह अपने अधिकार का उपयोग नहीं करेगा और उसने जो शुल्क दिया था, केवल वही व्यर्थ जायेगा।

मन्दी लगाना या विक्रय विकल्प

इसके द्वारा मन्दी वाले को निश्चित मूल्य पर तथा एक आगामी निश्चित तिथि तक किसी वस्तु के बेचने या न बेचने का अधिकार प्राप्त होता है। इस प्रकार के व्यवहार ठीक तेजी वाले व्यवहारों के विपरीत होते हैं। मन्दी लगाने वाले को यह अधिकार एक निश्चित शुल्क जमा कराने के पश्चात् हो जाता है। शुल्क देने वालों को यह अधिकार होता है कि वह शुल्क लेने वाले को यदि चाहें तो निश्चित तिथि को माल की निश्चित मात्रा निश्चित भाव पर बेचें अथवा न बेचें। इस प्रकार के व्यापारी को उस निश्चित मूल्य से मन्दी आ जाने के कारण लाभ होता है और उसको निश्चित समय तथा उस मूल्य के अन्तर के बराबर लाभ मिल जाता है जिस पर कि वह सौदा बराबर करता है। जब कभी बाजार में मन्दी आने की सम्भावना होती है तब मन्दी के सौदे किये जाते हैं। उदाहरण के लिए एक व्यापारी पचास अंशों पर तीन माह के लिए 10 रु० मूल्य पर मन्दी लगाता है। यदि तीन माह के अन्दर अथवा अन्त तक वह उन अंशों के मूल्य गिर जाने के कारण 5 रु. की दर से क्रय कर लेता है तो उसको इन दोनों मूल्यों का अन्तर अर्थात् 250 रु. मन्दी लगाने के लाभ के रूप में मिल जायेंगे। इस लाभ में शुल्क पर किये गये व्यय को कम कर दिया जायेगा। यदि किसी कारणवश मन्दी लगाने वाले की आशानुसार मन्दी नहीं आती है अथवा केवल इतनी कम मन्दी आती है कि मन्दी लगाने के व्यय से कम लाभ होता है तो उसको हानि होगी। किसी भी दशा में उसकी हानि जमा किये गये शुल्क से अधिक नहीं होती।

दोहरा अथवा नजराना विकल्प

इसके अन्दर विकल्पधारी को खरीदने अथवा बेचने दोनों प्रकार का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए उसे दोहरा शुल्क देना पड़ता है। दोहरे शुल्क के बदले में जमा करने वाले को अधिकार प्राप्त हो जाता है कि भविष्य में निश्चित तिथि को माल की निश्चित मात्रा निश्चित भाव पर शुल्क लेने वाले से खरीद ले, उसके हाथ बेच दे अथवा न बेचे या न खरीदे। इस प्रकार चाहे वस्तु का मूल्य घटे या बढ़े, शुल्क जमा कराने वाले को लाभ की सम्भावना रहती है, क्योंकि वह बराबर की स्थिति के अनुसार माल का क्रय एवं विक्रय कर

सकता है। दोहरा विकल्प उन अंशों पर लगाया जाता है जिनमें बहुत तेजी-मन्दी आती रहती है। यदि बाजार मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो दोहरे विकल्प को क्रय-विक्रय में लाभ नहीं होता है। ऐसी स्थिति में वह न तो कोई वस्तु खरीदेगा और न बेचेगा। ऐसा करने पर उसे जमा किया हुआ शुल्क वापिस नहीं मिलता है।

तेजी, मन्दी तथा दोहरे सौदे प्रचलित बाजार मूल्य से कम या अधिक भाव पर भी हो सकते हैं। इन्हें घट-बढ़ लगाने (Gale option) के सौदे कहते हैं।

अधिक्रय विकल्प

ऐसे व्यवहारों में तेजी वाले को अनुबन्ध में उल्लेखित संख्या से दुगुनी संख्या भुगतान तिथि तक खरीदने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि तेजी वाला 10 अंश खरीदने सम्बन्धी विकल्प लेता है तो उसे अनुबन्ध के अनुसार दस अंश तो खरीदने ही पड़ेंगे किन्तु यदि वह चाहे तो विकल्प शुल्क देकर उतने ही अंश और खरीद सकता है। इस विकल्प को वह केवल उसी स्थिति में प्रयोग करेगा जबकि मूल्य उसके अनुसार बढ़े हों अर्थात् उसे व्यवहार करने से लाभ प्रतीत होता हो। यदि किसी कारणवश मूल्य कम हो जाता है तो वह अधिक्रय विकल्प का प्रयोग नहीं करेगा; किन्तु पहले अनुबन्ध के अनुसार अंशों के मूल्य में कमी हो जाने पर भी उसे वह हानि सहन करनी पड़ेगी। अधिक्रय विकल्प की दशा में अर्थात् 10 अंशों में अधिक अंशों के ऊपर उसे केवल शुल्क की ही हानि होगी।

अधिविक्रय विकल्प

यदि मन्दी वाला यह आशा करता है कि भविष्य में प्रतिभूतियों के मूल्य कम हो जायेंगे तो वह अधिविक्रय विकल्प खरीद लेगा। इस विकल्प में उसका पहले वाला अनुबन्ध शामिल रहेगा। उदाहरण के लिए माना कि तेजी वाला दस अंशों के क्रय का अनुबन्ध करता है; किन्तु वह बाद में निश्चित शुल्क देकर दस अधिविक्रय विकल्प अनुबन्ध भी कर लेता है। यह विकल्प अनुबन्ध वह हानि से बचने के लिए करता है। माना दस अंशों पर उसे 10 रुपये शुल्क देना पड़ता है तथा उनका अनुबन्ध मूल्य 100 रुपये प्रति अंश है। यदि उसके अनुमानानुसार मूल्य 100 रुपये के स्थान पर 120 रुपये हो जाता है तो उसके पहले अनुबन्ध से $10 \times 20 = 200$ रुपये लाभ होगा। तथा अधिविक्रय विकल्प अनुबन्ध से 200—10 शुल्क = 190 रुपये लाभ होगा। कुल मिलाकर 390 रुपये लाभ होगा। यदि किसी कारणवश उसका अनुमान गलत निकलता है तो पहले अनुबन्ध के अनुसार उसे गिरे हुए मूल्य के बराबर ही हानि होगी जैसे यदि मूल्य गिर कर 90 रुपये प्रति अंश हो जाता है तो उसे $10 \div 10 = 100$ रुपये की हानि होगी, किन्तु अधिनियम विकल्प अनुबन्ध में उसे केवल शुल्क की हानि रहेगी। इस प्रकार मूल्य कम हो जाने पर उसे कम हानि होती है।

सुरक्षात्मक सौदे
(Hedging Transactions)

सट्टे के सौदों से भिन्न इन सौदों का मूल उद्देश्य वस्तुओं के मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों से लाभ कमाना नहीं, बल्कि इन परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाली जोखिम से सुरक्षा प्राप्त करना है। इन अर्थों में, सुरक्षात्मक सौदा एक बीमा है जो मूल्यों के परिवर्तन से उत्पन्न जोखिम से रक्षा करता है। इसका अर्थ है—तैयारी के बाजार में किये गये किसी सौदे की जोखिम को वायदे के बाजार में प्रतिकूल सौदा करके पूरा करना। उदाहरणार्थ मानलो कोई व्यापारी तैयारी के बाज़ार (Ready Market) से कोई वस्तु तीन महीने की बिलम्बित सुपुर्दगी (Forward delivery) की शर्त पर खरीदता है और उसे लगता है कि वह उसके मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों से उत्पन्न जोखिम को वहन नहीं कर सकता है। अतः वह इससे बचने के लिए उसी वस्तु का, उतनी ही मात्रा में और उसी तिथि के लिए जब उसे उसकी सुपुर्दगी मिलती है, वायदा बाजार में बेचने का सौदा कर लेगा। बाद में, यदि वस्तु का मूल्य घट जाता है तो उस व्यापारी को तैयारी के बाजार में, उस वस्तु की खरीदारी पर हानि हो जायेगी, लेकिन वायदे के बाजार में उस वस्तु की बिक्री पर उतना ही लाभ हो जायेगा। अब यदि वह तैयार बाजार में खरीदी हुई वस्तु की सुपुर्दगी ले लेता है, लेकिन वायदा बाजार में अपने बिक्री के सौदे का मूल्य गिर जाने के कारण लाभ लेकर निपटा देता है तो उसे खरीदी गयी वस्तुयें चालू मूल्य पर ही मिल जाती हैं (वायदे का लाभ तैयारी की हानि को पूरा कर देता है।) यह व्यापारी जिस प्रकार तैयारी के बाजार में बिलम्बित सुपुर्दगी की शर्त पर खरीदे गये माल की जोखिम को वायदे के बाजार में बेचने के सौदे से पूरा कर लेता है, उस प्रकार तैयारी के बाजार में बेचने के सौदे की जोखिम को वायदे के बाजार में खरीदने के सौदे से पूरा कर सकता है। हाँ, यह सुरक्षा तभी सम्भव है जब तैयारी और वायदे के बाजार में प्रचलित मूल्य एक समान हों।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि सुरक्षात्मक सौदे दो प्रकार के हो सकते हैं—

(i) **सुरक्षात्मक विक्रय** (Hedge Sale)—तैयारी के बाजार में खरीद के सौदे की जोखिम को वायदे के बाजार में उसी प्रकार के बिक्री के सौदे से पूरा करने को सुरक्षात्मक विक्रय कहते हैं।

(ii) **सुरक्षात्मक क्रय** (Hedge Purchase)—सुरक्षात्मक विक्रय से भिन्न इस सौदे का अर्थ है, तैयार के बाजार (Spot market) में किये गये विक्रय के सौदे की जोखिम को पूरा करने के लिए उस वस्तु की उसी मात्रा का और उसी तिथि के लिये वायदा बाजार (Future market) में खरीदारी का सौदा करना।

उदाहरण (Example)—सुरक्षात्मक सौदों की कार्य-विधि को एक उदाहरण के द्वारा भी समझा जा सकता है। मान लीजिये, एक कपड़े का निर्माता अपने किसी

ग्राहक को एक विक्रय अनुबन्ध के आधीन कपड़े की 1,000 गाँठें तीन महीने बाद देने का वचन देता है। स्पष्ट है, कि अनुबन्ध करते समय वह जो मूल्य तय करेगा वह कपड़े के बनाने में लगने वाली कपास की लागत, उत्पादन की लागत और अपेक्षित लाभ की राशि को जोड़कर निकाला जायेगा। लेकिन यदि अनुबन्ध करने के पश्चात कपास का मूल्य बढ़ जाता है तो उसकी सारी गणना गलत हो जायेगी और उसे लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़ेगी। यदि निर्माता थोड़ा भी बुद्धिमान है तो वह इस जोखिम से बच सकता है। वह 1,000 गाँठें कपड़े की बेचने का अनुबन्ध करने के साथ-साथ उसी तिथि में इस कपड़े के बनाने में लगने वाली कपास की खरीदी के लिये वायदा बाजार (Future market) में एक सौदा कर लेगा। मान लीजिये, अनुबन्ध की तिथि पर तैयार और वायदा, दोनों बाजारों में कपास का मूल्य 500 रुपये प्रति गाँठ है। अब यदि 3 महीने के बाद यह मूल्य बढ़कर 510 रुपये हो जाता है तो निर्माता को कोई हानि नहीं होगी। इसका कारण यह है कि वायदा बाजार में 500 रुपये के मूल्य से खरीदी गयी कपास पर तो उसे 10 रुपये प्रति गाँठ का लाभ हो जायेगा और तैयारी के बाजार में मूल्य बढ़ जाने से कपास से बने कपड़े को बेचने से 10 रुपये प्रति गाँठ की हानि होगी। वायदा बाजार का यह लाभ तैयारी के बाजार की हानि को पूरा कर देगा। इसके विपरीत, मान लीजिये तीन महीने के बाद कपास का मूल्य 500 रुपये से गिरकर 490 रुपये हो जाता है। अब इस परिवर्तन के फलस्वरूप, निर्माता को वायदे के बाजार में 10 रुपये प्रति गाँठ का लाभ हो जायेगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि सुरक्षात्मक सौदे के फलस्वरूप, निर्माता की जोखिम तो पूरी हो जाती है लेकिन उसे कोई पृथक लाभ नहीं होता।

सुरक्षात्मक सौदों के लाभ (Advantages of Hedging)

सुरक्षात्मक सौदे मूल्यों के उतार-चढ़ाव के प्रति सुरक्षा प्रदान करके व्यापारी, निर्माता तथा निर्यातकर्त्ता सभी को महत्वपूर्ण लाभ पहुँचाते हैं—

(i) **व्यापारी को लाभ** (Benefit to the Trader)—व्यापारियों को प्राय: माल का स्टाक करना पड़ता है और यह स्टॉक काफी लम्बी अवधि तक रखा जाता है। अब यदि इस संग्रहण की अवधि में इन वस्तुओं के मूल्य घट जायें तो व्यापारी को हानि उठानी पड़ेगी। सुरक्षात्मक सौदों के द्वारा वह इस हानि से बच सकता है और मूल्यों के उतार-चढ़ाव की जोखिम को सटोरियों के ऊपर टाल सकता है।

(ii) **निर्माता को लाभ** (Benefit to the Manufacturer)—सुरक्षात्मक सौदों के द्वारा एक निर्माता अपने कच्चे माल की लागत को स्थायी रख सकता है और इसके मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों की जोखिम को सटोरियों के ऊपर टाल सकता

है। कच्चे माल की लागत पर नियन्त्रण रखने से वह अपने उत्पादन के कार्यक्रम को बजट के अनुसार चला सकता है।

(iii) **निर्यातकर्त्ता को लाभ** (Benefit to the Exporter)—व्यापारियों और निर्माताओं की भाँति निर्यातकर्त्ता भी, निर्यात की वस्तुओं के मूल्यों में विदेशी व्यापारी के साथ सौदा करने की तिथि से लेकर उनकी सुपुर्दगी की तिथि तक, होने वाले परिवर्तनों की जोखिम को सुरक्षात्मक सौदे के द्वारा सटोरियों द्वारा टाल सकता है और इस भाँति अपने अपेक्षित लाभ को कायम रख सकता है।

(iv) **साख सुविधा** (Credit Facility)—मूल्यों में उतार-चढ़ाव से सुरक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त ये सौदे व्यापारी को अपनी माल की प्रतिभूतियों पर बैंक से अधिक ऋण दिलाने में भी सहायता करते हैं। सुरक्षात्मक सौदों के फलस्वरूप, बैंक उसी माल पर अधिक ऋण देता है क्योंकि उस माल की जोखिम इन सौदों द्वारा पूरी कर दी जाती है।

सुरक्षात्मक सौदों की सीमायें (Limitation of Hedging)

(i) **सीमित उपयोगिता** (Limited utility)—सुरक्षात्मक सौदे केवल तभी उपयोगी सिद्ध होते हैं जबकि सम्बन्धित वस्तु के मूल्य तैयार और वायदा बाजार (Ready and future markets) में एक ही प्रकार से और एक ही राशि से घटें या बढ़ें। यदि ऐसा नहीं होगा, तो व्यापारी को इन सौदों से पूर्ण सुरक्षा नहीं मिल सकेगी क्योंकि एक सौदे का लाभ दूसरे सौदे की हानि को पूरा नहीं कर सकेगा। उदाहरणार्थ, मानलो एक व्यापारी 1 जनवरी 1970 को 1,000 कपास की गाँठों के दो महीने बाद की सुपुर्दगी के लिए सौदा करता है—एक तैयार बाजार में 500 रुपये प्रति गांठ के हिसाब से खरीदने के लिए और दूसरा वायदा बाजार में 510 रुपये प्रति गांठ के हिसाब से बेचने के लिए। अब यदि सुपुर्दगी के समय तैयार बाजार में कपास का मूल्य 480 रुपये हो जाता है, लेकिन वायदा बाजार में यह केवल 500 रुपये रहता है तो व्यापारी को तैयारी में 20 रुपये प्रति गाँठ की हानि हो जायेगी लेकिन वायदे में केवल 10 रुपये प्रति गाँठ का लाभ होगा। अतः उसे 10 रुपये प्रति गाँठ की शुद्ध हानि उठानी पड़ेगी। व्यवहार में वायदा बाजार और तैयारी के बाजार के मूल्य न केवल भिन्न होते हैं, बल्कि कभी-कभी तो ये विपरीत दिशाओं में भी चलने लगते हैं। अतः सुरक्षात्मक सौदों की उपयोगिता बहुत सीमित हो जाती है।

(ii) **सीमित क्षेत्र** (Limited Scope)—सुरक्षात्मक सौदों का उपयोग केवल उन वस्तुओं के लिए किया जा सकता है, जो उपज विनिमय बाजार में स्वीकृत हों। यही नहीं, क्योंकि उपज विनिमय बाजार में केवल कुछ ग्रेडों की वस्तुओं का लेन-देन किया जाता है, अन्य ग्रेडों की वस्तुओं की जोखिम को इन सौदों के द्वारा सुरक्षित नहीं किया जा सकता।

(iii) **सौदे की इकाई में भिन्नता** (Difference in the trading unit)—वास्तविक बाजार में वस्तुओं का क्रय-विक्रय किसी भी मात्रा में किया जा सकता है, लेकिन विनिमय बाजार में यह सौदा निर्धारित इकाइयों में ही किया जा सकता है। फलस्वरूप सुरक्षात्मक सौदा इन इकाइयों में करना पड़ेगा लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक सौदा भी उन्हीं इकाइयों में हो।

(iv) **पूर्ण सुरक्षा नहीं** (Not full protection)—एक निर्माता सुरक्षात्मक बिक्री के द्वारा कच्चे माल की जोखिम को तो पूरा कर सकता है लेकिन अन्य लागतों में होने वाले परिवर्तनों की जोखिम को पूरा नहीं कर सकता। फलतः उसके लिए इसका लाभ केवल आंशिक है, पूर्ण नहीं।

प्रश्न 26. सट्टे का आर्थिक महत्व बतलाइये। यह कब जुए में बदल जाता है? क्या स्कन्ध विनिमय पर जुआ रोका जा सकता है?

Discuss the economic role of Speculation. When does it turn into gambling? Can gambling on a stock exchange be prevented?

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर के लिए पिछले प्रश्नोत्तर का भाग (3) देखिए।

अथवा

आप विकल्प के सौदों से क्या समझते हैं? उदाहरण सहित विभिन्न प्रकार के विकल्पों को समझाइये और बताइये कि ये विपरीत मूल्य परिवर्तन के विरुद्ध में किस प्रकार बीमा का काम करते हैं?

What do you understand by Option Dealings? Explain with examples the different forms of options and indicate how they serve as insurance against advance price changes.

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर के लिए पिछले प्रश्नोत्तर का भाग (4) देखिए।

10 उपज-विनिमय-विपणि

(PRODUCE-EXCHANGE-MARKET)

प्रश्न 27. उपज विपणियां क्या हैं ? संगठित उपज विपणियों की आर्थिक उपयोगिता की विवेचना कीजिये ।

What are the Produce Exchanges ? Discuss the economic utility of Organised Produce exchanges.

अथवा

उपज-विनिमय विपणि क्या है ? इसके कार्य और उपयोगिता समझाइये ।

What is a Produce Exchange market ? Explain its functions and usefulness.

अथवा

उपज-विनिमय विपणि से आप क्या समझते हैं ? इसके आर्थिक कार्यों का विवेचन कीजिये ।

What do you understand by a Produce Exchange Market. Discuss its economic functions.

उत्तर—उपज-विनिमय विपणि का अध्ययन करने से पूर्व 'वस्तु विपणि या बाजार' (Commodity Market) का अर्थ समझना आवश्यक है। वस्तु बाजार एक ऐसे स्थायी एवं सुसंगठित स्थान को कहते हैं जहाँ पर प्रकृति के उत्पन्न होने वाले पदार्थों का व्यापार करने के लिए कितने ही व्यापारी एकत्रित होते हैं। वस्तु-विपणि में क्रय-विक्रय होने वाले पदार्थों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) कृषि-पदार्थ एवं औद्योगिक कच्चा माल जैसे चाय, गेहूं, चावल, मक्का, बाजरा, चना, कपास व जूट आदि।

(ii) निर्मित पदार्थ (Manufactured goods) जैसे कपड़ा, चीनी व जूट की बनी हुई वस्तुएँ आदि।

(iii) खनिज पदार्थ जैसे सोना, चाँदी, ताँबा व लोहा आदि।

इससे स्पष्ट है कि वस्तु विपणियों में किसी भी प्रकार की वस्तुओं का व्यापार किया जा सकता है, चाहे वे कृषि-पदार्थ हों या निर्मित पदार्थ अथवा खनिज पदार्थ। ऐसे बाजारों में निम्नलिखित बातों का पाया जाना नितान्त आवश्यक है—

(अ) क्रेता व विक्रेताओं का अधिक संख्या में उपस्थित होना।

(ब) उनमें स्वतन्त्र स्पर्धा (free Competition) का होना।

(स) अधिक मात्रा में वस्तुओं का क्रय-विक्रय होना।

(द) क्रय-विक्रय कराने के लिए मध्यस्थों का होना।

भारतवर्ष में वस्तुओं की बड़ी-बड़ी मण्डियाँ या थोक बाजार बनाये जाते हैं। किन्तु इनको हम उपज-विनिमय-विपणि नहीं कह सकते हैं। इसका कारण यह है कि उपज-विनिमय वस्तु बाजार की ही एक जाति है। यहाँ केवल कृषि-पदार्थ एवं औद्योगिक कच्चे माल का ही व्यापार होता है जैसे गेहूं, चाय, चावल, तिलहन, जूट व चना आदि। इसके अतिरिक्त उपज-विनिमय-विपणि में केवल सदस्य ही व्यापार कर सकते हैं, किन्तु वस्तु-विनिमय-बाजार में कोई भी व्यक्ति क्रय-विक्रय कर सकता है। यहाँ पर यह सौदे नमूने दिखाकर नहीं किये जाते है, बल्कि वे कुछ निश्चित श्रेणियों के आधार पर किये जाते हैं। यहाँ केवल वे ही वस्तुएँ व्यापार में आती हैं जो टिकाऊ (Durable) हों, अधिक परिमाण में क्रय-विक्रय की जाती हों, तथा जिनके मूल्य में उतार-चढ़ाव होते रहते हैं।

हमारे देश में उपज-विनिमय-विपणि की उन्नति विशेष रूप से प्रथम महायुद्ध सन् 1914-18 के पश्चात् हुई। इसका कारण यह है कि युद्ध की वजह से बहुत-सी निर्यात की सुविधायें उत्पन्न हो गईं और इस कारण सट्टेबाजी के व्यवहारों में तथा भावी अनुबन्धों में अधिकता होने लगी। इसके परिणामस्वरूप, भारतवर्ष में कई स्थानों पर उपज-विनिमय-विपणियों की स्थापना हुई। प्रथम महायुद्ध से पूर्व भी यहाँ कुछ बाजारों से भावी व्यवहार हुआ करते थे, किन्तु उनका रूप आजकल के चैम्बर ऑफ कॉमर्स की तरह नहीं था। इस समय भारतवर्ष में अनेक उपज-विनिमय विपणियाँ हैं। इनकी सबसे अधिक संख्या पंजाब में है, फिर क्रमशः उत्तरप्रदेश, बम्बई व बंगाल आदि में है।

उपज-विनिमय-विपणि के कार्य

उपज-विनिमय-विपणि के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—

1. **संरक्षण प्रदान करना**—उपज-विनिमय-विपणि में अधिकतर अग्रिम व्यवहार (Forward Transaction) किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विपणियाँ ऐसी भी हैं जहाँ तत्काल व्यवहार (Spot Transaction) भी ऐसे होते हैं, जैसे, इण्डिया प्रोड्यूस एसोसिएशन, कलकत्ता। तत्काल व्यवहारों में पदार्थों का विक्रय तथा भुगतान उसी समय होता है, किन्तु अग्रिम व्यवहार में वस्तु की पूर्ति (Supply) एवं भुगतान एक अनुबन्ध द्वारा भविष्य में किया जाता है। ये भावी अनुबन्ध एक प्रकार से बीमे का कार्य करते हैं क्योंकि इनके आधार पर एक व्यापारी एक ओर तो वस्तुओं को खरीदता है तथा दूसरी ओर, उसी समय उन्हें बेच देता है। इससे उसको एक व्यवहार से होने वाली हानि की पूर्ति दूसरे व्यवहार से होती है।

2. **आर्थिक सहायता देना**—उपज-विनिमय-विपणि निम्नलिखित प्रकार से आर्थिक सहायता प्रदान करती है—

(अ) जहाँ पर कार्य थोड़े लाभ पर ही हो जाता है।

(ब) बैंकों द्वारा ऋण दिये जाने में सुरक्षितता प्रदान करना।

(स) वस्तुओं के केवल गोदाम-रसीद द्वारा ही तत्कालीन हस्तान्तरण करना।

3. **मण्डी का क्षेत्र विस्तृत करना**—उपज-विनिमय-विपणि मण्डी का विस्तृत क्षेत्र प्रदान करती है तथा उस क्षेत्र को निरन्तर बनाये रखने का प्रयास करती है।

4. **मूल्यों में स्थिरता रखना**—उपज-विनिमय-विपणि का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय विपणियों से होता है। अतः वे (विपणियाँ) बेतार के तार (Wireless) द्वारा वहाँ के मूल्यों को मालूम कर लेती हैं और अपने यहाँ के मूल्यों को उन्हीं के अनुसार स्थिर रखने का प्रयास करती हैं। इसके अतिरिक्त ये विपणियाँ परिकल्पना (Speculation) के कारण वस्तु पर प्रभाव डालने वाले प्रत्येक घटक (Factor) को भी महत्त्व देती हैं। इसके परिणामस्वरूप भी मूल्य स्तर (stable) हो जाता है।

5. **सूचना देने का कार्य**—उपज-विनिमय-विपणियों द्वारा निम्नलिखित सूचना प्राप्त होती है—

(अ) इनके द्वारा जनता को समस्त वर्तमान एवं भावी मूल्यों का अनुमान हो जाता है।

(ब) जनता आँकड़ों का संग्रह करके वस्तु की माँग, पूर्ति व यातायात व्यय आदि का ज्ञान प्राप्त कर लेती है। इसके द्वारा वस्तुओं के मूल्य में होने वाले परिवर्तन का ज्ञान सुगमता से किया जा सकता है।

(स) इसके द्वारा भविष्य की मूल्य-सूची मालूम हो जाने के कारण निर्माण-कर्त्ता निश्चिन्तापूर्वक क्रय-विक्रय कर सकते हैं।

6. **वस्तुओं का वर्गीकरण एवं श्रेणीबन्धन करना**—वस्तुओं एवं उपज का वर्गीकरण तथा श्रेणीबन्धन करना, उपज-विनिमय-विपणि का एक महत्वपूर्ण कार्य है। विपणि प्रत्येक वस्तु का वर्गीकरण करके प्रत्येक वर्ग का **एक विशिष्ट** नाम रख देती है तथा उसी नाम से उस वस्तु के सौदे किये जाते हैं।

7. **झगड़ों के निपटारों में सुविधा देना**—व्यापार में झगड़ा हो जाना स्वाभाविक है। यदि प्रसंविदे में मतभेद हो जाने के कारण कोई झगड़ा हो जाता है तो समझौता समिति के द्वारा समझौता कराने का प्रयास किया जाता है। समझौता कराते समय उपज विनिमय विपणि द्वारा बनाये गये नियमों की सहायता लेती हैं।

8. **सौदों का नियमबद्ध व्यापार**—क्रेता तथा विक्रेता को व्यापार करने के लिए प्रत्येक उपज विनिमय विपणि कुछ नियमों का निर्धारण करती है। इन नियमों

के कारण सौदों का संचालन एवं सम्पादन सुचारु रूप से होता रहता है तथा आपसी मतभेद की सम्भावना बहुत कम रहती है।

9. **प्रसंविदों का आसान भुगतान**—उपज विनिमयों ने भुगतान की सुविधा के लिए समाशोधन गृहों की स्थापना की है। समाशोधन गृहों की स्थापना से प्रसंविदों का भुगतान काफी आसान हो गया है।

उपर्युक्त कार्यों से स्पष्ट है कि उपज-विनिमय-विपणियाँ अपने अनुभव व कार्यकुशलता के द्वारा वस्तुओं के मूल्यों में समानता आसानी से ला सकती हैं। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा बाजार में माँग और पूर्ति को बराबर लाने का प्रयत्न भी किया जाता है।

उपज विनिमय विपणि के लाभ या आर्थिक उपयोगिता—उपज विनिमय विपणि उत्पादकों, ग्राहकों, व्यापारियों तथा समाज के अन्य सभी वर्गों के लिए लाभदायक है। इससे प्राप्त होने वाले प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं—

1. **भावी परिवर्तनों की जोखिम से सुरक्षा**—उपज विनिमय विपणि के द्वारा वस्तुओं के क्रेता, अपनी क्रय की गई वस्तु के मूल्य में होने वाले भावी परिवर्तनों की जोखिम को सुरक्षात्मक सौदों के द्वारा कर सकते हैं। इस प्रकार मूल्यों में होने वाले भावी परिवर्तनों की जोखिम से बचा जा सकता है।

2. **जोखिम का सटोरियों को हस्तान्तरण**—विपणि द्वारा स्वीकृत वस्तुओं के उत्पादक अपनी वस्तुओं को उत्पादन से पहले ही, वायदा बाजार बेच कर उत्पादन के पश्चात् उनके मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों की जोखिम को सटोरियों को हस्तान्तरित कर सकते हैं।

3. **निरन्तर एवं नियमित बाजार**—उपज विनिमय विपणि में वस्तुओं का निरन्तर एवं नियमित क्रय-विक्रय चलता रहता है। उत्पादक या व्यापारी कभी भी स्वेच्छा से वस्तुओं का क्रय अथवा विक्रय कर सकता है। उपज विपणि निरन्तर एवं नियमित बाजार प्रदान करती है, इसका एक लाभ यह भी होता है कि उत्पादकों की मध्यस्थों पर निर्भरता कम हो जाती है।

4. **साख की सुगम प्राप्ति**—उपज विपणि द्वारा मान्य एवं स्वीकृत वस्तुओं की जमानत पर बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएँ आसानी के साथ ऋण दे देती हैं क्योंकि ऐसी वस्तुओं में जोखिम कम रहती है। इस प्रकार उपज विपणि साख प्राप्त करने में सहायक होती है।

5. **मण्डियों में मूल्य समानता**—उपज विनिमय बाजारों में सौदा करने वाले व्यापारी अन्य बाजारों में भी सौदा करने के लिये स्वतन्त्र रहते हैं। यदि किसी समय बाजार में एक वस्तु का मूल्य कम हो जाता है तो दूसरे बाजार के व्यापारी इस मण्डी से माल क्रय करके मूल्यों को उनकी मण्डी में प्रचलित मूल्य के बराबर कर देते हैं। इससे सभी मण्डियों में समान मूल्य स्थापित हो जाते हैं।

6. **मूल्यों में स्थायित्व**—उपज विपणि के सटोरिये वायदे के सौदों के द्वारा वस्तुओं के मूल्यों में होने वाले अनुमानित भावी परिवर्तनों की ओर संकेत कर देते हैं और इस प्रकार मूल्यों में अधिक उच्चावचन नहीं आने देते हैं।

प्रश्न 28. भारत में किसी भी उपज विपणि के विधान एवं कार्य-विधि का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

Describe briefly the constitution and working of any produce exehange in India.

अथवा

किसी मण्डी अथवा बाजार जिसकी तुम्हें जानकारी प्राप्त हो उसकी व्यवस्था तथा कार्य-पद्धति का वर्णन करो।

Explain the organisation and working of a Mandi or Market you are familiar with.

उत्तर—मण्डी एक ऐसे थोक व्यापार को कहते हैं जो नगर के एक निश्चित व्यापारिक स्थान में होता है तथा जहाँ पर प्रतिदिन व्यापार किया जाता है। मण्डियों में प्रायः वस्तुओं का क्रय-विक्रय अधिक मात्रा में किया जाता है। इस कारण वहाँ दलाल, कमीशन एजेण्ट, पल्लेदार और अन्य व्यक्ति काफी संख्या में उपस्थित रहते है। प्रत्येक मण्डी में उसके आस-पास के स्थानों पर उपस्थित होने वाली वस्तुएँ बिकने के लिए आया करती हैं। मण्डियाँ दो प्रकार की होती हैं—(1) केन्द्रित (Centralised) व (2) विकेन्द्रीय (Decentralised)। एक केन्द्रित मण्डी में आढ़तियों की दुकानें नगर के एक विशेष भाग में स्थापित रहती हैं— जैसे मेरठ व मुजफ्फरनगर की मण्डियाँ। इसके विपरीत एक विकेन्द्रित मण्डी में आढ़तियों की दुकानें गोदाम के रूप में नगर के विभिन्न स्थानों पर स्थापित रहती हैं।

मण्डियों के ऊपर नगरपालिकाओं (Municipalities), जिला बोर्डों और स्थानीय व्यापारियों का अधिकार रहता है। आसाम, बंगाल व बिहार में अधिकतर मण्डियाँ स्थानीय व्यापारियों के हाथों में हैं।

हम यहाँ पर हापुड़ की मण्डी का वर्णन करेंगे।

हापुड़ की मण्डी गेहूँ के व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। यह स्थान जिला मेरठ में स्थित है। इस मण्डी का नियन्त्रण "वाणिज्य मण्डल" (Chamber of Commerce) के द्वारा किया जाता है। यहाँ के सदस्य व्यवसायी, इनके सदस्य होते हैं। इस मण्डल का नियन्त्रण परिकाल्पनिक व्यवहारों पर भी होता है। जब कोई परिकल्पक (Speculator) सट्टा करता है तो दोनों पक्ष क्रेता व विक्रेता वाणिज्य मण्डल के कार्यालय में जाकर निश्चित धनराशि जमा करते हैं। इस मण्डी में तात्कालिक व भावी दोनों प्रकार के व्यवहार किये जाते हैं।

वाणिज्य मण्डल के नियमानुसार वहाँ प्रत्येक खत्ती (Warehouse) के भर जाने पर उनका पंजीयन (Registration) कराना पड़ता है पंजीयन कराते समय खत्ती भरने वाले का पता, उसका वजन, उसकी स्थिति और क्रम-संख्या आदि सब बनानी पड़ती है। इन खत्तियों को प्राय: बैंक के पास बन्धक (Mortgage) के रूप में रख दिया जाता है। इस खत्तियों के परीक्षण के पश्चात् विक्रय-पत्रक पर वाणिज्य मण्डल की मोहर लग जाती है। इससे यह पता चलता है कि उनमें लिखा हुआ विवरण ठीक है। विक्रय होने पर उस प्रपत्र को क्रेता को दे देते हैं तथा उसमें मूल्य भी लिख देते हैं। इससे उनका स्वामित्व क्रेता को मिल जाता है। एक ही खत्ती को कई वार वेचा जा सकता है। इस क्रय-विक्रय के बीच में विक्रय प्रपत्र कई व्यक्तियों के पास पहुंचता है, किन्तु खत्ती पहले विक्रेता के पास ही रहती है। खत्ती को केवल अन्तिम क्रेता को ही दिया जाता है। खत्ती को देते समय यदि उसका अनाज वाणिज्य मण्डल में प्रमाप (Standard) से खराब या अच्छा होता है तो उस पर कटौती (Discount) या अधिमूल्य (Premium) दिया जाता है।

हापुड़ की मण्डी में भावी व्यवहार दलालों के द्वारा किया जाता है। व्यवहार होने पर मध्यस्थों की पुस्तकों में भावी अनुबन्ध-प्रपत्र में हस्ताक्षर किये जाते हैं। प्रत्येक व्यवहार के साथ कुछ राशि जमा करानी पड़ती है जिससे कि भविष्य में हानि होने की सम्भावना न रहे। व्यवहारों का अन्त अधिकतर मूल्यों का अन्तर देकर कर दिया जाता है। जिस पक्ष को लाभ होता है उसको वाणिज्य मण्डल दूसरे पक्ष द्वारा जमा किये गये धन से लाभ दे देता है और बाकी का धन उस पक्ष को वापिस कर देता है। इस प्रकार से वाणिज्य मण्डल के द्वारा किये गये लेन-देन बहुत सुरक्षित होते हैं।

हापुड़ की मण्डी में दो प्रकार के व्यापारी पाये जाते हैं—(1) कच्चा आढ़तिया व (2) पक्का आढ़तिया। कच्चा आढ़तिया एजेण्ट का कार्य करता है। यह किसानों से अपना प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर सकता है। इसके अलावा आस-पास के गाँवों में अनाज आदि का क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारी भी इससे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार के जितने भी निकटवर्ती ग्रामीण लोग अपनी फसलों को बेचने के लिए लाते हैं, उन्हें इन कच्चे आढ़तियों का आश्रय अवश्य लेना पड़ता है। ये आढ़तिये किसानों की ओर से एजेन्ट की भाँति कार्य करते हैं। इन आढ़तियों की सहायता के लिए कुछ दलाल भी होते हैं जो वस्तुओं के ग्राहक ढूंढने में सहायता करते हैं। जब वस्तु के मूल्य का फैसला हो जाता है तो वस्तु को तौल कर बोरों में भर देते हैं और बाद में उन बोरों को खरीदार के गोदाम में भेज देते हैं।

विभिन्न वस्तुओं के विक्रय करने के ढंग विभिन्न होते हैं। बहुधा कच्चे आढ़तिये ग्रामीण लोगों की गाड़ियाँ आते ही पक्के आढ़तियों से सम्पर्क स्थापित करते हैं।

यह कार्य या तो वे उसके पास जाकर तथा नमूने दिखाकर करते हैं या उनसे अपना आढ़तिया यह मालूम कर लेता है कि पक्के आढ़तिये किस मूल्य पर वस्तु को खरीदने के लिये तैयार हैं तो वह उस मूल्य को गाड़ी लाने वालों को बताता है। जब दोनों पक्ष एक निश्चित मूल्य पर माल को खरीदने और बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं तो माल का क्रय-विक्रय करा दिया जाता है। पक्का आढ़तिया माल को संग्रहीत करके रख लेता है और भविष्य में अच्छे मूल्य पर बेच देता है।

भारतवर्ष में अधिकांश मण्डियों पर सरकारी या वैधानिक नियन्त्रण विशेष रूप से नहीं है। इन मण्डियों का अधिकांश कार्य एक प्राचीन पद्धति और परम्परा के अनुसार चला करता है। कहीं-कहीं पर आढ़तिये लोग अपनी एक पंचायत बना लेते हैं और वही पंचायत उनके समस्त कार्यों की देखभाल करती है। किसी-किसी राज्य से राज्य सरकार की ओर से भी इन मण्डियों के ऊपर कुछ नियन्त्रण रहता है। इन मण्डियों में काम करने वाले व्यक्ति आढ़तिये, दलाल व पल्लेदार होते हैं।

इन मण्डियों का उचित संगठन न होने के कारण इनमें अनेक दोष पाये जाते हैं। भारतवर्ष की मण्डियों में खरीदने तथा बेचने के बाट अलग-अलग होते हैं। इसके अलावा माल को हाथ की तराजुओं से तौला जाता है जिसके परिणामस्वरूप तौल में प्रामाणिकता नहीं रहती है। इन मण्डियों में गाँव वालों को खूब लूटा जाता है। आढ़ती लोग माल के क्रेता और विक्रेता दोनों से आढ़त लेते हैं और इस प्रकार पर्याप्त धन कमाते हैं इसके अतिरिक्त विक्रेताओं से पल्लेदारी, तुलाई, धर्मादा और दलाली आदि के बहुत व्यय लिए जाते हैं। इस प्रकार विक्रेता को बहुत कम लाभ होता है। सरकार को चाहिए कि वह इन मण्डियों की व्यवस्था और कार्य-प्रणाली में सुधार करे।

प्रश्न 29. उपज-विनिमय-विपणि के वर्गीकरण एवं प्रबन्ध के विषय में आप क्या जानते हैं ? उनमें किये जाने वाली व्यवहार पद्धति को भी समझाओ।

Discuss the classification and organisation of a Produce Exchange. Market, Also describe the method of business of the same.

उत्तर—उपज-विनिमय-विपणियों में अधिकतर भावी व्यवहार किये जाते हैं। इन विपणियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. अलाभ-भाजक (Non-profit Sharing)।
2. लाभ-भाजक (Profit Sharing)।

साधारण अलाभ-भाजक संघ बन्दरगाहों पर पाये जाते हैं। बाम्बई में ऐसे दो संघ पाये जाते हैं, जिनके नाम East India Cotton Association तथा Marwari Chamber of Commerce हैं। कलकत्ते के संघ का नाम East India

Jute Association है। इनके ऊपर नये कम्पनी अधिनियम की धारा 25 का नियन्त्रण रहता है। लाभ का विभाजन नहीं होता है।

लाभ-भाजक संघों का निर्माण भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्री कराने से होता है। ये संघ केवल देश के आन्तरिक भागों में मिलते है। इस प्रकार का संघ अमृतसर में है जिसका नाम India Exchange Ltd,, Amritsar है। इन संघों के लाभ का विभाजन सदस्यों में किया जाता है।

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि लाभ-भाजक संघों की अपेक्षा अलाभ-भाजक संघ अधिक प्रभावशाली एवं स्थायी होते है और ये अपने सदस्यों को अधिक सुविधायें भी प्रदान करते है। इन दोनों संघों में उनकी नियमावली एवं उपनियन्त्रों के अनुसार व्यापार किया जाता है। इनमें केवल सदस्य ही व्यापार के अन्दर भाग ले सकते हैं। अन्य व्यक्ति सदस्यों के माध्यम द्वारा व्यापार कर सकते हैं।

उपज-विनिमय-विपणियों का प्रबन्ध

दोनों प्रकार के संघों का प्रबन्ध अधिकतर संचालन-सभा-(Board of Directors) या समिति के हाथ में रहता है, जिसमें विभिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधि रहते हैं। प्रबन्ध समिति के सदस्यों अथवा संचालकों का निर्वाचन विनिमय के सदस्यों द्वारा ही होता है तथा यह चुनाव एक निश्चित अवधि के लिए किया जाता है। इस समिति में एक सभापति, एक उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष तथा अन्य अधिकारी होते है। विनिमय के कुशल कार्य करने के लिये अलग-अलग उप-समितियां बनाई जाती है, जैसे— मध्यस्थ समिति, नामांकन गृह समिति व जांच (Survey) समिति आदि इनका कार्य ठीक प्रकार से चलाने के लिये इनमें उस विभाग में सम्बन्धित अनुभवी तथा विशेषज्ञ भी रखे जाते हैं। व्यापार का स्थान विनिमय की आर्थिक स्थिति पर निर्भर रहता है। कुछ स्थानों पर उपज-विपणियों ने अपने भवन बनवा लिए है, किन्तु अधिकांश स्थानों पर व्यापार खुले स्थानों पर ही होता है। इन व्यापारिक स्थानों को "पाटिका" अथवा "चक्र" (Rings or Pits). कहते है।

उपज-विपणि व्यवहार पद्धति

उपज-विपणि का मुख्य कार्य भावी व्यवहार करना है। यह व्यवहार अधिकांशतः दलालों द्वारा किया जाता है। इसमें व्यवहार करने की पद्धति निम्न-लिखित है—

1. **दलालों द्वारा अनुज्ञा-पत्र (Licence) प्राप्त करना**—उपज-विनिमय-विपणियों में व्यवहार करने का अधिकार केवल सदस्यों को ही प्राप्त होता है। यदि अन्य व्यक्ति इन विपणियों में व्यवहार करना चाहें तो वे सदस्य के माध्यम द्वारा कर सकते हैं। इस कार्य के लिये उन्हें कुछ कमीशन देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उपज-विपणि द्वारा निर्धारित अन्य करों का भुगतान करना भी आवश्यक होता है। विपणि का सदस्य बनने के लिए किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है। एक निश्चित शुल्क देने के पश्चात् ही सदस्यता प्राप्त हो सकती है। विपणि के नियमा-

नुसार उन्हें वैयक्तिक या नगद रोकड़ के रूप में जमानत देनी पड़ती है। जमानत की राशि उपज-विपणि पर ही निर्भर करती है। भारतवर्ष में कहीं-कहीं पर विपणियों में सदस्यता प्राप्त करने के लिये एक कार्ड या प्रमाण-पत्र की आवश्यकता होती है। इन कार्डों का मूल्य बहुत अधिक रख दिया जाता है। ऐसी स्थिति में सदस्यों से जमानत के रूप में रुपया जमा कराने की विशेष आवश्यकता नहीं रहती है। यदि कोई सदस्य छल-कपट का कार्य करता है तो उसके कार्ड को जब्त कर लिया जाता है। इन कार्डों के निर्गमन पर भी कुछ प्रतिबन्ध होते हैं। ऐसा इसलिए होता है जिससे कि सदस्यों की संख्या व्यर्थ अधिक न हो तथा व्यापार पर भी नियन्त्रण ठीक प्रकार से रह सके।

उपज-विपणियों के व्यवहारों के लाइसेंस प्राप्त दलालों का, महत्वपूर्ण स्थान है। ये लोग व्यापार के समय एक निश्चित स्थान (पाटिया) पर एकत्रित हो जाते हैं और जोर-जोर से चिल्लाकर सौदे तय करते हैं। उनके चिल्लाने को प्रत्येक व्यक्ति नहीं समझ सकता है। उनकी बात को केवल वे ही व्यक्ति समझ पाते हैं जो उनके साथ व्यवहार करते हैं। इस प्रकार थोड़े से समय में एक बड़े पैमाने पर व्यापारिक व्यवहार कर लेते हैं। ये दलाल अपने ग्राहकों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित रखते हैं तथा उनको प्रचलित मूल्यों के विषय में समय-समय पर ज्ञात कराते रहते हैं। मूल्यों का ज्ञान कराने के पश्चात् वे उनसे व्यवहारों के लिए आदेश (Orders) प्राप्त कर लेते हैं। बड़े-बड़े नगरों में प्रभावशाली दलाल अपनी दुकानों पर टेलीफोन लगवा लेते हैं। इसकी सहायता से वे अपने ग्राहकों को बाजार भाव जल्दी-जल्दी बताते रहते हैं तथा उनसे अपने घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखते हैं। अपने कार्य के लिए वे दलाली लेते हैं।

2. **अनुबन्धों की रजिस्ट्री**—उपज विनिमय-विपणि में प्रत्येक व्यवहार की रजिस्ट्री करना आवश्यक है। ग्राहकों के आदेश प्राप्त करके सर्वप्रथम दलाल उसे अपनी साधारण नोटबुक में लिख लेता है। प्रत्येक प्रमाणित दलाल के पास अपने-अपने संघों द्वारा दी गई एक छपी हुई पुस्तक होती है, जिसके प्रत्येक प्रारूप (Form) की तीन प्रतियाँ होती हैं। बाद में दलाल अपनी नोट-बुक की सहायता से इस पुस्तक पर व्यवहारों को लिखता है तथा उन पर सम्बन्धित व्यक्तियों के हस्ताक्षर करा लेता है। फिर वह दलाल उस पुस्तक से एक प्रपत्र की प्रति को क्रेता के दलाल को देता है, दूसरी विक्रेता को देता है तथा तीसरी को अपने पास भावी-सन्दर्भ के लिए रख लेता है। इसी प्रकार खरीददार का दलाल भी एक प्रतिलिपि विक्रेता के दलाल को देता है, दूसरी क्रेता को देता है तथा तीसरी को अपने पास रखता है।

उपज-विनिमय-विपणि का यह नियम है कि दलाल प्रत्येक दिन अपने कार्यालय में पहिले दिन के किये गये समस्त व्यवहारों की सूची एक प्रपत्र में भर कर भेजे। इस प्रपत्र को स्थिति-प्रपत्र (Position Form) कहते हैं। इसकी दो प्रतियाँ भेजी जाती हैं। इनमें से एक प्रति सदस्य भेजता है तथा दूसरी दलाल। कार्यालय में इन प्रतियों का निरीक्षण होता है तथा बाद में इनकी रजिस्ट्री हो जाती है।

2. **अन्तर राशि** (Margin Money)—प्रत्येक अनुबन्ध के रजिस्ट्रेशन के लिए प्रत्येक सदस्य को उपज-विनिमय-विपणि के नियमानुसार कुछ राशि जमा करनी पड़ती है। इस राशि को दलाल अपने ग्राहक से अनुबन्ध की रजिस्ट्री से

पूर्व ही प्राप्त कर लेता है । यह राशि घटा-बढ़ी से रक्षा के लिए व्यवहार के अनुसार प्राप्त की जाती है । अनुबन्धों की रजिस्ट्री होने के पश्चात् इस राशि को विनिमय में निक्षेप (Deposit) की भाँति रख दिया जाता है । यह राशि मूल्यों के घटा-बढ़ी के समय विनिमय की क्षति-पूर्ति के लिए प्रयुक्त की जाती है । यदि यह राशि किसी समय कम पड़ जाती है तो सदस्यों को और धन जमा कराना पड़ता है। यदि यह राशि आवश्यकता से अधिक हो जाती है तो अतिरिक्त धन वापस कर दिया जाता है । प्रत्येक उपज-विपणि अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार अन्तर राशि जमा कराती है । इसकी दर साधारणतया आठ आने प्रति मन से लेकर सवा रुपया प्रति मन तक होती है ।

4. **व्यवहार की वस्तुएँ तथा उनके प्रदान के महीने**—विभिन्न विपणियों में विभिन्न वस्तुओं का व्यवहार किया जाता है । वस्तुओं की इकाइयाँ भी अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग होती हैं । उदाहरण के लिए, हापुड़ में गेहूँ के 25 टन की एक इकाई मानी जाती है । इस प्रकार कलकत्ते में ढाई मन शक्कर प्रति बोरी की 25 बोरी शक्कर की एक इकाई मानी जाती है ।

भावी अनुबन्ध प्रायः दिसम्बर, मार्च, मई आदि महीनों में किये जाते हैं और प्रत्येक अनुबन्ध सुपुर्दगी के महीने (Month of Delivery) के नाम से पुकारा जाता है । विभिन्न विपणियों में एक ही वस्तु के भावी अनुबन्धों का प्रदान भिन्न-भिन्न महीनों में होता है, जैसे बम्बई में जनवरी, मई तथा दिसम्बर और कलकत्ता में मई तथा दिसम्बर । उत्तरी भारत में सुपुर्दगी या प्रदान के मास विक्रमी सम्वत् के अनुसार तय किये जाते हैं, चैत व फाल्गुन आदि । यदि विक्रेता के पास 'प्रदान माह' से पूर्व ही वस्तु आ जाती है, तो वह क्रेता से प्रदान की स्वीकृति के लिए प्रार्थना कर सकता है तथा उनकी अनुमति प्राप्त करता है । इसे 'प्रदान आदेश (Delivery Order) कहते हैं । इस प्रकार क्रेता भी विक्रेता से निश्चित मास के पूर्व की सुपुर्दगी देने के लिए प्रार्थना कर सकता है । इसे 'माँग आदेश' (Demand Order) कहते हैं ।

5. **अनुबन्ध-पत्र** (Contract Form)—भावी अनुभन्ध कुछ शर्तों के आधार पर किये जाते हैं । इन शर्तों का उल्लेख अनुबन्ध-पत्रों में होता है । इन शर्तों को सभी विपणियाँ मानती हैं । इनमें वस्तु के गुण, मात्रा इकाई, प्रदान, भुगतान, उसमें मिलावट, विपणि-प्रभार (Charges), मध्यस्थ निर्णय आदि की समस्त बातें लिखी रहती हैं । भारतवर्ष में विभिन्न विपणियों के अन्दर भिन्न-भिन्न प्रकार के विपणि-प्रभार लिये जाते हैं, जैसे—हापुड़ में व्यापारियों को 25 टन प्रत्येक सौदे पर आढ़तियों का कमीशन, दलाली, चैम्बर का शुल्क, धर्मार्थ अस्पताल, पाठशाला, गोशाला आदि का प्रभार देना पड़ता है ।

इस प्रकार अनुबन्धों में वस्तु की मिलावट की मात्रायें भी निर्धारित रहती हैं । यह सीमा विपणि द्वारा ही निश्चित की जाती है । यदि मिलावट उस मात्रा से अधिक होगी तो उस वस्तु का कम मूल्य दिया जायेगा अन्यथा वस्तु क्रय नहीं की जायेगी । इसके विपरीत यदि वस्तु में मिलावट निर्धारित मात्रा से कम होगी तो विक्रेता को अधिक मूल्य दिया जायेगा । इस प्रकार के अनुबन्ध कृषकों के लिए बहुत लाभप्रद हैं क्योंकि अधिक मूल्य प्राप्त करने की आशा से वे अपनी वस्तुओं में मिलावट नहीं करते हैं ।

11 भारत में कृषि एवं औद्योगिक विपणन
(Agricultural and Industrial Marketing In India)

प्रश्न 30 भारतीय कृषि विपणन की वर्तमान पद्धति के प्रमुख दोष क्या हैं ? उन्हें सुधारने हेतु अपने सुझाव दीजिए ।

What are the chief defects of the present syst em of agricultural marketing in India? Give your suggestions to remedy them.

अथवा

भारत में कृषि उपज की बिक्री की मुख्य समस्याओं को बतलाइये । उनको दूर करने के उपयुक्त सुझाव दीजिये ।

Discuss the main problems of agricultural marketing in India. Suggest suitable remedies.

अथवा

भारतीय कृषक को अपनी उपज को बेचने में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ? भारत सरकार ने इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए क्या-क्या उपाय किये हैं ?

Mention briefly the difficulties of Indian Cultivator under which he sells his produce. What remedical measures have been adopted to remove these difficulties.

उत्तर— भारत में कृषि विपणन की वर्तमान प्रणाली के दोष

भारत में कृषि वस्तुओं की बिक्री प्रणाली में अनेक दोष हैं, जिनमें से मुख्य-मुख्य निम्नलिखित हैं—

1. **बाजार के लिये दोषपूर्ण तैयारी**—भारत में कृषि उपज की बिक्री में पहले दोष के लिए स्वयं किसान लोग उत्तरदायी हैं । वे जो उपज बाजार में वेचने के लिये लाते हैं वह बहुत हल्की किस्म की होती है । उसमें श्रेणीकरण तथा प्रणालीकरण का अभाव रहता है । वे उपज को ठीक प्रकार से साफ नहीं करते तथा उनको अलग-अलग श्रेणियों में बाँट कर नहीं लाते हैं । उनमें कंकर, मिट्टी मिली रहती है । गेहूं के साथ जौ, चना आदि मिले रहते हैं । परिणाम यह होता है कि बढ़िया उपज

भी घटिया के दाम बिकती है और किसान को उतना मूल्य नहीं मिल पाता जितना कि अन्यथा मिलना चाहिये था।

2. **यातायात के अपर्याप्त तथा दोषपूर्ण साधन**—भारत में गाँव और शहरों के बीच काफी फासला है। गाँव में शहर की सी मण्डी तथा पक्की सड़कें नहीं हैं। कच्चे रास्ते हैं जो ऊबड़-खाबड़ होते हैं जिनमें गर्मी के दिनों में भारी धूल तथा वर्षा के दिनों में पानी भरा रहता है। इन मार्गों में मोटर नहीं चल सकती है। अतः किसानों को अपनी उपज बैलगाड़ी, ऊँट, गधे, खच्चर आदि के द्वारा ही लानी पड़ती है।

ये साधन बहुत मन्द गति के होते हैं। इनसे सामान लाने में समय और शक्ति अधिक लगती है तथा भाड़ा भी अधिक पड़ता है। इसलिये बहुधा किसान अपनी उपज गाँव के बनियों को ही कम दाम पर बेच देते हैं।

3. **किसानों में संगठन का अभाव**—हमारे देश में कृषि उपज की वर्तमान विपणन प्रणाली में कृषि-उपज के क्रेता (व्यापारी) तो भली भाँति संगठित हैं, परन्तु कृषि-उपज के विक्रेताओं (किसानों) में संगठन का नितांत अभाव है क्योंकि क्रेताओं की तुलना में विक्रेता संख्या में बहुत अधिक होते हैं तथा दूर-दूर गाँवों में रहते हैं तथा उनके पास विचार-विनिमय का कोई साधन नहीं होता। शाही कृषि आयोग के शब्दों में, "किसानों का हित आर्थिक शक्तियों के ऊपर छोड़ दिया गया है और इस प्रक्रिया में उनको हानि उठानी पड़ती है। अपनी उपज के उपभोक्ताओं और वितरकों की तुलना में किसान निश्चित रूप से एक छोटी इकाई होती है और ये दोनों वर्ग प्रतियोगिता के क्षेत्र में अधिक मजबूत और संगठित होते जा रहे हैं।"

4. **प्रतिकूल दशाओं में बेचने की किसान की विवशता**—अनेक कारणों से भारतीय किसान को अपनी उपज बाध्य होकर प्रतिकूल दशाओं में बेचनी पड़ती है। अर्थात् फसल तैयार होने के तुरन्त बाद ही बेचनी पड़ती है। किसान की इस विवशता के मुख्य कारण ये हैं—(i) बहुत से किसान महाजन के ऋणी होते हैं और वे अपने ऋण के भुगतान में अपनी फसल को तैयार होते ही पूर्व निश्चित मूल्यों पर महाजन को बेचने का वायदा किये होते हैं। (ii) गाँवों को मण्डियों से मिलाने वाले यातायात के सरल, सस्ते और सुगम साधनों के अभाव में किसान को अपनी फसल गाँव में ही महाजन या व्यापारी के हाथों सस्ते मूल्यों पर बेचनी पड़ती है। (iii) बहुत से किसान मण्डियों में प्रचलित कपटपूर्ण पद्धतियों से बचने के उद्देश्य से भी अपनी फसल गाँव में ही कम मूल्य पर बेच देते हैं। (iv) गाँवों में उपज को सुरक्षित रखने के लिये गोदामों की कोई व्यवस्था नहीं होने के कारण भी किसानों को अपनी फसल शीघ्र ही कम मूल्यों पर बेचनी पड़ती है। (v) किसान को लगान व सिंचाई कर चुकाने के हेतु भी बाध्य होकर फसल को तुरन्त बेचना पड़ता है। इस प्रकार भारत

का औसत किसान अपनी फसल उस समय बेचता है जबकि बाजार में उपज की माँग कम होती है और पूर्ति बहुत अधिक होती है जिसके फलस्वरूप उपज का मूल्य बहुत नीचा रहता है।

5. **कृषि उपज की निम्न कोटि**—किसानों द्वारा निम्न कोटि के बीजों का प्रयोग प्राकृतिक प्रकोपों द्वारा फसल की कोटि को क्षति पहुँचाना फसल तैयार करने के दोषपूर्ण तरीके, माल को सुरक्षित रखने की व्यवस्था का अभाव, उपज के प्रमापीकरण तथा श्रेणीकरण (Standardisation and Granding) का अभाव तथा व्यापारियों द्वारा जान-बूझकार मिलावट कर देना आदि अनेक कारणों से भारतीय किसानों की उपज निम्नकोटि की होती है या जिसे आढ़ती द्वारा धटिया-वढ़िया सब तरह की उपज को सम्मिलित करके 'दड़े के माल' के रूप में बेच दिया जाता है जिससे किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है।

6. **मध्यस्थों की अधिकता**—कृषि उपज के वास्तविक विक्रेता और अन्तिम उपभोक्ता के बीच ग्रामीण साहूकार और महाजन, व्यापारी, कच्चा आढ़तिया, पक्का आढ़तिया, दलाल, थोक व्यापारी, निर्यातकर्ता, फुटकर व्यापारी आदि अनेक मध्यस्थ होते हैं जो कि उत्पादक और उपभोक्ता दोनों वर्गों पर अपना अस्तित्व रखते हुए उपज के वास्तविक मूल्य का एक बड़ा भाग स्वयं हड़प कर जाते हैं। **राष्ट्रीय नियोजन समिति** (National Planning Committee) के अनुसार, "मध्यवर्तियों की श्रृंखला ही किसानों की निर्धनता के लिये उत्तरदायी है और इसकी कुप्रवृत्तियों के कारण ही भारतीय किसान निर्धन है।" केन्द्रीय सरकार द्वारा किये गये विपणन सम्बन्धी सर्वेक्षणों से पता चलता है कि भारतीय किसान को गेहूं बिक्री में प्रति रुपया 62 पैसे, आलू की बिक्री में प्रति रुपया 50 पैसे, मूँगफली की बिक्री में प्रति रुपया 47 पैसे ही मिल पाते हैं।

7. **सुरक्षित भंडारों का अभाव**—भारतीय गाँवों में फसल को कुछ समय के लिए सुरक्षित रखने हेतु पक्के गोदामों का अभाव है जिसके कारण बहुत से किसान अपनी फसल को तैयार होते ही नीचे मूल्यों पर बेच देते हैं। कुछ किसान अपने विपणन योग्य आधिक्य को भूमि के अन्दर खुदी हुई कच्ची खतियों में रख देते हैं जिनमें नमी रहने के कारण काफी माल बेकार हो जाता है। **श्री के. एल. गोविल** (K. L. Govil) के शब्दों में, "ऐसा अनुमान है कि भारत में प्रतिवर्ष कृषि उपज का स्टोर करने में ही 20 लाख टन खाद्यान्न की क्षति होती है।"

8. **मूल्यों के सम्बन्ध में सूचना का अभाव**—भारतीय किसान विभिन्न मण्डियों के कृषि उपजों के सम्बन्ध में दैनिक प्रचलित और सम्भावित मूल्यों से पूरी तरह अन-भिज्ञ रहता है। इसका कारण यह है कि ग्रामीण महाजन और व्यापारी के अलावा किसान के पास मूल्य सम्बन्धी परिवर्तनों की जानकारी के लिए अन्य कोई साधन नहीं होता और ये महाजन अथवा व्यापारी अपनी स्वार्थ-वृत्तिवश किसान की फसल के सही मूल्यों की सूचना नहीं देते क्योंकि उसकी उपज का एक बड़ा भाग इन्हीं

व्यक्तियों के द्वारा खरीदा जाता है। इस तरह मूल्य सम्बन्धी सूचना की अनभिज्ञता में किसान सदैव ही महाजन या व्यापारी द्वारा ठगा जाता है।

9. **विक्रय कला से अनभिज्ञता**—पारस्परिक संगठन के अभाव के कारण भारतीय किसान अपनी फसल को बेचने की कला से पूर्णतया अनभिज्ञ है। कृषि व्यवसाय को छोड़कर लगभग अन्य सभी उत्पादन क्षेत्रों में उत्पादक अपने माल को उसकी लागत व्यय से कम मूल्य पर देने को कभी तैयार नहीं होता, परन्तु भारतीय किसान जब अपनी फसल बेचने को मण्डी में ले जाता है तो कच्चा आढ़तिया ही उसके माल का एकमात्र अधिकारी बन जाता है तथा फसल के माल-भाव के सम्बन्ध में किसान को एक शब्द भी कहने का साहस नहीं होता। चूँकि कच्चे आढ़तिये का व्यापारी से हर समय सम्पर्क रहता है और किसान यदा-कदा ही उसकी दुकान पर जाता है इसलिए फसल का भाव करते समय वह व्यापारी का ही अधिक पक्ष लेता है जिससे किसान को प्रत्यक्ष रूप से हानि होती है।

10. **बिक्री के लिये उपलब्ध कम अतिरिक्त उपज**—ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित वस्तु-विनिमय की पद्धति परिवहन सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव, किसानों के प्रति मध्यस्थों की अन्यायपूर्ण नीति, छोटे-छोटे आकार की कृषि जोत तथा गाँवों में शिक्षा का अभाव आदि अनेक कारणों से भारत में कृषि उपज की बहुत कम मात्रा विपणन के लिये मण्डियों तक पहुँच जाती है तथा कृषि उपज के अधिकांश भाग का उपयोग गाँवों में ही हो जाता है।

11. **मण्डियों में प्रचलित कपटपूर्ण पद्धतियाँ**—हमारे देश की अधिकांश मण्डियाँ अनियंत्रित हैं अथवा उनमें नियमित नियंत्रण का अभाव है जिसके कारण मंडियों में अनेक प्रकार की कपटपूर्ण पद्धतियाँ प्रचलित हैं जिनसे विक्रेताओं को बहुत हानि होती है और जिनको शाही कृषि आयोग ने "खुली चोरी" की संज्ञा दी है। राष्ट्रीय नियोजन कमेटी ने मण्डियों में प्रचलित कपटपूर्ण पद्धतियों की गणना इस प्रकार कराई है—(i) मण्डियों में कच्चा आढ़तिया या दलाल उपज के विक्रेता और क्रेता दोनों की ओर से ही मोल-भाव करता है और चूँकि क्रेता से उसका हर समय का सम्पर्क रहता है (विक्रेता यदा-कदा ही उसकी दुकान पर बेचने ले जाता है), इसलिये वह मोल-भाव करते समय क्रेता का ही अधिक पक्ष लेता है जिससे किसान को प्रत्यक्ष रूप से हानि होती है। (ii) फसल का भाव तय करते समय विक्रेता को एक शब्द भी कहने का साहस नहीं होता। प्रायः फसल का मूल्य कच्चे आढ़तिए (या दलाल) और क्रेता (व्यापारी) द्वारा कपड़े की ओट में उँगलियों के संकेतों से निर्धारित होता है जिससे किसान के साथ धोखादेही और चालबाजी करने की पूरी संभावना रहती है। (iii) उपज का काफी भाग नमूने के तौर पर ले लिया जाता है जिसके बदले में किसी तरह का भुगतान नहीं किया जाता। (iv) अन्त में, किसान को उसकी फसल का मूल्य चुकाते समय कच्चे आढ़तिया, चुंगी व आढ़त का खर्चा, तुलाई बोराबन्दी, पल्ले-

दारी, गौशाला, पाठशाला, रामलीला, प्याऊ, जागिर्दी, चौकीदारी, भंगी, ब्राह्मण, मुनीम, भिश्ती व भिखारी के लिए—अलग तौर पर बड़ी रकम हड़प लेता है। अनुमानतः देश की विविध मण्डियों में जाने वाली यह कटौती अढ़ाई प्रतिशत से लेकर 8 प्रतिशत तक है जिसका किसान से कोई सम्बन्ध नहीं होता और न ही किसान को इस कटौती से किसी तरह का लाभ प्राप्त होता है।

विपणन पद्धति के दोषों को दूर करने के उपाय—भारत में कृषि उपज के विपणन की वर्तमान पद्धति के दोषों को दूर करने के हेतु मंडियों में नियंत्रित करना उपज का प्रमापीकरण और श्रेणीकरण करना, कृषि उपज को कुछ समय के लिए सुरक्षित रखने को पक्के गोदामों की व्यवस्था करना, किसानों को विविध मंडियों में दैनिक मूल्य-परिवर्तनों की सूचना मिलने की सुविधाओं की व्यवस्था करना, गाँवों को मण्डी केन्द्रों से मिलाने हेतु यातायात के सस्ते, सरल और सुगम साधनों का विकास करना, नाप विधि और बाँटों में सुधार करना, सरकार द्वारा कृषि उपजों के मूल्यों को स्थिर करना, विपणन-पर्यवेक्षण और अनुसंधान की व्यवस्था करना, सहकारी विपणन-समितियों को संगठित करना तथा कृषि विपणन अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना आदि महत्वपूर्ण उपचारात्मक उपाय हैं। शाही कृषि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में भारतीय कृषि विपणन प्रणाली को सुधारने की दिशा में निम्नोक्त सुझाव दिये थे—

(i) ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात की सुविधाओं का विकास किया जाये।
(ii) रेलों की भाड़े की दरों को घटाया जाये।
(iii) देश के सभी भागों में नियमित मण्डियों की स्थापना की जाये।
(iv) बाँटों और मापों (Weights and Measures) का प्रमापीकरण किया जाए।
(v) कृषि-उपज में होने वाली मिलावट को रोककर उसकी किस्म को सुधारा जाए।
(vi) कृषि-उपज के प्रमाणित ग्रेड निर्धारित किये जायें।
(vii) सरकार द्वारा समय-समय पर मण्डियों का सर्वेक्षण किया जाए।

कृषि-उपज की विपणन पद्धति के दोषों को दूर करने की दिशा में सरकार द्वारा किये गये प्रयास—भारत में कृषि उपज की वर्तमान विपणन पद्धति को दूर करने की दिशा में हमारी सरकार ने निम्नोक्त कदम उठाये हैं—

1. **मण्डियों का नियमन**—देश में नियमित मण्डियों की संख्या बढ़ाने की दिशा में अनवरत ध्यान दिया जा रहा है। असम, पश्चिमी बंगाल और केरल (मालाबार जिले के अलावा) के अतिरिक्त अन्य सभी राज्यों में "राज्य कृषि (मण्डी-अधिनियम" [State Agricultural Produce (Markets) Act] के अन्तर्गत मण्डियों का नियमन किया जा रहा है। नियमित मण्डियों में राज्य सरकार द्वारा

नियुक्त मार्केटिंग आफीसर और मार्केटिंग इन्सपैक्टर गेहूं, कपास, तिलहन आदि महत्व-पूर्ण वस्तुओं के विपणन का नियमन और निरीक्षण करते हैं। इस समय देश की कुल 2500 छोटी-बड़ी मण्डियों में से 1204 मण्डियों का ही नियमन किया जाता है तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश की सभी छोटी-बड़ी मण्डियों को नियमित करने का प्रावधान था। इस प्रकार स्पष्ट है कि देश में मण्डियों को नियमित करने की प्रगति बहुत धीमी रही है जिसके दो महत्वपूर्ण कारण हैं—एक तो अनेक जाँच समितियों और आयोगों द्वारा सिफारिश किये जाने के बावजूद भी राज्य सरकारों ने मण्डियों को नियमित करने के महत्व की उपेक्षा की है, और दूसरे, जिन राज्यों में मण्डियों को नियमित करने का प्रश्न उठाया भी गया है, वहाँ बड़े-बड़े व्यापारियों और मध्यस्थों ने सरकार की इस नीति का कड़ा विरोध किया है तथा भीषण प्रति-स्पर्द्धा द्वारा राज्य के सामने अनेक बाधायें उपस्थित करने का प्रयास किया है।

2. **कृषि उपज का श्रेणीकरण और प्रमाणीकरण**—कृषि पदार्थों का श्रेणी-करण 1937 के "कृषि उपज (श्रेणीकरण और विपणन) अधिनियम" [Agricultural Produce (Grading and Marketing) Act of 1937] के अन्तर्गत किया जाता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत कृषि पदार्थों का श्रेणीकरण करने के बाद उन पर विपणन अधिकारियों के निरीक्षण से "एगमार्क", (Agmark) का लेबिल लगा दिया जाता है। इस चिन्ह का प्रयोग करने से पूर्व व्यापारियों को कृषि विपणन सलाहकार से लाइसेन्स लेना अनिवार्य है।

3. **विपणन पर्यविक्षण और अनुसंधान**—कृषि उपज की अनेक वस्तुओं के विपणन के सम्बन्ध में अब तक अनेक सर्वेक्षण किये जा चुके हैं तथा 1937 से लेकर अब तक विपणन एवं पर्यवेक्षण निर्देशालय (Marketing and Survey Directorate) ने लगभग 130 विपणन सर्वेक्षण सम्बन्धी रिपोर्ट और 40 मुख्य वस्तुओं से सम्बन्धित छोटी-छोटी पुस्तकें (Brochures) प्रकाशित की हैं। 1964-65 के दौरान एक रिपोर्ट गेहूं के विपणन के सम्बन्ध में तथा दूसरे रिपोर्ट चुने हुए शहरों में फलों और सब्जियों के विपणन के सम्बन्ध में प्रकाशित की। विपणन व्यवहारों, उप-भोग प्रवृत्तियों और उपभोग स्तरों, लागत और सीमान्त (Cost and Margins), परिवहन और पैकिंग आदि विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के उद्देश्य से एक बाजार अनुसंधान विभाग की स्थापना की गई है जिसने इन सभी पहलुओं पर लगभग 200 बाजारों के प्रारम्भिक सर्वे का काम समाप्त कर लिया है।

4. **कृषि विपणन अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था**—कृषि विपणन अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए तीन प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है—(i) राज्य विपणन विभागों (State Marketing Deptts.) के उच्च अधि-कारियों के लिये नागपुर में 1 वर्ष के प्रशिक्षण की व्यवस्था, (ii) नियमित मण्डियों के लिए आवश्यक विपणन सेक्रेटरियों और विपणन सुपरिन्टेन्डेन्ट्स के लिये संगली,

लखनऊ और हैदराबाद में 5 महीने के प्रशिक्षण की व्यवस्था, (iii) ग्रेडिंग सुपरवाइजरों के लिये तीन महीने के प्रशिक्षण की व्यवस्था ।

5. 1955 **के फल उत्पादन आदेश** (Fruit Products Order, 1955) **का प्रशासन**—सन् 1955 के फल उत्पादन आदेश के अन्तर्गत पहले की तरह फल उद्योग को वैज्ञानिक आधार पर विकसित करने की सलाह देने तथा फलों की उत्तम जाति पर नियन्त्रण रखने की व्यवस्था जारी है ।

6. **सुरक्षित गोदामों की व्यवस्था**—अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति की सिफारशों के आधार पर भारत सरकार ने 1 अगस्त 1956 को 'कृषि' उपज (विकास तथा भण्डार व्यवस्था) अधिनियम', पास किया जिसके अन्तर्गत 1 सितम्बर 1956 को "राष्ट्रीय सहकारिता विकास और भण्डार मण्डल" तथा 2 मार्च 1957 को "केन्द्रीय भण्डार निगम" की स्थापना की । राष्ट्रीय सहकारिता विकास और भण्डार मण्डल राष्ट्रीय स्तर पर नीति का निर्धारण करने वाली तथा वित्त-प्रदायक संस्था है जिसका मुख्य कार्य सहकारी समितियों और भण्डार निगमों द्वारा कृषि उपज के विधायन, विपणन, संग्रहण तथा आयात व निर्यात व्यापार को आयोजित एवं उत्साहित करना है ।

7. **माप विधि और बाँटों में सुधार**—1 अक्टूबर 1958 से देश के कुछ भागों में बाँट व मापों की मैट्रिक प्रणाली (Metric System of Weights and Measures) लागू की गई तथा 1 अप्रैल 1962 से इस प्रणाली को सम्पूर्ण देश में अनिवार्य रूप से लागू कर दिया गया है । देश में मैट्रिक प्रणाली को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में उचित कार्यक्रम निर्धारित करने और आवश्यक नियमों की रूप-रेखा निर्धारित करने के सम्बन्ध में सलाह देने का काम एक स्थायी समिति को सौंप दिया गया है ।

8. **विपणन सहकारिताओं की स्थापना**—हमारे देश में सहकारी विपणन समितियों को संगठित करने की व्यवस्था सर्वप्रथम 1912 के सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत की गई । देश में कृषि-उपज के सहकारी विपणन का ढाँचा स्तूप के आकार का है जिसमें सबसे नीचे प्राथमिक सहकारी विपणन समितियां, उनके ऊपर केन्द्रीय विपणन संघ और सबसे ऊपर राज्य विपणन समितियाँ हैं ।

9. **यातायात के साधनों का विस्तार**—देश में सड़क यातायात का विकास करने के ध्येय से हमारी सरकार ने एक 20-वर्षीय योजना बनाई है जिसके मुख्य लक्ष्य ये हैं—(क) विकसित कृषि-क्षेत्र का कोई भी गाँव कच्ची सड़क से चार मील या अन्य किसी भी प्रकार की सड़क से तीन मील से अधिक दूरी पर न रह जाये, (ख) अर्ध-विकसित कृषि-क्षेत्र में कोई भी गाँव पक्की सड़क से आठ मील या अन्य किसी भी तरह की सड़क से तीन मील से अधिक दूरी पर न रह जाये, (ग) अविकसित एवं गैर-कृषित क्षेत्र का कोई भी गाँव पक्की सड़क से 12 मील या अन्य

किसी भी तरह की सड़क से 5 मील से अधिक दूरी पर न रह जाए। इस योजना के पूरी हो जाने पर हमारे देश में प्रति 110 वर्ग मील क्षेत्र में 25 मील लम्बी सड़कें हो जायेंगी तथा कृषि-विपणन की यातायात सम्बन्धी समस्या किसी सीमा तक काफी हल हो जायेगी।

10. **मूल्य प्रसारण की व्यवस्था**—दूसरी योजना के अन्तर्गत किसानों को बाजार से सम्बन्धित दैनिक हलचलों से अवगत कराने के हेतु 'अखिल भारतीय बाजार समाचार सेवा' (All India Market News Service) का आयोजन किया गया। आज-कल संघ सरकार के विपणन विभाग द्वारा प्रतिदिन शाम को 'अखिल भारतीय रेडियो' (All India Radio) से विभिन्न मण्डियों के कृषि पदार्थों के मूल्य प्रसारित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त दैनिक समाचार-पत्रों में भी प्रमुख मण्डियों के भाव प्रकाशित किये जाते हैं तथा कुछ राज्य सरकारों ने ग्राम पंचायतों के लिए समाचार-पत्र और रेडियो देने की व्यवस्था की है।

प्रश्न 31. भारत में चावल, कपास, लोहा एवं इस्पात तथा चीनी के विपणन का विस्तार से वर्णन कीजिए।

Describe in detail the marketing of Rice, Cotton, Iron and Steel and Sugar in India.

उत्तर—

(1) चावल (Rice)

भारत में चावल का फसली क्षेत्र एवं उत्पादन अन्य खाद्यान्नों की तुलना में सबसे अधिक है। बंगाल, आसाम, बिहार, पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा भारत के तटीय भागों में चावल ही मुख्य खाद्य है एवं इन्हीं भागों में चावल का उत्पादन भी अधिक होता है।

1. **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation of Market)—चावल का प्रति एकड़ उत्पादन कई बातों जैसे वर्षा, सिंचाई के साधन, मिट्टी की किस्म आदि पर निर्भर करता है। मौसम में बोई जाने वाली किस्म व बीज बोने के तरीकों आदि का भी चावल के उत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसकी कटाई हँसिये से की जाती है। फसल का उत्तरार्ध भाग हँसिये द्वारा काटकर अलग कर लिया जाता है एवं निचला भाग जानवरों के चारे के रूप में काम में लिया जाता है। ऊपरी भागों को बण्डल में बाँधकर धूप में सूखने के उपरान्त डण्डों द्वारा पौधों को पीसकर दानों को अलग कर लिया जाता है। इन दानों को मिलों में आवश्यक यन्त्रों द्वारा पालिश करके चमकीला बनाया जाता है।

2. **एकत्रीकरण** (Assembling)—बाजार में इसकी उत्पत्ति धान के रूप में बिकने के लिये आती है। चावल के एकत्रीकरण में प्रमुख रूप के इन पत्तियों का सहयोग होता है। किसान, गाँव का साहूकार घूमते-फिरते व्यापारी, आढ़तिये चावल मिल, सहकारी संस्थायें आदि।

धान के रूप में बिक्री पंजाब, महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर व केरल में होती है तथा चावल के रूप में बंगाल, बिहार, उड़ीसा व उत्तर प्रदेश में होती है। किसान स्वयं वित्त के साधन, गाँव से एकत्रीकरण केन्द्रों की दूरी, मण्डियों में लगने वाले कर, यातायात की असुविधायें आदि दिक्कतों के कारण विपणन कार्यों में बहुत कम रुचि लेता है। किसानों द्वारा स्वयं बाजार में उत्पादन लाने का प्रतिशत अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिये मद्रास में 3 प्रतिशत एवं पंजाब में 35 प्रतिशत।

3. **वित्त** (Finance)—चावल एवं धान की विपणन वित्त-व्यवस्था के लिये मुख्यतया गाँव के व्यापारी, साहूकार, बैंक, सहकारी संस्थायें मदद देती हैं। थोक व्यापारी, कमीशन एजेन्ट एवं चावल मिल गाँव के बनिये को व्यक्तिगत जमानत पर 9% से 12% तक ब्याज की दर से उधार देते हैं। बैंक कुल माल के 70 प्रतिशत तक पेशगी देती है किन्तु यह सुविधा केवल थोक व्यापारियों तक ही सीमित होती है। सहकारी संस्थायें भी 9 प्रतिशत से 12 प्रतिशत तक के ब्याज पर उधार देती हैं।

4. **वर्गीकरण** (Grading)—चावलों की अधिक किस्में होने के कारण कोई प्रमाण या वर्गीकरण निर्धारित नहीं किया जा सकता है। फिर भी इसका वर्गीकरण भिन्न-भिन्न स्थानों के उत्पादन के नाम से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए देहरादून का बासमती, पीलीभीत का हंसराज, हल्द्वानी का अंजना एवं नौगढ़ का अंजी आदि। चावलों की विभिन्न किस्मों की बिक्री बहुधा इसके नमूने को दिखाकर ही की जाती है।

भारत सरकार के खाद्य कृषि सामुदायिक विकास व सहकारिता मन्त्रालय के कृषि विभाग के अन्तर्गत विपणन व निरीक्षण डाइरेक्टरेट Directorate of Marketing and Inspection) है जो कृषि उत्पत्ति (श्रेणीयन एवं उत्पत्ति) कानून (Agricultural Product Grading and Marketing Act) के अनुसार प्रमापीकरण एवं वर्गीकरण का कार्य करती है।

5. **यातायात** (Transportation)—भारतवर्ष के तटीय प्रदेशों की प्रमुख फसल होने के कारण इसका यातायात जहाजों, स्टीमरों एवं नावों द्वारा होता है। छोटे-छोटे गाँवों से बाजारों तक चावल का यातायात अधिकतर बैलगाड़ियों द्वारा किया जाता है। हमारे देश के तटीय व्यापार में चावल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो गाँव हाट-बाजार, मण्डियों से सड़कों द्वारा सम्बन्धित है वहाँ पर माल का यातायात मोटरों, ट्रकों एवं रेलों द्वारा होता है।

6. **संग्रह** (Storing)—गाँवों में अधिकतर फसलें धान के रूप में संग्रह की जाती है। यहाँ पर कच्चे कोठे, बखारियाँ एवं कनियों में धानों का संग्रह करके रखा जाता है। थोक मण्डियों में पक्के सीमेन्ट के गोदाम बनाए गये है। संग्रहालयो की

उचित व्यवस्था न होने से दीमक, चूहे व घुन फसलों में लगने से फसलें खराब हो जाती हैं। अधिक समय तक इकट्ठे करके रखे हुए चावलों से उपयोगिता एवं मूल्यों में वृद्धि होती है।

7. **सरकार एवं चावल वितरण** (Govt. and Marketing of Rice)—सरकारी नियन्त्रण की स्थिति में चावल सरकार द्वारा एक निश्चित दर पर लायसेंसदार व्यापारियों के माध्यम से किसानों से खरीदकर स्वयं अपने द्वारा निर्धारित सरकारी दुकानों पर निश्चित दर से प्रति व्यक्ति निश्चित मात्रा में बेचती है। राज्य द्वारा भी कुछ थोक व्यापारियों को निश्चित मूल्यों पर चावल खरीदने के अधिकार दे दिये जाते हैं।

(2) कपास (Cotton)

कपास भारत की व्यावसायिक फसलों में से एक प्रमुख फसल है। प्राचीनकाल में जापान भारतीय कपास का प्रमुख क्रेता था। देश-विभाजन होने के कारण कपास के अधिक उत्पादित क्षेत्र पाकिस्तान में चले जाने से हमारे कपास उत्पादन पर काफी बुरा प्रभाव पड़ता है। भारत में 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत लम्बे रेशे वाली (Long Staple), 55 प्रतिशत मध्यम श्रेणी (Medium Staple) एवं शेष निम्न श्रेणी की कपास की उत्पत्ति होती है। कुल उत्पादन का आधे से अधिक भाग गुजरात व महाराष्ट्र उत्पन्न करते हैं। भारत में कपास की दो प्रकार की फसलें उत्पादित की जाती हैं जिनका कि बोने का समय मार्च से अगस्त एवं काटने का समय सितम्बर से अप्रैल तक होता है।

देश में कपास का उत्पादन कम होने के कारण विदेशों से भी आयात करना पड़ता है। कपास का अधिकतर उत्पादन क्षेत्र बम्बई, आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश एवं पंजाब है।

1. **बाजार के लिए तैयारी** (Preparation of Market)—कपास का फल पक जाने पर अपने आप चटककर फट जाता है जिसे कि किसान एवं अन्य मजदूर चुनकर इकट्ठा करते है। हमारे देश के कपास की चुनाई हाथ से करने के कारण उसमें पत्तियाँ व कचरा आदि लग जाता है जिससे कि कताई करने में काफी कठिनाई उठानी पड़ती है।

2. **एकत्रीकरण** (Assembling)—कपास भी अन्य फसलों के समान ही उत्पादकों द्वारा फसल के तैयार होते ही बेच दी जाती है। गाँवों से किसानों द्वारा बैलगाड़ियों में कपास भरकर पास की मण्डियों में आढ़तियों को बेच दी जाती है। कभी-कभी किसान अपने ही गाँव के साहूकार या व्यापारियों को फसल तैयार होने से पहले ही उन्हें बेचने का संविदा (Contract) करके अग्रिम रकम ले लेते है। मद्रास, पंजाब व उत्तर प्रदेश में अधिकांशतः फसलें (80 प्रतिशत से 90 प्रतिशत) गाँवों में ही बेच दी जाती हैं। मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्यों में अच्छी एवं नियन्त्रित

मण्डियों की सुविधा होने के कारण किसान अपनी फसलों को स्वयं मण्डियों में ले जाकर बेचता है।

3. **वित्त** (Finance)—किसान को वित्तीय सहायता गाँव के वनिये, साहूकार, कपास ओटने वाले कारखानों के मालिक आदि व्यक्ति देते हैं, जो कि धन उधार उसी स्थिति में देते हैं जबकि माल तैयार होने के पहले ही उन्हें बेचने का सौदा किया जावे। सहकारी समितियाँ भी अपने सदस्यों को माल के बन्धक पर कम व्याज पर रुपया उधार देती है।

4. **वर्गीकरण और परिनिर्माण** (Grading and Processing)—रुई के वर्गीकरण का आधार रेशे की लम्बाई, सफाई व चमक होती है। साधारणतया रुई को तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है : (1) लम्बे रेशे वाली (Long Staple), (2) मध्यम रेशे वाली (Medium Staple), (3) छोटे रेशे वाली (Short Staple)। भारतीय रुई का रेशा छोटा होता है एवं प्रति एकड़ इसका उत्पादन भी कम होता है। भारत में कपास किसानों द्वारा बिना साफ किये हुए मण्डियों में बेचने के कारण उन्हें अपनी फसलों के दाम अच्छे नहीं मिल पाते।

भारत में प्रचलित कपास की किस्में निम्नलिखित है—

उमरास	—महाराष्ट्र में।
बंगाल व अमेरिकन	—पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मद्रास, मैसूर।
भड़ौंच व घौलरा	—गुजरात।
मालवी	—मध्य प्रदेश।
कोमिला	—त्रिपुरा एवं आसाम।

भारत सरकार के कृषि विभाग के विपणन व निरीक्षण डायरेक्टोरेट (Directorate of Marketing and Inspection) ने सन् 1962 में एक योजना प्रारम्भ की थी जिसके अनुसार उत्पादकों को उत्पादक स्तर पर वर्गीकरण की सुविधा दी है। 10 अगस्त 1967 को केन्द्रीय वाणिज्य मन्त्री श्री दिनेशसिंह ने नई रुई नीति की घोषणा की, जिसके अनुसार सरकार कृषक को उसकी उपज का उचित पारिश्रमिक देने के लिये न्यूनतम कीमत विभिन्न श्रेणी की उत्पत्ति के लिये निर्धारित करती है।

5. **यातायात** (Transportation)—साधारणतया किसान अपने कपास को बैलगाड़ियों में भरकर मण्डियों तक ले जाते हैं। इसके अतिरिक्त खरीददार भी गाँवों में अपनी मोटर गाड़ियाँ या किराये की मोटरगाड़ियाँ ले जाकर उनमें कपास भरकर मण्डी तक ले जाते हैं। कपास के यातायात मे रेलों का योगदान अधिक नहीं। जब रुई की गाँठें तैयार हो जाती हैं तभी रेलों का उपयोग किया जाता है।

6. **संग्रह** (Storage)—कपास के संग्रह करने के साधन मुख्यत: थोक मंडियों में ही उपलब्ध है। इन थोक मण्डियों में गोदाम मिलों के क्रय एजेन्ट या थोक व्यापा-

रियों द्वारा खोले जाते हैं। इन गोदामों के अलावा बैंक भी इस प्रकार के गोदाम बनाकर रखती है जिसमें वह अपने ग्राहकों के माल को रखकर उन्हें जमा पर रुपया देती है।

(3) लोहा एवं इस्पात
(Iron and Steel)

आज के युग को लौह-युग कहा जावे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आधुनिक औद्योगिक संरचना का मूलभूत आधार लोहा एवं इस्पात ही है। प्रकृति की ओर से हमारे देश में लोहा एवं इस्पात के उत्पादन के लिए समस्त आवश्यक कच्चे माल विपुल मात्रा में प्रदान किये गये हैं। हमारे देश एवं विदेशों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रसिद्ध उद्योगपति जमशेदजी टाटा द्वारा स्थापित जमशेदपुर के लौह कारखाने के अतिरिक्त रूरकेला, भिलाई, दुर्गापुर के विशाल कारखाने कार्यरत हैं। प्राचीनकाल से ही भारतवासी लोहा एवं इस्पात बनाने की कला में कुशल हैं किन्तु ब्रिटिश शासनकाल में यह कला प्रायः लुप्त सी हो गयी थी। वापिस अब यह उद्योग अपनी उन्नति की ओर अग्रसर है।

1. **वर्गीकरण एवं प्रमापीकरण** (Grading and Standardisation)—साधारणतया इस्पात का वर्गीकरण उनके दाने (Grain) के आधार पर किया जाता है। सटे हुए एवं अस्पष्ट दाने वाला इस्पात कमजोर एवं बड़े और उभरे हुए दाने का इस्पात मजबूत व अच्छा होता है। तकनीकी दृष्टिकोण से इस्पात की किस्म का पता रासायनिक जाँच के द्वारा ही लगाया जा सकता है। रासायनिक गुणों के आधार पर लोहे को 3 श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—(1) S. T. 32, (2) S. T. 42, (3) S. T. 44। भारत सरकार का धातु वैज्ञानिक निरीक्षण विभाग लोहे को जाँच करके कड़ा (Hard), मुलायम (Soft), मध्यम (Medium) आदि वर्गों में विभक्त करके प्रमाणित करता है। सन् 1965–66 में इस उद्योग पर भारतीय मानक संस्था (Indian Standard Institute) की प्रमाणित चिन्हांकन योजना लागू कर दी गई है।

इस्पात का वर्गीकरण रासायनिक आधार के साथ ही साथ उसके उपयोग एवं रूपरेखा के आधार पर भी किया जाता है। उदाहरण के लिए, ऐंगल, गर्डर, चादर, सरिया, स्प्रिंग, स्टील, स्टेनलेस स्टील आदि।

2. **संग्रह** (Storing)—लोहे एवं इस्पात के भण्डारगृह बनाने में कोई सावधानी रखने की आवश्यकता नहीं है। इनके भण्डारगृह बनाते समय केवल इतना ही ध्यान रखना चाहिए कि ग्राहकों को विभिन्न प्रकार का माल देते समय कोई कठिनाई न हो। लोहे के बड़े-बड़े व्यापारी अपने भण्डारगृह अधिकतर रेलवे साइडिंग के आस-पास बनवाते हैं। शहरों के भीतर भी व्यापारी अपनी दुकानों के पास ही खुले मैदानों में भण्डारगृह बना लेते हैं। इन भण्डारगृहों के बनाते समय एक बात यह

ध्यान रखने योग्य है कि ये भण्डारगृह ऐसे स्थानों पर बनाना चाहिए जहाँ पर कि ठेले, ट्रक आदि को आने तथा जाने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। लोहे एवं इस्पात का संग्रह करने में अधिक व्यय नहीं होता है, क्योंकि इसे सुरक्षित रखने के लिए कोई अलग से व्यय नहीं करना पड़ता है।

3. **वित्त-व्यवस्था** (Finance)—लोहा एवं इस्पात के वितरण की व्यवस्था में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। कारखाने वाले थोक व्यापारियों को उधार की सुविधा नहीं देते है। इन्हें बैंक अपने गोदामों में रखे हुए माल का 50 प्रतिशत से 70 प्रतिशत तक पैसा एडवान्स कर देता है।

4. **आन्तरिक वितरण** (Internal Distribution)—भारत सरकार की ओर से लोहा एवं इस्पात के वितरण के लिए कलकत्ता में आयरन एण्ड स्टील कन्ट्रोलर की नियुक्ति की गई है जो कि देश के विभिन्न राज्यों में कोटे के आधार पर वितरित करता है। हर एक राज्य में एक स्टेट आयरन स्टील कन्ट्रोलर है जो कि राज्य के विभिन्न जिलों के लिए अपने कोटे में से कोटा निर्धारित करता है। इस निर्धारित कोटे को जिला पूर्ति अधिकारी जिले के विभिन्न उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकताओं की जाँच करके वितरित करता है। यदि किसी व्यक्ति को निश्चित मात्रा से अधिक लोहे की आवश्यकता होती है तो वह राज्य आयरन स्टील कन्ट्रोलर से प्रार्थना करके परमिट लेकर लाइसेन्स प्राप्त व्यापारी से लोहा लेता था। यह वितरण पर नियन्त्रण की स्थिति 1963 तक थी। उसके बाद धीरे-धीरे करके अलग-अलग वस्तुओं पर से नियन्त्रण हटाते गये। 1 मई 1967 को लोहा एवं इस्पात के बाजार पर से नियन्त्रण हटा लिया।

आजकल लोहा एवं इस्पात के वितरण के लिए संयुक्त संयन्त्र समिति (Joint Plant Committee) कार्य कर रही है। यह समिति विभिन्न कारखानों पर नियन्त्रण रखती है एवं निर्धारित मूल्य पर माल बेचती है। हिन्दुस्तान स्टील के बड़े-बड़े शहरों में अपने बिक्री केन्द्र स्थापित करके व्यापारियों एवं उपभोक्ताओं को माल वितरित करता है।

(4) चीनी (Sugar)

हमारे देश में शक्कर का उत्पादन करने वाले राज्यों में उत्तर प्रदेश तथा बिहार का विशेष स्थान है। 19 वीं शताब्दी के अन्त तक चीनी विदेशों को बहुत मात्रा में निर्यात की जाती थी किन्तु 20 वीं शताब्दी से आस्ट्रिया, क्यूबा, जावा आदि देशों में चीनी के उत्पादन में वृद्धि होने के कारण हमारे इस उद्योग को काफी प्रभावित किया।

चीनी उद्योग की एक विशेषता यह है कि गन्ने का करीब 70 प्रतिशत भाग गुड़ के उत्पादन में लिया जाता है।

1. **वर्गीकरण** (Grading)—चीनी की किस्म प्रायः इसके रंग एवं दाने के आकार पर निर्धारित की जाती है। "इम्पीरियल काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चरल

रिचर्स एण्ड मिल ओनर्स एसोसिएशन" ने चीनी के कुछ निश्चित प्रमापों को निर्धारित किया है। चीनी के कुछ प्रचलित ग्रेड इस प्रकार हैं—

A—30, B—30, C—30, D—30, E—30, AA—30

A—29, B—29, C—29, D—29, E—29,

AA—30 का दाना—A–30 की अपेक्षा अधिक सफेद व मोटा आता है।

2. **संग्रह** (Storing)—चीनी के भण्डारगृह में नमी बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। इन भण्डारगृहों में चीनी के बोरों के नीचे लकड़ी के पटिये पर बालू रेती बिछा देते हैं। बारिश के मौसम में चीनी के भण्डारगृहों की अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है।

(3) **विक्रय और बाजार रीतियाँ** (Selling and Market-Practices)—लगभग 70 प्रतिशत गुड़ उत्पादक एवं आढ़तियों के प्रतिनिधि सीधे बाजार में बेचते हैं। थोक बाजारों में विपणन व्यय अलग-अलग स्थानों पर अलग–अलग हिसाब से लिया जाता है। मद्रास में सहकारी समितियाँ उत्पादकों से माल खरीदकर उपभोक्ताओं को बेचती हैं। सन् 1936 में चीनी बाजार में अधिक प्रतियोगिता से होने वाली हानि के कारण "Indian Sugar Syndicate Ltd." की स्थापना की गई। इस सिण्डीकेट की सदस्य मिलों की चीनी स्वयं सिण्डीकेट द्वारा कीमत का निर्धारण करके सामूहिक रूप से बेची जाती थी। इस सिण्डीकेट की कार्यप्रणाली में दोष आने के कारण इसे मार्च 1950 में समाप्त कर दिया। भारत शासन की ओर से समय-समय पर चीनी के वितरण में कई रुकावटें आने के कारण इस पर नियन्त्रण लगा दिया जाता है एवं वितरण की स्थिति ठीक होने पर नियन्त्रण हटा लिया जाता है। अब चीनी पर से सारे नियन्त्रण उठा लिये गये हैं।

4. **मूल्य** (Price)—चीनी के उपभोग में निरन्तर वृद्धि, सरकार की अनिश्चित नीति एवं अनिश्चित उत्पादन आदि के कारण इसके मूल्यों में स्थिरता का अभाव रहा। कभी-कभी देश की माँग की पूर्ति होने में कठिनाई होते हुए भी सरकार ने चीनी का निर्यात विदेशों को किया जिससे कि इसकी माँग एवं पूर्ति में भी अनिश्चित असन्तुलन रहा। इसके फलस्वरूप कभी-कभी सरकारी दुकानों पर तो चीनी का भाव 2 रुपये किलो रहा किन्तु खुले बाजार में इनका भाव 5 रु. से लेकर 6.30 रु. प्रति किलो रहा। मूल्यों को नियन्त्रित करने के लिये सरकार को चाहिए कि गन्ने के मूल्यों की उचित सीमा निर्धारित कर दे जिससे कि गन्ना उत्पादकों एवं मिल-मालिकों दोनों को प्रोत्साहन मिलेगा।

5. **यातायात** (Transportation)—चीनी को बोरों में बन्द करके मिलों में मण्डियों में ट्रकों द्वारा आसानी से पहुँचाया जाता है। जो क्षेत्र रेलों से जुड़े हुए हैं, वहाँ पर रेलों द्वारा भी पहुँचाया एवं लाया जाता है।

6. **सरकार एवं चीनी विपणन** (Govt. and Marketing of Sugar)—चीनी के विपणन में सरकार की ओर से सन् 1950 के बाद से हस्तक्षेप होना प्रारम्भ हुआ। 1950-51 में "आंशिक स्वतन्त्र विपणन" की नीति का प्रभाव अनुकूल रहा। 1953 के बाद चीनी का विपणन इसकी माँग एवं पूर्ति के ऊपर आधारित होने के कारण ठीक रहा, किन्तु 1958 के बाद इसकी पूर्ति की स्थिति बिगड़ने के कारण सरकार ने वितरण को पूर्णरूपेण अपने हाथ में लेकर उपभोक्ताओं को सरकारी सस्ती दुकानों से चीनी देने की व्यवस्था की। सन् 1961 में उत्पादन अधिक होने के कारण सितम्बर 1961 में इस पर से नियन्त्रण हटा लिए। 1966 में सूखे की स्थिति होने के कारण चीनी का उत्पादन कम रहा अत: सरकार ने चीनी मिल-मालिकों को अपने उत्पादन का 40 प्रतिशत खुले बाजार में बेचने की छूट देदी। इससे चीनी के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। अब चीनी पर कोई नियन्त्रण नहीं है।

●●

12 विपणन वित्त
(MARKETING FINANCE)

प्रश्न 32. वित्त का विपणन के प्रत्येक रूप से सम्बन्ध है। समझाइये।

Finance has a bearing on every aspect of marketing." Examine.

अथवा

विपणन वित्त पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write a short note on marketing Finance.

उत्तर—वित्त प्रबन्धन विपणन प्रक्रिया की एक सहायक परन्तु महत्वपूर्ण क्रिया है। यह विपणन की भिन्न-भिन्न क्रियाओं, जैसे क्रय और विक्रय को वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

व्यापारिक संस्थायें, जो क्रय-विक्रय का लेन-देन करती हैं, प्राय: स्थायी तथा चालू दोनों प्रकार की पूँजी इस्तेमाल करती हैं। (हाँ; इनकी चालू पूँजी स्थायी पूँजी से अक्सर काफी ज्यादा होती है।) इसका मुख्य कारण यह है कि इन व्यापारिक संस्थाओं को अपनी अधिकांश पूँजी बिक्री योग्य माल का स्टॉक रखने में और संचालन खर्चे, जैसे उधार उद्यान के खर्चे, विज्ञापन के खर्चे आदि चलाने में लगानी पड़ती है। औद्योगिक संस्थाओं की भाँति ही यहाँ भी चालू पूँजी की मात्रा बिक्री

की दर, कारोबार के पैमाने, क्रय-विक्रय की शर्तों तथा सम्पत्तियों (assets) की तरलता पर निर्भर करती है।

विपणन संस्था अपनी वित्तीय आवश्यकता को प्रायः तीन स्रोतों से पूरा करती है—स्वामित्व पूँजी, बैंकों से ऋण तथा व्यापार ऋण। स्वामित्व पूँजी व्यापार में स्वयं व्यवसायी द्वारा लगायी जाती है। यह पूँजी संस्था की स्थायी सम्पत्तियों की लागत और चालू पूँजी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। जहाँ तक शेष पूँजी का प्रश्न है यह बैंकों से ऋण लेकर या व्यापारियों से उधार लेकर पूरी की जा सकती है। यहाँ यह स्मरणीय है कि बैंक ये सहायता प्रधानतः चार रूपों में देते हैं: (क) अधिविकर्ष (Overdraft), (ख) नकद साख (Cash credit); (ग) विनिमय पत्रों को भुनाना, तथा (घ) माल को बन्धक रखकर ऋण देना।

उधार और वसूली या उघाई (Credit and Collection)—उधार आधुनिक व्यापार का जीवन है। **बार्कर एवं प्रसन्न** के शब्दों में, "विपणन में उधार उसी प्रकार प्रवाहित होता है जैसे इंजन में तेल। यह वितरण की शान्त अदृश्य चिकनाई (Lubricant) है। उधार के बिना माल के बाजार में निकलने की गति अधिक शिथिल हो जाती है; उन क्षेत्रों की सीमायें छोटी हो जाती है जिनमें उन्हें बेचा जा सकता है, और उपभोक्ताओं को माल की पूर्ति अनिश्चित तथा अपूर्वानुमेय हो जाती है।"

उधार से व्यापार को कई लाभ होते हैं। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

(क) माल उधार बेचने से बिक्री मात्रा बढ़ जाती है क्योंकि इनके कारण न केवल अधिक ग्राहक माल खरीद सकते हैं बल्कि प्रति ग्राहक की खरीद भी बढ़ जाती है।

(ख) इसके कारण नियमित ग्राहकों की संख्या बढ़ जाती है जिससे संस्था की साख और ख्याति बढ़ती है। उधार सुविधा के कारण ग्राहक केवल उस व्यापारी को अपना पूरा सहयोग देते हैं।

(ग) उधार के कारण बिक्री की मात्रा महीने भर लगभग बराबर रहती है। इसके अभाव में जैसे-जैसे महीने का अन्त निकट आता जाता है बिक्री की मात्रा घटती जाती है। इससे व्यापार के खर्चे बढ़ जाते हैं।

उधार बिक्री उघाई या वसूली की समस्या को जन्म देती है। उधार पैसे की वसूली करना एक विकट काम है। कभी-कभी उधार वसूल करने के चक्कर में व्यापारी ग्राहक और उधार दोनों को गँवा देता है। उधार पैसे समय रहते ही तुरन्त तथा ग्राहकों को अनावश्यक रूप से नाराज किये बिना ही वसूल कर लिए जाने चाहिए। अनुभव इस बात का प्रमाण है कि अधिकांश उधार तभी डूबती है जब उसे समय रहते ही वसूल न किया जाये। हिसाब को शीघ्र निपटाने से विवाद और

कटुता की सम्भावना भी कम हो जाती है। अधिक उधार चढ़ जाने पर प्राय: ग्राहक भी आँखें चुराने लगते हैं। जिससे बिक्री पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अधिक पैसा उधार में फँस जाने पर व्यापारी को चालू पूँजी की कमी अनुभव होने लगती है जिससे कारोबार को हानि पहुँचती है।

उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि ऐसे व्यापार में जहाँ उधार एक प्रचलित परम्परा है उधार को नियन्त्रित करने तथा उसकी वसूली के लिए एक पृथक विभाग उधार और वसूली विभाग बनाया जाये। इस उधार और वसूली विभाग को निम्न चार कार्य सम्पन्न करने के लिये दिये जा सकते हैं।

1. **साख सीमा निर्धारित करना** (Determining Credit Standing)—प्रत्येक व्यक्ति अपने उधार को नियमित रूप से तथा ईमानदारी से अदा कर देगा, यह आवश्यक नहीं है। ग्राहक की साख स्थिति को आँकने में लिये साख-प्रबन्धक का काम है कि यह उसके चरित्र, क्षमता तथा पूँजी के विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त करे और उसकी आय तथा बाजार में साख को ध्यान में रखते हुए साख-क्षमता निर्धारित करे। उधार केवल उसी व्यक्ति को दिया जाना चाहिये, जो चरित्रवान तथा साधन सम्पन्न हो, तथा जो अपने भुगतान में नियमित तथा विश्वसनीय हो।

2. **उधार की सीमा तथा इसकी शर्तें निर्धारित करना** (Determining the extent of credit and its terms)—ग्राहक की साख के प्रति आश्वस्त हो जाने के उपरान्त अब यह प्रश्न उठता है कि उसे किस सीमा तक तथा किन शर्तों पर उधार पर दिया जाये। जहाँ तक उधार की सीमा का प्रश्न है, यह ग्राहक की वित्तीय सामर्थ्य, बाजार की दशा, स्टॉक की स्थिति, प्रतियोगियों की नीति तथा बिक्री और लाभ की स्थिति को देखकर निर्धारित की जा सकती है। मन्दी के काल में, बिक्री को बनाये रखने के लिए, उधार देना आवश्यक हो जाता है, अत: व्यापारी को अपने नियम ढीले करने पड़ते हैं। इसी प्रकार यदि व्यापारी के पास कोई माल रुक जाता है तो उसको निकालने के लिए उधार का प्रलोभन व्यापारी और ग्राहक दोनों के हित में है।

उधार की शर्तों में दो शर्तें महत्वपूर्ण हैं—उधार की अवधि तथा भुगतान की शर्तें। उधार की अवधि प्राय: बिक्री की वस्तु, व्यापार की दशा, खरीददार की स्थिति तथा प्रचलित व्यवहार पर निर्भर करती है। यदि वस्तु मूल्यवान हैं तथा स्थायी उपयोग वाली है तो उसके लिये लम्बी अवधि का उधार दिया जा सकता है, लेकिन नाशवान या दैनिक उपभोग की वस्तुओं के लिये उधार की अवधि प्राय: ग्राहक की वेतन-अवधि से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार, तेज बिक्री (brisk Sales) के दिनों में उधार की अवधि छोटी या मन्दी के दिनों में लम्बी हो सकती है।

3. **खातों की निगरानी** (Watching the Accounts)—उधार देने के बाद उसकी वसूली का प्रश्न आ जाता है। वसूली को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए सबसे

पहली जरूरत ग्राहकों के खातों पर कड़ी नजर रखना है। इस सम्बन्ध में वसूली विभाग का यह कर्त्तव्य है कि वह ग्राहकों के खातों का समय-समय पर विश्लेषण करके यह देखता रहे कि कोई ग्राहक अपने भुगतान में पिछड़ा तो नहीं है और कोई हिसाब बहुत पुराना तो नहीं पड़ा है। खातों के विश्लेषण के समय यह विभाग एक तालिका बना सकता है, जिसमें उधारों को उनकी अवधि के अनुसार 1 दिन से 30 दिन तक, 31 दिन से 60 दिन तक, 61 दिन से 90 दिन तक आदि कई वर्गों में बाँटा जा सकता है। इससे पिछड़े हुए खातों को ढूँढने में आसानी रहती है।

4. **वास्तविक वसूली** (Actual Collection) उन खातों का पता चल जाने के उपरान्त, जिनकी वसूली निर्धारित अवधि में नहीं हुई है, इस विभाग को उन्हें वसूल करने की व्यवस्था करनी पड़ती है। इस वसूली में अत्यन्त सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता पड़ती है। व्यावसायिक संस्था न तो यह चाहती है कि उसका पैसा डूब जाये और न ही यह चाहती है कि वसूली के तगादों से परेशान ग्राहक उसका संरक्षण ही छोड़ दें। इसके लिए वसूली विभाग के अधिकारियों को सतर्क, सावधान तथा व्यवहार कुशल होना आवश्यक है। तकादा प्रारम्भ में नम्र तथा सौम्य होना चाहिए, लेकिन यदि ग्राहक इसकी अवहेलना कर जायें तो यह धीरे-धीरे अधिक कठोर तथा कटु हो सकता है। यद्यपि विभिन्न संस्थाओं में इसके लिए भिन्न-भिन्न कार्यविधि अपनाई जा सकती है, लेकिन सभी संस्थाओं के लिए यह उपयोगी रहता है कि वे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार एक नियमित कार्य-विधि बना लें और उसी का पालन करें। यदि तकादों से वसूली के सभी प्रयास विफल हो जायें तो ऐसे खाते वैधानिक कार्यवाही के लिए संस्था के वकीलों को सौंप देने चाहिये।

13 विपणन एवं राज्य

(MARKETING AND STATE)

प्रश्न 33. रजकीय व्यापार की बढ़ती हुई लोकप्रियता के क्या कारण हैं ? इसके लाभ व हानियाँ क्या हैं ? भारत के राजकीय व्यापार निगम के कार्य संचालन की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए ।

What has led to an increase in popularity of State Trading? Discuss its advantages and disadvantages. Critically examine the working of State Trading Corporation of India.

उत्तर—

राजकीय व्यापार का अर्थ
(Meaning of State Trading)

जब किसी व्यापार को राज्य स्वयं करता है तो उसे राजकीय व्यापार कहते हैं। इस प्रकार के व्यापार की यह विशेषता होती है कि वस्तुओं का क्रय-विक्रय व्यक्ति द्वारा न होकर सरकार द्वारा होता है और इस प्रकार के व्यापार से जो लाभ होता है वह किसी व्यक्ति के पास न जाकर सरकार के पास ही रहता है जो इसे सार्वजनिक हितों पर व्यय कर देती है।

लाभ—राजकीय व्यापार बहुत लोकप्रिय इसके विभिन्न लाभों के कारण हो रहा है जो कि निम्न हैं—

1. **लाभ का सार्वजनिक हित के लिए उपयोग**—व्यापार करने से जो लाभ होता है वह राजकीय व्यापार की दशा में राज्य का ही होता है और इस लाभ का उपयोग राज्य सार्वजनिक हित के लिए करता है।

2. **उपभोक्ता को लाभ**—राजकीय व्यापार से उपभोक्ता वर्ग को भी लाभ होता है। उपभोक्ता को वस्तु उचित मूल्य पर प्राप्त हो जाती है और वह शोषण से बच जाता है।

3. **उत्पादक को लाभ**—राजकीय व्यापार से उपभोक्ता वर्ग को भी लाभ होता है। व्यापारी कमजोर उत्पादकों से उनकी वस्तु सस्ते मूल्य पर खरीदने का प्रयत्न करते हैं परन्तु राजकीय व्यापार में सरकार उन्हें उनकी वस्तुओं का उचित मूल्य देती है। इस प्रकार उत्पादक भी अपनी वस्तुओं का उचित मूल्य प्राप्त कर लेते हैं।

4. **वस्तुओं का न्यायपूर्ण वितरण**—वे वस्तुयें, जिनकी माँग अधिक होती है परन्तु पूर्ति कम, उनका व्यापार राज्य द्वारा ही किया जाना चाहिये क्योंकि यदि उस वस्तु का वितरण एक व्यक्ति के हाथ में होता है तो उसका उचित वितरण नहीं हो सकता है। वह व्यक्ति उस वस्तु का वितरण अपने स्वर्थ को दृष्टि में रखकर ही करेगा और इसका परिणाम यह होगा कि कुछ लोगों को जरूरत से अधिक, कुछ को जरूरत से कम और कुछ को वह वस्तु बिल्कुल ही नहीं मिल पायेगी, परन्तु यदि उस वस्तु का व्यापार राज्य के द्वारा होगा तो वस्तु सबको उचित मूल्य पर प्राप्त हो सकेगी और उसका वितरण भी न्यायपूर्ण होगा।

5. **नियोजित अर्थ-व्यवस्था के लिए आवश्यक**—राजकीय व्यापार योजित अर्थ-व्यवस्था वाले देशों के लिए आवश्यक है। बिना राजकीय व्यापार के योजित अर्थ-व्यवस्था सफल नहीं हो सकती है।

6. **समाजवादी राज्य की स्थापना में सहायक**—समाजवाद में सारे काम राज्य ही करता है इसलिये वस्तुओं के क्रय-विक्रय का कार्य भी राज्य को करना पड़ता है। राजकीय व्यापार समाजवादी राज्य की स्थापना को बढ़ावा देता है।

7. **मन्दी से मुक्ति**—राजकीय व्यापार मन्दी के प्रभावों से भी देश की रक्षा करता है जैसे अर्जेन्टाइना में सरकार ने एक 'अन्न नियन्त्रण मण्डल' स्थापित किया था जिसका उद्देश्य एक नियत सीमा से अधिक कीमतें गिरने पर अनाज की खरीद करना था और जब कीमतों में असाधारण वृद्धि होती है तो वह सुरक्षित कोषों से अनाज बेचा करता था।

8. **विदेशी विनियम की कठिनाइयों के बिना आवश्यक वस्तुओं का आयात**—राजकीय व्यापार देश को थोक-क्रय समझौतों के द्वारा जो कि वास्तव में वस्तु विनिमय व्यापार समझौते हैं, विदेशी विनिमय की अनावश्यक चिन्ता किये बिना ही आवश्यक वस्तुओं का आयात करने में समर्थ बनाता है।

9. **स्वदेशी उत्पादकों को संरक्षण देने का सर्वोत्तम साधन**—राजकीय व्यापार के बारे में यह कहा जाता है कि यह स्वदेशी उत्पादकों को संरक्षण देने का सर्वोत्तम साधन है। स्वदेशी उत्पादक न तो व्यक्तिगत रूप से इतने शक्तिशाली होते हैं और न इतनी शक्तिशाली इकाइयों में ही अपना संगठन कर पाते हैं कि वे विदेशों से गला काट प्रतियोगिता का सामना कर सकें। उदाहरणार्थ, भयंकर मन्दी युग में कीमतों के उतार-चढ़ाव से स्वदेशी उत्पादकों की सहायता के लिये अनेक देशों ने राजकीय व्यापार की तकनीक अपनाई थी।

10. **द्विपक्षीय व्यापार के लिये आवश्यक**—यह भी कहा जाता है कि वर्तमान युग में करैन्सियों की स्वतन्त्र बहुमुखी परिवर्तनशीलता एवं बहुपक्षीय व्यापार को सम्भव बनाने वाली परिस्थितियाँ विद्यमान नहीं हैं। ऐसी दशा में द्विपक्षीय

व्यापार भी अपनाना पड़ता है। किन्तु द्विपक्षीय व्यापार को आर्थिक नीति के रूप में अपनाना चाहिये।

11. **अधिकतम कल्याण**—राजकीय व्यापार का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इससे उपभोक्ताओं, देश एवं समाज का अधिकतम कल्याण होता है। उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर अच्छी वस्तुएँ प्राप्त होने लगती हैं।

12. **व्यापार संतुलन पर नियंत्रण**—राजकीय व्यापार की सहायता से व्यापार संतुलन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखा जा सकता है तथा देनदार राष्ट्र अपनी आर्थिक स्थिति में वांछनीय परिवर्तन ला सकते हैं।

13. **प्राकृतिक साधनों का सदुपयोग**—राजकीय व्यापार से प्राकृतिक साधनों को संरक्षण प्राप्त होता है तथा प्राकृतिक साधनों का सदुपयोग होता है।

14. **व्यापारिक सम्बन्धों में वृद्धि**—विदेशी व्यापार की सहायता से विदेशी राष्ट्रों के साथ अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं तथा राजकीय व्यापार को संगठित किया जा सकता है।

15. **दुर्लभ वस्तुओं की आसान प्राप्ति**—विदेशों में कम मात्रा में प्राप्त वस्तुओं को राजकीय व्यापार की सहायता से आसानी के साथ प्राप्त किया जा सकता है।

16. **अनैतिकता पर रोक**—राजकीय व्यापार से अनेक प्रकार की अनैतिकताओं पर रोक लगती है। करों की चोरी, रिश्वतखोरी, सट्टेबाजी आदि अनैतिक-कार्यों पर रोक लगती है

1. **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की समाप्ति**—राजकीय व्यापार के कारण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है क्योंकि व्यक्ति को वही वस्तु, उसी मूल्य पर और उसी मात्रा में खरीदनी पड़ती है, जिसे राज्य बेचता है। वह अपनी इच्छानुसार कोई भी वस्तु और किसी भी मात्रा में नहीं खरीद सकता है। इस प्रकार राजकीय व्यापार में उसके वस्तु खरीदने की शक्ति पर नियन्त्रण लग जाता है।

2. **कार्यक्षमता का अभाव**—जब कोई व्यक्ति व्यापार करता है तो वह हानि से डरता है और लाभ से प्रेरित होता है और इसलिये वह अपने व्यापार की ओर अधिक ध्यान-मग्न होकर काम करता है। परन्तु राजकीय व्यापार में वेतनभोगी कर्मचारियों से इतनी आशा नहीं की जा सकती है। लाभ और हानि से कोई सम्बन्ध नहीं होता, ये तो केवल अपने वेतन एवं वार्षिक वृद्धि की ओर ही देखते है, वे जानते हैं कि लाभ अधिक होने पर भी उनको निश्चित वेतन ही मिलेगा। अतः राजकीय व्यापार में कार्य-क्षमता का अभाव रहता है।

3. **बेकारी में वृद्धि**—जब व्यक्तिगत रूप से व्यापार किया जाता है तो अनेक लोगों को काम मिल जाता है परन्तु जब व्यापार स्वयं राज्य अकेला ही करता है तो अधिकांश व्यक्ति बेकार हो जाते हैं।

4. **वस्तुओं का ऊँचा मूल्य**—राजकीय व्यापार की स्थिति में ऊँचा मूल्य रहता है। इसका एक कारण तो यह है कि राज्य अकेले के द्वारा व्यापार किये जाने के कारण वह एकाधिकार की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इसका कोई भी प्रतियोगी नहीं होता है, और दूसरी ओर राजकीय व्यापार में कार्यक्षमता का अभाव रहता है और इसका परिणाम यह होता है कि वस्तुओं का मूल्य ऊँचा हो जाता है जिससे उपभोक्ता वर्ग का शोषण होता है।

5. **विश्व समाज को आर्थिक हानि**—राजकीय व्यापार, सरकार के कृत्रिम कार्यकलापों द्वारा कीमतों को ऊँचे स्तरों पर रखने की युक्ति बन गया है। ऊँची कीमतें उपभोग को घटाती हैं। घटी हुई माँग उत्पादक के पैमाने को सीमित (Restrict) करती हैं। चूँकि बड़े पैमाने के उत्पादन की मितव्ययिताओं को सक्रिय होने से रोक दिया जाता है इसलिये विश्व-समाज को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

6. **समाज के हितों की रक्षा करने में असमर्थ**—राजकीय व्यापार जिसकी स्थापना का उद्देश्य समाज के हितों की रक्षा करने के लिये हुआ था वास्तव में इसकी रक्षा करने में सफल नहीं हुआ है। समाज के हितों की सेवा करने के बजाय यह आर्थिक उत्पीड़न का एक साधन मात्र बन गया है।

7. **स्वतन्त्र एवं बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के विरुद्ध**—राजकीय व्यापार के कारण एक ऐसा व्यापारिक ढाँचा (Pattern) बन जाता है जो कि स्वतन्त्र एवं बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के विरुद्ध एवं प्रतिकूल है।

8. **मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रतिकूल**—राजकीय व्यापार पूर्ण रूप से नियंत्रित अर्थव्यवस्था में ही सफल हो सकता है। अतः मिश्रित अर्थव्यवस्था में राजकीय व्यापार का सफल होना असंभव है।

9. **मांग एवं पूर्ति की शक्तियों का अभाव**—राजकीय व्यापार का एक महत्व-पूर्ण दोष यह भी है कि राजकीय व्यापार में वस्तुओं का मूल्य निर्धारण मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा निर्धारित नहीं होता है।

10. **राज्य व्यापार के अनुपयुक्त**—अर्थशास्त्री राज्य को व्यापार एवं व्यवसाय के अनुपयुक्त मानते हैं। उनका कहना है कि राज्य में उतनी व्यापारिक सूझ-बूझ, लगन तथा योग्यता नहीं रहती जितनी कि एक पेशेवर व्यापारी में होनी चाहिये।

11. **निर्बल राष्ट्रों का शोषण**—राजकीय व्यापार से द्वि-पक्षीय व्यापारिक समझौतों को प्रोत्साहन मिलता है जिससे विश्व अर्थव्यवस्था विभिन्न वर्गों में विभा-जित होकर निर्बल राष्ट्रों का शक्तिशाली राष्ट्रों के द्वारा शोषण किया जाता है।

12. **राष्ट्र की प्रतिष्ठा को ठेस**—राजकीय व्यापार में वस्तु के गुण में गिरावट आ जाने पर सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है।

13. **लोच का अभाव**—राजकीय व्यापार में मांग के अनुरूप पूर्ति को समायोजित किया जाता है परिणामस्वरूप राजकीय व्यापार में सदैव लोच का अभाव पाया जाता है।

भारत और राजकीय व्यापार
(India and State Trading)

भारत में राजकीय व्यापार की धारणा सर्वप्रथम द्वितीय महायुद्ध काल में यविकसित हुई।

भारत में युद्ध के दिनों में सरकार ने अनाज की प्राप्ति तथा उसके वितरण का कार्य स्वयं ही किया है। यहाँ तक कि विनियन्त्रण के पश्चात् भी सम्भावित संकटों का सामना करने के लिये सरकार ने अन्न का संग्रह रखने का कार्य जारी रखा। यही नहीं, कीमतों को गिरने से रोकने के उद्देश्य से सरकार ने अनेक पदार्थों के क्रय-विक्रय का कार्य भी स्वयं किया। इन सब कार्यों के अतिरिक्त, सरकार कुछ विशेष प्रकार की वस्तुओं के बेचने के कार्य में भी लगी रही। उदाहरणार्थ–घरेलू उद्योगों की उत्पादित वस्तुयें। यह कार्य सरकार ने उत्पादकों की सहायता करने के लिये और इन वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए किया।

विगत वर्षों में भारत में राज्य व्यापार के प्रश्न पर कई बार विचार किया गया है। सर्वप्रथम देशमुख समिति ने 1949 में इस प्रश्न की जाँच की थी। इसके पश्चात् सन् 1952 में इस समिति ने राज्य व्यापार की सम्भावना की जाँच की। सरकार के आदेश पर करारोपण जाँच आयोग ने भी वित्तीय आधार पर राज व्यापार को उपयुक्तता पर विचार किया। अप्रैल सन् 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में भारत सरकार ने यह घोषणा की कि राज्य व्यापार के कार्य को बढ़ाने का प्रयत्न करेगा। मई सन् 1956 में राज्य व्यापार निगम की स्थापना की गई। इसकी अधिकृत पूँजी इस समय 5 करोड़ रु. है। यह पूर्णतया सरकारी संगठन है। और इसके कार्य निम्नलिखित हैं—

1. निगम को सौंपी गई वस्तुओं में राज्य व्यापार वाले तथा अन्य देशों से व्यापार करना।

2. निर्यात की परम्परागत वस्तुओं के लिये नई मण्डियों की खोज करना और व्यापार बढ़ाने तथा उसमें विभिन्नता लाने के लिये उनका क्षेत्र विस्तृत करना।

3. जिन वस्तुओं की पूर्ति कम मात्रा में है, सरकार के आदेश पर उनका आयात करना। आंतरिक सन्तुलित वितरण के द्वारा मूल्यों को स्थिरता प्रदान करना।

4. सरकार द्वारा जनता के हित में अपनाई गई आयात-निर्यात तथा आन्तरिक वितरण की विशेष व्यवस्था को कार्यान्वित करना।

अपने आरम्भ से ही निगम ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से तत्कालीन व्यापार को बढ़ाने और उन्नत करने का प्रयत्न किया है। सन् 1956 से आज तक इसके व्यापार क्षेत्र तथा परिमाण में निरन्तर वृद्धि होती रही है। निगम ने निजी क्षेत्र के व्यापार में भी बहुत सहायता की है और परिणामस्वरूप देश के कुल व्यापार में वृद्धि हुई है।

निगम के कार्य

यह निगम भारतीय व्यापार को बहुमुखी बनाने तथा भारत की परम्परागत तथा अपरम्परागत निर्यात वस्तुओं के लिये नये बाजार खोजने का यत्न कर रहा है। इसने भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के बदले में आवश्यक पूँजीगत समान और औद्योगिक कच्ची सामग्रियों के समान वितरण की भी व्यवस्था की है ताकि इन वस्तुओं के मूल्य उचित स्तर तक गिराये जा सकें। इन वस्तुओं में कास्टिक सोडा, सोडा एश, पारा, अखबारी कागज, कपूर, रंग के समान आदि हैं। आयात की मात्रा तथा समय इस प्रकार निश्चित किया गया है कि उपलब्धि में बार-बार बाधा न आने और भारत में इन वस्तुओं के अधिक परिणाम में उत्पादन के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा हों तथा बनी रहें। जिन वस्तुओं के निर्यात की व्यवस्था निगम ने की है, उनमें ये भी सम्मिलित हैं—खनिज, कच्चे पदार्थ, जूते, हस्त-शिल्प की वस्तुयें चाय, नमक, कहवा तथा ऊनी सामान। निगम ने पतन की सुविधाओं, खानों तथा परिवहन के विकास के क्षेत्र में भी एक महत्वपूर्ण भाग लिया है। भारतीय कच्चे लोहे का निर्यात बढ़ाने के लिए जापान तथा कुछ अन्य देशों के साथ निगम ने दीर्घ अवधि के अनुबन्धों की व्यवस्था की थी, उसके कारण खानों तथा जहाजरानी केन्द्रों के बीच मेल-सम्पर्क विकास में बड़ी सहायता मिली।

जूतों, दालों, पटसन की बोरियों, नमक, चमड़े कहवे, साइकिलों, बिजली के पंखों, फाउन्टेनपैनों, नकली मोतियों, सिलाई की मशीनों, बिजली के यन्त्रों आदि के निर्यात में भी काफी वृद्धि हुई है। इस वर्ष निगम ने देश के 30 प्रमुख वस्त्र-निर्माताओं से मिलकर भारतीय वस्त्र के लिए विदेशों में नये बाजार खोजने के लिए प्रयास किये।

सहायक संगठन—निगम के दो सहायक संगठन भी हैं—हस्तकौशल और हथकरघा निर्यात निगम (Handicrafts and Handlooms Exports Corporation) तथा भारतीय चलचित्र निर्यात निगम (Indian Motion Pictures Exports Corporation)। ये निगम दस्तकारी और हथकरघा की वस्तुयें तथा भारतीय फिल्मों का निर्यात करते हैं।

विदेशों में कार्यालय—निगन ने विदेशों में भी अपनी शाखायें खोली हैं ताकि विदेशों में भारतीय निर्यातों को प्रोत्साहन दिया जा सके। उसने रोटर्डम, प्राग, मास्को, बुडापेस्ट, पूर्वी बर्लिन, माट्रियल और नैरोबी में अपनी शाखायें खोली हैं। निगम का कार्य संचालय मितव्ययितापूर्वक तथा जन हित की दृष्टि से किया जाता है।

लघु एवं मध्यम उद्योगों की वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन—निगम ने लघु उद्योगों के लिए निर्यात सहायता की योजना (Export Aid for Small Industries) चलाई, जिसके अन्तर्गत लघु एवं मध्यम उद्योगों से सम्बन्धित निर्माताओं को व्यापक विपणन सेवा प्रदान की जाती है। निगम के प्रयत्नों से हमारे देश के लघु एवं मध्यम उद्योगों की वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन मिला है।

राजकीय व्यापार निगम की आलोचनायें

राजकीय व्यापार निगम की आलोचनायें मुख्यतः इस प्रकार हैं—

1. इस निगम द्वारा स्थायी राजनैतिक एवं आर्थिक विचारधाराओं का ही उल्लंघन नहीं होता, वरन् वैयक्तिक व्यापारी के स्वतन्त्र रूप से व्यापार के संचालन पर भी आघात होता है। अतः कुछ लोगों का कहना है कि यद्यपि जनतन्त्र में सरकार को व्यापार पर नियन्त्रण तथा नियमन का अधिकार है किन्तु वैयक्तिक अधिकारों में विघ्न नहीं डालना चाहिये।

2. राजकीय व्यापार निगम द्वारा किये गये व्यापार की हानि का प्रभाव जनता पर ही पड़ेगा।

3. राजकीय व्यापार निगम का प्रबन्ध-व्यय बहुत अधिक होता है।

4. गृह उद्योगों से सम्बन्धित व्यापार अधिक लाभदायक भी सिद्ध न हो सकेगा।

5. वस्तुओं के उत्पादन पर निगम के प्रत्यक्ष नियमन का अभाव रहता है।

6. यह दुर्लभ कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं कर सका है।

7. राजकीय व्यापार से मूल्य पद्धति को स्वतन्त्र क्षेत्र भी नहीं मिल पाता है। अतः वे बदलती हुई व्यापारिक मांग और पूर्ति की सत्यता को नहीं दर्शाते हैं।

8. अन्य देशों में राजकीय व्यापार को अधिक सफलता नहीं मिली है। रूस में वह अवश्य सफल हुआ है, लेकिन भारतवर्ष में रूस की भाँति अर्थव्यवस्था नहीं है।

9. राष्ट्रीयकृत बीमा बैंकिंग व शिपिंग सेवायें सहकारिता सहित खराब स्थिति में हैं। अतः वे राजकीय व्यापार निगम को सफल बनाने में योगदान प्रदान न कर सकेंगी।

10. यह संस्था एकाधिकार के दोषों से परिपूर्ण है।

11. इसने समस्त विदेशी व्यापार को अपने हाथ में नहीं लिया है।

12. इसने समस्त उपभोक्ताओं की चिन्ता किये बिना ही लाभ कमाने के प्रयत्न किये हैं।

13. निर्यातों की मात्रा इस संस्था ने उतनी नहीं बढ़ाई जितनी इससे आशा की जाती थी। आयात की हुई वस्तुओं को भी इसने सुचारु रूप से वितरित नहीं किया।

14. इस सम्बन्ध में बहुत ही अनिश्चितता रहती है कि निगम भविष्य में किन दिशाओं में अपना कार्य बढ़ायेगा अथवा किन वस्तुओं का आयात-निर्यात करेगा।

निष्कर्ष—यदि समाज के विकास एवं प्रगति के लिये सरकार को व्यापार हाथ में लेना आवश्यक है तो व्यक्ति विशेष अथवा वर्ग को इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यहाँ विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सरकार व्यापार का संचालन किस प्रकार करेगी। साम्यवादी देश राजकीय व्यापार के अच्छे उदाहरण हैं। चूँकि भारत एक साम्यवादी देश नहीं है, इसलिये रूस तथा उसके अनुयायी अन्य देशों में जो प्रयोग चला रहे हैं, उन सबका अनुकरण आँखें बन्द करके यहाँ नहीं हो सकता। हमारे देश के संविधान में किसी व्यक्ति के कानूनी व्यापार करने तथा उसमें लाभान्वित होने पर प्रतिबन्ध नहीं है। सरकार से भी शिकायत करने की गुंजाइश उसमें नहीं रहने दी गई है। वह मनमाने ढंग से आय-कर, लाभ, कर, बिक्री-कर आदि लगा ही लेती है। ऐसी स्थिति में व्यक्तियों के कानूनी व्यापार करके लाभ कमाने पर प्रतिबन्ध लगाने का अर्थ परोक्ष रूप से साम्यवादी नीति का अनुसरण करना ही हो सकता है।

आवश्यक नहीं कि सरकार व्यक्तियों के व्यापार करने पर तरह-तरह की रुकावटें डाले, वरन् यह है कि समाज कल्याण के लिये व्यापार सम्बन्धी नीतियाँ निर्धारित करें। अब तक उनके व्यापार करने के जो अनुभव समाज को प्राप्त हुए हैं, अत्यन्त कटु ही रहे हैं।

राजकीय व्यापार निगम का भविष्य

राजकीय व्यापार एक विश्वव्यापी तथ्य है और केवल भारत तक ही सीमित नहीं है। निगम ने अपना कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत कर लिया है और वह दिनों-दिन और भी विस्तृत होता जा रहा है। भविष्य में भी इसका विस्तार होने की सम्भावना है। विदेशी विनिमय के अभाव में कुछ महत्वपूर्ण कच्चे माल, पूँजीगत पदार्थों अथवा औद्योगिक व आर्थिक विकास सम्बन्धी अन्य आवश्यक वस्तुओं से सम्बन्धित निगम का उत्तरदायित्व भविष्य में अधिकाधिक बढ़ता जायेगा और निगम को रुपये और संवर्द्धन समझौतों (Rupee and link arrangement) द्वारा उसकी उचित व्यवस्था करनी पड़ेगी।

प्रश्न 34. भारतीय खाद्य निगम पर एक टिप्पणी लिखिए।

Write a short note on 'Food Corporation of India,'

उत्तर—

भारतीय खाद्य निगम

सन् 1957 में अशोक मेहता समिति ने सुझाव दिया था कि 100 करोड़ रुपये की पूँजी से भारत सरकार द्वारा खाद्यान्न स्थिरीकरण संगठन स्थापित किया जाय। सन् 1964 में दिल्ली में जो मुख्य-मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ था उससे अशोक मेहता समिति द्वारा दी गई रूपरेखा के आधार पर एक भारतीय खाद्यान्न निगम

स्थापित करने का निश्चय किया गया। 17 नवम्बर 1964 को भारतीय संसद में एक बिल प्रस्तुत किया गया जो तुरन्त पास कर दिया गया। फलतः जनवरी 1965 में खाद्यान्न की स्थापना 100 करोड़ रुपये की पूँजी लगाकर दी गई।

निगम के कार्य—निगम का उद्देश्य सबके लिये भोजन रक्खा गया है। इस निगम के मुख्य कार्य हैं—

1. **अन्न भण्डार**—निगम द्वारा अन्न के यथेष्ट भण्डार निर्मित किये जायेंगे जिससे उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर खाद्यान्न मिल सके।

2. **उचित प्रोत्साहन**—खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि के लिये निगम किसानों को दिये जाने वाले ऋणों की गारण्टी देगा तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए खाद तथा कीटाणुनाशक पदार्थों का प्रबन्ध करेंगे।

3. **गोदाम व्यवस्था**—निगम द्वारा खाद्यान्नों को सुरक्षित गोदामों में रखने की दिशा में कार्य किया जायेगा।

4. **कृषि प्रबन्ध**—निगम कृषि प्रबन्ध सम्बन्धी नई प्रविधियों का विकास कर किसानों को उनमें प्रशिक्षण देगा ताकि किसानों की कुशलता में वृद्धि हो सके।

5 **शोध**—कृषि फसलों की प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने और फसलों को कीटाणुओं और रोगों से बचाने के लिये निगम द्वारा कृषि फसलों तथा प्रविधियों में शोध की जायेगी।

6. **वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग**—खेती में नवीनतम वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग हो और कृषि का यन्त्रीकरण हो सके इस दिशा में भी निगम द्वारा प्रयास किया जायेगा।

7. **सहायक खाद्य पदार्थों का विकास**—मुर्गी, मछली, माँस तथा फल, साग, सब्जी आदि सहायक खाद्य पदार्थों के उत्पादन का विकास और उनके उपयोग को प्रोत्साहन भी निगम द्वारा दिया जायेगा।

8. **थोक तथा फुटकर मण्डियों की व्यवस्था**—उपभोक्ता को उचित मूल्य पर खाद्यान्न मिल सके इसलिए निगम द्वारा खाद्यान्नों की थोक बिक्री तथा फुटकर वितरण की व्यवस्था की जायेगी।

9. **अन्य कार्य**—(अ) निगम द्वारा बिस्कुट, मिठाई, आदि खाद्यान्नों से संबंधित उद्योगों को प्रोत्साहित किया जायेगा।

(ब) निगम द्वारा खाद्यान्नों का उपभोग सन्तुलित करने की चेष्टा की जायेगी।

(स) निगम आवश्यकता पड़ने पर अपनी परिवहन व्यवस्था भी करेगा।

संक्षेप में खाद्यान्नों की खरीद, संग्रह, यातायात, वितरण व बिक्री का कार्य मुख्यतः यह निगम करेगा तथा देश के खाद्यान्न व्यापार में अग्र स्थान प्राप्त करने की दिशा में कदम उठायेगा।

निगम की गतिविधियाँ—यह निगम अनाज का सबसे बड़ा थोक व्यापारी है। सन् 1965 में ही दक्षिण खाद्य क्षेत्र से चावल की खरीद करके अपना कार्य आरम्भ कर दिया है। इसकी गतिविधियों में निरन्तर विस्तार होता जा रहा है। आजकल यह जम्मू-काश्मीर, नागालैण्ड और महाराष्ट्र के अतिरिक्त सभी राज्यों में कार्य कर रहा है। पिछले तीन-चार वर्षों में खाद्य निगम ने खाद्यान्न वसूली की दिशा में काफी प्रगति की है। निगम खाद्यान्न वसूली प्राथमिक सहकारी समितियों, जिला-विपणन समितियों तथा राज्य विपणन समितियों द्वारा करता है। निगम की कृषि वस्तुओं की खरीद के अन्तर्गत अभी तक चावल, गेहूं, मोटे अनाज, दाल, मूँगफली व उसका तेल, गेहूं के पदार्थ, मसाले व बीज आदि खरीदे गये हैं।

भारी उपजदायी किस्म कार्यक्रम को प्रोत्साहन देने के लिए चावल की कृषि आवश्यकतायें किसानों को उपलब्ध करने की एक अग्रिम परियोजना आंध्र, मैसूर व मद्रास राज्यों में निगम द्वारा चलाई गई है। निगम ने राजकीय व्यापार निगम द्वारा गेहूं की भूसी निर्यात करके विदेशी मुद्रा भी प्राप्त की है।

अनाजों के अतिरिक्त दालें, मूँगफली का तेल और कई अन्य पदार्थ भी यह खरीदने लगा है। यह सब विधायित (प्रोसेस्ड) खाद्य पदार्थों के निर्माण वितरण का भी काम करता है।

प्रश्न 35. भारत में चालू निर्यात प्रेरक योजनाओं को स्पष्ट कीजिए। भारत का निर्यात व्यापार बढ़ाने के लिए किन तरीकों को अपनाने का सुझाव आप देंगे ?

Explain the export incentive schemes that are already in operation in India. What additional measures would you suggest for increasing India's Export Trade ?

उत्तर—

निर्यात संवर्धन से आशय

(Meaning of Export Promotion)

जब सरकार निर्यात वृद्धि के लिए उद्योगों को विविध प्रकार का संरक्षण प्रदान करती है, तब इसे निर्यात संवर्धन की संज्ञा दी जाती है। निर्यात संवर्धन निर्यात नियन्त्रण का विपरीत शब्द है अधिक निर्यात किसी देश की विकसित अर्थव्यवस्था का द्योतक है। संसार के विकसित एवं अर्द्ध-विकसित देशों की अर्थ-व्यवस्था में निर्यात संवर्धन का बहुत महत्व है।

भारत के लिए निर्यात संवर्धन का महत्व

(Importance of Export Promotion for India)

आज भारत की अर्थ-व्यवस्था में निर्यात का महत्व इतना बढ़ चुका है कि हम औद्योगिक विकास की दौड़ में इसको पीछे नहीं छोड़ सकते। इसका प्रमुख कारण यह है कि निर्यात ही हमारी बहुमूल्य विदेशी मुद्रा का आधार है, जिसके अभाव में औद्योगीकरण (Industrialisation) के मार्ग में अगणित बाधाएँ आकर खड़ी हो

सकती हैं। यद्यपि हम विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न कर रहे हैं और किन्हीं क्षेत्रों में हमें सफलता भी मिली है परन्तु अभी बहुत से नये उद्योग रहते हैं जिनको कि देश में स्थापित करना है और इसके लिए बहुत-सी मूल्यांकन मशीनों का आयात करना होगा।

भारतवर्ष में यदि हम स्वावलम्बी अर्थ-व्यवस्था के स्वप्नों को साकार देखना चाहते हैं; प्रतिकूल विदेशी व्यापार को अनुकूल बनाना चाहते हैं अधिक मात्रा में विदेशी विनिमय प्राप्त करना चाहते हैं तथा योजनाओं की सफलता एवं औद्योगिक विकास के आधार एवं गति को तीव्र बनाना चाहते है तो निर्यात संवर्धन इसके लिए एक सरल श्रेयस्कर उपाय है।

भारत में निर्यात संवर्धन के प्रयत्न

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही सरकार निर्यात में वृद्धि के लिए प्रयत्नशील है। निर्यात वृद्धि के लिए समय-समय पर जो प्रयत्न किये गये हैं वे निम्नलिखित हैं—

1. **गोरवाला समिति की नियुक्ति**—जुलाई सन् 1949 में **श्री. ए. डी. गोरवाला** की अध्यक्षता में एक निर्यात प्रोत्साहन समिति की स्थापना की गई। इस समिति ने सरकारी और गैर-सरकारी व्यापारिक मण्डल विदेशों को भेजने, भारत में विपणि अनुसन्धान की स्थापना करने, निर्यात प्रोत्साहन संचालन की स्थापना करने, आयात किये हुए कच्चे माल से निर्मित वस्तुओं पर कर लगाने तथा निर्यात कर देश के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए लगाने के सुझाव दिये।

2. **निर्यात प्रोत्साहन समिति** (1957)—भारत का निर्यात बढ़ाने हेतु निर्यात व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए और उसमें सुधार करने के लिए उपयुक्त सुझाव देने के लिए फरवरी 1947 में भारत सरकार ने एक निर्यात प्रोत्साहन समिति की स्थापना की जिसके अध्यक्ष **डॉ. बी. एल. डिसोजा** थे। समिति ने निर्यात प्रोत्साहन हेतु प्रशुल्क (Tariff) एवं अन्य सहायता के स्वरूप साख सुविधा, निर्यात संगठन की कार्य-प्रणाली, व्यापारिक व्यवहारों का सरलीकरण तथा यातायात के विकास हेतु अनेक सिफारिशें प्रस्तुत कीं।

3. **आयात-निर्यात नीति मुदालियर समिति** 1962—तृतीय योजना में निर्यात लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सुझाव देने हेतु मुदालियर समिति की नियुक्ति की गई। इस समिति ने आयात-निर्यात व्यापार नीति और कार्यविधि तथा निर्यात संवर्धन के प्रयत्नों की समीक्षा की। समिति की राय में देश में निर्यात वृद्धि के हेतु किये गये प्रयत्न साधारण थे, अतः निर्यात वृद्धि के लिए सहायता तथा प्रोत्साहन की ओर अधिक ठोस नीति अपनाने की आवश्यकता है। सीमिति ने वार्षिक निर्यात योजना, (प्रत्येक उद्योग के लिए) बनाने का सुझाव दिया। निर्यात प्रतिज्ञाओं की पूर्ति पर जोर दिया। सरकार को भी चुनी हुई छूटों (Concessions), कर में कमी तथा अन्य प्रकार से

प्रोत्साहन देना चाहिए। निर्यात संवर्धन के लिए एक संयोजन यन्त्र की स्थापना की जानी चाहिए। निर्यात संवर्धन निर्देशालय (Directorate of Export Promotion) में एक Policy-cell की स्थापना की जानी चाहिए। समिति की अन्य सिफारिशें हैं—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना तक भारत का निर्यात व्यापार दुगुना करना, उद्योगों का उत्पादन व्यय कम करना, निर्यातक उद्योगों को कच्चे माल का आयात करने देना एक आयात-निर्यात समता को (Import-Export Stabilisation Fund) का निर्माण करना आदि लक्ष्य हैं।

4. **विदेशी व्यापार बोर्ड**—विदेशी व्यापार के विकास से सम्बन्धित कार्यों में एकीकरण लाने तथा विदेशी विनिमय के सदुपयोग के निमित्त भारत सरकार ने जुलाई 1957 में विदेशी व्यापार बोर्ड की स्थापना की। यह बोर्ड विदेशी व्यापार से सम्बन्धित नीति निर्धारित करता है तथा व्यापारिक आदर्श उपस्थित करता है एवं विभिन्न बाजारों में व्यापार वृद्धि के ढंग बताने का यत्न करता है।

5. **निर्यात प्रोत्साहन निर्देशालय** (Directorate of Export Promotion)—यह विदेशी व्यापार बोर्ड द्वारा बनाई हुई नीति को कार्यान्वित करता है। निर्यातकर्त्ताओं का पथ-प्रदर्शन, आवश्यक सूचनायें एवं सहायता प्रदान करता है। उसका दिल्ली में मुख्य और बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास में क्षेत्रीय कार्यालय है। सन् 1962 में निर्देशालय का कार्य बन्द हो गया तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मंत्रालय (Ministry of International Trade) ने इसे ले लिया है।

6. **निर्यात निरीक्षण परिषद्** (Export Inspection Council)—भारतीय निर्यात निरीक्षण परिषद् की स्थापना निर्यात अधिनियम, सन् 1963 के अन्तर्गत की गई। इसमें उद्योग तथा व्यापार के प्रमुख व्यक्ति और निजी तथा सरकारी क्षेत्रों के औद्योगिक विशेषज्ञ शामिल हैं। परिषद् की बैठकों में किस्म नियन्त्रण (Quality Control) तथा जहाज लदान से पूर्व निरीक्षण सम्बन्धी बातचीत में भाग लेने और कार्यक्रमों के बारे में सलाह देने के लिए व्यापार और उद्योग के प्रमुख व्यक्ति तथा औद्योगिक विशेषज्ञ आमन्त्रित किये जाते हैं। परिषद् का सचिवालय कलकत्ता में स्थापित है और इसमें प्राविधिक (Technical) रूप से योग्यता प्राप्त अधिकारी हैं जो कि न केवल सम्बद्ध उद्योगपतियों को न केवल सलाह ही देते हैं अपितु किस्म नियंत्रण सम्बन्धी उपायों और माल की किस्म की देख-रेख तथा जाँच-पड़ताल करने के लिए कार्य स्थल पर भी जाते हैं। वे अधिनियम के अन्तर्गत जहाज लदान से पूर्व निरीक्षण कार्य करने वाली अधिकृत एजेन्सियों के काम का भी निरीक्षण करते हैं।

7. **निर्यात संवर्धन परिषद्** (Export Promotion Council)—विभिन्न वस्तुओं के निर्यात बढ़ाने, निर्यात की सम्भावनाओं के बारे में जानकारी देने, विदेशी बाजारों का सर्वेक्षण करने, वस्तुओं के बेहतर और नये-नये प्रयोग ढूँढने के लिए अनुसन्धान करने, निर्यातकों को देशी माल आवंटन (Allotment) और उनकी व्या-

वहारिक और प्रक्रिया सम्बन्धी कठिनाइयों को हल करने के लिए निर्यात संवर्धन परिषदों की स्थापना की गई है। इस समय देश में इस प्रकार की 15 परिषदें हैं, जो अलग-अलग सूती वस्त्र, काजू, मसाला, तम्बाकू, चमड़ा, रेशम, रेयन, रासायनिक पदार्थ के सामान, कल, इंजीनियरी का सामान आदि के निर्यात संवर्धन सम्बन्धी कार्य कर रही हैं।

8. **वस्तु बोर्ड**—चाय, कॉफी, जूट, हाथ के पदार्थों, कलात्मक वस्तुओं, जूट एवं रबर के लिए अलग-अलग बोर्ड बनाये गये हैं जो इन वस्तुओं के निर्यात हेतु प्रोत्साहन परिषदों का कार्य करते हैं।

9. **प्रदर्शनीय निर्देशालय**—यह निर्देशालय भारतीय माल की बिक्री की सम्भावनाओं की खोज तथा विदेशों में इसका प्रचार करता है। निर्यात प्रोत्साहन परिषदों और उद्योग वाणिज्य संस्थाओं के साथ मिलकर सम्भावित बाजारों में प्रदर्शन करने एवं प्रदर्शन केन्द्र खोलते हैं।

10. **राज्य व्यापार निगम** (State Trading Corporation)—विदेशी व्यापार में विविधता लाने, विदेशी व्यापार करने वाले व्यवसायियों को अधिक सहायता देने, नई-नई विपणियों की खोज करने, निर्यात में वृद्धि करने तथा इस हेतु सुविधायें प्रदान करने के लिए मई 1956 में एक राज्य व्यापार निगम की स्थापना हुई। निगम कुछ निर्यात संवर्धन योजनाओं को कार्यान्वित करता है और दूसरे देशों के साथ व्यापार भी करता है।

11. **निर्यात जोखिम बीमा निगम** (Export Risks Insurance Corporation)—भारत के लिए निर्यात साख बीमा योजना के प्रश्न की जाँच करने के लिए सन् 1955 में एक निर्यात साख गारण्टी समिति की नियुक्ति हुई, जिसके अध्यक्ष **टी. सी. कपूर** थे। इसकी सिफारिश पर 4 अक्टूबर 1957 को एक निर्यात बीमा जोखिम निगम स्थापित किया गया। इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में है। इसका उद्देश्य देश से बाहर माल भेजने वालों की उन सामान्य हानियों का बीमा करना है जो कुछ व्यापारिक और राजनैतिक कारणों से हो सकती है, जिन पर निर्यातकों का कोई वश नहीं होता तथा जिनका बीमा किसी गैर सरकारी फर्म द्वारा नहीं किया जाता। इस निगम का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं है, केवल देश का निर्यात बढ़ाने में निर्यातकों की सहायता करना है। इसलिये यह निगम न हानि न लाभ (No Profit No Loss) नीति के अनुसार काम करता है।

12. **ऋण सुविधायें**—सन् 1962 में, निर्यातकों को ऋण सुविधायें देने के लिए सरकार ने एक अध्ययन मण्डल नियुक्त किया था। इस मण्डल द्वारा की गई सिफारिशें सरकार ने मान ली हैं और उन्हें कार्य-रूप में लाया जा रहा है। भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India) के अधिनियमों में इस अध्ययन मण्डल की सिफारिशों के अनुसार संशोधन कर दिया गया है। पुनर्वित्त निगम

(Re-finance Corporation) ने 6 माह से अधिक तथा 5 वर्ष से कम की अवधि तक के ऋणों को मध्यम शर्तों पर निर्यात में ऋणों के लिये पुनर्वित्तीय सहायता देने के उद्देश्य से एक योजना भी चालू की। निजी क्षेत्र के निर्माताओं को दी जाने वाली सुविधाएँ सीमित होंगी और पूँजीगत माल (Capital goods) अथवा इंजीनियरी का सामान निर्यात करने के मामले में इन्हें सामान्य रूप से अग्रसर किया जायेगा। अन्य प्रकार के माल के सम्बन्ध में सुविधाएँ देने के प्रश्न पर निगम द्वारा तभी विचार किया जायेगा बशर्ते कि विनिमय नियन्त्रण प्रारम्भिक 180 दिन की अवधि के दौरान की, उसकी बिक्री की आय से सहमत हो जायें। पुनर्वित्तीय सुविधायें उन बैंकों को दी जायेंगी जो विदेशी मुद्रा के लिये अधिकृत हैं अथवा निगम की ओर पुनर्वित्त सुविधाओं के लिए योग्य ऋण पक्के सौदों के निर्यात से सम्बन्धित होंगे और सामान्यतया जोखिम बीमा निगम लिमिटेड की उपयुक्त नीति के अन्तर्गत रखे जायेंगे।

निर्यातकों के लिए उपलब्ध ऋण सुविधाओं को और अधिक बढ़ाने तथा उधार करने के प्रश्न पर एक अन्य अध्ययन मण्डल द्वारा विचार किया जा रहा है।

13. **प्रचार विभाग**—यह विभाग विदेशों के भारत के प्रतिनिधियों को वाणिज्य विषयक नवीनतम सूचना प्रदान करता है।

14. **वाणिज्य सूचना**—कलकत्ता में सरकार ने एक वाणिज्य सूचना निर्देशालय खोल रखा है जो व्यापार सम्बन्धी सभी प्रकार के आँकड़े एकत्रित करके उनका विश्लेषण और प्रकाशन करता है।

15. **व्यापारिक प्रतिनिधि**—भारत सरकार की ओर से 45 देशों में व्यापार प्रतिनिधि रहते हैं जो उन देशों के लोगों की रुचि, स्वभाव, माँग आदि के विषय में देशी निर्यातकों को आवश्यक जानकारी देते हैं।

16. **सीमान्त शुल्क तथा उत्पादन की छूट**—भारतीय निर्यातकों को विदेशी प्रतियोगिता का सामना करने के निमित्त लगभग 80 वस्तुओं पर सीमा शुल्क से छूट देने के सम्बन्ध में नियम बनाये गये हैं।

17. **विशिष्ट निर्यात कार्य के लिए पुरस्कार**—विशिष्ट निर्यात कार्य के लिए 28 नवम्बर 1969 को एक समारोह में 9 प्रतिष्ठानों को पुरस्कार दिये गये और 53 को योग्यता प्रमाण-पत्र।

18. **निर्यात नियन्त्रण एवं कर हटाना**—निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए समय-समय पर निर्यात कर हटाये गये हैं अथवा उनमें कमी की गई है। निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के लिए कच्चे माल के आयात की आज्ञा और लाइसेंस दिये जाते हैं।

19. **गुण नियन्त्रण**—अपनी वस्तुओं की देश में तथा विदेशों में बिक्री बढ़ाने के लिए जहाज पर माल लदान होने के पूर्व उसका निरीक्षण किया जाता है ताकि माल नमूने के अनुसार हों।

20. **अधिक निर्यात पर विशेष सुविधा**—इस वर्ष केन्द्रीय सरकार ने घोषित किया है कि पिछले वर्ष जिन कारखानों ने अपने उत्पादन का 10 प्रतिशत या उससे अधिक का निर्यात किया उन्हें अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए अपने पसन्द के देशों से कच्चा माल मँगाने की सुविधा दी जायेगी।

21. **परिवहन सुविधायें**—निर्यातक वस्तुओं के सम्बन्ध में रेल से पत्तनों तक ले जाने के लिए प्राथमिकता दी जाती है तथा भाड़े में रिबेट भी दिया जाता है। निर्यातकों को विदेश भेजे जाने वाले माल के लिए जहाजी स्थान दिलाने के लिए भारत सरकार ने एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की है।

22. **निर्यात सदन**—निर्यात व्यापार में विशिष्टीकरण का विकास करने के लिए सुप्रसिद्ध व्यावसायिक फर्मों को निर्यात सदनों के रूप में मान्यता देने के सम्बन्ध में सरकार ने एक योजना बनाई है। इन निर्यात सदनों को निर्यात व्यापार के सम्बन्ध में कुछ विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं।

23. **विपणन विकास निधि** (Marketing Development Fund)—भारत सरकार ने जुलाई 1963 में विपणन विकास निधि का गठन किया है जो भारतीय उत्पादकों तथा वस्तुओं के लिए विदेशी बाजारों का विकास करने की योजनाओं को वित्तीय सहायता देती है।

24. **पैकिंग संस्थान**—उपर्युक्त पैकिंग के बिना कोई भी निर्माण विधि पूरी नहीं होती और वस्तुओं की बिक्री भी भली प्रकार नहीं होती इसलिए निर्यात सम्वर्द्धन की किसी भी योजना में उपयुक्त पैकिंग के लिए महत्वपूर्ण स्थान रहता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पैकिंग संस्थान स्थापित किया गया है।

25. **कच्चे माल, पुर्जों, उपकरणों एवं मशीनों के आयात में रियायत**—जो उद्योग अपना माल निर्यात करते हैं उन्हें सरकार ने आवश्यक कच्चे माल, मशीन, पुर्जे, उपकरण आदि सामान के आयात की विशेष सुविधा प्रदान की है।

26. **अग्रिम लायसेन्स देने की सुविधा**—कुछ दशाओं में सरकार ने निर्यात उद्योगों को अग्रिम लायसेन्स देने की नीति भी अपनाई है ताकि वे अपने निर्यात सम्बन्धी बचनों को पूरा करने के लिए आवश्यक सामग्री खरीद सकें।

27. **देश में उपलब्ध कच्चे माल की रियायती दर पर पूर्ति**—निर्यातक इकाइयों को कुछ देशी कच्चे माल (जैसे कच्चा लोहा, इस्पात, टीन की चद्दर आदि) की रियायत दर पर पूर्ति करने में विशेष प्राथमिकता दी जाती है।

28. **निर्यात अधिनियम का पारित होना**—निर्यात (किस्म नियन्त्रण तथा निरीक्षण) अधिनियम 1963 के पारित हो जाने से अब निर्यात किये जाने वाले माल पर अनिवार्य किस्म नियन्त्रण तथा लदान के पूर्व निरीक्षण लागू कर दिया गया है। वस्तुओं के मानक, प्रमाणीकरण तथा ट्रेड मार्क सम्बन्धी योजना भी लागू की गई है। किस्म नियन्त्रण के लिये परीक्षण गृह तथा प्रयोगशालाएँ भी खोली गई हैं।

29. **रुपये का अमूल्यन**—निर्यात संवर्द्धन को प्रोत्साहन देने की दिशा में भारतीय रुपये का जून 1966 में अवमूल्यन किया गया जिसके परिणाम हमारे अनुकूल रहे हैं तथा निर्यात में वृद्धि हुई है।

30. **नवीन औद्योगिक लाइसेंस नीति**—जनता सरकार द्वारा घोषित नई औद्योगिक नीति के अन्तर्गत निर्यातक इकाइयों को कच्चे माल के आयात तथा औद्योगिक विस्तार की योजनाओं को लागू करने में विशेष रियायतें प्रदान की गई हैं।

31. **व्यापारिक समझौते एवं अनुबन्ध**—निर्यात प्रक्रिया को बढ़ाने के लिये सरकार ने अनेक देशों से व्यापारिक समझौते कर रखे हैं और उन समझौतों के अनुसार दो देशों के मध्य व्यापारिक व आर्थिक सहयोग, संयुक्त उपक्रमों की स्थापना, परस्पर औद्योगिक विकास, तकनीकी सहयोग, प्रशुल्क सम्बन्धी शर्तें, संयुक्त जहाजी मार्गों की स्थापना, परिवर्तनीय मुद्रा के रूप में भुगतान, प्रचार एवं प्रसार के कार्य आपस के सहयोग से सम्पन्न किये जाते हैं।

32. **व्यापार विकास प्राधिकरण की स्थापना**—देश में स्थापित मध्यम व छोटे आकार के उद्योगों की निर्यात क्षमता की वृद्धि करने एवं संगठित करने के मूल लक्ष्य को लेकर सरकार ने एक व्यापार विकास प्राधिकरण की स्थापना की है।

33. **सूचना केन्द्र की स्थापना**—भारत सरकार ने भी ब्रिटिश ट्रेड इनफॉरमेशन सेन्टर की भाँति निर्यातकों की सहायता के लिए एक सूचना केन्द्र की स्थापना की है जो निर्यातकों को निर्यात की गई वस्तुओं के मूल्य विदेशी सरकार की नीति आदि के बारे में सही-सही जानकारी प्रदान करता है।

34. **वित्तीय संस्थाओं की स्थापना**—सरकार ने निर्यात संवर्द्धन के लिये निर्यातक संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से अनेक विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की है।

निर्यात वृद्धि के सुझाव

निर्यात की गति को तीव्र बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं—

1. **निर्यात व्यापार से प्राप्त आय-कर पर से छूट**—वर्तमान समय में केवल विदेशी कम्पनियों को छोड़कर, जो भारत में लाभांश नहीं बाँटती हैं उन सब करदाताओं को निर्यात व्यापार से प्राप्त आय-कर व अधिक कर के 1/10 भाग की छूट दी जाती है। यदि करदाता निर्माता है और वस्तु का निर्यात 28 फरवरी 1963 के बाद करता है तो उसे ऐसे निर्यात से मिली हुई विक्रय राशि के 2% पर आय कर व अधिक कर की औसत दर से छूट दी जाती है। इस छूट की मात्रा को बढ़ाया जाये।

2. निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर बिक्री कर समाप्त कर दिये जायें।

3. निर्यात विकास कोष (Export Development Fund) का प्रबन्ध किया जाये।

4. निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के भाड़े में कमी की जाये ।

5. निर्यात होने वाली वस्तुओं की किस्म में सुधार किया जाये एवं उत्पादन लागत (Cost of Production) कम की जाये ।

6. अधिक निर्यात बढ़ाने के लिए अधिक उत्पादन तथा अधिक उत्पादन के लिए कृषि एवं उद्योगों में उचित समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए ।

7. पूँजीगत माल का निर्यात बढ़ाने के लिए पर्याप्त साख सुविधायें उपलब्ध की जानी चाहिए ।

8. निर्यात वृद्धि के लिए केन्द्र तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारों द्वारा स्थापित विभागों में उचित एवं प्रभावपूर्ण सहयोग स्थापित किये जायें ।

9. विदेशों में औद्योगिक प्रदर्शनियाँ और व्यापारिक मेले लगाये जायें ।

10. निर्यात गृहों और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केन्द्रों की स्थापना में सहायता दी जायें ।

11. भारतीय व्यापारी ईमानदारी से निर्यात व्यापार करें ।

12. बिक्री एवं उत्पादन करने वाली इकाइयों में एकता एवं सहयोग प्रोत्साहित किया जाये ।

13. सरकार तथा उद्योगों में निकट सम्पर्क स्थापित किया जाये ।

14. उद्योगों के प्रबन्ध में सुधार किया जाये ।

15. अन्तर्राष्ट्रीय मेलों एवं प्रदर्शनियों में भाग लेकर वस्तुओं का प्रचार किया जाये ।

16. पत्तनों का सुधार एवं अभिनवीकरण किया जाये ।

17. बाजारों का विस्तार एवं ग्राहकों की रुचि एवं माँग को ध्यान में रखकर वस्तुओं का उत्पादन किया जाये ।

18. केवल पूँजीगत माल के आयात को प्रोत्साहन दिया जाये जिससे औद्योगिक विकास के आधार एवं गति में वृद्धि हो ।

19. **निर्यात बैंक की स्थापना**—केन्द्रीय सरकार ने निर्यात बैंक की स्थापना की है जिससे कि निर्यात के लिए बड़े पैमाने पर ऋण सुविधायें प्राप्त हो जायेंगी और छोटे उद्योग भी निर्यात के प्रति अधिक उत्साहित हो जायेंगे ।

निर्यात प्रोत्साहन की कठिनाइयाँ
(Difficulties of Export Promotion)

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि निर्यात संवर्द्धन के लिए समय-समय पर अनेक उपाय किये गये हैं, इनके उपरान्त भी निर्यातों में आशाजनक वृद्धि नहीं हो पायी है । कुल निर्यातों में परम्परागत वस्तुओं (Traditional Commodities) का भाग अब भी 70 प्रतिशत से अधिक है । हमारे कुल निर्यात 1964-65 में 817 करोड़ (अवमूल्यन के पश्चात् की दर पर 1287 करोड़ रुपये) के थे, और

इसके बाद के वर्षों में हम इससे भी नीचे गिर गये। 1968-69 में कुछ वृद्धि के अनुमान लगाये गये हैं, परन्तु यह वृद्धि नहीं के बराबर है। वास्तविकता यह है कि निर्यात संवर्द्धन में हमारे समक्ष कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं जिनमें से प्रमुख निम्न-लिखित हैं—

1. देश में ही मूल्य स्तर ऊँचा होने के कारण उत्पादकों को घरेलू बाजार अधिक आकर्षक प्रतीत होता है, और वे निर्यात करने के लिए अधिक उत्सुक नहीं हो पाते।

2. निर्यात उद्योगों की उत्पादन लागत ऊँची है तथा माल की किस्म (Quality) भी अधिक अच्छी नहीं है।

3. भारत को विदेशी बाजारों में अपने प्रमुख परम्परागत निर्यातों (चाय, सूती कपड़ा व जूट के सामान) के लिए प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। हमारे निर्यातों के लिए विश्व के बाजारों में माँग अनिश्चित व अस्थिर हो गई है।

4. विकसित देशों का रुख सहयोगपूर्ण नहीं है। उनके द्वारा अपनाई गई प्रतिबन्धात्मक आयात नीति अल्पविकसित देशों के निर्यात संवर्द्धन में बाधक है। विश्व के बढ़ते हुए निर्यात व्यापार में विकसित देश का भाग बढ़ता गया है, जबकि विकासशील देशों का भाग निरन्तर रूप से कम हुआ है।

5. औद्योगीकरण की गति भी धीमी रही है और उद्योगों की निर्यात क्षमता सीमित रही है।

6. आयात प्रतिस्थापन की ओर अधिक ध्यान दिया गया है, क्योंकि हम यह सोचते रहे हैं कि केवल आयात प्रतिस्थापन से ही हम अपना भुगतान ठीक कर लेंगे।

7. निर्यात की वस्तुओं में विविधता लाने में बहुत कम प्रगति हो पायी है। उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण ही हमारे निर्यात सन्तोषजनक ढंग से नहीं बढ़ पाये हैं।

14 विपणन चातुर्य
(MARKETING INTELLIGENCE)

प्रश्न 36. विपणन चातुर्य पर एक टिप्पणी लिखिये।

Write a note on Marketing Intelligence.

उत्तर—

विपणन चातुर्य
(Marketing Intelligence)

विपणन किसी भी देश की औद्योगिक एवं व्यावसायिक प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत में जहां पर कि राष्ट्रीय आय का 50% से भी अधिक भाग कृषि से प्राप्त होता है, विपणन का महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में देश में उत्पादन वृद्धि होने के साथ ही साथ विपणन की ओर ध्यान दिया जाना भी आवश्यक है। प्रत्येक देश में एक "केन्द्रीय विपणन संगठन" (Central Marketing Organisation) की स्थापना की जानी चाहिये।

विपणन विभाग के कर्त्तव्य या कार्य

देश में स्थापित विपणन विभाग के अनेकों महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्य होते हैं। विपणन विभाग के कुछ प्रमुख कर्त्तव्य या कार्य निम्नलिखित हैं।

1. **बाजार का विकास एवं नवीन विपणन पद्धतियों की खोज**—विपणन विभाग का यह एक प्रमुख एवं सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। प्रत्येक विपणन विभाग सम्बन्धित वस्तुओं के बाजार का विकास करता है और विपणन की नवीन-नवीन पद्धतियों की खोज करता है। इससे देश की विपणन व्यवस्था का विकास होता है।

2. **अनुसंधान द्वारा प्रोत्साहन**—वर्तमान विपणन व्यवस्था को अनुसंधान, खोज एवं प्रयोग के द्वारा प्रोत्साहन प्रदान करना विपणन विभाग का एक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है जिसे प्रत्येक विभाग को पूरा करना चाहिये।

3. **उत्पादन वृद्धि के लिये सरकार को परामर्श**—देश की भावी आवश्यकताओं का अनुमान लगा कर सरकार को उत्पादन वृद्धि के लिये परामर्श देना विपणन विभाग का एक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

4. **विपणन सेवाओं की कार्यक्षमता में वृद्धि करना**—स्वयं की सेवाओं की कार्य-क्षमता में वृद्धि करना अर्थात् अपने सेवा क्षेत्र व कार्य-क्षेत्र में विशाल पैमाने पर वृद्धि करना भी देश के विपणन विभाग का एक कार्य है।

5. **संग्रह सुविधाओं का अध्ययन**—देश में उपलब्ध संग्रह एवं भण्डारगृहों का अध्ययन करना भण्डारगृहों का विकास करना, संग्रहण की अधिकाधिक सुविधाएँ देशवासियों को उपलब्ध कराना विपणन विभाग का एक आवश्यक कार्य है।

6. **कृषि उत्पादन के सम्बन्ध में बाहरी माँग का अध्ययन करना**—कृषि उत्पादन से सम्बन्धित आंतरिक माँग के साथ-साथ बाहरी माँग का समय-समय पर अध्ययन करना भी विपणन विभाग का उत्तरदायित्व है।

7. **न्यूनतम मूल्य नीति से सम्बन्धित परामर्श देना तथा रिजर्व स्टॉक का निर्माण करना**—न्यूनतम मूल्य नीति से सम्बन्धित उचित परामर्श सरकार को देना, रिजर्व स्टॉक का निर्माण करना भी इस विभाग का ही कार्य है।

8. **कर्मचारियों को प्रशिक्षण**—इस विभाग का एक कार्य विपणन से सम्बन्धित कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करना भी है।

9. **नई-नई विपणन पद्धतियों की खोज**—विपणन के क्षेत्र में विपणन की नई-नई पद्धतियों की खोज करना तथा इस क्षेत्र में निरन्तर अनुसन्धान एवं प्रयोग करना भी विपणन विभाग का ही कार्य है।

10 **क्रय-विक्रय की सहकारी संस्थाओं की स्थापना**—क्रय-विक्रय को अधिकाधिक सहकारी बनाना व सहकारी क्रय-विक्रय संस्थाओं की स्थापना करना आदि।

11. **ग्रेडिंग की व्यवस्था करना**—विपणन विभाग में अनेक प्रकार की सामग्री होती है, प्रत्येक सामग्री को एक निश्चित ग्रेड अथवा श्रेणी देने की व्यवस्था करना भी इस विभाग का एक प्रमुख कार्य है।

12. **सूचनाओं का एकत्रीकरण व प्रसारण**—विपणन से सम्बन्धित महत्व-पूर्ण सूचनाओं को एकत्र करके उनका प्रसारण करना भी विपणन विभाग का एक महत्पूर्ण कार्य है।

15 नियमित या नियन्त्रित मण्डियाँ

(REGULATED MAKETS)

प्रश्न 37. नियमित या नियंत्रित मण्डियों पर एक टिप्पणी लिखिये ।
Write a note on 'Regulated Markets.'

उत्तर—

नियमित या नियन्त्रित मण्डियाँ
(Regulated Markets)

देश की मण्डियों में प्रचलित विभिन्न कुरीतियों को दूर करने की दृष्टि से नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना एक प्रभावकारी कदम है। 'नियन्त्रित मण्डी' से आशय एक ऐसे बाजार से है, जिसका संगठन और कार्यविधि स्थानीय निकायों या सरकारी सन्नियमों के अधीन बनाये गये नियमों तथा उपनियमों द्वारा नियमित होता है। इस प्रकार की मण्डी में एक समिति बनाई जाती है, जिसमें व्यापारियों, कृषकों, नगरपालिका तथा सरकार के प्रतिनिधि होते हैं। मण्डी में सभी व्यापारियों और दलालों को समिति के लाइसेन्स लेना पड़ता है। समिति द्वारा बाजार में कटौती की दरें, तौल की विधि, भुगतान व्यवस्था, कार्य के घण्टे आदि निश्चित किये जाते हैं। किसानों के ठहरने तथा माल के संग्रह के लिये भी उचित व्यवस्था की जाती है।

भारत में केरल, नागालैण्ड, असम, मेघालय, और जम्मू-काश्मीर को छोड़कर शेष राज्यों तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों में मण्डियों का नियमन करने के लिये अधिनियम पारित किये जा चुके हैं। सन् 1974 के अन्त में भारत में नियन्त्रित मण्डियों की संख्या 3 016 थी। (Central Directorate of Marketing and Inspection) द्वारा इन मण्डियों में विविधि प्रकार की सुविधाओं को विकसित करने के लिये आर्थिक सहायता भी दी जाती है।

नियन्त्रित मण्डियों से लाभ

1. विपणन व्यय, जैसे कमीशन व अन्य उचित कटौतियाँ काटी जाती हैं। अनाधिकृत कटौतियाँ, जैसे धर्मादा, नमूना आदि पर रोक लगाई जाती है।

2. मण्डी में काम करने वाले आड़तिया और व्यापारी आदि को लाइसेन्स लेना पड़ता है।

3. प्रमाणित तौल, बाँट, काँटे आदि प्रयोग में लाये जाते हैं।

4. मण्डी से सम्बन्धित उचित सूचनाएँ मिल जाती हैं।

5. मण्डी में बिक्री खुले रूप से या खुले अनुबन्ध द्वारा होती है।

6. मण्डी में तात्कालिक सुपुर्दगी होने पर उसका भुगतान तुरन्त नकद धन के रूप में होता है।

7. उत्पादक को मण्डी के प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार होता है और अपने सुझाव भी दे सकता है।

8. अनेक सुविधाएँ जैसे—जल, बैलगाड़ियों के रखने का स्थान, कैन्टीन और विश्रामग्रहादि भी उपलब्ध हैं।

भारत में नियमित बाजार—भारत में सर्वप्रथम सन् 1897 में बाजारों का नियमन किया गया जबकि बिहार में कपास एवं खाद्यान्न बाजार अधिनियम पास करके इनके विपणन सम्बन्धी दोषों को दूर करने के प्रयास किये गये। इन अधिनियमों द्वारा बाजारों की सूचना देना तथा उनका समिति द्वारा नियंत्रण रखा जाना आवश्यक कर दिया गया। बाजारों के नियमन के सम्बन्ध में द्वितीय प्रयास सन् 1927 में बम्बई में किया गया, इस प्रयास में बम्बई कपास बाजार अधिनियम पारित किया गया, इस अधिनियम के द्वारा सरकार ने बाजार के प्रबन्ध के लिये समिति का निर्माण करने के अधिकार अपने पास सुरक्षित कर लिये। सन् 1937 में 1897 के अधिनियम में तथा 1939 में 1927 के अधिनियम को संशोधित किया गया। द्वितीय महायुद्ध के समय तक नियमित बाजारों की संख्या बहुत ही कम थी लेकिन इसके बाद नियमित बाजारों की संख्या में तेजी के साथ वृद्धि हुई।

नियमित बाजारों को अधिक कार्य कुशल बनाने हेतु सुझाव

1. अधिनियमों का अधिक सतर्कता के साथ उपयोग किया जाय।

2. बाजार समिति द्वारा समिति के अध्यक्ष को निकालने का अधिकार नहीं होना चाहिये।

3. कृषि उपज की बिक्री बाजार में ही की जानी चाहिये।

4. अधिनियम का उपयोग समस्त महत्वपूर्ण वस्तुओं के हित में किया जाना चाहिये।

5. उत्पादकों को बाजार समिति में विशिष्ट स्थान दिया जाना चाहिये।

6. प्रत्येक राज्य में एक सरकारी विभाग की स्थापना की जानी चाहिये जिसका मुख्य कार्य राज्य में नियमित बाजारों की स्थापना करना हो।

7. बाजार समिति के अध्यक्ष पद पर ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति की जानी चाहिये जो तकनीकी ज्ञान से परिपूर्ण हो।

16 विपणन प्रबन्ध
(MARKETING MANAGEMENT)

प्रश्न 38. विपणन प्रबन्ध की परिभाषा दीजिए तथा भारतीय अर्थव्यवस्था में उसका महत्व समझाइये ।

Define Marketing Management and explain its importance in Indian Economy.

अथवा

किन-किन कारणों के आधार पर यह विश्वास किया जा सकता है कि भारत में भविष्य में विपणन का अधिकाधिक महत्व होगा ?

What reasons are there for believing that marketing in India will be of increasing importance in the future ?

उत्तर—विपणन प्रबन्ध से आशय (Meaning of Marketing Management)—विपणन-प्रबन्ध शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है— एक विपणन और दूसरा प्रबन्ध । अतः प्रबन्ध का अर्थ जानने के पूर्व दोनों शब्दों का अर्थ मालूम करना आवश्यक है ।

विपणन एक आर्थिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय किया जाता है तथा उनका मुद्रा में मूल्यांकन किया जाता है । दूसरे शब्दों में विपणन से आशय उत्पादक से लेकर अन्तिम उपभोक्ता तक वस्तुओं के विपणन की प्रक्रिया से लिया जाता है । **पायले के** अनुसार, "विपणन में क्रय एवं विक्रय की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं ।"[1] **कनवर्स ह्यूजी और मिचेल** के अनुसार, "विपणन में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से उपभोग तक के बहाव की क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है ।"[2] **एडवर्ड व डेविड** के अनुसार, "विपणन वह आर्थिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं और सेवाओं का मुद्रा के बदले विनिमय किया जाता है ।

---

1. "Marketing comprises both buying and selling."
2. "Marketing includes activities involved in the flow of goods and services from production to consumption,"

इसका आशय उस क्रिया या उन क्रियाओं से है जो एक विशेष उद्देश्य से निर्देशित होती हैं, वह उद्देश्य है वस्तुओं को उत्पादन बिन्दु से अन्तिम उपभोग बिन्दु तक हस्तान्तरित करना।' इस प्रकार विपणन में वे क्रियायें सम्मिलित होती हैं जो स्थान, समय व अधिकार उपयोगिताओं से मिली हुई हैं।

प्रबन्ध से आशय निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों के प्रयत्नों का समन्वय करना है। **स्टेनले वैन्स** के अनुसार, "प्रबन्ध केवल निर्णय करने तथा मानव की क्रियाओं पर नियन्त्रण करने की विधि है ताकि नियत लक्ष्यों की प्राप्ति हो जावे।" **आर. सी. डेविस** के अनुसार, "प्रबन्ध कर्मचारी नेतृत्व का कार्य है। वह मुख्यत: एक मानवीय क्रिया है। यह कार्य के नियोजन, संगठन तथा सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों का नियन्त्रण करने से सम्बन्धित है।" [1] सरल शब्दों में प्रबन्ध से आशय किसी व्यक्ति समूह के प्रयासों का इस तरह नियोजन, संगठन, संचालन, नियन्त्रण, निर्देशन एवं नेतृत्व से है जिससे सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

'विपणन' और 'प्रबन्ध' इन दोनों शब्दों का अर्थ समझ लेने के बाद विपणन प्रबन्ध की परिभाषा करना सरल हो जाता है। **सरल शब्दों में विपणन प्रबन्ध का वह भाग है जो विपणन कार्य को करता है।**

डॉ. रुस्तम एस. डावर के शब्दों में, विपणन प्रबन्ध का आशय उपभोक्ता आवश्यकताओं का पता लगाने, इन्हें उत्पादनों या सेवाओं में परिणत करने और फिर वस्तु या सेवा को अन्तिम उपभोक्ता या प्रयोक्ता तक पहुँचने की क्रिया से है ताकि ग्राहकों के विशिष्ट वर्गों की आवश्यकताओं को इस प्रकार सन्तुष्ट किया जा सके कि संगठन के प्रसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग होकर उसे समुचित लाभ भी हो।"[2] इस परिभाषा के अनुसार विपणन प्रबन्ध एक उपभोक्ता उन्मुख वितरण प्रक्रिया है जिसका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाते हुए उपलब्ध प्रसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना है।

कंडिफ एवं स्टिल के शब्दों में, "विपणन प्रबन्ध सामान्य प्रबन्ध की वह शाखा है जो कि विपणन सम्बन्धी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सोद्देश्य क्रियाकलापों के संचालन

---

1. "Management is simply the process of decision making and control over the action of human beings for the express purpose of attaining pre determined goals.
2. Marketing management is, "the process of ascertaining consumer needs, converting them into products or services, and then moving the product or service to the final consumer or user to satisfy such needs and want of specific customer segment or segments with emphasis on profitability ensuring the optimum use of the services available to the organisation."

से सम्बन्ध रखती है ।"[1] इस परिभाषा के अनुसार विपणन प्रबन्ध सामान्य प्रबन्ध की वह शाखा है जो विपणन सम्बन्धी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विपणन कार्यों का संचालन करता है । सरल शब्दों में **विपणन प्रबन्ध वह प्रबन्धकीय कार्य है जो विपणन कार्य को करता है** । विपणन के कार्य हैं—(i) विपणन सम्बन्धी कार्य (ii) भौतिक हस्तान्तरण सम्बन्धी कार्य एवं (iii) सहायक कार्य । प्रबन्धकीय कार्य हैं—(1) नियोजन (2) संगठन (3) निर्देशन (4) नियन्त्रण (5) समन्वय एवं (6) अभिप्रेरण । **इस प्रकार विपणन के विनिमय सम्बन्धी, भौतिक हस्तान्तरण सम्बन्धी एवं सहायक कार्यों के नियोजन, संगठन, निर्देशन, नियन्त्रण, समन्वय एवं अभिप्रेरण को ही विपणन प्रबन्ध कहते हैं ।**

भारतीय अर्थव्यवस्था में विपणन का महत्व—

हमारे देश में राष्ट्रीय साधनों के कुशल उपयोग, उत्पादन वृद्धि तथा सभी को समाज की सेवा के अवसरों को उपलब्ध कराके लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि के उद्देश्य से आयोजन का क्रम पिछले अनेक वर्षों से चल रहा है । इस अवधि में हमारे देश ने अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय उन्नति की है । हमारा औद्योगिक आधार विस्तृत हुआ है तथा निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में विशाल पूँजी निवेश हुआ है हमारे आयातों और निर्यातों की प्रवृत्तियों में भी भारी परिवर्तन हुए हैं । पूँजीगत और उपभोक्ता वस्तुओं में बहुत विविधता आई है । उनकी मात्रा में भी भारी वृद्धि हुई है ।

उपरोक्त परिवर्तनों ने भारतीय बाजारों को बहुत अधिक प्रभावित किया है । पिछले वर्षों में भारत के शहरी क्षेत्रों के एक खास वर्ग की क्रय शक्ति में भारी वृद्धि हुई है । उसके उपभोग में आने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं पर यदि ध्यान दिया जाये तो ज्ञात होगा कि हमारे देश में इंजीनियरों की कुशलता तथा उत्पादन की सूझ-बूझ में भारी सुधार हुआ है । परन्तु यह अत्यन्त दुःख की बात है कि हमारे देश में अभी विपणन प्रतिभाओं का अकाल ही है । हमारी विपणन पद्धतियों में कोई खास सुधार नहीं हुआ है । बेईमान और अकुशल विक्रेताओं के हाथ पड़कर एक उच्चस्तरीय उत्पादन भी अपनी प्रतिष्ठा खो देता है । यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि सार्वजनिक और निजी दोनों ही प्रकार के प्रतिष्ठान विपणन पर सबसे बाद में और सबसे कम ध्यान देने की प्रवृत्ति रखते हैं ।

एक कमी वाली अर्थ-व्यवस्था में हमारा लक्ष्य मात्र उत्पादन वृद्धि ही नहीं होना चाहिये अपितु इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिये कि उचित वस्तुओं का उत्पादन बढ़े और वे उन व्यक्तियों तक पहुँचे जिन लोगों को उनकी जरूरत है ।

---

1 "A branch of the broad area of management, marketing managament is concerned with the direction of purposeful activites towards the attainmeut of marketing goals ."

यह भी जरूरी है कि ये वस्तुयें उपयुक्त समय पर उचित लागत में पहुँच जायें। एक **कुशल और मितव्ययी वितरण पद्धति के बिना हम अपने सीमित साधनों का बेहतर उपयोग देश के आर्थिक विकास हेतु कर ही नहीं सकते हैं।**

हमारी विपणन अकुशलतायें ही निम्न उत्पादकता के कारण हैं। पिछले समय में हमने कृषि उत्पादकता में परिवर्तन करने में जो सफलता प्राप्त की हैं। वह तब तक अधूरी रहेगी जब तक विपणन के क्षेत्र में भी वैसी ही उपलब्धियाँ हमें नहीं मिल जातीं। दुर्भाग्यवश हमारा कृषि विपणन का ढाँचा जैसा चाहिए, वैसा नहीं हो पाया है। यदि समय रहते हमने अपनी विपणन पद्धति में सुधार नहीं किया तो उत्पादन वृद्धि की प्रेरणा कम हो जायेगी। वितरण पद्धतियाँ, परिवहन एवं संग्रहण सुविधाओं में आवश्यक सुधार होने से कृषक उत्पादन वृद्धि करने हेतु प्रोत्साहित होगा।

हमारे देश की परिस्थितियों के अनुरूप नवीन विपणन पद्धतियों का विकास हमारी अर्थ-व्यवस्था को अनेक प्रकार से लाभ पहुँचायेगा। इससे हमारी वितरण प्रणाली अधिक प्रभावशाली, उद्देश्यपूर्ण, त्वरित और संतोषजनक होगी। यह सुधरी हुई विपणन व्यवस्था विपणन लागत में कमी करके लोगों के जीवन-स्तर को उन्नत करेगी, अच्छी वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करेगी तथा वर्तमान उत्पादन शक्तियों को ही हमारी आवश्यकताओं की ओर अच्छे ढंग से सन्तुष्ट करने की क्षमता प्रदान करेगी।

ग्रामीण विपणन—

हमारी अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्रों का महत्व किसी से छिपा हुआ नहीं है। हमारी 82% जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और लगभग आधी राष्ट्रीय आय वहीं उत्पन्न की जाती है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों की संभावनायें अत्यन्त विस्तृत है।

अभी तक भारतीय उत्पादकों और विक्रेताओं का प्रमुख ध्यान शहरी उपभोक्ताओं पर ही था। ग्रामीण क्षेत्र सतत् उपेक्षा के पात्र ही बने हुए हैं। यदि हम ग्रामीणों के उपयोग में आने वाली विविध प्रकार की छोटी-छोटी वस्तुयें बना सकें तो हमारे देश में रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, राष्ट्रीय आय उन्नत होगी और जन सामान्य की गरीबी दूर हो सकेगी।

गत कुछ वर्षों में ऐसे परिवर्तन हुए भी हैं, जिनसे ग्रामीण क्षेत्रों में हमारे उत्पादकों को अपनी ओर आकृष्ट करने की क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है जैसे—हरित क्रान्ति, कृषि पदार्थों के उचित मूल्य आदि। ग्रामीण क्षेत्रों में केवल कृषक की आय में ही वृद्धि नहीं हुई है, अपितु उनके खर्च करने के तौर तरीकों में भी बड़ा परिवर्तन आया है। एक समय था जब ग्रामीण लोग केवल जीवन रक्षक या प्रतिष्ठा रक्षक आवश्यकताओं पर धन खर्च करते थे, परन्तु आजकल वे आराम सम्बन्धी अनेक टिकाऊ वस्तुओं को भी खरीदते हैं जैसे—साइकिल, ट्रांजिस्टर, फर्नीचर, घड़ियाँ, पंखे आदि। हरित क्रांति आधुनिक उर्वरकों, बीजों, बेहतर जल व्यवस्था तथा सुधरे हुए उपकरणों और पद्धतियों की देन है। इन चीजों को भी किसान बाजार से खरी-

दता है। इस प्रकार ग्रामीणों का यह बाजार अपार सम्भावनाओं को अपने में जुटाये हुए है। इनकी वास्तविकताओं में परिवर्तन करने के लिये सूझ-बूझ, कल्पना-शक्ति और प्रबन्ध क्षमता से युक्त अनेक ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो विपणन पद्धतियों का ज्ञान रखते हैं।

ग्रामीण बाजारों के विश्लेषण की आवश्यकता है। उनकी प्राथमिकताओं, पसन्दगियों, इच्छाओं और परम्पराओं का अध्ययन आज की बहुत बड़ी आर्थिक मांग है। यदि ऐसा सम्भव हो सका तो गाँवों का यह बढ़ता हुआ बाजार अनेक छोटे-बड़े उद्योगों को जन्म देगा। इनसे ग्रामीण जीवन समुन्नत होगा और उद्योगों के विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिलेगा।

जो साहसीगण ग्रामीण बाजार में नवीकरण योजनाओं को अपनायें उन्हें अत्यन्त अच्छे अवसर उपलब्ध होंगे। राष्ट्र को भी इससे अपरिमित लाभ पहुँचेगा। तरह-तरह के निर्मातागण ग्रामीण क्षेत्रों को अपनी गतिविधियों के केन्द्र बना सकते हैं। इससे उनके बाजारों का विस्तार होगा, वस्तुयें सस्ती बनेंगी तथा रोजगार के अवसर बढ़ेंगे।

ग्रामीण आकारों की क्षमता का उपयोग कोई मामूली कार्य नहीं है। इसके लिये व्यापक अध्ययन और अनुसन्धान प्रयत्नों की आवश्यकता है। ठोस एवं वैज्ञानिक योजनाओं, मूल्य नीतियों, बाजार विश्लेषण, उपभोक्ता व्यवहार आदि का अध्ययन किये बिना ग्रामीण क्षेत्रों में उन्नति होना सम्भव नहीं है।

निर्यात प्रोत्साहन भी सम्भव—

भारतीय अर्थव्यवस्था में सतत् निर्यात वृद्धि का महत्व अत्यन्त स्पष्ट है। इसके बिना न तो हम विदेशी ऋणग्रस्तता से मुक्त हो सकते हैं और न आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को ही प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु विदेशी बाजारों में टिकने के लिये आधुनिकतम और उपयुक्ततम विपणन नीतियों का अपनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। निर्यात वृद्धि के लिए हम सदैव उत्पादन में वृद्धि और सुधार पर ही विचार करने के अभ्यस्त हो गये हैं, परन्तु हमें यह याद रखना चाहिये कि हमारी अन्तिम सफलता विदेशी बाजारों में अपनाई गई विपणन रीतियों एवं नीतियों पर ही निर्भर होगी। हमारे अधिकांश प्रतियोगी इस सम्बन्ध में हमसे बहुत अच्छे हैं।

गत कुछ वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है, परन्तु दुर्भाग्यवश उसमें हमारा हिस्सा बढ़ने के बजाय घटा है। चाय, जूट, कपड़े जैसे परम्परागत निर्यात में भी हमारे प्रतिस्पर्धियों का दबाव स्पष्ट है। यद्यपि हम कुछ नई वस्तुओं के निर्यातों में सफल हुए हैं, परन्तु उनको बनाये रखने और बढ़ाने में हम तभी सफल होंगे, जब नई विपणन विधियों का विकास करेंगे।

प्रायः यह कहा जाता है कि अधिक उत्पादन लागत ही हमारे निर्यातों के बढ़ने के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है और इसलिए हमारे निर्यातों में उल्लेखनीय वृद्धि

होती नहीं दिखाई देती है। अतः हमारे निर्यात की वस्तुओं की लागत को घटाने के लिये जहाँ एक ओर उत्पादकता (Productivity) को बढ़ाना होगा, वहीं दूसरी ओर एक तरीका यह भी हो सकता है कि हम अपने देशी बाजार को विस्तृत करें, ताकि हमारे निर्यातों में जो हानियाँ हों, घरेलू बाजारों से पूरी की जा सकें।

निर्यात बढ़ाने हेतु विपणन दृष्टिकोण को अपनाना बहुत जरूरी है। अभी तक हमारा 'विक्रय दृष्टिकोण' ही रहा है जिसका आशय यह है कि जो वस्तुयें आसानी से पैदा हो सकती हैं, उन्हें बेचने के प्रयत्न किये जायें। परन्तु विपणन दृष्टिकोण यह है कि जैसी वस्तुयें ग्राहक चाहते हैं, वैसी ही बनाई जाएँ। इनको बेचने का कार्य बड़ा आसान होगा। विपणन अनुसन्धान और बाजार विश्लेषण पर निर्यातकर्ताओं को अधिक ध्यान देना चाहिये। आयात प्रतिस्थापन के क्षेत्र में भी हम तभी सफल हो सकते हैं, जबकि हम अपनी वस्तुओं के प्रति हमारे ग्राहकों में निष्ठा पैदा कर दें, उन वस्तुओं के बाजार में वृद्धि करें तथा देश की परिस्थितियों के अनुरूप नवीन विपणन पद्धतियों का विकास करें।

विपणन के क्षेत्र में उपभोक्ता मूलक दृष्टिकोण अपनाने से ही विकास की गति को बल मिलेगा। पिछले वर्षों में विपणन विधियों में जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं, उनको देशी तथा विदेशी दोनों ही बाजारों में अपनाना पड़ेगा। भारतीय आयोजन के परिणामस्वरूप जो समृद्धि आई है, उनसे आज हमारे बाजारों में अत्यन्त परिष्कृत वस्तुयें दिखाई देती हैं। उपभोक्ताओं की क्रय आदतों एवं क्रय व्यवहारों में बड़ी प्रगति हुई है।

घरेलू बाजारों को विस्तृत, उपयोगी तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने और निर्यातों में वृद्धि करने व लागतों को घटाने हेतु विपणन पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिये। आने वाले वर्षों में हमें अधिक सुधरी हुई विपणन नीतियों और रीतियों को अपनाना पड़ेगा। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था अधिक समुन्नत, मजबूत व विविध होती जायेगी, वैसे-वैसे प्रभावशाली विपणन का महत्व बढ़ता जायेगा। ●

प्रश्न 39. प्रबन्ध से सम्बन्धित दर्शन के रूप में विपणन से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

Explain what do you understand by marketing as a philosophy of management.

अथवा

"उन वस्तुओं का जिनका बनाना हमारे लिए सबसे अधिक आसान होता है, विपणन करने के प्रयास की अपेक्षा हमें इस बात की जानकारी अधिक करनी चाहिए कि उपभोक्ता क्या क्रय करने के लिए इच्छुक है। दूसरे शब्दों में हमें अपनी सृजनात्मकता का उपयोग उत्पादनों की अपेक्षा लोगों, उनकी आवश्यकताओं तथा उनकी इच्छाओं को समझने में अधिक बुद्धिमानी से करना चाहिए।"

उपरोक्त कथन को ध्यान में रखते हुए विपणन की नयी विचारधारा की विवेचना कीजिए।

अथवा

एक व्यवसायी का यह कथन है कि "हमें वह वस्तु उत्पन्न **करनी चाहिए** जो लोग माँगते हैं न कि वह जो हम बेच सकते हैं।" **इसकी व्याख्या कीजिए।**

उत्तर— **प्रबन्ध से सम्बन्धित दर्शन के रूप में विपणन से आशय**

विपणन-प्रबन्ध से सम्बन्धित दर्शन के रूप में विपणन एक दर्शन, एक मन-स्थिति या व्यावसायिक चिन्तन का एक क्रम है। इस रूप में हम इस बात का अध्ययन करते हैं कि विपणन का उद्देश्य क्या हो? आखिर विपणन किसलिए किया जाता है? विपणन का सही दृष्टिकोण क्या हो?

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व वस्तुओं और सेवाओं की कमी का युग था। उस समय की केन्द्रीय समस्या उत्पादन को बढ़ाने की थी। अतः उन दिनों उत्पादन और उत्पादन कुशलता पर बल दिया जाता था। परन्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद से अर्थ-व्यवस्था ने करवट ले ली है और अब **'वस्तुओं की दुर्लभता'** का स्थान **'बाजारों की दुर्लभता'** ने ले लिया है। आज अनेक उत्पादकों की समस्या उत्पादन की न होकर अपने उत्पादन के लिए पर्याप्त ग्राहक ढूँढ़ने की है। आज गलाघोंट प्रतियोगिता का युग है। अतः अपना माल बेचने के लिए उत्पादकों को अब ग्राहकों की सन्तुष्टि का ध्यान रखना आवश्यक हो गया है। अब युग समाप्त हो गया है जब उत्पादक अपने उत्पादन और माल के विक्रय पर जोर देते थे। अब तो वे उपभोक्ता या ग्राहकों की सन्तुष्टि की ओर ध्यान देने लगे हैं। इस प्रकार अब उत्पादकों में 'उत्पाद अभिमुखी' (Production Oriented) होने के बजाय ग्राहक अभिमुखी (Customer Oriented) होने की प्रवृत्ति होने लगी है। इस प्रवृत्ति या विचारधारा को हम उपभोक्ता अभिमुख विचारधारा (Customer Oriented Concept) या प्रबन्ध के लिए विपणन एक दर्शन (Marketing as a Philosophy of Management) के रूप में भी जानते हैं। **इस विचारधारा के अनुसार एक उत्पादक का प्राथमिक कार्य वस्तुओं और सेवाओं का विपणन करना है, उत्पादन करना नहीं। उत्पादन तो विपणन का एक सहायक कार्य है। अब व्यावसायिक भवन ग्राहक के लिए हैं न कि ग्राहक व्यवसाय के लिए।**

विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार, "विपणन विचार अपने पूर्णतम भाव में, एक ऐसा व्यावसायिक दर्शन है जो यह बताता है कि ग्राहकों की आवश्यकता सन्तुष्टि ही किसी कम्पनी के अस्तित्व के लिए एक आर्थिक और सामाजिक औचित्य प्रदान करती है। परिणामस्वरूप यह आवश्यक है कि उत्पादन, इन्जीनियरी और वित्त में तथा विपणन के क्षेत्र में भी कम्पनी के सभी क्रिया-कलाप सर्वप्रथम यह पता लगाने

में केन्द्रित किये जाने चाहिए कि ग्राहक की आवश्यकताएँ क्या हैं और फिर इनकी सन्तुष्टि करते हुए यथोचित लाभ कमाने पर ध्यान देना चाहिए।"

जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के एक विपणन-कार्यवाहक के अनुसार, "हमारी राय में विपणन एक मौलिक बुनियादी दर्शन है। इस दर्शन के दो आधार हैं—प्रथमतः व्यवसाय करने के ग्राहक-अभिमुखी ढंग को मान्यता देना और व्यवहार में लाना। विपणन के अन्तर्गत ग्राहक वह केन्द्रीय बिन्दु बन जाता है जिसके इर्द-गिर्द व्यवसाय सम्बन्धित सभी पक्षों के सन्तुलित सर्वोत्तम हितों के लिए कार्य करते हुए गतिशील रहता है। द्वितीय, विपणन विचार का स्फुटन लाभों के विचार से हुआ है, परिणाम के विचार से नहीं।"

नये विपणन के आधार स्तम्भ—

1. **ग्राहक सर्वोपरि है**—नये विपणन विचार के अनुसार, ग्राहक की संतुष्टि करना ही विपणन क्रिया का मूल तत्व है। अतः संस्था की समस्त नीतियाँ-रीतियाँ और कार्यक्रम इस प्रकार से बनाये जाने चाहिए कि ग्राहक की आवश्यकता की पूर्ति हो सके। यदि ग्राहक की आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं दिया जाये तो सफलता प्राप्त करना कठिन है। अनेक समृद्ध घोड़ा-गाड़ी कम्पनियाँ केवल इसलिये लोप हो गई, क्योंकि वे देखने में असफल रहीं कि ग्राहकों को सामान्य परिवहन की आवश्यकता है, विशेष गाड़ियों की नहीं। दूसरी ओर, जो कम्पनियाँ बुनियादी ग्राहक आवश्यकताओं और परिवर्तनीय उत्पादों के भेद समझतीं हैं, वे अपने व्यवसाय की परिभाषा को व्यापक बनाने का प्रयास करती है, ताकि उन्हें प्रचालन का एक अधिक स्थायी आधार मिल जाय। उदाहरणार्थ रेडियो कॉरपोरेशन और अमेरिका अपने व्यवसाय का मुख्य अंग "जनसाधारण की मनोरंजन सम्बन्धी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना" बतलाता है।

7. **समन्वित विपणन**—समन्वित विपणन प्रबन्ध विपणन विचार का दूसरा स्तम्भ है, इसके अन्तर्गत संस्था के विभिन्न विभागों का सम्बन्ध विपणन विभाग से रहता है। इस विचार के अन्तर्गत विपणन विभाग का दायित्व बढ़ जाता है क्योंकि उसे कम्पनी के क्रेताओं से सम्पर्क करने वाली सभी क्रिया-कलापों में समन्वय रखना पड़ता है।

8. **ग्राहक की सन्तुष्टि द्वारा लाभ**—विपणन की नई विचाराधारा मुख्य रूप से क्रेता की सन्तुष्टि पर ही आधारित है, परन्तु यह लाभ का सर्वथा त्याग नहीं करती। यह ग्राहक को उसकी इच्छानुसार वस्तु देकर लाभ कमाने पर भी जोर देती है। गहन प्रतियोगिता और तेजी से बदलती ग्राहक आवश्यकताओं वाली अर्थ-व्यवस्था में लाभ ग्राहक आवश्यकता की सन्तुष्टि के सृजन पर आधारित होने चाहिए।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि विपणन की आधुनिक अवधारणा उत्पादोन्मुखी न होकर उपभोक्ता उन्मुखी है जो इस बात पर बल देती है कि उपभोक्ता

की सन्तुष्टि ही विपणन का सार है। वास्तव में विपणन ग्राहक से ही प्रारम्भ होकर ग्राहक पर ही समाप्त हो जाता है। इसीलिये कहा गया है कि, "हमें वह वस्तु उत्पन्न करनी है जो कि लोग माँगते हैं, न कि वह जो हम बेच सकते है।" विपणन का यह मूल तत्व आधुनिक प्रबन्ध का आधारभूत दर्शन बन गया है।

प्रश्न 40. विपणन प्रबन्धक के कार्य को समझाइये।

Explain the functions of Marketing Manager.

उत्तर—(अ) विपणन प्रबन्धक के कार्य—प्रबन्ध सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रायः यह माना जाता है कि प्रबन्धकीय प्रक्रिया के अन्तर्गत कई मुख्य प्रबन्धकीय कर्त्तव्य आते हैं। एक विपणन प्रबन्धक समाज एवं व्यावसायिक उपक्रम के बीच वितरण के एक महत्वपूर्ण माध्यम का कार्य करता है। यह उपक्रम के समक्ष उपभोक्ताओं की माँग की व्याख्या और स्पष्टीकरण करता है तथा उपक्रम से उन्हें लेकर उपभोक्ता तक पहुँचाने की व्यवस्था करता है। इस प्रक्रिया के दौरान उसे बहुत से कार्य करने पड़ते हैं। प्रायः अलग-अलग व्यावसायिक संगठनों में विपणन कार्याधिकारियों के कर्त्तव्यों और कार्यों में अन्तर देखने को मिलता है। किन्तु फिर भी हम उनके कार्यों को सामान्यतः निम्न भागों में बाँट सकते हैं—

(आ) समन्वित विपणन (Integrated Marketing)—प्रबन्ध प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण अवस्था है, संगठन करना। "समन्वय करना" वास्तव में संगठन करने का प्रमुख अंग है, एक अच्छे संगठन के अन्तर्गत व्यक्ति सामूहिक रूप में उससे कहीं अधिक उत्पादन कर लेते हैं जितना कि वे पृथक्-पृथक् रूप में करते। इस वर्ग के अन्तर्गत प्रबन्धक के निम्न कार्य आते हैं—

1. विपणन से सम्बन्धित समस्त जानकारियाँ एवं तथ्य एकत्रित करना।
2. उन तथ्यों का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकालना।
3. उत्पाद-विकास करना।
4. विपणन तकनीकों का विकास करना।
5. विपणन कार्यक्रम तैयार करना।
6. विपणन कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना तथा
7. 'उपभोक्ता की आवश्यकता' तथा 'क्रेता की सन्तुष्टि' इन दोनों में समन्वय स्थापित करना।

(ब) लक्ष्य निर्धारित करना (Determining Objectives)—विपणन प्रबन्धक का महत्वपूर्ण कार्य विपणन का लक्ष्य निर्धारित करना है। ये लक्ष्य वास्तव में दिये हुए समय या स्थान के सन्दर्भ में समूह की विशेष आवश्यकताओं की, प्रबन्धकों के मतानुसार, व्याख्या करते हैं एवं प्रबन्धकों द्वारा वांछनीय समझी गई मंजिल तक पहुँचने वाले मार्ग पर कम्पनी को आगे बढ़ाते हैं।

(स) नियोजन करना (Planning)—प्रबन्धक द्वारा लक्ष्य निर्धारित करने के पश्चात् प्रबन्ध प्रक्रिया में अगला कदम उस तरीके को निर्धारित करना है

जिसके द्वारा ये लक्ष्य प्राप्त किये जायेंगे। इसी प्रबन्धकीय क्रिया को 'नियोजन' कहा जाता है। नियोजन के अन्तर्गत प्रबन्ध को निम्न कार्य करने पड़ते हैं—

1. विक्रय नीतियों का निर्माण तथा उन्हें क्रियान्वित करना।

2. उत्पाद श्रेणी निश्चित करना तथा उत्पाद विशाखन की योजना बनाना।

3. विपणि अनुसंधान, माँग का पूर्वानुमान और विपणन का विकास करना।

4. विपणन कार्यवाही का दीर्घकालीन कार्यक्रम निश्चित करना तथा

5. उपक्रम के अन्य विभागों से विपणन विभाग का तालमेल स्थापित करना, आदि कार्य इसके अन्तर्गत आते हैं।

(द) **विक्रय कार्य** (Selling)—इसके अन्तर्गत विपणन प्रबन्ध को निम्न कार्य करने पड़ते हैं—

1. विक्रय को नियन्त्रित करना।

2. विक्रय क्षेत्रों की व्यवस्था करना तथा अभ्यंश निश्चित करना।

3. विक्रय विभाग के लिये आवश्यक कर्मचारियों का चयन, प्रशिक्षण तथा संगठन करना।

4. वितरण के साधनों तथा माध्यमों का विकास करना, तथा

5. विज्ञापन, विक्रय वृद्धि एवं जनसम्पर्क की स्थापना के लिये प्रयत्न करना।

(इ) **सेवा कार्य** (Service)—आजकल प्रत्येक उपक्रम का विपणन विभाग उपभोक्ता उन्मुख (Consumers Oriented) है। अत: व्यावसायिक भवन ग्राहक के लिये हैं न कि ग्राहक व्यवसाय के लिये। यह आधारभूत सिद्धांत सामने रखकर एक विक्रय प्रबन्धक को कार्य करना पड़ता है। सेवाकार्य का प्रमुख उद्देश्य ग्राहक को किस प्रकार सन्तुष्ट किया जाये यह सुनिश्चित करना है। अतः विक्रयोपरांत सेवा, शिकायतों की व्यवस्था, सुझावों पर विचार तथा उपभोक्ताओं की संतुष्टि आदि उप-कार्य इसमें सम्मिलित किये जा सकते है।

17 विपणन सम्बन्धी नियोजन

(MARKETING PLANNING)

प्रश्न 41. विपणन के क्षेत्र में नियोजन से सम्बन्धित सामान्य प्रबन्धकीय विचारों के कुछ अनुप्रयोगों को बतलाइये।

List of some of the applications of the general managerial concept of Planning in the field of marketing.

उत्तर—नियोजन का अर्थ—नियोजन का शाब्दिक अर्थ है किसी वांछित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पहले से ही रूपरेखा बनाना। दूसरे शब्दों में, **भविष्य में क्या करना है, इसकी पूर्व से ही योजना बना लेना नियोजन है। फिलिप कोटलर के** अनुसार "**नियोजन का आशय वर्तमान में उस कार्य का निर्णय करने से है जो कि भविष्य में किया जायेगा। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कम्पनियाँ अपने प्रसाधनों को अपने लक्ष्यों और अवसरों के साथ समायोजित कर सकती हैं।**" इस प्रकार नियोजनकर्त्ता भावी घटनाओं का अनुमान लगाकर उनके सम्बन्ध में ऐसी योजनायें बनाता है जो कि इच्छित उद्देश्य को कम से कम लागत और कम से कम श्रम द्वारा प्राप्त करा सकें।

नियोजन की परिभाषा—"नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है एवं कार्य करने के सम्बन्ध में सचेत निर्धारण तथा उद्देश्यों के निर्णय तथ्यों तथा विचारपूर्वक किये गये अनुमानों का आधार है" (हैराल्ड कून्टज)। दूसरे शब्दों में नियोजन में इस बात का निश्चय किया जाता है कि भविष्य में क्या करना है? कब करना है? कैसे करना है? भविष्य के लिए वर्तमान में योजना बनाना ही नियोजन है। व्यापार से सम्बन्धित नियोजन या क्रय-विक्रय से सम्बन्धित नियोजन को विपणन सम्बन्धी नियोजन कहते हैं।

विपणन नियोजन—विपणन नियोजन कम्पनी की समग्र योजना का ही एक भाग होता है जो विपणन विभाग द्वारा ग्रहण की जाने वाली भूमिका और उत्तर-दायित्वों को व्यक्त करता है। यह योजना यह निश्चित करती है कि कम्पनी के विपणन सम्बन्धी संसाधन भविष्य में किस प्रकार आवंटित, विकसित एवम् प्रयोग किये जायेंगे। विपणन योजना विपणन विभाग द्वारा तैयार की जाती है। प्रथम तो विपणन विभाग के अधीन कार्यरत पृथक-पृथक संगठनात्मक इकाइयों के प्रबन्धकगण

पृथक-पृथक योजनायें प्रस्तुत करते हैं। पुनः उन्हें एकीकृत करके सम्पूर्ण विपणन विभाग के लिए योजना बनाई जाती है। विपणन योजना बनाते समय प्रायः उन सभी सामान्य प्रबन्धकीय नियोजन सम्बन्धी विचारों का प्रयोग किया जाता है जो कि नियोजन के मूल तत्व हैं।

नियोजन के तत्व—नियोजन के अन्तर्गत उन सभी चुनी हुई कार्य-दिशाओं का उल्लेख किया जाता है जिसकी सहायता से उपक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति की जाती है। इन्हें हम विपणन नियोजन का क्षेत्र अथवा नियोजन के प्रकार भी कह सकते हैं। विपणन नियोजन में दो प्रकार की योजनायें सम्मिलित की जाती हैं—स्थायी योजनायें एवं तदर्थ उपयोग की योजनायें। स्थायी योजनाओं के तत्व हैं—(1) लक्ष्य निर्धारण, (2) पूर्वानुमान, (3) नीतियाँ निर्धारण करना (4) कार्य प्रणाली निश्चित करना तथा तदर्थ उपयोग की योजनाओं के भाग हैं—(1) कार्यक्रम, (2) अनुसूचियाँ एवम् (3) बजट आदि तैयार करना। इन सभी का संक्षिप्त वर्णन निम्नानुसार है—

1. **लक्ष्य** (Objective)—जिस परिणाम की प्राप्ति हेतु कोई प्रबन्धक प्रयत्नशील रहता है, वह उसका उद्देश्य अथवा लक्ष्य कहलाता है। लक्ष्य नियोजन का आधार होता है और लक्ष्य का निर्धारण तथा उसकी व्याख्या करना नियोजन का सबसे पहला कदम है। विपणन की भावी नीतियाँ, कार्यविधि व कार्यप्रणाली आदि सभी कुछ लक्ष्यों पर ही निर्भर करते हैं। एक कुशल विपणन कर्त्ता का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक कर्मचारी के सम्मुख उपक्रम के उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या करे और उन्हें उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रेरित करे। कुछ विद्वानों ने इसे 'उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध' भी कहकर पुकारा है जो प्रभावपूर्ण विपणन की प्रथम कसौटी है।

2. **पूर्वानुमान**—ज्ञात तथ्यों से निष्कर्ष निकालकर भविष्य के बारे में अनुमान लगाने के लिए किये गये व्यवस्थित प्रयासों को ही पूर्वानुमान लगाना कहते हैं। इस तरह पूर्वानुमान भविष्य में देखने की कला है। पूर्वानुमान व्यावसायिक नियोजन का आधार है। यह भविष्य की जोखिमों को स्पष्ट करके उपक्रम को इनका सामना करने के लिए सतर्क और सावधान कर देता है। यह विपणनकर्त्ताओं को उन क्रियात्मक क्षेत्रों की जानकारी भी प्रदान करता है जहाँ अधिक नियन्त्रण की आवश्यकता है।

3. **नीतियाँ** (Policies)—नीतियाँ लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक सर्वोपरि रूप-रेखा से सम्बन्ध रखती हैं। एक फर्म को प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण में कार्य करना पड़ता है और इसलिए उसे अपने अवसरों के साथ प्रतिस्पर्द्धात्मक समायोजन करने हेतु योजना बनाना आवश्यक हो जाता है। उपक्रम के सुस्थापित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु नीतियाँ बनायी जाती हैं। नीतियाँ एक सामान्य वितरण अथवा भावी कार्य विधि के विषय में सामान्य सहमतियाँ होती हैं। नीतियाँ बनाने से विपणन को

कई लाभ होते हैं, जैसे—अधीनस्थ अधिकारियों का मार्गदर्शन होना, निर्णयों की सीमा स्पष्ट हो जाना, निर्णय में एकरूपता तथा संगतता का गुण आना, संगठनात्मक संघर्षों की समाप्ति तथा अधिकार-अन्तरण एवम् सत्ता के केन्द्रीकरण में सहायता मिलना आदि।

4. **कार्य-प्रणाली** (Procedure)—कार्य-प्रणाली कार्यवाही की मार्ग-दर्शक होती है। कार्य-प्रणाली वह विधि या उपाय है जिसके अनुसार विपणन-कार्यवाही की जाती है। कार्य-प्रणाली पूर्व-निश्चित होने से कार्यवाही में समानता आ जाती है, निर्णयों में सरलता होती है और विभागीय सम्बन्धों में सुविधा होती है।

5. **कार्यक्रम** (Programme)—कार्यक्रम एक ऐसी विशिष्ट योजना है जो कि किसी विशेष स्थिति का सामना करने के लिए बनायी जाती है। इसे नीतियों व कार्य-प्रणाली के प्रकाश में बजटों की सहायता से बनाया जाता है। कार्यक्रम अल्प-कालीन भी हो सकते हैं व दीर्घकालीन भी, विस्तृत भी हो सकते हैं व सीमित भी, आधारभूत भी हो सकते हैं उद्भूत भी। विपणन क्षेत्र में प्रत्येक कार्यक्रम किसी अन्य कार्यक्रम को अवश्य प्रभावित करता है। अतः संस्था के विभिन्न विभागों व उप-विभागों के कार्यक्रम निश्चित करने में सावधानी अवश्य बरतनी आवश्यक है।

6. **बजट** (Budget)—बजट एक ऐसी योजना है, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के प्रगति लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं और इन्हें प्राप्त करने के लिए समय, धन और अन्य साधनों के व्यय के अनुमान दिये जाते हैं। इस प्रकार बजट का निर्माण व संचालन नियन्त्रण प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। इसे बनाकर विपणन कर्त्ता वास्तविक प्रगति की बजटीय प्रगति से तुलना करके यह निश्चित कर सकते हैं कि उद्देश्यों में असफलता के लिए कौन उत्तरदायी है। बजटों के निर्माण से भिन्न-भिन्न विभागों के लक्ष्यों में समन्वय स्थापित किया जा सकता है तथा प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है। इस प्रकार बजट-निर्माण भी व्यावसायिक नियोजन की आधारभूत क्रिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विपणन नियोजन पूर्णतया उन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है जो प्रबन्धकीय सिद्धान्तों में नियोजन के मूल तत्वों के रूप में जाने जाते हैं।

"प्रबन्ध में नियोजन का महत्व"

नियोजन प्रबन्ध का एक अभिन्न अंग है। नियोजन के बिना प्रबन्ध की स्थिति भँवर में डूबे हुए जहाज के समान हो जाती है। नियोजन के बिना प्रबन्ध दिशाहीन व निरुद्देश्य हो जाता है। व्यापार के सफल एवं मितव्ययी संचालन के लिये नियोजन अति आवश्यक है। नियोजन व्यापार में संभावनाओं एवं अनिश्चितताओं को कम करके लाभों में वृद्धि करता है। नियोजन से नियंत्रित एवं नियमित व्यवसाय का संचालन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

प्रबन्ध में नियोजन के महत्व के सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

1. नियोजन प्रबन्धकों को व्यवस्थित पूर्व चिन्तन के लिये प्रेरित करता है।
2. नियोजन से प्रबन्धकों के समय एवं श्रम में बचत होती है।
3. नियोजन के द्वारा कम्पनी प्रयासों में आपसी समन्वय स्थापित किया जा सकता है।
4. नियोजित विपणन से नियोजित एवं सही विचारों का प्रतिपादन होता है।
5. नियोजन कम्पनी की आकस्मिक आपत्तियों से सुरक्षा करता है।
6. नियोजन से निष्पादन प्रमापों का विकास होता है जिससे नियन्त्रण में सुविधा रहती है।
7. विपणन नियोजन कम्पनी को अपने मार्ग-दर्शक उद्देश्यों एवं नीतियों को स्पष्ट करने एवं उन्हें तीव्रता के साथ प्राप्त करने की ओर प्रेरित करता है।
8. विपणन नियोजन से भावी क्रियाओं में निश्चितता आती है।
9. विपणन नियोजन समस्त भावी विपणन क्रियाओं का आधार है।

18 विपणन सम्बन्धी निर्णय (MARKETING DECISIONS)

प्रश्न 42. विपणन सम्बन्धी निर्णयों के विशिष्ट लक्षणों का निरूपण कीजिए।
Describe the special characteristics of marketing decisions.

अथवा

"निर्णय लेने" से आप क्या समझते हैं ? इसके मूल तत्व कौन-कौनसे हैं ?
What do you understand by decision making ? What are its basic elements ?

उत्तर—किसी विद्वान ने विपणन प्रबन्ध की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "यह विपणन सम्बन्धी निर्णय लेने का विज्ञान है।" वास्तव में यह नितांत सत्य है। अपने लक्ष्यों, संगठन एवं योजनाओं सम्बन्धी नियन्त्रणीय घटकों का समायोजन करते समय फर्म को अनगिनती निर्णय लेना होता है। 'निर्णय किसी कार्य की छोटी से छोटी इकाई होती है।' निर्णय **का तात्पर्य वैकल्पिक कार्य दिशाओं** (Alternative Courses of action) **में सावधानी के साथ चुनाव करने से है।** विपणन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये की जाने वाली क्रियाओं के सन्दर्भ में विपणन कार्यवाहक को बहुत से निर्णय लेने होते हैं, और उन्हें क्रियान्वित करना होता है। इन निर्णयों के आकार व आकृतियाँ विभिन्न होते हैं। कुछ निर्णय मामूली होते हैं, जैसे कि एक नये उत्पाद

पर किस प्रकार का मुद्रालेख प्रयोग किया जाये इससे सम्बन्धित निर्णय। अन्य निर्णय मुख्य माने जाते हैं। कुछ निर्णय आवर्तक होते है, और अन्य निर्णय विरले होते हैं। कुछ निर्णय कम जोखिम वाले होते हैं, जबकि कुछ निर्णय जोखिमपूर्ण हो सकते हैं।

विपणन सम्बन्धी निर्णयों के विशिष्ट लक्षण—

फर्म के विपणन सम्बन्धी निर्णय उनके समस्त निर्णयों में सबसे नाजुक (critical) होते हैं। ये निर्णय प्रचलित वातावरण के सन्दर्भ में उसके कार्य क्षेत्र को परिभाषित करते हैं, बिक्री निर्धारित करते हैं और कम्पनी छवि पर अमिट प्रभाव डालते हैं। संक्षेप में, विपणन सम्बन्धी निर्णयों के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं—

1. **जटिलता** (Complexity)—वैज्ञानिक तरीके से निर्णय लेना अन्य क्रियात्मक-क्षेत्रों की अपेक्षा विपणन के क्षेत्र में अधिक कठिन होता है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् उत्पादन प्रबन्ध, सेविवर्गीय प्रबन्ध, सामग्री प्रबन्ध तथा वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्र में जितने सिद्धान्तों व क्रियात्मक अनुसंधान मॉडलों का विकास हुआ है उतना विपणन प्रबन्ध के क्षेत्र में नहीं हुआ। उसका मूलभूत कारण यह है कि विपणन सम्बन्धी विषय उत्पादन या वित्त जैसे विषयों की तुलना में तकनीकी होने के बजाय मानव व्यवहार पर अधिक निर्भर है। इसलिये इसमें असाधारण विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं। यही कारण है कि विपणन सम्बन्धी किसी भी वैज्ञानिक निर्णय पर पहुँचने में कठिनाई का अनुभव होता है।

2. **मानवीय व्यवहार प्रधान**—मानवीय व्यवहार सम्बन्धी घटक उसी अद्वितीय मोड़ की व्याख्या करते हैं जो कि स्वयं निर्णय लेने की निजी महत्वाकांक्षा, प्रकृति और विचारधारा पर निर्भर होते हैं। विपणन सम्बन्धी अधिकांश 'निर्णयों की सफलता एवं विफलता प्रबन्धकीय क्षमता तथा ज्ञान की अपेक्षा मानवीय व्यवहार (क्रेताओं के व्यवहार) पर अधिक निर्भर करती है। यदि फर्म के विपणन कार्यवाहक यह बात जान जाते हैं कि 'लोग क्यों खरीदते हैं ? तो वे समस्त विपणन निर्णयों को शीघ्र ले सकते हैं, परन्तु यह जानना इतना आसान नहीं है।

3. **संगठनात्मक प्रभाव**—निर्णय-प्रक्रिया पर अनेक संगठनात्मक घटकों का भी प्रभाव पड़ता है। किसी संगठन के अन्तर्गत निर्णय लेते समय उन घटकों को भी दृष्टिगत करना चाहिए जो कि प्रथम दृष्टि में विचाराधीन प्रश्न से दूर प्रतीत होते हैं। संगठनात्मक निर्णय लेते समय मानवीय आवेशों, आकांक्षाओं व संस्थागत हितों के अन्तर्गत सिर्फ विवेकयुक्त स्वार्थ ही सम्मिलित किये जाने चाहिये।

4. **दीर्घगामी-प्रभाव**—विपणन सम्बन्धी निर्णयों का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। ये निर्णय केवल विपणन विभाग को ही प्रभावित नहीं करते अपितु कम्पनी के अन्य विभागों को भी प्रभावित करते है। उदाहरणार्थ—किसी नई वस्तु के विकास से सम्बन्धित निर्णय केवल विपणन विभाग को ही प्रभावित नहीं करता अपितु उत्पादन-विभाग, क्रय-विभाग, वित्त-विभाग, शोध एवं विकास विभाग को भी प्रभावित करेगा। यही कारण है कि प्रायः सभी महत्वपूर्ण विपणन निर्णयों के प्रति पूरे उपक्रम के अधिकारी काफी आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं जिनसे विपणन प्रबन्धक की जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं।

19 विपणन कार्यक्रम
(MARKETING PROGRAMME)

प्रश्न 43. "प्रभावी विपणन कार्यक्रम बेची गई वस्तुओं के परिव्यय में वृद्धि नहीं करता वस्तुतः यह विपणि का विस्तार करता है, विक्रय में वृद्धि करता है और अन्ततः विक्रय मूल्य को कम करता है।" समझाइये।

"An effective marketing programme does not increase the cost of the goods sold, it really, extends the market, increases the sales and lowers selling cost finally." Explain.

उत्तर—विपणन कार्यक्रम से आशय—जब फर्म अपने विपणन उद्देश्य को निर्धारित कर लेती है एवं समस्त विपणन अवसरों का अध्ययन कर लेती है तो उसके सम्मुख इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विपणन कार्य तैयार करने की समस्या आती है। विपणन कार्यक्रम वास्तविक रूप में फर्म के भावी विपणन कार्यक्रम की संक्षिप्त किन्तु सुविचारित रूपरेखा होती है। **फिलिप कोटलर** के शब्दों में, **"विपणन कार्यक्रम विपणन प्रयत्नों के स्तर, वितरण एवं मिश्रण सम्बन्धी नीतियों का समूह होता है।"** इस प्रकार साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि पूर्वनिश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये किसी एक निश्चित अवधि में विपणन साधनों का किस प्रकार प्रयोग किया जाये इसका पूर्व निश्चिय ही विपणन कार्यक्रम तैयार करना कहलाता है।

विपणन कार्यक्रम के मूल तत्व—

एक सुसंगठित विपणन कार्यक्रम को निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

I. **विपणन कार्यक्रम का नियोजन**—विपणन कार्यक्रम का नियोजन करते समय विपणन प्रबन्धक को लिखित पगों का अनुसरण करना होगा

1. **कम्पनी के बाजार का अध्ययन**—विपणन कार्यक्रम का नियोजन करते समय सर्वप्रथम कम्पनी के बाजार का अध्ययन करना अति आवश्यक है क्योंकि हो सकता है कि कम्पनी के वर्तमान विपणन प्रयास क्रेताओं की संख्या, उनकी क्रय प्रेरणाओं एवं आदतों तथा स्थिति सम्बन्धी अपर्याप्त एवं गलत ज्ञान पर आधारित हों, और यह भी संभव है कि यदि बाजार की नवीनतम एवं वास्तविक जानकारी प्राप्त की जाये तो बिक्री की मात्रा बढ़ सकती है। विपणन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान

के लिये बाजार का ज्ञान अर्थात् क्रेताओं के बारे में जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है।

2. **उत्पाद का निरीक्षण**—बाजार सम्बन्धी दशाओं का अध्ययन करने के पश्चात् विपणन प्रबन्धक को कम्पनी के उत्पाद या उत्पाद पंक्तियों का निरीक्षण करना चाहिये। सम्भव है कि कम्पनी के उत्पाद की किस्म अधिक अच्छी होने की वजह से उसकी कीमत अधिक हो जबकि क्रेता कम कीमत पर निम्न किस्म की वस्तु के प्रति आकर्षित होते हों। इसके विपरीत यह भी सम्भव है कि कम्पनी के उत्पाद उस किस्म से कम का हो जिसे बाजार पसन्द करता हो। यह भी संभव है कि कम्पनी की उत्पाद पंक्ति इतनी विस्तृत है कि सफल विक्रय प्रयास संभव ही न हो सकता हो, या उत्पाद पंक्ति इतनी संकीर्ण हो कि ग्राहकों की संतुष्टि न हो रही हो इन सब बातों के लिये कम्पनी के उत्पाद की प्रतिस्पर्द्धियों के उत्पाद से तुलना करनी चाहिये। इसी संदर्भ में उत्पाद की पैकिंग, आकार, रंग, कच्चा माल, डिजाइन, कार्यों आदि का अवलोकन करके ग्राहकों की संतुष्टि के लिए इन्हें परिवर्तित करना चाहिये।

3. **वितरण स्रोतों का मूल्यांकन**—उत्पाद पंक्तियों का निरीक्षण करने के पश्चात् विपणन प्रबन्धक को कम्पनी के वितरण स्रोतों का मूल्यांकन करना चाहिये क्योंकि यह संभव है कि कम्पनी द्वारा सही वितरण स्रोतों का चयन न किया गया हो। कम्पनी के वितरण स्रोत अपर्याप्त एवं आवश्यकता से अधिक भी हो सकते हैं अतः वितरण स्रोतों का मूल्यांकन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

4. **विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय प्रयासों का निरीक्षण**—विपणन प्रबन्धक को कम्पनी द्वारा प्रयोग किये जा रहे विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय प्रयासों का निरीक्षण करना चाहिये। इस सम्बन्ध में यह देखना जरूरी है कि कम्पनी के विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय प्रयासों पर कितना व्यय किया जा रहा है, इन दोनों विक्रय विधियों पर निर्धारित राशि का उचित ढंग से बँटवारा किया जा रहा है अथवा नहीं। विज्ञापन के लिये निर्धारित राशि का विभिन्न विज्ञापन माध्यमों पर सही बँटवारा हो रहा है या नहीं, विज्ञापन के सही माध्यम का चुनाव किया गया है अथवा नहीं।

II **विपणन कार्यक्रम का क्रियान्वयन**—कार्यक्रम के क्रियान्वयन से आशय विपणन कार्यक्रम को फर्म के अन्तर्गत लागू करने से है। विपणन कार्यक्रम के क्रियान्वयन का उद्देश्य वस्तु के सम्बन्ध में कम्पनी स्टाफ, मध्यस्थों एवं ग्राहकों में रुचि उत्पन्न करना होता है। प्रारम्भिक अवस्था में कार्यक्रम बहुत संक्षिप्त रखा जा सकता है ताकि यह कुछ व्यक्तियों तक ही पहुँच सके, लेकिन बाद में धीरे-धीरे इसका विस्तार किया जाता है ताकि यह विस्तृत बाजार तक न्यूनतम प्रयासों से प्रभावशाली ढंग से पहुंच सके और उपभोक्ताओं, मध्यस्थों तथा कम्पनी के स्टॉफ के व्यक्तियों में वस्तु के प्रति रुचि बनी रहे। विपणन कार्यक्रम के क्रियान्वयन का स्तर निम्न घटकों पर आधारित होता है—

1. प्रबन्धक को सर्वप्रथम यह निश्चित करना होता है कि कार्यक्रम को कब लागू किया जाय ।

2. विपणन कार्यक्रम के विभिन्न तत्वों को किस क्रम में संयोजित किया जाय अर्थात् कर्यक्रम की सफलता के लिये प्रत्येक क्रिया कब प्रारम्भ की जाये, इस सम्बन्ध में निर्णय लेना ।

3. कार्यक्रम की क्रियाओं को कब तक चालू रखा जाये ।

4. कार्यक्रम के क्रियान्वयन में भाग लेने वाले विभिन्न व्यक्तियों में किस प्रकार समन्वयन स्थापित किया जाय ।

5. कार्यक्रम को किन-किन स्थानों पर पहले परीक्षण के रूप में लागू किया जाय तथा परीक्षण के दौरान कौन-कौन सी सूचनाएं एकत्रित की जाय ।

विपणन कार्यक्रम में विभिन्न व्यक्ति एवं विभिन्न क्रियायें, क्रियान्वयन समय की समस्या; आदि होने के कारण यह आवश्यक है कि एक मास्टर सूची, बना ली जाये जिसमें क्या करना है, कब करना है, आदि प्रश्नों को स्पष्ट करने के साथ-साथ यह भी स्पष्ट कर देना चाहिये कि विपणन कार्यक्रम कब प्रारम्भ किया जाना है ।

विपणन कार्यक्रम का औचित्य—विपणन कार्यक्रम बनाना और उसे क्रियान्वित करना किसी फर्म के लिए क्यों आवश्यक है, अर्थात् विपणन कार्यक्रम का क्या औचित्य है ? यह एक महत्वपूर्ण तथा तर्क संगत प्रश्न है । इसके संदर्भ में कहा जा सकता है कि विपणन कार्यक्रम विपणन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्राथमिक आवश्यकता है । विपणन कार्यक्रम को तैयार कर लेने से विपणन प्रावधानों का अनुकूलतम स्तर एवं आयोजन निर्धारित करने में विशेष रूप से सीमांत विश्लेषण के प्रयोग में बड़ी सहायता मिलती है । जिस प्रकार एक फर्म यदि उत्पादन का अनुकूलतम आकार प्राप्त कर लेती है तो वह आर्थिक आकार (Economic size) की संस्था बन जाती है, उसी प्रकार विपणन कार्यक्रम भी विपणन संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करने में सहायता प्रदान करता है । विपणन कार्यक्रम विपणन नियोजन का आधार है । यह भावी विपणन निर्णयों में से अनिश्चितता का अंश समाप्त कर देता है और किसी सीमा तक सफल निर्णय लेने में सहायक होता है । एक फर्म के प्रबन्धक विपणन कार्यक्रम को नियोजित करते समय प्रत्येक ऐसे तत्व का अध्ययन कर लेते हैं जो फर्म की बिक्री पर प्रभाव डालते हैं, बिक्री को बढ़ा सकते हैं तथा बाजार को पकड़ सकते हैं तो यह स्वाभाविक ही है कि उस वस्तु के बाजार का विकास हो । जब वस्तु का बाजार विस्तृत हो जाता है तो वस्तु बड़े पैमाने पर उत्पादन करके कम विक्रय मूल्य पर भी अधिक बेचकर फर्म अधिक लाभ कमा सकती है ।

प्रश्न 41. विपणन मिश्रण से क्या आशय है ? विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाली शक्तियों का वर्णन कीजिए ।

What is Marketing Mix ? Describe the forces affecting the Marketing Mix ?

उत्तर—

विपणन मिश्रण से आशय

किसी समय विशेष पर विपणन निर्णय की मात्राओं एवं प्रकारों के संयोग को विपणन मिश्रण कहा जाता है। विपणन कार्यक्रम बनाते समय इस ओर ध्यान देना अति आवश्यक है कि फर्म कौन-कौन से विपणन निर्णय तत्वों का प्रयोग कर रही है व उनका परस्पर प्रभाव क्या है ? विपणन मिश्रण कई प्रकार के हो सकते हैं तथा इन पर आर्थिक व राजनैतिक तथा फर्म की आंतरिक एवं बाहरी परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है।

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले तत्व

विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले तत्वों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(A) **बाजार सम्बन्धी तत्व**—विपणन मिश्रण को प्रभावित करने वाले बाजार सम्बन्धी तत्व निम्नलिखित हैं—

1. **प्रतिस्पर्द्धा**—विपणन प्रबन्धक का प्रतिस्पर्द्धा पर कोई नियन्त्रण नहीं होता और प्रतिस्पर्द्धा विपणन मिश्रण को प्रभावित करती रहती है। अतः विपणन प्रबन्धक को चाहिये कि वह प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धायें, माँग व पूर्ति का सम्बन्ध, प्रतिस्पर्द्धा का इन पर प्रभाव उपभोक्ताओं पर इनका प्रभाव आदि का अध्ययन करे।

2. **वितरण व्यवस्था का आकार**—वितरण व्यवस्था का स्वरूप व आकार भी विपणन मिश्रण को प्रभावित करता है। वितरक की उपभोक्ता के सम्पर्क में आते हैं। अतः व्यवहार, मनोबल, कार्य विधि आदि का उपभोक्ता पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

3. **राजकीय नियन्त्रण का प्रभाव**—वर्तमान समय में विपणन सम्बन्धी क्रियाओं पर राजकीय नियन्त्रण बढ़ता जा रहा है। इस बढ़ते हुए नियन्त्रण का वस्तु मिश्रण पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

8. **उपभोक्ता व्यवहार**—वस्तु मिश्रण पर उपभोक्ताओं की रुचि, इच्छा, आवश्यकता व आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अतः विपणन प्रबन्धक को चाहिए कि वह विपणन कार्यक्रम बनाने से पूर्व उपभोक्ता सम्बन्धी व्यवहारों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करें।

(B) विपणन सम्बन्धी तत्व

वस्तु मिश्रण को प्रभावित करने वाले विपणन सम्बन्धी तत्व निम्नलिखत हैं—

1. **उत्पाद नियोजन**—प्रत्येक निर्माणक संस्था की स्थापना किसी वस्तु के उत्पादन या सेवा के लिए होती है। प्रत्येक उत्पादक को चाहिए कि वह अपनी वस्तु में उन गुणों का समावेश करे जो उपभोक्ताओं की किसी न किसी आवश्यकता को सन्तुष्ट कर सके।

2. **पैकिंग नीति**—पैकिंग नीति का निर्माण भी गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद ही किया जाना चाहिए क्योंकि उत्पादन के विक्रय में पैकिंग का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

3. **चिह्न नीति**—वर्तमान समय में प्रतिष्ठित व्यापारी अपने उत्पादकों को एक निर्धारित व विशेष चिन्ह दे देते हैं, इस चिन्ह का विक्रय पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अतः चिन्ह निर्धारित करते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

4. **वितरण का माध्यम व विज्ञापन के साधन**—वितरण के माध्यम व विज्ञापन से साधनों का वस्तु के विक्रय पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अतः इनका चयन भी सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिये।

5. **विशेष विक्रय**—नियमित विक्रय के अलावा कभी-कभी विशेष विक्रय कार्यक्रम का आयोजन भी किया जाना चाहिए।

6. **भौतिक वितरण**—उपरोक्त समस्त प्रयत्न वस्तु की माँग को बढ़ा देते हैं लेकिन इस बढ़ी हुई माँग की पूर्ति करने के लिये भौतिक वितरण सम्बन्धी नीति बनना आवश्यक है। इसमें परिवहन, भण्डारन, वित्त-प्रबन्ध आदि कार्य सम्मिलित हैं।

7. **विपणन अनुसन्धान**—विपणन अनुसन्धान सफल विक्रय का जीवन रक्त है। अतः एक विपणन प्रबन्धक को अपने विपणन मिश्रण में इसके लिए भी विशेष भूमिका प्रदान करनी चाहिए।

प्रश्न 45. विपणन की रीति-नीति से आपका क्या आशय है? इसे बनाते समय विचार किये जाने वाले तत्वों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

What do you mean by marketing strategy. Explain the factor to be considered while formulating over-all marketing strategy.

उत्तर—एक फर्म को अपने विपणन सम्बन्धी पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रत्युत्तर में अपने विक्रय कार्यक्रमों व विक्रय नीति में आवश्यक समायोजन एवम् संशोधन करना होते हैं। फर्म पर्यावरण सम्बन्धी इन परिवर्तनों के प्रति अपनी संवेदनशीलता भावों के प्रति तटस्थता की नीति अपनाकर या विवेकपूर्ण ढंग से विपणन नीति में परिवर्तन करके प्रकट कर सकती है। इस परिवर्तन के लिये एक "विपणीय व्यूह रचना" या "विपणन की रीति-नीति" की आवश्यकता महसूस होती है।

विपणीय व्यूह रचना से आशय—

विपणीय व्यूह रचना में उन सभी प्रयत्नों, साधनों व तरीकों को समावेशित किया जाना है जो विक्रय प्रबन्धक के द्वारा विपणीय पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रति अपनाये जाते हैं। फिलिप कोटलर के शब्दों में, "विपणीय व्यूह रचना से आशय उस तकनीक से होता है। जिसे फर्म बाजार सम्बन्धी परिवर्तनों के प्रत्युत्तर में अपनाती है।"

विपणीय व्यूह-रचना को निश्चित करने वाले घटक

1. **प्रतिस्पर्धियों के सम्भावित प्रयत्न**—विक्रय प्रबन्धक को अपने प्रतिस्पर्धियों के सम्भावित प्रयत्नों एवं नीतियों का पता लगा लेना चाहिये व उनके प्रयासों का अपने व्यवसाय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर लेना चाहिये।

2. **सहयोग की प्रवृत्ति**—कुछ विपणन संस्थायें सहयोग की प्रवृत्ति भी रखते हैं। अतः श्रेष्ठतम विपणन नीति का निर्माण करने के लिये सहयोग की इस प्रवृत्ति पर भली-भाँति विचार कर लेना चाहिए।

3. **स्थानापन्न की दशा**—बाजार में एक ही वस्तु के अनेकों स्थानापन्न उपस्थित रहते हैं जो विक्रय पर निश्चित रूप से प्रभाव डाल सकते हैं अतः स्थानापन्न के प्रभावों का अध्ययन कर लेना चाहिये।

4. **उत्पादों की भिन्नता**—प्रत्येक व्यापारी या निर्माता में उत्पादों ने भिन्नता रहती है। इस भिन्नता का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिये।

5. **लोच में भिन्नता**—प्रत्येक वस्तु या आदाय की लोच में विभिन्नता पायी जाती है। इसका माँग पर प्रभाव पड़ता है। अतः एक अनुकूलतम विपणन नीति का निर्माण करते समय लोच का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये।

20 बाजार विभक्तिकरण (MARKET SEGMENTATION)

प्रश्न 46. बाजार विभक्तिकरण के लिए किन-किन मापदण्डों का प्रयोग किया जाता है।

What criteria are used for segmenting a market ?

उत्तर—

बाजार विभक्तिकरण से आशय

साधारण शब्दों में बाजार को प्रभावशाली ढंग से पकड़ने तथा क्रेताओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से बाजार को विभिन्न भागों में बाँटने की कला को ही बाजार विभक्तिकरण कहते हैं। बाजार के लक्षण और विपणन सम्बन्धी वातावरण के अनेक घटक व्यक्तिगत फर्म के नियन्त्रण से अधिकतर बाहर होते है, और फर्म की प्रगति के अवसरों और सीमाओं को निर्धारित करते हैं। अतः फर्म के सामने यह चुनौती प्रस्तुत होती है कि किस प्रकार वह इन घटकों के साथ अनूकूलता स्थापित करे, ताकि बाजार को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके।

बाजार विभक्तिकरण की परिभाषा

फिलीप कोटलर के अनुसार, "जब कभी किसी उत्पाद या सेवा के लिये बाजार में दो या अधिक क्रेता हों, तो वह विभक्त किया जा सकता है, अर्थात् उसे आर्थिक क्रेता समूहों में बाँट सकते हैं। ऐसे विभक्तिकरण का उद्देश्य क्रेताओं के बीच पाये जाने वाले अन्तरों का पता लगाना है, ताकि उसमें चुनाव करना या उनको विपणन करना सम्भव हो जाये।" **इस प्रकार हम देखते हैं कि बाजार विभक्तिकरण का आशय अपने उत्पादों के बाजार को कई उप-बाजारों में बाँटने से होता है।**

बाजार विभक्तिकरण के उद्देश्य—"बाजार विभक्तिकरण का उद्देश्य" **एडमंड पीयर्स** के अनुसार, क्रेताओं के बीच उन अन्तरों का निर्धारण करना है जो कि बाजार क्षेत्र या विपणन विधियों के चुनाव को प्रभावित कर सकते हैं। ऐसा विभक्तिकरण कम्पनी को उन खण्डों को चुनने में समर्थ बनाता है, जो कि उसके अपने प्रसाधनों के सबसे अनुरूप हों। यही नहीं, बाजार खण्डों के उपयुक्त चुनाव की दशा में उत्पाद और दृष्टिकोण सबसे उपयुक्त और विशिष्ट ढंग से प्रभावित किये जा सकते हैं। ऐसा विभक्तिकरण कम्पनी को एक उचित विपणन कार्यक्रम तैयार करने में बहुत **सहायता देता है। यह विचार इस आधारभूत सत्य पर आधारित है कि कुछ सीमाओं के अन्तर्गत कोई वस्तु प्रत्येक के लिये होती है।**

विभक्तिकरण के आधार (Bases for segmenting Markets)

बाजारों के विभक्तिकरण के लिये प्रायः भिन्न-भिन्न आधार अथवा मापदण्ड प्रयोग किये जाते हैं। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बाजार विभाजन के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के मापदण्ड प्रयोग होते हैं, बहुधा ये आधार मुख्यतः आर्थिक एवं सामाजिक होते हैं जैसे—आय, लिंग, आय-स्तर, शिक्षा और धन्धा। इन आधारों के लोकप्रिय होने का कारण यह है कि ये विभिन्न ग्राहकों की संवेदनशीलताओं का अच्छा ज्ञान करा सकते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि इनसे सम्बन्धित समंक सरलतापूर्वक उपलब्ध भी हो जाते हैं। विभक्तिकरण के और भी आधार हो सकते हैं, जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है—

(1) **सामाजिक व आर्थिक तत्व** (Socio-Economic Factors)—बाजार में महत्वपूर्ण खण्डों की स्थापना के लिये सामाजिक आर्थिक आधार सबसे अधिक प्रचलित आधार रहे हैं, क्योंकि एक तो, ये चल अनेक उत्पादकों के विक्रय के साथ अच्छी तरह सम्बन्धित होते हैं, दूसरे, इन्हें पहिचानना सरल है तथा तीसरे, अन्य अनेक चलों की अपेक्षा इनका माप अधिक सरलता से हो जाता है। इनमें आय, आयु, लिंग, शिक्षा, परिवार का आकार, धर्म, जातीयता, राष्ट्रीयता तथा पेशा आदि तत्व उल्लेखनीय हैं।

(A) **आय**—बाजार विभक्तिकरण का एक प्रमुख एवं आर्थिक मापदण्ड व्यक्तियों की आय है। एक उत्पादक को अपनी विक्रय नीति तय करने से पहले इस

बात पर विचार कर लेना चाहिये कि वह जिन व्यक्तियों के लिये वस्तु बना रहा है उनकी आय क्या है ?

(B) **आयु**— क्रेताओं की आयु के आधार पर भी बाजार का विभक्तिकरण किया जा सकता है।

(C) **लिंग भेद**—लिंग भेद भी बाजार विभक्तिकरण का महत्वपूर्ण सामाजिक आधार है। स्त्री एवं पुरुषों की आवश्यकतायें एवं मानसिक प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न होती हैं ।

(D) **शैक्षणिक योग्यता**—शैक्षणिक योग्यता के आधार पर भी क्रेताओं का वर्गीकरण किया जा सकता है ।

(E) **धन्धा या पेशा**—धन्धा या पेशा भी बाजार विभक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण आर्थिक मापदण्ड है।

(F) **शहरीकरण**—शहरीकरण के आधार पर बाजार को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है—शहर बाजार भाग ग्रामीण बाजार भाग तथा मेट्रोपोलिटन बाजार भाग आदि ।

(G) **जाति**—अपने उत्पादों के लिये विपणन कार्यक्रम निर्धारित करते समय विपणन प्रबन्धक को जातीयता के आधार पर बाजार का विभक्तिकरण कर लेना चाहिये।

(H) **धर्म**—जातीयता की तरह की धर्म के आधार पर भी बाजार का विभक्तिकरण किया जा सकता है। विभिन्न जातियाँ भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करती हैं तथा उनके धार्मिक विचार उनके रहन-सहन के स्तर तथा खान-पान को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार धर्म के आधार पर बाजार का विभक्तिकरण करना विपणन प्रबन्ध के लिये सहायक सिद्ध होता है ।

2. **भौगोलिक तत्व**—अनेक विक्रेता अपने बाजार के भीतर भौगोलिक विभिन्नताओं को मान्यता देते हैं। उदाहरणार्थ एक फुटकर विक्रेता अपने पड़ौसी ग्राहकों और अधिक दूर के ग्राहकों में एक स्थानीय खाद विक्रेता शहरी ग्राहकों और ग्रामीण ग्राहकों में, एक प्रान्तीय निर्माता ठंडे, गर्म एवं शीतोष्ण प्रदेश के ग्राहकों में, एक राष्ट्रीय निर्माता विभिन्न प्रान्तों में भेद कर सकता है। इन समस्त दशाओं में भौगोलिक इकाइयाँ विपणन प्रयासों की भिन्नता का आधार बनाई गई हैं।

3. **व्यक्तित्व सम्बन्धी तत्व** (Personality Factors)—कुछ वस्तुओं के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि क्रेता-व्यवहार की भिन्नताओं के पीछे व्यक्तित्व तत्व भी प्रभावशाली भूमिका अदा करते हैं। उदाहरणार्ण, उच्च और विशिष्ट श्रेणी के व्यक्ति कैपस्टन सिगरेट ही पसन्द करते हैं। इसी प्रकार लोग कहते हैं कि फोर्ड खरीदने वाले ग्राहक शिवरलैट खरीदने वाले ग्राहकों से एक भिन्न प्रकार का व्यक्तित्व रखते हैं।

4. **क्रेता व्यवहार सम्बन्धी तत्व** (Consumer Behaviour Factors)—क्रेता-व्यवहार सम्बन्धी तत्वों का तात्पर्य उन तत्वों से है जो एक उत्पाद के साथ क्रय के सम्बन्ध में एक या दूसरे पहलू को व्यक्त करते हैं। ऐसे तत्वों में प्रयोग दर, ग्राहक, अभिप्रेरण, ब्रान्ड-निष्ठा आदि आते हैं।

5. **प्रयोक्ता आकार**—औद्योगिक बाजार को औद्योगिक प्रयोक्ताओं के आधार पर विभाजित किया जा सकता है। औद्योगिक प्रयोक्ता से आशय उस ग्राहक से होता है जो वस्तुओं एवं सेवाओं को आगे उत्पादन कार्य के लिये खरीदता है। औद्योगिक प्रयोक्ता आकार में भिन्न हो सकते हैं क्योंकि कुछ के पास बहुत कम कर्मचारी होते हैं और कुछ के पास हजारों कर्मचारी होते हैं।

●●

21 विक्रय पूर्वानुमान (SALES FORECASTING)

प्रश्न 47. विपणन नियोजन में विक्रय पूर्वानुमान के स्थान की व्याख्या कीजिए।
Discuss the role of Sales Forecasting in Marketing Planning.

उत्तर—पूर्वानुमान व्यावसायिक कार्य संचालन का अनिवार्य अंग है और व्यवसाय के समस्त निर्णय किसी न किसी रूप में पूर्वानुमान से अवश्य सम्बन्धित हैं। वास्तव में देखा जाये तो **व्यवसाय की सफलता ही उचित विक्रय पूर्वानुमान पर निर्भर है**। किसी भी विपणन नियोजन तथा विपणन कार्यक्रम की सफलता अकेले इसी तथ्य पर निर्भर करती है कि विक्रय पूर्वानुमान कितना अच्छा तथा ठीक-ठीक लगाया गया है। विक्रय पूर्वानुमान का स्थान विपणन नियोजन के क्षेत्र में हम निम्न प्रकार से निर्धारित कर सकते हैं—

1. **विक्रय पूर्वानुमान विपणन नियोजन का आधार है**—कोई भी विपणन सम्बन्धी योजना तब तक सुदृढ़ नहीं बन सकती जब तक कि उस योजना के मूल में स्थापित धारणायें सुदृढ़ पूर्वानुमानों पर आधारित न हों। यदि संस्था की भावी बिक्री के बारे में कोई अनुमान नहीं है तो प्रबन्धक उत्पादन कार्यक्रम की कोई सुदृढ़ रूपरेखा नहीं बना सकते। अतः यह माना जाता है कि विक्रय पूर्वानुमान की नींव पर ही विपणन नियोजन का भवन निर्मित हो सकता है।

2. **विक्रय पूर्वानुमान की योजना प्रबन्धकों को भावी विपणन नियोजन करने को विवश कर देती है**—भावी विपणन अवसरों की कल्पना विपणन विभाग के

कर्मचारियों को परिस्थिति से मुकाबला करने हेतु प्रेरित करती है तथा वे संस्था के विक्रय सम्बन्धी लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु अधिक संगठित व नियोजित प्रयत्न करने लगते हैं।

3. विक्रय पूर्वानुमान भविष्य की विपणन सम्बन्धी जोखिमों को अधिक स्पष्ट करके व्यावसायिक संस्थाओं को इन जोखिमों से मुकाबला करने के लिए अधिक सतर्क और सजग बना देता है।

4. विक्रय पूर्वानुमान की प्रक्रिया इसके अतिरिक्त प्रवन्धकों को उन विपणन क्षेत्रों को जानकारी भी प्रदान करती है जहाँ अधिक नियन्त्रण की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विपणन नियोजन में विक्रय पूर्वानुमान का व्यापक महत्व है। व्यवसाय की सफलता ही इस बात पर निर्भर है कि उसके प्रबन्धक अपने निर्णयों में कितनी दूरदर्शिता का परिचय देते हैं। यह दूरदर्शिता तभी आती है जबकि पहले से ही विक्रय पूर्वानुमान कर दिया जाये विक्रय पूर्वानुमान विपणन क्रिया कलापों के नियोजन के लिए तो उपयोगी होते ही हैं, उत्पादन पर वित्त के लिए योजना बनाने के लिए भी उनकी आवश्यकता पड़ती है। कितनी मात्रा क्रय (या निर्मित) की जाये, कब और क्या क्रय (या निर्माण) किया जाये इत्यादि निर्णय लेने तथा विपणन बजट बनाने के लिए भी वह उपयोगी होते हैं।

प्रश्न 48. विक्रय पूर्वानुमान लगाने की क्या-क्या मुख्य विधियाँ हैं ? उनके गुण व अवगुणों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए। विपणन प्रबन्ध में इनके महत्व पर प्रकाश डालिए।

What are the different methods of Demand Forecasting ? Discuss their merits and demerites in brief. Explain its importance in marketing management.

उत्तर–विक्रय पूर्वानुमान की विधियाँ (Methods of Forecasting)

विक्रय पूर्वानुमान लगाना वास्तव में एक कला है। इसके लिए विभिन्न विधियाँ प्रयोग में आती हैं। **स्टेण्टन** (Stanton) के अनुसार विक्रय पूर्वानुमान के प्रमुख ढंग निम्नलिखित हैं—

(अ) जोड़ने की तकनीकें—

1. विगत बिक्री एवं प्रकृति विश्लेषण (Past Sales and Trend Analysis)

2. कार्यवाहक समीक्षा (Executive Judgement)

3. विक्रय बल सम्मिश्रण (Sales Force Composite) एवं

(ब) सांख्यिकीय एवं परिमाणात्मक विधियाँ--

फिलिप कोटलर के अनुसार—पूर्वानुमान तीन प्रकार के आधार पर निर्मित किये जा सकते हैं—

(अ) **लोग क्या कहते हैं ?** (What People Say) पर आधारित ढंग

1. क्रेताओं के इरादे का सर्वेक्षण (Survey of Buyer Intentions)
2. विक्रय बल सम्मिश्रण (Composites of Sales Force Opinions)
3. विशेषज्ञों की सम्मति (Expert Opinion)

(ब) **लोग क्या करते हैं ?** (What People Do) **पर आधारित ढंग**

4. बाजार परीक्षा का ढंग (Market Test method)

(स) **लोगों ने क्या किया है ?** (What People have done) **पर आधारित व गणितीय व साँख्यिकीय ढंग**

5. काल श्रृंखला विश्लेषण (Classical Time Series Analysis)
6. साँख्यिकीय माँग विश्लेपण (Statistical Demond Analysis)

आगे विक्रय पूर्वानुमान की प्रमुख विधियों को सक्षेप में समझाया गया है।

1. **कार्यवाहक समीक्षा** (Executive judgement)—इस विधि में शीर्ष कार्यवाहकों की सम्मतियों और विचारों को इकट्ठा करके औसत निकाला जाता है, अथवा किसी अन्य प्रकार से मूल्यांकन किया जाता है।

गुण— (i) इस विधि से पूर्वानुमान जल्दी व आसानी से लगाये जा सकते हैं।
(ii) विस्तृत सांख्यिकी जुटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
(iii) जब पर्याप्त आँकड़ों का अभाव हो तो यही पूर्वानुमान की उचित विधि होगी।

अवगुण–(i) यह एक अधिक तथ्यात्मक आधार वाली विधि की तुलना में घटिया विधि है।
(ii) सही पूर्वानुमान लगाने की जिम्मेदारी अनेक लोगों पर फैल जाती है। तथा
(iii) कार्यवाहकों का अमूल्य समय खर्च होता है।

2. **विक्रय बल सम्मिश्रण** (The Sale Force Composite)—इस विधि के द्वारा विक्रय कर्मचारियों अथवा विक्रय प्रबन्धकों के विचार मालूम किये जाते हैं। इसके कई रूपान्तर सम्भव है।

गुण— (i) इसमें बाजार से निकटतम सम्पर्क रखने वाले व्यक्तियों के विशिष्ट ज्ञान का प्रयोग किया जाता है।
(ii) पूर्वानुमान के लिए जिम्मेदारी उन्हीं लोगों पर आती है जो कि परिणाम दिखाने से सम्बन्धित हैं।
(iii) सेम्पल की विशालता के कारण पूर्वानुमान में अधिक स्थायित्व सम्भव होता है।

(iv) उत्पाद, क्षेत्र ग्राहक या विक्रेता के क्रम से विस्तृत पूर्वानुमान तैयार करने से सुविधा रहती है ।

अवगुण–(i) विक्रेता अति आशावादी होते है या अति निराशावादी, जिससे वे अच्छे अनुमानकर्त्ता नहीं हो सकते ।

(ii) इस अवधि में समय का अपव्यय होता है ।

(iii) विक्रेता जान-बूझकर विक्रय कोटा कम रखने के लिए माँग को कम आँक सकते हैं ?

3. **प्रयोक्ताओं की पूर्वाशा** (The User's Expectation)—इस विधि के अन्तर्गत उत्पाद के प्रयोक्ताओं से उस परिमाण के पूर्वानुमान प्राप्त किये जाते हैं, जिसे क्रय करने की उसे आशा है, तत्पश्चात् इन प्रत्युत्तरों को मिलाकर उत्पाद के लिए कुल माँग का अनुमान लगाया जाता है । इसके बाद उस माँग का अनुमान तैयार किया जाता है जो कि पूर्वानुमान लगाने वाली कम्पनी पूरा कर सकती है ।

गुण—(i) जहाँ अन्य विधियाँ अनुपयुक्त है (जैसे कि नये उत्पाद की दशा में, जबकि कोई पूर्व विक्रय इतिहास उपलब्ध नहीं होता), वहाँ यह विधि ही उपयुक्त रहती है ।

अवगुण—(i) जहाँ प्रयोक्ताओं की संख्या अगणित हो, वहाँ यह विधि व्यवहार में उपयोग में लाना असंभव है । (ii) यह ऐसी पूर्वाशाओं पर आधारित है जो कि परिवर्तनशील हैं ।

4. **बाजार परीक्षा विधि**—यह विधि नये उत्पादन के विक्रय या एक नवीन वितरण वाहिका अथवा क्षेत्र में किसी स्थापित उत्पादन के संभावित विक्रय का पूर्वानुमान लगाने हेतु विशेष रूप से प्रयुक्त होती है । उन दशाओं में जहाँ क्रेता लोग अपने क्रयों की सुनियोजित योजना नहीं बनाते है अथवा जहाँ विशेषज्ञ लोग अच्छे अनुमानकर्त्ता नहीं होते, वहाँ संभावित व्यवहार की एक प्रत्यक्ष बाजार-परीक्षा लेना आवश्यक होता है ।

5. **विशेषज्ञों की सम्मति** (Expert opinion)—क्रेताओं, कम्पनी के विक्रेताओं व कार्यवाहकों के अतिरिक्त अन्य जानकार लोग जैसे कि वितरकों या बाह्य विशेषज्ञों की सम्मति का इस विधि के अन्तर्गत पूर्वानुमान लगाने में प्रयोग किया जाता है ।

इस प्रकार के अनुमानों में वही गुण-अवगुण पाये जाते हैं जो कि कम्पनी के विक्रेताओं द्वारा प्रदान किये गये अनुमानों में होते हैं ।

6. **सांख्यिकीय एवं परिमाणात्मक विधि** (Statistical and quantitative method)—वैज्ञानिक निर्णय की अनुपूर्ति के लिए और विक्रय पूर्वानुमानों की शुद्धता में वृद्धि करने हेतु इस विधि का प्रयोग किया जाता है । इस विधि में गणितीय फार्मूलों का प्रयोग किया जाता है ।

गुण—(i) ये विभिन्न घटकों की विक्रय-प्रगति के मध्य सम्बन्ध को मापनीय वस्तु पदक शब्दों में व्यक्त करती है। (ii) चूँकि पूर्वानुमानकर्त्ताओं को अपनी मान्यताओं के परिणाम स्थिर करने पड़ते हैं। अतः प्रबन्धकों को जाँच करने में सुविधा होती है।

अवगुण—(i) जटिल सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग के कारण प्रबन्धकों को पूर्वानुमान-प्रक्रिया पूरी तरह से समझने में कठिनाई होती है। (ii) इन्हें प्रभावी बनाने के लिए तकनीकी योग्यता एवं अनुभव आवश्यक है।

अन्त में यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि भविष्यवाणियों की शुद्धता न केवल प्रयुक्त मॉडल विधि की विश्वसनीयता पर वरन् अनुसन्धान सूचना की व्याख्या करने के गुण पर भी निर्भर करती है।

विपणन प्रबन्ध में विक्रय पूर्वानुमान—

पूर्वानुमान व्यावसायिक कार्य संचालन का अनिवार्य अंग है एवं समस्त निर्णय किसी न किसी रूप में पूर्वानुमान से अवश्य सम्बन्धित हैं। किसी भी विपणन नियोजन तथा विपणन कार्यक्रम की सफलता पूर्वानुमान की अच्छाई व ठीक-ठीक लगाये गये पूर्वानुमान पर निर्भर करती है। विक्रय पूर्वानुमान अधिकांश विपणन नियोजन का आधार है। कोई भी विपणन योजना तब तक सुदृढ़ नहीं हो सकती जब तक कि उस योजना के मूल में स्थापित धारणायें सुदृढ़ पूर्वानुमानों पर आधारित न हों। विक्रय पूर्वानुमान की प्रक्रिया प्रबन्धकों को भावी विपणन नियोजन करने को भी विवश कर देती है। साथ ही साथ भविष्य की विपणन सम्बन्धी जोखिमों को अधिक स्पष्ट करके व्यावसायिक संस्थाओं को इन जोखिमों का मुकाबला करने के लिए अधिक सतर्क और सजग बना देती है। इसके अतिरिक्त विक्रय पूर्वानुमान प्रबन्धकों को उन विपणन क्षेत्रों की भी जानकारी प्रदान करवाते हैं। जहाँ अधिक नियंत्रण की आवश्यकता है। सच तो यह है कि व्यवसाय की सफलता ही इस बात पर निर्भर करती है कि उसके प्रबन्धक अपने निर्णयों में कितनी दूरदर्शिता का परिचय देते हैं। यह दूरदर्शिता तभी आती है जबकि पहले से विक्रय पूर्वानुमान कर दिया जाये। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विपणन नियोजन में विक्रय पूर्वानुमान का व्यापक महत्व है। **विक्रय पूर्वानुमान से प्राप्त निष्कर्ष ही वे आधार हैं जिन पर विपणन नियोजन का समस्त भवन निर्मित होता है।**

22 उत्पादन वर्गीकरण तथा नियोजन
(Product Classification and Planning)

प्रश्न 49. (अ) उत्पाद को परिभाषित कीजिए।

(ब) "यदि विपणन का प्रथम निर्देश 'अपने ग्राहकों को जानना' है तो दूसरा निर्देश 'अपनी वस्तु को जानना' है।" इस कथन को समझाइए।

(a) Define Product.

(b) "If the first Commandment in marketing is, "Know thy customer" the Second is, "Know the product." Explain.

अथवा

विपणन के क्षेत्र में उत्पादित वस्तु ही सभी नियोजन क्रियाओं का आरम्भ स्थान है, बिना इसके मूल्य निर्धारण, विक्रय प्रवर्तन तथा वितरण के क्षेत्रों का चयन असम्भव है तब तक उत्पादित वस्तु सम्बन्धी नीतियाँ निर्धारित नहीं हो जातीं और वस्तु की प्रकृति निश्चित नहीं हो जाती, विपणन के क्षेत्र में कुछ कार्य ही नहीं किया जा सकता। इस कथन की सत्यता की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—विपणन सम्बन्धी समस्त नीतियों एवं उपायों का केन्द्र बिन्दु 'उत्पाद' ही है। यह एक बुनियादी उपाय है, जिसके द्वारा वह आय के लिये सौदेबाजी करता है। उत्पादक के बिना कीमत निर्धारण करना, संवर्धन कार्यक्रम बनाना या वितरण माध्यमों का चुनाव करना असम्भव है। जब तक उत्पाद नीतियाँ स्थापित नहीं की जायेंगी एवं उत्पाद का स्वभाव सही-सही निर्धारित नहीं किया जायेगा, विपणन का कोई कार्य न हो सकेगा। इसलिये एक विपणन प्रबन्धक को उत्पाद या सेवा पर, जिसका कि वह वितरण करना चाहता है, सर्वोच्च ध्यान देना चाहिए, यदि उसके उत्पाद सम्बन्धी निर्णय ठीक होते हैं, तो समस्त अन्य समस्यायें कम हो जायेंगी अन्यथा विपणन समस्यायें बढ़ने का भय रहता है।

उत्पादन का अर्थ (Meaning of Product)—साधारण शब्दों में 'उत्पादन' का आशय ऐसी वस्तु से होता है जिसका सहज ही में पहचान में आने वाला भौतिक अस्तित्व होता है। इस परिभाषा में उपभोक्ता को अभिप्रेरित करने वाले लक्षणों को महत्व नहीं दिया गया है जबकि विपणन विज्ञान के अनुसार उत्पाद का अर्थ बहुत व्यापक है। विस्तृत भाव में प्रत्येक पृथक ब्राण्ड को पृथक उत्पाद माना जाता है।

विलियम जे. स्टेन्टन ने व्यापक रूप में उत्पाद की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है— "उत्पाद दृश्य एवं अदृश्य विशेषताओं का एक सम्मिश्रण है, जिसमें पैकिंग, रंग, कीमत, निर्माता की ख्याति, फुटकर विक्रेता की प्रसिद्धि, निर्माता और फुटकर विक्रेता द्वारा प्रदत्त सेवायें सम्मिलित हैं, जिन्हें कि उपभोक्ता अपनी आवश्यकताएँ संतुष्ट करने वाली समझता है।" उक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि यदि किसी भौतिक विशेषता में कोई परिवर्तन हो जाये तो चाहे यह कितना ही मामूली हो, एक नये उत्पाद का सृजन हो जाता है और यही कारण है कि विक्रेता को बाजार (आवश्यक रूप से नये बाजार) में प्रवेश-हेतु नये ढंग की अपीलें (या निवेदन) प्रयोग करने का सुयोग मिलता है। उदाहरणार्थ सर्फ निर्माताओं ने नये ब्रॉण्ड नाम—सुपर सर्फ—का प्रयोग शुरू कर दिया है। इसमें एक नये उत्पाद की सृष्टि हुई है। 'सर्फ' और 'सुपर सर्फ' एक ही उत्पाद नहीं हैं बल्कि ये दो भिन्न-भिन्न उत्पाद हैं।

इस प्रकार **स्टेन्टन** द्वारा दी गई उत्पाद सम्बन्धी परिभाषा में सन्निहित मुख्य विचार यह कि उपभोक्ता रासायनिक और भौतिक लक्षणों का एक सम्मिश्रण मात्र नहीं वरन् इससे कुछ अधिक खरीद रहा है। **फिलिप कोटलर** के अनुसार "एक उत्पाद-क्रेता को सन्तुष्टियाँ या सुविधायें प्रदान करने की क्षमता वाले भौतिक, सेवा सम्बन्धी एवं चिन्हात्मक विवरणों का पुलिंदा है।" इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि एक उत्पाद मात्र कुछ भौतिक तथा रासायनिक लक्षणों का संगठन मात्र ही नहीं है वरन् यह उस सुख, सुविधा तथा आराम का प्रतीक है जो उस उत्पाद के रूप में एक क्रेता खरीदता है।

उत्पाद का महत्त्व—विपणन सम्बन्धी समस्त नीतियों एवं उपायों का केन्द्र विन्दु 'उत्पाद' ही है। यह एक बुनियादी उपाय है जिसके द्वारा वह आय के लिये सौदेबाजी करता है। किसी अज्ञात विद्वान ने विपणन के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "हमारी अर्थ-व्यवस्था में तब तक कुछ भी नहीं घटता जब तक कि कोई कुछ वस्तु न बेचे।" इस प्रकार विपणन क्रिया जहाँ सामाजिक तथा आर्थिक घटनाओं का आधार है वहाँ वस्तु या उत्पाद विपणन की आत्मा है। उत्पाद ही समस्त नियोजन सम्बन्धी कार्यकलापों का प्रारम्भ विन्दु है, इसके बिना कीमत निर्धारण करना, संवर्धन कार्यक्रम बनाना या वितरण माध्यमों का चुनाव करना असम्भव है।

स्वस्थ उत्पाद नीतियाँ विपणन के अन्य उपकरणों की सप्रभाविकता को बढ़ा देती हैं। गलत उत्पादों का उत्पादन, वितरण और प्रवर्तन करने में अपना धन लगाना मूर्खता ही है। इसके विपरीत यदि उत्पाद बाजार की आकांक्षाओं के अनुकूल हैं, अच्छे गुण-स्तर की है तो उसका विज्ञापन करना अधिक आसान है। इसी प्रकार सही उत्पाद के लिये वितरण माध्यमों की व्यवस्था करना सहज है और उसके मूल्य-निर्धारण में भी कोई कठिनाई नहीं होती है। इस प्रकार, एक विपणन प्रबन्धक को उत्पाद या सेवा पर जिसका कि वह वितरण करना चाहता है सर्वोच्च ध्यान देना

चाहिए। यदि उसके उत्पाद सम्बन्धी निर्णय ठीक होते हैं तो समस्त अन्य समस्यायें कम रह जायेंगी और यदि गलत निर्णय होते हैं, तो अन्य विपणन समस्यायें बढ़ जायेंगी। इसीलिये यह कहा गया है कि "यदि विपणन का प्रथम निर्देश 'अपने ग्राहक को जानना है' तो द्वितीय निर्देश 'अपनी वस्तु को जानना' है।

प्रश्न 50. उपयोग एवं औद्योगिक वस्तुओं में क्या प्रमुख अन्तर है ? सुविधा वस्तुयें, बिक्रीगत वस्तुएं एवं विशिष्टता वस्तुओं पर टिप्पणी लिखिए।
What are the major differences between Consumer goods and Industrial goods ? Explain Convenience goods, shopping goods and Speciality goods.

उत्तर—उत्पाद विशेषताओं का विपणन कार्यक्रम के रूप पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसीलिए विपणन विशेषज्ञों को उत्पाद-वर्गीकरण के सार्थक तरीके खोजने की प्रेरणा मिली है। आशय यह है कि एक अच्छा वर्गीकरण विपणनकर्त्ता को उत्पाद एवं विपणन सम्बन्धी उपयुक्त नीतियों का विकास करने में सहायक हो सकता है।

उपभोग एवं औद्योगिक उत्पाद (Consumer's and Industrial Goods)

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियन की परिभाषा समिति के अनुसार, "उपभोक्ता माल वह है जो कि अन्तिम उपभोक्ताओं (या परिवार) के प्रयोग के लिए बना है और ऐसी शक्ल में है कि बिना व्यापारिक विधायन के उपयोग किया जा सकता है।···· औद्योगिक माल वह है जो कि मुख्यतः अन्य माल के उत्पादन में अथवा सेवाएँ प्रदान करने में प्रयोग हेतु बनाया गया है··········इसमें साज-समाज (निरोपित Installed एवं अतिरिक्त (Accessory), संघटक हिस्से, अनुरक्षण, मरम्मत और प्रचालन आपूर्तियाँ, कच्चा माल, गढ़ी हुई सामग्रियाँ सम्मिलित हैं।" भेद करने का मौलिक कारण यह है कि औद्योगिक क्रेताओं के क्रय उद्देश्य, आदतें तथा निपुणताएँ उपभोक्ता-क्रेताओं से कुछ भिन्न होते हैं और इस कारण ही उपभोग एवं औद्योगिक उत्पाद सम्बन्धी विपणन क्रियाओं में अन्तर पाया जाता है।

उपभोक्ता वस्तुओं के उपवर्ग—अनेक वर्षों से उपभोक्ता वस्तुओं को सुविधा, सौदा एवं वैशिष्ट्यपूर्ण वस्तुओं में बाँटा जाता रहा है।

1. **सुविधा वस्तुएँ** (Convenience goods)—ये वे वस्तुएं हैं जिन्हें ग्राहक प्रायः बार-बार तथा न्यूनतम तुलना व क्रय-शक्ति के साथ खरीदता है जैसे साबुन, तम्बाखू, अखबार आदि।

2. **सौदा वस्तुयें** (Shopping goods)—ये वे वस्तुएं हैं जिन्हें चुनते व खरीदते समय उपभोक्ता, किस्म, कीमत और शैली जैसे आधारों पर विभिन्न निर्माताओं के उत्पाद से तुलना करता है। उदाहरणार्थ कपड़े, जूते, कारें आदि।

3. **वैशिष्ट्यपूर्ण माल** (Speciality goods)—ये वे वस्तुएँ हैं जिनमें कुछ ऐसी अद्वितीय विशेषताएँ हैं जिनके कारण एक विशेष क्रेता समूह अपनी आदत पर

ऐसी वस्तुएँ खरीदने के लिए विशेष प्रयास करने को तत्पर रहता है जैसे कि, फैन्सी वस्तुएँ, फोटोग्राफिक साज-सामग्री आदि ।

उपर्युक्त उप-वर्गीकरण का आधार है क्रेताओं का क्रय प्रयास । इस भिन्नता को महत्व देने का कारण यह है कि क्रेताओं के क्रय-प्रयास की मात्रा और प्रकृति विपणन स्ट्रैटेजी पर गहरा प्रभाव डलती है ।

टिकाऊ अ-टिकाऊ वस्तुएँ एवं सेवाएँ

टिकाऊ वस्तुओं से आशय उन दृश्य या मूर्त वस्तुओं से होता है जो साधारणतः कई प्रयोगों में आ सकती है ।

अ-टिकाऊ वस्तुओं का आशय ऐसी दृश्य या मूर्त वस्तुओं से है जो कि सामान्यतः एक या कुछ प्रयोगों के बाद समाप्त हो जाती है ।

सेवाओं का तात्पर्य विक्रय के लिए प्रस्तावित क्रियाओं अथवा सन्तुष्टियों से है ।

यह वर्गीकरण उपभोग-दर, उत्पाद दृश्यता दोनों ही पर आधारित है और विपणन स्ट्रैटेजी की दृष्टि से इनका बड़ा महत्व है । शीघ्र उपभोग में आने वाली एवं बार-बार क्रय की जाने वाली वस्तुएँ अनेक स्थानों से क्रय करनी होंगी, इन पर लाभ मार्जिन कम लिया जायेगा तथा ब्राण्ड-निष्ठा को मजबूत बनाने की चेष्टा की जायेगी जबकि दूसरी ओर टिकाऊ वस्तुएँ प्रायः वैशिष्ट्यपूर्ण होती हैं । अतः इनके लिए अधिक वैयक्तिक विक्रय, ऊंचा लाभ मार्जिन और अधिक विक्रेता गारण्टी की आवश्यकता होती है ।

वस्तु-वर्गीकरण का महत्व (Importance of Classification of Goods)

वस्तु-वर्गीकरण का विपणन के क्षेत्र में व्यापक महत्व है । एक अच्छा वस्तु-वर्गीकरण विपणनकर्त्ता को उत्पाद एवं विपणन सम्बन्धी उपयुक्त नीतियों का निर्माण करने में बहुत सहायक होता है । वस्तुओं की विशेषताओं का अध्ययन करके विपणन-कर्त्ता अलग-अलग वस्तु-वर्गों, अलग-अलग उपभोक्ता समूह तथा अलग-अलग बाजार-खण्डों के लिए पृथक-पृथक कार्यक्रम बनाकर अपनी बिक्री को बढ़ा सकता है ।

प्रश्न 51. 'एक फर्म के सम्पूर्ण विपणन कार्यक्रम के लिए उत्पाद नियोजन आरम्भ स्थान (Starting Point) **है । व्याख्या कीजिए ।**

"Product Planning is a starting point for an over all marketing programme" Discuss.

अथवा

"वस्तु नियोजन का अभाव संगठन में प्रबन्धकीय दिवालियापन का द्योतक है और यह संकेत करता है कि व्यवसाय अपने भाग्य पर छोड़ दिया गया है ।"

"वस्तु नियोजन व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने का एक साधन है ।"

उपरोक्त कथनों के सन्दर्भ में वस्तु नियोजन का महत्व बतलाइये ।

उत्तर—उत्पाद-नियोजन का आशय (Meaning of Product Planning)—उत्पाद नियोजन सम्पूर्ण विपणन कार्यक्रम का आरम्भ बिन्दु है। साधारण शब्दों में इनका आशय नवीन वस्तुओं के शोध, विकास और सुधार तथा अलाभकारी वस्तुओं का उत्पादन समाप्त कर देने सम्बन्धी निर्णयों से होता है। इसका अर्थ पर्याप्त व्यापक है। **विलियम जे० स्टेण्टन के अनुसार,** "उत्पाद-नियोजन में वह सब क्रिया-कलाप सम्मिलित होते हैं, जिनके द्वारा उत्पादक एवं मध्यस्थ यह निर्णय करते हैं कि कम्पनी की उत्पाद-पंक्ति में कौन-कौन सी मदें (Items) रखनी चाहिये। एक आदर्श उत्पाद-नियोजन यह सुनिश्चित करता है कि एक कम्पनी के सभी उत्पाद आपस में युक्ति-संगत ढंग से सम्बद्ध रहें, उनमें से प्रत्येक मद उचित हो और कम्पनी की प्रतियोगितात्मक एवं लाभ सम्बन्धी स्थिति मजबूत बने।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि उत्पाद-नियोजन एक अत्यन्त व्यापक प्रक्रिया है जिसमें निम्न तत्व आते हैं—

1. यह निर्णय करना कि कम्पनी कौन-कौन से उत्पादकों का निर्माण करे।

2. यह निर्णय करना कि प्रत्येक वस्तु का कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाये।

3. यह निर्णय करना कि कम्पनी अपनी उत्पाद-श्रेणी में क्या परिवर्द्धन अथवा संकोचन करे।

4, यह देखना कि क्या हमारी वस्तुयें गुण-स्तर की दृष्टि से उपयुक्त हैं।

5. अलाभकारी वस्तुओं के उत्पादन को बन्द करने सम्बन्धी निर्णय लेना।

6. उत्पाद का मूल्य कैसे निर्धारित किया जाये यह निश्चित करना।

7. यह निर्णय करना कि वस्तुओं में क्या सुधार अपेक्षित है और क्रियान्वित करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्पाद-नियोजन एक व्यापक एवं दूरगामी प्रभाव डालने वाली क्रिया है। जो कम्पनियाँ नियमित रूप से उत्पाद-नियोजन पर ध्यान देती हैं वे सदैव विपणन अवसरों का लाभ उठाने में समर्थ रहती हैं। उत्पाद-नियोजन का अभाव संगठन में प्रबन्धकीय कुशलता के अभाव तथा शिथिलता का द्योतक है एवं यह सिद्ध करता है कि व्यवसाय मात्र अपने भाग्य पर ही छोड़ दिया गया है। यद्यपि उत्पाद-नियोजन की प्रकृति काफी तकनीकी है तथा यह मुख्यतया उत्पादन विभाग, शोध एवं विकास विभाग का कर्त्तव्य है किन्तु विपणन अधिकारी भी अपने अनुभव एवं अध्ययन के द्वारा इसमें उल्लेखनीय योगदान दे सकते हैं। कम्पनी के विपणन सम्बन्धी निर्णय जैसे मूल्य नीतियाँ (Price Policies) वितरण के स्रोत, विज्ञापन सम्बन्धी निर्णय तथा विक्रय प्रवर्तन (Sales Promotion) के प्रकार आदि तथा उनसे सम्बन्धित निर्णय उत्पाद सम्बन्धी नीतियों से ही प्रभावित होते हैं।

उत्पाद-नियोजन कार्य यह सुनिश्चित करता है कि उपभोक्ता वास्तव में क्या और कैसी वस्तु चाहता है, फर्म द्वारा सदैव वही वस्तु बनानी चाहिए जो कि उपभोक्ता चाहता है। अगर फर्म ऐसा नहीं करती है तो फर्म अधिक दिनों तक टिकी नहीं रह सकेगी। इसीलिये कहा गया है कि उत्पाद-नियोजन एक महत्वपूर्ण कार्य है। अन्य शब्दों में, **उत्पाद-नियोजन विपणन प्रबन्धक के हाथ में एक ऐसा औजार है जिसकी सहायता से वह विपणन कार्यक्रम को उपयोगी और जीवित बना सकता है** । इसीलिए यह कहा गया है कि उत्पाद-नियोजन व्यवसाय के सामाजिक उतरदायित्व को पूर्ण करने का एक साधन है, और वह श्रेष्ठ ढंग से पूर्ण किया जाना चाहिए। प्रत्येक विपणन-प्रबन्धक को यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये कि विपणन कार्यक्रम की शुरूआत उत्पाद से ही होती है और उत्पाद की बुनियाद ही लाभ निर्धारक है। यदि उत्पाद-नियोजन में कुछ दुर्बलतायें रह जाती है तो अन्य क्षेत्रों में चाहे कितने ही उत्तम-निर्णय क्यों न लिये जायें वे इनकी क्षतिपूर्ति नहीं कर सकेंगे। वास्तव में उत्पाद-नियोजन समस्त व्यावसायिक क्रियाओं का आरम्भ बिन्दु (Starting Point) है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विपणन कार्यक्रम का आधारस्तम्भ 'उत्पाद' है। उत्पाद ही विपणन कार्यक्रम की बुनियाद है। दूसरे शब्दों में उत्पाद वह आधारशिला है जिस पर विपणन कार्यक्रम का महल खड़ा किया जाता है। ●

प्रश्न 52. वस्तु मिश्रण से आप क्या समझते हैं ? वस्तु-मिश्रण में परिवर्तनों को कौन-कौन से घटक प्रभावित करते हैं ?

What do you mean by Product Mix ? What factors influence changes in Prouct Mix ?

उत्तर—वस्तु मिश्रण का आशय वस्तुओं के एक ऐसे समूह से होता है जो एक औद्योगिक इकाई द्वारा बाजार में विक्रय के लिए प्रस्तुत की जाती है। वस्तु मिश्रण की गहराई, विस्तार तथा संगतता—ये तीन तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वस्तु मिश्रण के विस्तार से आशय होता है कि कितने प्रकार की वस्तु श्रृंखलायें कम्पनी द्वारा निर्मित की जाती है। वस्तु मिश्रण की गहराई इस बात की ओर संकेत करती है कि एक ही वस्तु-श्रेणी में कितनी ही वस्तुयें बनाई जाती है। संगतता का आशय यह है कि विभिन्न-विभिन्न वस्तु श्रेणियों में प्रयोग, उत्पादन, वितरण अथवा अन्य विशेषताओं के आधार पर कितनी समानता है। एक वस्तु मिश्रण के उपरोक्त तीनों पहलू विपणन प्रक्रिया के विवेकीकरण का सन्तोषजनक आधार प्रस्तुत करते हैं। वस्तु मिश्रण की गहराई तथा विस्तार तत्व अधिक प्रकार के और अधिक विस्तृत क्षेत्र के क्रेताओं की सेवा करने में कम्पनी को समर्थ करते हैं जबकि वस्तु मिश्रण की संगतता निर्माणी व्ययों अथवा वितरण लागतों में मितव्ययिता लाती है।

वस्तु-मिश्रण को प्रभावित करने वाले घटक—

किसी भी संस्था में वस्तु श्रेणी में वस्तुओं की संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। बहुधा यह संस्था की वर्तमान नीति, आर्थिक स्थिति, उसकी वस्तुओं की

बाजार में माँग तथा वस्तुओं की लागत आदि पर निर्भर करती है। संक्षेप में निम्न-लिखित तत्व ऐसे हैं जो एक कम्पनी के वस्तु-मिश्रण में परिवर्तन करा देते हैं—

(1) **कम्पनी के उद्देश्य**—लाभों में स्थिरता पैदा करने, उन्हें बढ़ाने तथा बिक्री की मात्रा के साथ-साथ लाभों में भी वृद्धि करने जैसे उद्देश्यों से प्रेरित होकर भी कम्पनी अपने वस्तु-मिश्रण में परिवर्तन कर देती है। वह असफल वस्तुओं, कम लाभ दे रही वस्तुओं को समाप्त कर सकती है, नये उत्पादों का उत्पादन प्रारम्भ कर सकती है और वस्तु-मिश्रण को एक आदर्श मिश्रण बनाने का प्रयत्न करती है।

(2) **माँग का तत्व**—फर्म ऐसी वस्तुओं के निर्माण का निर्णय भी ले सकती है जो उसकी किसी प्रमुख वस्तु के साथ आवश्यक हो और जो बहुधा उपभोक्ताओं द्वारा माँगी जाती हैं। उदाहरण के लिए एक पेन बनाने वाली फर्म निबों तथा स्याहियों का उत्पादन भी प्रारम्भ कर सकती है जिसके फलस्वरूप उसकी उत्पादन श्रेणी बड़ी हो जायेगी और वस्तु-मिश्रण भी परिवर्तित हो जायेगा।

(3) **विज्ञापन एवं वितरण सम्बन्धी घटक**—बहुधा संस्थायें बहुसंख्यक वस्तुओं का निर्माण इसलिए भी करती हैं क्योंकि उनका विज्ञापन या वितरण सह-सम्बन्धित होता है। उदाहरणार्थ एक अटैची बनाने वाली फर्म बिस्तर-बन्दों और बक्सों आदि का भी विज्ञापन तथा वितरण उन्हीं साधनों से कर सकती हैं जिनसे वह अटैचियों का कर रही है।

(4) **लागत-सम्बन्धी तत्व**—कोई भी कम्पनी किसी ऐसी नयी वस्तु के बनाने का निश्चय कर सकती है जो उसकी नयी उत्पादन मशीनरी तथा प्रक्रिया से पूरी हो सकती है। उदाहरणार्थ, एक तेल निकालने वाली संस्था पेट्रोल, मिट्टी का तेल, गैस, मोम या मोबाइल आदि का कार्य भी प्रारम्भ कर सकती है। इसी प्रकार चीनी मिलें शीरे से अल्कोहल तथा खोई से कागज की लुगदी बनाने का काम प्रारम्भ कर सकती हैं। इसके फलस्वरूप उत्पादों की संख्या बढ़ जाती है।

(5) **अवशिष्ट पदार्थों का उपयोग**--कभी-कभी नवीन वस्तुओं के उसी कच्चे माल अथवा मुख्य पदार्थों के अवशिष्ट भाग से तैयार हो सकने की सम्भावना भी वस्तु मिश्रण को परिवर्तित कर देती है और उत्पाद-श्रेणी में वस्तुओं की संख्या बढ़ जाया करती है।

प्रश्न 49. समझाइये कि वस्तु मिश्रण की गहराई विस्तार तथा संगतता से आप क्या समझते हैं?

Explain what do you understand by width, depth and consistency of the Product mix.

उत्तर—

वस्तु मिश्रण से आशय

वस्तु मिश्रण से आशय वस्तुओं के एक ऐसे समूह से होता है जो किसी एक संस्था के द्वारा बनाई जाती है एवं बाजार में विक्रय के लिये प्रस्तुत की जाती हो।

वस्तु मिश्रण के तत्व

वस्तु मिश्रण के तीन प्रमुख तत्व हैं : गहराई, विस्तार तथा संगतता। वस्तु मिश्रण के विस्तार से आशय यह है कि कम्पनी या संस्था कितने प्रकार की वस्तुएँ बनाती है। विस्तार से आशय यह है कि एक उत्पाद श्रेणी की कंपनी कितनी वस्तुएँ बनाती है। संगतता का अर्थ यह है कि विभिन्न उत्पाद श्रेणियों में कितनी समानता है। इस बात को हम उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं कि एक इलेक्ट्रिक कपनी पंखे, रेडियो, रेफ्रीजरेटर व बल्ब बनाता है व पंखे की 2 रेडियो की रेफ्रीजरेटर की 2 बल्ब की 5 किस्में तैयार करती है। वस्तु मिश्रण चौड़ाई 4, गहराई 3 व संगतता यह हुई कि चारों बिजली से चलते हैं।

●●

23 | मार्का स्थिति
(BRAND POLICIES

प्रश्न 54. (अ) ब्राण्ड से आप क्या समझते हैं ?
(ब) ब्राण्ड से क्या-क्या लाभ हैं ?
(स) क्या ब्राण्ड का प्रयोग सामाजिक दृष्टिकोण से वांछनीय है ?
(a) What do you mean by brand ?
(b) What are the advantages of branding ?
(c) Is the use of branding socially desirable ?

अथवा

ब्राण्ड से आप क्या समझते हैं ? वह कितने प्रकार की होती है ? इसके क्या-क्या लाभ हैं ? क्या ब्राण्ड का प्रयोग सामाजिक दृष्टिकोण से वांछनीय है ?

What do you mean by brand ? What are its kinds ? What are the Advantages of branding ? Is the use of branding socially desirable ?

उत्तर—(अ) ब्राण्ड से आशय—आधुनिक युग में उत्पादकों द्वारा अपनी वस्तुओं के लिए किसी न किसी व्यापार चिन्ह का प्रयोग करना सामान्य बात हो गई है। अधिकांश उपभोक्ता वस्तुओं और यहाँ तक सीमा तक औद्योगिक वस्तुओं के सम्बन्ध में भी आज मार्का प्रयोग होता है। अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन की परिभाषा समिति—ने ब्राण्ड की परिभाषा इस प्रकार दी है—"ब्राण्ड एक नाम,

पद, प्रतीक, डिजाइन या इनका एक सम्मिश्रण है, जिसके एक विक्रेता या विक्रेताओं के समूह की वस्तुओं (अथवा सेवाओं) की पहिचान की जाती है और उन्हें प्रतियोगिताओं की वस्तुओं (अथवा सेवाओं) से भिन्न किया जाता है।" स्पष्ट है कि ब्राण्ड एक व्यापक शब्द है और किसी न किसी रूप में इसमें अन्य अधिक विशिष्टीकृत पद सम्मिलित हैं। ब्राण्ड नाम देने के लिए उत्पादक प्रायः इन तीन आधारों में से किसी एक का प्रयोग करते हैं—

1. **चिन्ह**—यह ब्राण्ड का वह भाग है जो एक प्रतीक, डिजाइन या भिन्नात्मक रँगाई या अक्षर लेखन के रूप में दिया जाता है। जैसे—डालडा घी, कैप्स्टन सिगरेट, किस्ती मार्का घी आदि।

2. विशिष्ट नाम का प्रयोग जैसे पासिंग शो सिगरेट, लक्स टायलेट आदि। तथा

3. उत्पादन द्वारा अपने ही नाम का संक्षिप्तीकरण करना जैसे—बाटा जूते, कोकाकोला, गोदरेज फर्नीचर आदि।

कम्पनी द्वारा अपनी वस्तुओं के लिए अपनाया गया कोई भी मार्का चिन्ह उसके ग्राहकों के मन में उस वस्तु, उस कम्पनी तथा उसके गुण आदि के बारे में एक छवि अंकित करता है और कोई भी प्रतियोगी उस चिन्ह की नकल नहीं कर सके इस हेतु उत्पादक उस चिन्ह को सरकार से रजिस्टर्ड करा लेते हैं। रजिस्टर्ड चिन्ह हो जाने पर वह ब्राण्ड व्यापार चिन्ह (Trade-mark) बन जाता है। इस प्रकार ट्रेड मार्क (या व्यापार चिन्ह) एक कानूनी पद है। सभी ट्रेड-मार्क ब्राण्डस् होते हैं परन्तु सभी ब्राण्डस् ट्रेड-मार्क नहीं हैं।

ब्रांड के भेद

1. **उत्पादन चिन्हीकरण**—ब्राण्ड का उपयोग सर्वप्रथम उत्पादकों के द्वारा ही किया गया तथा उत्पादकों द्वारा किये गये चिन्हीकरण को उत्पादक ब्रान्ड या राष्ट्रीय ब्राण्ड के नाम से जाना गया।

2. **पुर्नविक्रय चिन्हीकरण**—थोक व्यापारी या फुटकर व्यापारी द्वारा प्रयोग किये जाने वाले ब्राण्ड को पुर्नविक्रय ब्राण्ड कहा जाता है।

3. **पारिवारिक या गृह ब्रान्ड**—जब कम्पनी की समस्त वस्तुओं या वस्तु श्रेणी के लिये एक ही ब्रान्ड का उपयोग किया जाता है तो इस प्रकार के ब्रान्ड को पारिवारिक या गृह ब्रान्ड के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार के ब्रान्ड का उपयोग करने से कम्पनी को अपने नये उत्पादन की बिक्री के सम्बन्ध में अधिक प्रयास नहीं करने पड़ते हैं, पिछली वस्तुओं की प्रतिष्ठा के कारण नई वस्तुएँ भी आसानी के साथ बिक जाती हैं क्योंकि नई वस्तुओं पर पुराने ब्रान्ड का ही उपयोग किया जाता है।

4. **व्यक्तिगत या निजी ब्रान्ड**—यदि कम्पनी की प्रत्येक वस्तु के लिये अलग-अलग ब्रान्ड का उपयोग किया जाता है। तो वह व्यक्तिगत ब्रान्ड कहलाता है।

ब्राण्ड से लाभ

ब्राण्ड का उपयोग केवल उत्पादक के लिये ही लाभकारी नहीं है अपितु उसका उपयोग करने से उपभोक्ता तथा उस वस्तु के विक्रय में संलग्न मध्यस्थ आदि भी लाभान्वित होते हैं। ये लाभ निम्नानुसार हैं :

(I) **उत्पादकों को लाभ**—ब्राण्डिग से उत्पादकों को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं।

2. **ग्राहकों को वस्तु परिचय**—चिन्हांकित वस्तुएँ बाजार में भेजने से उत्पादकों को यह लाभ होता है कि वे वस्तुएँ सरलतापूर्वक ग्राहकों से परिचित होती हैं कि यह वस्तु किस उत्पादक की है।

2. **बाजारों का निर्माण**—ब्राण्ड नाम देने से वस्तुओं का बाजार विस्तृत हो जाता है, क्योंकि उपभोक्ता अपने प्रिय ब्राण्ड के माल को बिना किसी सोच-विचार के सहज ही क्रय कर लेते हैं।

3. **विज्ञापन एवम् प्रदर्शन-कार्यक्रमों में सहायता**—ब्राण्ड होने की दशा में विक्रेता को विज्ञापन के लिए एक ऐसा आधार मिल जाता है जिसके चारों तरफ कम्पनी छवि का निर्माण कर सकता है। माँग को प्रोत्साहित करने में अन्य साधनों की अपेक्षा विज्ञापन का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

4. **प्रत्यक्ष वितरण की सुविधा**—ब्राण्ड नाम के लोकप्रिय हो जाने पर एक उत्पादक अपने ग्राहक से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर वितरण श्रृंखला के मध्यस्थों को हटाकर उनका कुछ लाभ स्वयं व कुछ उपभोक्ताओं को भी प्रदान कर सकता है।

5. **वस्तु-मिश्रण के विस्तार में सुविधा**—यदि किसी फर्म के पास ब्राण्ड वाली वस्तुओं की एक या अधिक पंक्तियाँ हैं तो वह अपने वस्तु मिश्रण के अन्तर्गत एक नई वस्तु उस कम्पनी की अपेक्षा, जो कि बिना ब्राण्ड का माल बेच रही है अधिक आसानी से जोड़कर बाजार में निकल सकता है।

6. **अन्य लाभ**—(i) ब्रान्ड नाम से बिकने वाली वस्तुएँ प्रमाणित किस्म की होती हैं, और इनका मूल्य उत्पादक द्वारा ही नियत किया जाता है अतः सारे बाजार में इनका एक ही मूल्य रहता है। इससे उत्पादक फर्म की बाजार में ख्याति बनती है। (ii) चिन्हांकित वस्तु का ब्रान्ड यदि रजिस्टर्ड है तो कोई दूसरा प्रतिद्वन्द्वी उसकी नकल नहीं कर सकता, और उसे धोखा नहीं दे सकता। (iii) इसके अपनाने से वस्तु की कीमत लोच घट जाती है। प्रायः ऐसी वस्तुओं की कीमतों में उतार-चढ़ाव नहीं हो पाते।

(II) **उपभोक्ताओं को लाभ**—ब्राण्ड से उपभोक्ताओं को भी निम्न लाभ

1. **वस्तु के किस्म की गारण्टी**—ब्राण्ड नाम से बिकने वाली वस्तुओं के गुण-स्तर के बारे में उत्पादक स्वयं बहुत ही सावधान रहते हैं। अतः उपभोक्ताओं को अच्छी किस्म की वस्तु मिलती है।

2. **क्रय में सुविधा**—ब्राण्ड के द्वारा क्रेता को इच्छित वस्तु या सेवा की पहचान करना सुगम हो जाता है।

3. **मूल्य की निश्चितता**–ब्राण्डिड वस्तु के मूल्य में सभी स्थानों पर समानता पायी जाती है। अतः क्रेता का शोषण नहीं हो पाता।

4. **किस्म में सुधार**—ब्राण्ड वाली वस्तु की किस्म कालान्तर में सुधरती ही जाती है, क्योंकि प्रतियोगिता सुधार के लिए निर्माता को विवश कर देती है।

5. **अच्छी पैकिंग**—क्योंकि ब्राण्ड का नाम वस्तु के पैकेट के ऊपर अंकित किया जाता है, अतः यह आवश्यक हो जाता है कि वस्तु को अच्छे पैकेटों में रखा जाये। इससे उपभोक्ताओं को वस्तु अच्छे पैकिंग में मिलती है और वह खराब नहीं हो पाती।

क्या ब्राण्ड का प्रयोग सामाजिक दृष्टि से वांछनीय है ?

प्रायः कुछ व्यक्तियों द्वारा ब्राण्ड के प्रयोग को असामाजिक कार्य स्वीकार किया जाता है, और वे इसे अनुचित मानते हैं उनका कहना यह है कि कम्पनी अपने ब्राण्ड को अन्धाधुन्ध विज्ञापन करके पहले तो काफी लोकप्रिय हो जाती है और उपभोक्ताओं में निष्ठा पैदा कर लेती है। जब उपभोक्ता उसके ब्राण्ड पर सीमा से अधिक विश्वास करने लगता है तो वह वस्तु की किस्म को गिरा सकती है, मूल्य बढ़ा सकती है, या कोई अवांछनीय हरकत कर सकती है, किन्तु ग्राहक ब्राण्ड-निष्ठ होने के कारण मजबूर होकर उसी वस्तु का क्रय करते रहते हैं। अतः इन सभी बातों को एक साथ ध्यान में रखने से यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक दृष्टि से यह प्रथा उपभोक्ताओं के लिए हानिकारक ही है। इससे उन्हें नयी-नयी वस्तुएँ नहीं मिल पातीं, मूल्यों में लोच और प्रतियोगिता का लाभ नहीं मिलता। किन्तु ऐसे आपेक्ष मात्र सैद्धान्तिक दृष्टि से ही सशक्त हैं। प्रायः प्रमापित एवम् ब्राण्डिड वस्तुएँ उपभोक्ताओं के संरक्षक का सहायक तन्त्र ही सिद्ध होती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि वस्तुओं की विभिन्न किस्मों के लिये पृथक-पृथक ब्राण्ड का प्रयोग करना एक स्वस्थ नीति है।

●●

24 मूल्य नीतियाँ
(PRICING POLICIES)

प्रश्न 55. "व्यवसाय की सफलता या विफलता उसके विभिन्न वस्तुओं के मूल्य निर्धारण की नीति पर निर्भर करती है।" उदाहरण देकर समझाइये।

"The success or failure of a business depends to a large exent on its price poicy."' Discuss.

उत्तर—मूल्य निर्धारण विपणन-प्रबन्ध में एक बहुत ही नाजुक निर्णय होता है। विपणन सम्बन्धी निर्णयों में वस्तुओं के मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नीतियों का निर्माण और वस्तुओं के विक्रय मूल्य का निर्धारण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है। किसी भी व्यवसाय की सफलता या विफलता मूल्य निर्धारण की उचित नीति पर ही निर्भर करती है। प्रत्येक व्यवसाय का अन्तिम उद्देश्य लाभ कमाना होता है और व्यवसाय को लाभ तभी हो सकता है जबकि वस्तु का मूल्य वस्तु की समस्त लागतों से अधिक हो। यदि कीमत अत्यधिक ऊँची है तो बिक्री का परिणाम नीचा होने की सम्भावना है। अतः स्वस्थ मूल्य-निर्धारण नीतियाँ अपनानी चाहिए ताकि संगठन को संतोषप्रद लाभ मिल सके। वास्तव में मूल्य ही वह आगम स्रोत है जिस पर व्यवसाय का भविष्य निर्भर करता है।

मूल्य नीति से आशय—एक सामान्य फर्म के समक्ष मूल्य-निर्धारण एक अत्यन्त जटिल समस्या है, क्योंकि वस्तु के मूल्य निर्धारित करने के लिए कोई प्रत्यक्ष या स्पष्ट नीति नहीं है। वस्तुओं के मूल्य-निर्धारण सम्बन्धी निर्णय लेने में विपणन प्रबन्धक को उपयोगी आर्थिक धारणाओं से अवगत होना आवश्यक है। उसे मूल्य-निर्धारण को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों से परिचित होना आवश्यक है। वस्तु का मूल्य सिर्फ माँग को ही नहीं अपितु संगठन की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को भी प्रभावित करता है। वह वस्तु नियोजन पर भी प्रभाव डालती है। उदाहरणार्थ, यदि वस्तु की किस्म सुधारनी हो, तो यह तब ही सम्भव हो सकता है जबकि ग्राहक उसके लिए कुछ ऊँची कीमत देने को तैयार हो जाये। इसके अतिरिक्त यदि वस्तु का उचित मूल्य निर्धारित नहीं है, तो वितरण-वाहिकायें भी विरोध प्रस्तुत कर सकती है। मूल्य ऐसा होना चाहिए कि विज्ञापन अथवा वैयक्तिक विक्रयण पर किये गये प्रवर्तन व्ययों की

भी भरपाई हो जाये । इस तरह यह स्पष्ट है कि मूल्य सम्बन्धी निर्णय एक महत्व[illegible] प्रक्रिया है । यह वह आधार-बिन्दु है जिसके चारों ओर उत्पादक कम्पनी की अन्य समस्यायें चक्कर काटती हैं । अतः मूल्य-निर्धारण सम्बन्धी प्रश्न अनेक उत्पादक फर्म में अत्यन्त उलझनपूर्ण प्रश्न समझा जाता है ।

मूल्य निर्धारण सम्बन्धी निर्णय निम्न परिस्थितियों में एक महत्वपू[illegible] समस्या है—

1. **पहली बार वस्तु का मूल्य निर्धारण करते समय**—जब फर्म एक नई वस्तु का निर्माण करती है या अपनी वस्तु को एक नई वितरण-वाहिका में प्रचलित करती है, या नये भौगोलिक क्षेत्र में प्रस्तुत करती है तब उस वस्तु का मूल्य निश्चित करना उसके लिए अति महत्वपूर्ण होता है । उसे इस मूल्य को निश्चित करते समय अनेक उप-कल्पनाओं पर विचार करके कोई उचित निर्णय लेना होता है ।

2. **प्रतियोगिता की दशा में**—जब प्रतियोगिता द्वारा कीमत परिवर्तन की शुरु-आत की जाती है तो ऐसी दशा में फर्म विशेष को यह निर्णय करना पड़ेगा कि क्या वह भी अपनी कीमत को परिवर्तित कर दे और यदि परिवर्तन करे, तो कितनी मात्रा में करे ।

3. **जब आदेश पर ही उत्पादन होता हो**—यदि कोई फर्म केवल आदेश (Order) पर ही उत्पादन करती हो तो उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक आदेश पर मूल्य निश्चित करे क्योंकि टेण्डर मूल्य उचित होने पर ही उसे आदेश मिल सकता है ।

4. **जबकि कम्पनी कई ऐसी वस्तुएँ बनाये जिसकी मागें और/अथवा लागतें अन्तर्सम्बन्धित हों**—ऐसी स्थिति में कीमत समस्या उत्पाद पंक्ति के लिये अनुकूलतम कीमत सम्बन्ध निर्धारित करने की होती है।

5. जब कोई फर्म अपना **वितरण माध्यम बदल रही हो,** अपनी वस्तुओं को किसी नये बाजार में भेज रही हो तब भी मूल्य की समस्या मुख्य रूप से सामने आती है ।

6. **अन्य व्यावसायिक परिस्थितियाँ**—कभी-कभी अपनी वस्तुओं की माँग उभारने, नीची लागतों का लाभ उठाने अथवा दुर्बल प्रतियोगिताओं को समाप्त करने के लिये फर्में अपनी वस्तु के मूल्यों में कमी करना चाहती है । वह कीमत में परिवर्तन का विचार तब भी करती है जबकि लागतें बढ़ गई हैं अथवा माँग में बहुत वृद्धि हो गई है । ऐसी दशाओं में कीमत बढ़ना सम्भव भी है और लाभप्रद भी । उत्पाद की सफलता इस बात पर अधिक निर्भर होगी कि लोग कीमत परिवर्तनों के प्रति कैसी प्रतिक्रिया दिखाते है ।

अतः हम कह सकते है कि मूल्य सम्बन्धी निर्णय अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और उचित मूल्य-निर्धारण नीति पर ही व्यवसाय की सफलता अथवा विफलता निर्भर

करती है। अतः फर्मों को एकीकृत मूल्य-नीति अपनानी चाहिए, एकीकृत मूल्य-नीति में ये तीन बातें आती हैं—उत्पादन लागत, विक्रय एवं वितरण लागत तथा सम्भावित मूल्य-स्तरों पर विक्रय की सम्भावित मात्रा। मूल्य सम्बन्धी निर्णय एक ऐसा नीति सम्बन्धी निर्णय है जिसका सम्पूर्ण व्यावसायिक प्रबन्ध के क्षेत्र में कोई विकल्प नहीं।

प्रश्न 56. मूल्य निर्धारण सम्बन्धी निर्णयों में नैतिक एवं सामाजिक कारकों के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।

उत्तर—विपणन सम्बन्धी निर्णयों में **मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नीतियों का निर्माण** और **वस्तुओं का विक्रय मूल्य निर्धारण** एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है, क्योंकि प्रत्येक व्यापारिक संस्था की उन्नति एवं अवनति इसी बात पर निर्भर करती है। व्यवसाय की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि विक्रय की जाने वाली वस्तु की मूल्य नीति बाजार की सभी बातों को ध्यान में रखते हुए तथा ग्राहकों के वर्ग को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त रूप से निर्धारित की गई है अथवा नहीं। प्रत्येक व्यवसायी का अन्तिम उद्देश्य लाभ कमाना होता है, और व्यवसायी को लाभ तभी मिल सकता है जबकि उसका विक्रय मूल्य उसकी लागत से अधिक हो। **बेची जाने वाली वस्तु की बिक्री की कीमत के सम्बन्ध में पहले से निर्णय लेने की प्रक्रिया विक्रय मूल्य नियोजन अथवा निर्धारण कहलाता है।** मूल्य का उचित नियोजन व्यवसाय की सफलता के लिये उत्तरदायी रहता है।

मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नैतिक एवं सामाजिक घटक—मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नैतिक एवं सामाजिक घटकों में निम्न तत्व उल्लेखनीय हैं—

1. **उचित मूल्य**—युग-युगान्तर से लोगों में यह धारणा बनी रही है कि वे वस्तुओं का मूल्य उचित तथा ईमानदारी के साथ लें, यद्यपि वस्तु का मूल्य जो 'प्रतियोगिता स्वीकृत करे' के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए एक सीमा तक निश्चित होता है फिर भी व्यवसाय के सामाजिक दायित्व का विचार मूल्य को प्रभावित करता है। जहाँ पर वस्तु का मूल्य प्रशासित है; वहाँ पर नैतिक विचार अत्यधिक लाभ कमाने को रोकते हैं। बहुत सी संस्थायें बाजार की परिस्थितियों को देखते हुए अधिक लाभ कमा सकती हैं फिर भी वे उचित लाभ में ही सन्तुष्ट रहती हैं।

2. **वस्तु की माँग**—बेची जाने वाली वस्तु का मूल्य कितना हो यह उसके माँग के स्वरूप पर निर्भर करेगा। यदि माँग लोचदार हो तो मूल्य कम रखना हितकर होगा। इसके विपरीत यदि माँग बेलोचदार है तो मूल्य अधिक रखना हितकर होगा।

3. **प्रतियोगिता**—जिस वस्तु की बिक्री की जाती है उस वस्तु के व्यापार में कितनी प्रतियोगिता है, इस बात पर भी मूल्य निर्धारण करते समय ध्यान देना होगा।

प्रतियोगिता जितनी अधिक होगी मूल्य अपेक्षाकृत उतना ही कम रखना होगा। प्रतियोगिता न होने की स्थिति में मूल्य ऊँचा रखा जा सकता है।

4. **क्रेता का ज्ञान**—यदि क्रेता को वस्तु की किस्म, मूल्य इत्यादि के बारे में पूर्ण ज्ञान हो तो ऐसी दशा में मूल्य अधिक नहीं रखा जा सकता है।

5. **सरकार की नीति**—सरकारी नियम्न व नियन्त्रण भी मूल्य नीति निर्धारण के समय महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। सरकार द्वारा अधिक मूल्य पर उठाये जाने वाले कदमों के डर से बहुत से निर्माता अपनी वस्तुओं का मूल्य अधिक नहीं बढ़ाते हैं। सरकार के भय के कारण व्यापारिक संस्थायें भी मूल्यों को बढ़ाने में हिचकती हैं।

6. **उत्पादन लागत**—साधारणतया कोई भी ग्राहक मूल्य उत्पादन लागत से कम रखना पसन्द नहीं करेगा क्योंकि ऐसा करने पर उसे घाटा होगा। अतः मूल्य निर्धारण करते समय उत्पादन लागत को ध्यान में रखना आवश्यक है।

7. **वितरण की शृंखला**—वितरण की शृंखला जितनी लम्बी होगी उतनी ही मूल्य नीति को लोचदार बनाना होगा क्योंकि विभिन्न मध्यस्थों को सन्तुष्ट करना जरूरी रहता है अन्यथा विक्रय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

8. **श्रम नेताओं का भय**—निर्माता को मूल्य निर्धारित करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इसका प्रभाव श्रम जगत पर क्या पड़ेगा।

9. **व्यवसाय का उद्देश्य**—यदि व्यवसाय का उद्देश्य लाभार्जन हो तो मूल्य ऊँचे निर्धारित करना वांछनीय है। किन्तु यदि व्यवसाय का प्रधान उद्देश्य सेवा करना है तो कम मूल्य निर्धारित करना वांछनीय होगा।

10. **उत्पादन का पैमाना**—यदि वृहत् पैमाने पर उत्पादन किया गया हो तो ऐसी दशा में अनेक प्रकार की आंतरिक और बाह्य बचत होती है। अतः कम मूल्य निर्धारित करके अधिक ग्राहकों को आकर्षित किया जा सकता है। छोटे पैमाने के व्यवसाय में यह सम्भव नहीं है।

11. **ग्राहकों के प्रकार**—यदि वस्तु खरीदने वाले ग्राहक सम्पन्न या उच्च वर्ग के हों तो वस्तु का मूल्य अपेक्षाकृत अधिक रखा जा सकता है। इसके विपरीत निर्धन और सामान्य स्तर के ग्राहक से अधिक मूल्य नहीं लिया जा सकता।

12. **बढ़ते हुए मूल्यों के प्रति उपभोक्ता का रुख**—उपभोक्ता जिन वस्तुओं का मूल्य अधिक समझता है, उनका विरोध करता है और किसी सीमा तक वह उनको खरीदने से स्वयं को रोक भी लेता है, इसी प्रकार कुछ ग्राहक वस्तु क्रय करते समय काफी तर्क-वितर्क करते हैं, अतः उनके लिए अधिक मूल्य नहीं रखे जा सकते। कभी-कभी उपभोक्ता संगठित होकर सहकारी भण्डारों की स्थापना भी कर लेते हैं जो मूल्य वृद्धि के विरुद्ध ही प्रतिक्रियात्मक रूप में स्थापित किये जाते हैं। ऐसी स्थिति में वस्तु के अधिक ऊँचे मूल्य नहीं रखे जा सकते हैं।

प्रश्न 57. प्रारम्भिक उच्चतम मूल्य नीति (स्कीमिंग) और कम प्रवेश मूल्य नीति (पेनीट्रैशन) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण करने के लिए भिन्न-भिन्न नीतियाँ अपनाई जाती हैं। एक उन्नतिशील फर्म अधिक लाभ कमाने हेतु अपनी वस्तु में निरन्तर सुधार करती रहती है या ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करती है जो भूतकालीन सफलता के आधार पर वर्तमान में बाजार में अच्छा स्थान प्राप्त किये हुए हैं या वह किसी नई वस्तु का उत्पादन प्रारम्भ करती है। एक वस्तु के आविष्कार से लेकर उनके जीवन काल तक विभिन्न अवस्थायें आती हैं और क्योंकि विभिन्न अवस्थाओं में एक ही मूल्य-नीति अपनाना सम्भव नहीं होता। कभी-कभी एक ही संस्था एक नीति को छोड़कर दूसरी नीति अपना लेती है। कोई भी संस्था जीवन भर एक ही नीति नहीं अपना सकती बल्कि समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार नीतियाँ बदलती रहती है। किसी भी वस्तु के जीवन चक्र को निम्न पाँच अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है—

1. **प्रारम्भिक** (Introductory)—एक नई वस्तु का आविष्कार करना और उसे विक्रय हेतु बाजार में प्रविष्ट करना।

2. **वृद्धि** (Growth)—इस अवस्था में नई वस्तु के उचित प्रवर्तन एवं अन्य अच्छाइयों के कारण उसके विक्रय में तीव्र गति से वृद्धि होती है।

3. **परिपक्वता** (Maturity)—विक्रय में तीव्र गति से वृद्धि एक निश्चित सीमा तक ही होती है। इसके बाद वृद्धि दर क्रमशः कम होती जाती है।

4. **परिपूर्णता** (Saturation)—इस स्थिति में विक्रय एक प्रकार से स्थिर हो जाता है।

5. **पतन** (Decline)—इस अवस्था में अन्य अच्छी वस्तुएँ बाजार में आ जाने के फलस्वरूप उस वस्तु की बिक्री गिरने लगती है।

मूल्य-निर्धारण सम्बन्धी मूल नीति इस बात पर भी निर्भर होगी कि हम अपनी मूल्य-नीति से अपने लिये क्या करने की आशा रखते हैं, अर्थात हमारे मूल्य-निर्धारण सम्बन्धी उद्देश्य क्या हैं? वस्तु के उपरोक्त जीवन चक्र में मुख्य रूप से परिस्थितियाँ हैं—(i) नई वस्तु का बाजार प्रवेश और (ii) परिपक्वावस्था। इन दोनों ही परिस्थितियों में पृथक-पृथक मूल्य नीतियाँ अपनाई जाती हैं जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है—

एक नई वस्तु का मूल्य निश्चित करना
(Pricing a new Product or Pioneer Pricing)

वर्तमान व्यापार का युग एक ऐसा युग है जिसमें नित्य निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। एक नई वस्तु को बाजार में लाना और उसके लिए माँग उत्पन्न करना एक कठिन समस्या है। ऐसी वस्तु की माँग का कुछ पता नहीं होता है। अतः

नई वस्तुओं का मूल्य निश्चित करने में उत्पादकों द्वारा निम्न तकनीकों का प्रयोग किया जाता है—

1. **प्रारम्भिक उच्चतम मूल्य नीति** (Skim the cream Technique)—इस नीति के अन्तर्गत एक बहुत ऊँची प्रारम्भिक कीमत निर्धारित करके आरम्भ में ही माँग के उत्तमांश को झपटने का प्रयास किया जाता है और यह ऊँचे मूल्य तब तक लेता रहता है जब तक कि बाजार में कोई प्रतियोगी पैदा न हो जाये। जब नये प्रतियोगी प्रतियोगिता में आ जाते हैं तब वह फर्म भी मूल्य कम कर देती है। इसे ही **'मलाई उतारने की तकनीक'** भी कहते हैं। यह तकनीक निम्न दशाओं में उपयुक्त रहती है—

1. यदि फर्म ने वस्तु के आविष्कार तथा प्रवर्तन आदि में पर्याप्त धन व्यय कर दिया हो और वह वस्तु के अधिक सफल होने के बारे में आशावान न हो।

2. यदि उत्पादित वस्तु की माँग की लोच का ज्ञान न हो।

3. यदि वह नयी वस्तु विलासिता की वस्तु हो या उसका उपयोग सामाजिक प्रतिष्ठा सूचक हो।

4. यदि वस्तु के सम्बन्ध में भविष्य में तीव्र प्रतिस्पर्धा होने की संभावना हो।

5. यदि उत्पादक फर्म वस्तु में किये गये विनियोग को शीघ्रातिशीघ्र ही वापिस कर लेना चाहती हो।

6. यदि वस्तु को प्रारम्भ में ही अलग ब्राण्ड के अन्तर्गत इतना प्रचलित कर दिया गया हो कि उसे अन्य वस्तुओं के मुकाबले अधिक मूल्य पर बेचा जा सकता हो।

यदि वस्तु एक बहुत ही विशिष्ट प्रकार की है और अपने जीवन चक्र की प्रारम्भिक अवस्था में आकर्षकता के साथ प्रवर्तित किया गया है, तो प्रारम्भिक उच्चतम मूल्य नीति बहुत सफल रहेगी। प्रारम्भिक अवस्था में मूल्य ऊँचा रखने का लाभ यह है कि यदि बाजार सन्तोषजनक संवेदनशीलता न दिखाये तो कीमत को नीचा किया जा सकता है। इसके विपरीत, कीमत को इसलिए ऊँचा करना, क्योंकि प्रारम्भ में बहुत नीची थी; एक अधिक कठिन-समस्या है। इसका कारण यह है कि मूल्य-वृद्धि को ग्राहक कठिनाई से ही स्वीकार करता है। इसका दूसरा लाभ यह भी है कि शुरू में ऊँचे मूल्य अधिक लाभों का सृजन करते हैं, जिनका प्रयोग बाद में बाजार के विकास और विस्तार हेतु किया जा सकता है।

2. **कम प्रवेशक मूल्य नीति** (Markt Penetration Policy)—यह विधि प्रारम्भिक प्रवेश नीति से उल्टी है। उन वस्तुओं के सम्बन्ध में जो लोचदार होती हैं जो परिचय के रूप में बाजार में प्रस्तुत की जाती हैं, जिनमें बिक्री बढ़कर उत्पादन को प्रोत्साहन देकर बड़े पैमाने की उत्पत्ति की सम्भावनाएँ होती हैं यह विधि अपनाई जाती है। इसमें प्रारम्भिक मूल्य कम रखा जाता है। इस नीति में एक पूंजी बाजार में शीघ्र प्रवेश पाने के लिए नीची कीमत का प्रयोग प्रमुख साधन के रूप में किया जाता है और इस प्रकार दीर्घकालीन दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जाती है। यह विधि निम्न दशाओं में उपयुक्त रहती है—

1. जबकि माँग में एक ऊँची अल्पकालिक लोच हो।

2. जब नई वस्तु को जनता द्वारा अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना लेने की सम्भावना है ।

3. जब बड़े पैमाने के उत्पादन से भारी मितव्ययितायें हो सकती हैं ।

4. जबकि प्रतिस्पर्धात्मक शुरूआत तेजी से होने की सम्भावना है ।

5. सरकारी हस्तक्षेप को बचाये रखने के लिए भी यह नीति अपनाई जाती है ।

6. प्रतिद्वन्द्वियों से बचे रहने के लिए भी यह अपनाई जाती है ।

इस मूल्य-नीति का अनुकरण एक प्रतियोगी वस्तु से, जिसकी नई वस्तु से प्रतिस्थापित होने की आशा है, कुछ बाजार भाग छीनने हेतु किया जाता है । इसके अलावा, चूँकि नीची-कीमत-नीति एक लघु लाभ मार्जिन प्रदान करती है, इसीलिए वह प्रतियोगियों को बाजार में आने से निरुत्साहित करेगी ।

उपर्युक्त दोनों में से कौनसी नीति अपनाई जावे, यह विभिन्न तत्वों पर निर्भर करता है जैसे वस्तु की सम्भावित माँग, नई वस्तु की प्रकृति आदि ।

प्रश्न 58. एक ही वस्तु के लिए निर्माता विभिन्न ग्राहकों से क्यों अलग-अलग मूल्य लेता है ।

उत्तर—साधारणतया एक उत्पादक अपने प्रत्येक ग्राहक से किसी भी वस्तु की एक सी ही कीमत वसूल करता है लेकिन कभी-कभी वह एक ही वस्तु का विभिन्न क्रेताओं से अलग-अलग मूल्य भी वसूल करता है अथवा वह एक ही क्रेता से अलग अलग काल (Time) में अलग-अलग मूल्य भी वसूल करता है । इसे **मूल्य विभेद** कहते हैं ।

मूल्य विभेद की परिभाषा—

श्रीमती जॉन **रॉबिन्सन** के शब्दों में "एक ही वस्तु जिसका उत्पादन एक ही उत्पादक द्वारा किया जाता है तो भिन्न-भिन्न मूल्यों पर बेचने की क्रिया को मूल्य-विभेद कहते हैं ।" इसी प्रकार **स्टिगलर** के शब्दों में "समान वस्तु के लिए दो या दो से अधिक मूल्य वसूल करने को ही मूल्य विभेद कहते हैं ।

मूल्य-विभेद कई तरह का हो सकता है—जैसे व्यक्तिगत मूल्य-विभेद, भौगोलिक मूल्य-विभेद, प्रयोग सम्बन्धी मूल्य-विभेद आदि ।

मूल्य विभेदीकरण की शर्तें—

मूल्य-विभेदीकरण निम्न परिस्थितियों में सम्भव होता है—

1. **माँग की लोच में विभिन्नता**—सर्वप्रथम उत्पादक मूल्य-विभेदीकरण की नीति ऐसी वस्तुओं के बारे में ही अपना सकता है जबकि विभिन्न बाजारों में उस वस्तु की लोच (उपभोक्ताओं की) भिन्न-भिन्न हो । यदि विभिन्न बाजारों में वस्तु की माँग की लोच अलग-अलग है तो एकाधिकारी उस बाजार में मूल्य अधिक लेगा जहाँ उस वस्तु की माँग लोचहीन है और वह वहाँ कम मूल्य रखेगा जहाँ माँग लोच-पूर्ण है ।

2. **बाजारों का पृथक-पृथक होना**—जिन बाजारों में मूल्य-विभेद किया जा रहा हो वे बाजार पृथक-पृथक तथा एक दूसरे से दूर होने चाहिए ताकि उपभोक्ता, जिनसे अधिक मूल्य लिया जा रहा है । उस वस्तु को कम मूल्य वाले बाजार से न खरीद सकें ।

3. **वस्तु की प्रकृति**—जिन वस्तुओं अथवा सेवाओं को पुनः हस्तातन्रित नहीं किया जा सकता वहाँ मूल्य-विभेद सफल हो सकता है।

4. **आर्डर पर विक्रय**—जो फर्म विशिष्ट आर्डर पर ही वस्तुयें बनाती हैं तथा बेचती हैं वह मूल्य विभेद को सरलतापूर्वक लागू कर सकती हैं।

5. **समान सेवा**—यदि विभिन्न वस्तुओं के लिए एक ही प्रकार की सेवा की आवश्यकता हो तो मूल्य-विभेद करना अत्यन्त सरल हो जाता है। उदाहरणार्थ—रेलों द्वारा अलग-अलग वस्तुओं पर समान दूरी का भी अलग-अलग किराया वसूल किया जाता है।

6. **क्रय शक्ति में विभिन्नता**—ग्राहकों की क्रय शक्ति में विभिन्नता होने पर भी मूल्य-विभेद करना सम्भव हो सकता है।

7. **परिवहन व्यय**—परिवहन व्ययों की कमी एवं अधिकता के कारण भी एक ही वस्तु विभिन्न बाजारों में भिन्न-भिन्न मूल्यों पर बेची जाती है। उत्पादक दो बाजारों में परिवहन व्यय एवं प्रशुल्क दर की सीमा तक मूल्यों में आसानी के साथ विभेद कर सकता है।

8. **सरकारी नियम**—कभी-कभी सरकार स्वयं मूल्यों में विभेद रखना चाहती है, इसके लिए वह पूर्ति से सम्बन्धित ऐसे नियम बनाती है जिससे एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न बाजारों में भिन्न-भिन्न मूल्य पर बेची जाती है।

9. **सन्देश वाहन के साधनों का अभाव**—सन्देशवाहन के साधनों के अभाव में भी मूल्य-विभेद को आसानी के साथ अपनाया जा सकता है।

मूल्य-विभेद का औचित्य
(Importance of Justification of Price discrimination)

सामान्यतः आर्थिक या सामाजिक जीवन में मूल्य-विभेदों को कुदृष्टि से देखा जाता है, क्योंकि इसमें पक्षपात की बू आती है। इसके अन्तर्गत उपभोक्ताओं का शोषण किया जाता है। किन्तु मूल्य-विभेद का औचित्य है अथवा नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि मूल्य-विभेद किन परिस्थितियों में किया जा रहा है। निम्न परिस्थितियों में मूल्य-विभेद न केवल लाभदायक ही होता है अपितु आवश्यक भी हो जाता है—

1. यदि मूल्य-विभेद के द्वारा गरीबों को सस्ती वस्तु अथवा सस्ते मूल्य पर वस्तु प्रदान की जा रही है तो सामाजिक न्याय की दृष्टि से यह अत्यन्त उचित है।

2. मूल्य-विभेद उस समय भी उपयुक्त माना जाता है जबकि निर्यात व्यापार में वृद्धि की दृष्टि से एक ही वस्तु विदेशों में तो कम मूल्य पर बेची जाये और स्वदेश में अधिक मूल्य पर।

3. कुछ उद्योग-धन्धों तथा व्यवसायों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि उन्हें मूल्य-विभेद के आधार पर ही सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है।

2. यदि मूल्य-विभेद द्वारा देश के कुल उत्पादन में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है तो मूल्य-विभेद अति उपयोगी और सामाजिक दृष्टि से यह अत्यन्त उचित है।

25 विपणन प्रबन्धक की समस्यायें

(PROBLEMS OF MARKETING MANAGER)

प्रश्न 59. उत्पाद से सम्बन्धित नैतिक समस्यायें बतलाइये और अपनी राय प्रगट कीजिए।

उत्तर—वर्तमान समय में व्यावसायिक आचार (Business Ethics) पर बहुत जोर दिया जाने लगा है, परन्तु यह अनुभव किया गया है कि व्यवसाय के लिए नैतिकता सापेक्षिक समस्या है, निरपेक्ष नहीं। अधिकाधिक व्यक्ति अब विपणनकर्त्ताओं के व्यवहारों की नैतिक आधार पर आलोचना करने लगे हैं। अतः विपणन प्रबन्धक की नैतिक समस्याओं की उपेक्षा करना संभव नहीं है।

उत्पाद से सम्बन्धित नैतिक समस्यायें
(Ethical problems connected with the Product)

(i) **पैकेजिंग** (Packaging)—अनेक मामलों में विपणनकर्त्ता अपने ग्राहकों को झूठे या भ्रांतिपूर्ण पैकेजिंग के द्वारा अपने उत्पाद के बारे में गलत बातों पर विश्वास करने के लिए बहका सकता है। उदाहरणार्थ, खाद्य पदार्थों का डिब्बा बन्दी इस प्रकार की जाती है जिससे यह प्रतीत हो कि इनमें बहुत सा खाद्य-पदार्थ बंद है। कुछ विक्रेता यह विश्वास करते हैं कि उत्पाद के मूल्य प्रगट में स्थिर रखना जरूरी है और इसलिये वे उसी कीमत पर चीज बेचते हैं, किन्तु उसकी मात्रा में कमी कर देते हैं और बड़े पैकेज में बन्द करके मात्रा में की गई कमी छिपाने का प्रयास करते हैं। इस तरह निर्माताओं द्वारा कभी-कभी पैकेजिंग सम्बन्धी निर्णय भी लिए जाते हैं।

(ii) **किस्म** (Quality)—कुछ विपणनकर्ताओं का दृष्टिकोण यह रहता है कि वे एक नियत किस्म से घटिया किस्म की वस्तु नहीं बेचेंगे, भले ही उनके ग्राहक कुछ भी चाहें। उनकी विचारधारा यह रहती है कि जोकि ठीक समझते हैं वही करना उनका नैतिक आधार है, क्योंकि ग्राहक स्वयं ही स्वस्थ निर्णय लेने की स्थिति में नहीं होते। अतः यह एक विचारणीय प्रश्न हो गया है कि एक विपणनकर्त्ता अपने ग्राहकों के गुण सम्बन्धी निर्णयों के लिए कहाँ तक उत्तरदायी होता है?

(iii) **अप्रचलन** (Obsolescence)—अनेक वर्षों से विपणन के आलोचक उत्पाद अप्रचलनता की निन्दा कर रहे हैं। उनका कहना है कि शैली अप्रचलन के द्वारा विपणनकर्त्ता अधिक संख्या में वस्तु बेचने के उद्देश्य से शैली सम्बन्धी ऊपरी परिवर्तन प्रचलित करता है जो कि न केवल अनैतिक है वरन सामाजिक दृष्टि से अपव्ययपूर्ण भी है। परन्तु दूसरी ओर इसके समर्थकों का कहना है कि प्रचुरता वाली अर्थव्यवस्थाओं में माँग घटने और रोजगार में कटौती होने की सम्भावनाओं से बचने के लिए ऐसे अप्रचलन आवश्यक हो जाते हैं।

(iv) **शैली-दस्युता** (Pirating)—वस्त्रालंकारों के व्यवसाय में शैली और वेश-भूपाचार सम्बन्धी चोरी अत्यन्त व्यापक हो गई है। प्रमुख वस्त्र-डिजाईनरों के सम्मुख यह समस्या निरन्तर होती है कि अपने डिजाईनों को संरक्षण देने का प्रयास प्रकार गुप्त रखें। कानून के विभिन्न उपायों द्वारा ऐसे डिजाइनों को संरक्षण देने का प्रयास किया गया है। इस उद्योग में दस्युता जीवन का मानक ढंग बन गया है। किन्तु अन्य उद्योगों में उत्पादों की शैली सम्बन्धी चोरी अच्छी नहीं समझी जाती, यद्यपि इनमें भी यह विद्यमान रहती है। अनेक कम्पनियाँ अनुसंधान न करके एक प्रतियोगी के उत्पाद पर निर्भर करती हैं और उनकी नक़लें बाजार में रखकर अपना काफी अनुसंधान व्यय बचा लेती हैं।

(v) **ब्राण्ड का प्रयोग** (Branding)—कुछ फर्में किसी सुप्रसिद्ध ब्राण्ड से मिलता-जुलता नाम रखकर उसकी ख्याति से अपने लिए लाभ उठाने का प्रयास करती हैं।

वितरण वाहिकाओं सम्बन्धी समस्याएँ
(Problems of Distributive Channels)—

वास्तव में वितरण वाहिकाओं से सम्बन्धित कुछ प्रश्न एक वास्तविक समस्या उत्पन्न कर देते हैं, ये समस्यायें प्रमुख रूप से निम्नलिखित हैं—

1. **थोक व्यवसायियों की समाप्ति** (Eliminating Wholeselers)—यह आरोप उन थोक व्यवसायियों की ओर से लगाया गया है जिन्हें कि वितरण-वाहिका में से समाप्त कर दिया गया है। प्रारम्भ में निर्माताओं ने स्वतन्त्र थोक व्यवसायियों द्वारा काम करना व बेचना आरम्भ किया था। इन थोक व्यवसायियों ने उस मद विशेष के लिए कठोर प्रयत्न करके बाजार का विकास किया। बाद में निर्माताओं ने जब उनकी उत्पाद-पंक्ति काफी लम्बी बन गई और उनके वित्तीय साधन काफी बढ़ गये तो थोक व्यापारियों को हटाकर प्रत्यक्ष विक्रय शुरू कर दिया तब थोक व्यवसायियों ने अपने साथ होने वाले अन्याय की अपील की।

2. **वितरण नीतियों में परिवर्तन** (Change in distribution Policies)—एक निर्माता किसी नये उत्पाद के लिए वितरण-व्यवस्था का विकास करने के लिए कुछ नीतियाँ बनाता है परन्तु थोड़े समय पश्चात् जबकि उस उत्पाद के लिए वितरकों द्वारा माँग स्थापित कर दी जाती है उस समय निर्माता नीति में परिवर्तन करना चाहता है। मध्यजनों का कहना है कि निर्माताओं का यह व्यवहार अनैतिक है। अनेकों बार इस प्रकार के स्वार्थपूर्ण व्यवहार से स्वयं निर्माताओं को भारी हानि उठानी पड़ती है।

कीमत नीति सम्बन्धी समस्याएँ (Problems of Price Policies)—कुछ कीमत निर्धारण व्यवहारों के बारे में जो कि गैर कानूनी नहीं हैं नैतिक प्रश्न उठाये जा सकते हैं—

1. **कीमत परिवर्तन** (Price Change)—अनेक फुटकर विक्रेताओं का विश्वास है कि उनकी ऐसी नैतिक जिम्मेदारी है कि कीमत-परिवर्तन की सूचना ग्राहकों

को दे देनी चाहिए। एक प्रबन्ध को यह निश्चित पता है कि उसके उत्पाद की कीमत निकट भविष्य में गिरने वाली है। अब उसके सम्मुख यह समस्या रहती है कि क्या नैतिक दृष्टि से इसकी सूचना ग्राहकों को देना अनिवार्य होगा क्योंकि यदि वह कीमत घटौती की सूचना ग्राहकों को देने में असमर्थ रहता है और उन्हें ऊँची कीमत पर ही बाँधे रखने का प्रयास करता है तो इसका परिणाम यह होगा कि उसके ग्राहक पुनः उसके पास आने को तत्पर नहीं होंगे।

2. **दुरभिसंधि** (Collusion)—मान लीजिये कि समाज में साधन-सामग्री की सेवा करने वाले लोग परस्पर संगठित होने और मरम्मत-सेवाओं के लिए मानक कीमत नियत करने का निर्णय करते हैं, ताकि उसी कार्य के लिए वे सभी एक ही कीमत माँगें तो प्रबन्धक के सम्मुख इसे नैतिक, अनैतिक निर्धारित करने की समस्या होगी।

प्रवर्तन की समस्यायें (Problems of Promotion)—अनैतिकता के व्यवहारों के लिए सबसे अधिक दोषी क्षेत्र प्रवर्तन सम्बन्धी क्षेत्र ठहराया गया है। विशेषतः विज्ञापन करने वाले और विक्रेताओं की बहुत कटु आलोचना होती रहती है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि प्रवर्तन सम्बन्धी प्रयत्न बाहरी लोगों को अन्य क्षेत्रों में किये गये प्रयत्नों की अपेक्षा अधिक पता चल जाते हैं।

26 विपणन प्रबन्धक की जिम्मेदारियाँ

(Responsibilities of Marketing Manager)

प्रश्न 60. समाज के प्रति विपणन प्रबन्धक की क्या जिम्मेदारियां हैं ? विपणन में वित्त की भूमिका बताइये।

In what way is a marketing manager responsible to Society ? Indicate the role of finance in marketing.

उत्तर—समाज के प्रति विपणन प्रबन्धक की जिम्मेदारी (The marketing Manager's Responsibility to Society)—

विपणन प्रबन्धक समाज और व्यावसायिक संगठन के बीच एक संप्रेषण वाहिका के रूप में कार्य करता है। वह वस्तुओं और सेवाओं के लिए समाज की माँग का स्वरूप संगठन के सम्मुख रखता है तथा उसकी उपज समाज के सुपुर्द करता है। इस कार्य को करने में उसे बड़ी सावधानीपूर्वक कार्य करना होगा। यदि वह समाज की माँगों को सही ढंग से विश्लेषित करके संगठन के सामने रखने में असफल रहता है तो आर्थिक अपव्यय अत्यधिक मात्रा में होने का डर रहता है। साथ ही समाज की आशायें भी अपूर्ण रह जाने का डर रहता है। उसे अपने उत्पादकों के कुशलतम वितरण का भी निरन्तर प्रयास करना चाहिए, इसमें समाज एक बढ़े हुए जीवन-स्तर के रूप में लाभान्वित होगा। यदि वह असफल हो जाता है, तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ने की आशंका रहती है। सफलता से न केवल जनसाधारण को

वाँछित वस्तु से वंचित रहना पड़ता है वरन् अनेकों कर्मचारियों व विक्रेताओं को बेकार हो जाना पड़ता है।

उपभोक्ता के प्रति विपणन प्रबन्धक की यह जिम्मेदारी है कि उसे इतनी पर्याप्त सही सूचना प्रदान करे कि वह एक बुद्धिसंगत क्रय-निर्णय कर सके। जनता में उसकी फर्म अपने उत्पाद और प्रस्ताव आदि के सही स्वभाव के विषय में भ्रान्ति अथवा कपट उत्पन्न न करे। दूसरे शब्दों में, उस पर एक नैतिक ढंग से व्यवहार करने की जिम्मेदारी है। शीघ्र विपणन प्रबन्धक की यह समग्र जिम्मेदारी रहती है कि वह ऐसा नूतन व्यवहार स्थापित करे, जो कि समाज के लिए लाभप्रद हो। उसे सभी को लाभ पहुँचाने वाले नये उत्पादों एवम् विचारों का सृजन भी करना चाहिए।

विपणन प्रबन्धक का संस्था के प्रति यह उत्तरदायित्व है कि वह संस्था को पर्याप्त मात्रा में लाभ अर्जित कराये। यह जरूरी है कि उपभोक्ताओं के हितों का ध्यान रखा जाय लेकिन कोई भी संस्था उपभोक्ताओं के हितों के रक्षार्थ अधिक समय तक हानि सहन नहीं कर सकती है। संस्था के प्रति विपणन प्रबन्धक का यह भी उत्तरदायित्व है कि वह समाज की आवश्यकताओं, उपभोक्ताओं की रुचियों में परिवर्तन का अध्ययन कर संस्था को इनसे अवगत कराये ताकि आवश्यकता के अनुरूप ही उत्पादन हो। विपणन प्रबन्धक का संस्था के प्रति एक उत्तरदायित्व यह भी है कि वह संस्था की क्रियाओं को इस प्रकार से समायोजित करे कि उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग संभव हो सके तथा न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन किया जा सके।

विपणन में वित्त की भूमिका (Role of Finance in Marketing)—

प्रत्येक विपणन-निर्णय के वित्तीय पहलू होते हैं। केवल प्रत्येक विपणन-निर्णय पर एक 'कीमत-चिन्ह' लगा होता है वरन् फर्म की वित्तीय क्षमतायें बाजार में बहुत भिन्नात्मक लाभ प्रदान कर सकती है। मुद्रा चीजें-सभी प्रकार की चीजें खरीदती हैं। वह व्यक्ति, प्रतिभा, समय, वितरण, ग्राहक, सुरक्षा, अनुसंधान-सूचना, सुविधा, प्राथमिकता और लाभ सभी कुछ खरीद सकती है। बाजार में किसका प्रभुत्व जमे, इसका निर्णय करने का अधिकाधिक सौभाग्य मुद्रा को ही प्राप्त हो रहा है।

(i) **मुद्रा लोगों की प्रतिभा खरीदती है**—बड़ी फर्म जिनके पास विशाल वित्तीय प्रसाधन होता है, अपने कार्यों के सफल संचालन के लिये प्रतिभावान व्यक्ति को नौकर रखने में समर्थ होती है। एक नयी अपर्याप्त वित्तीय साधनों वाली कम्पनी को बहुधा अनेक मध्यम मार्ग अपनाने पड़ते हैं, जो कि दीर्घकाल में उसके लिए अस्वास्थ्यप्रद साबित होते हैं।

(ii) **मुद्रा 'समय' खरीदती है**—अनेक परिस्थितियों में यह आवश्यक होता है कि वह विशेष विपणन-कार्यक्रम को सफलता के लिए उस पर काफी समय लगाया जाये। इस लम्बी अवधि के दौरान कम्पनी को भारी वित्त की आवश्यकता पड़ती है। यदि कम्पनी के पास पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं है, तो उसे आवश्यक अनुसंधान प्रयास में कटौती करनी होगी और उत्पाद को उपयुक्त समय के पूर्व ही बाजार में लाने हेतु विवश होना पड़ेगा।

(iii) **मुद्रा 'वितरण-व्यवस्था' को खरीदती है**—अनेक उत्पादों के विपणन के लिए गहन विरतण एक अनिवार्यता है । कुछ फर्में कूपन-अभियान, नमूना-वितरण विज्ञापन-भत्ता, उपहार आदि युक्तियों के द्वारा आवश्यक वितरण खरीद लिया करती हैं ।

(iv) **मुद्रा 'ग्राहकों' को खरीदती है**—जब कम्पनी को किसी विशेष संस्था से यथेष्ट लाभदायक विक्रय परिणाम प्राप्त होने की आशा हो, तो वह उसकी प्रारम्भिक सेवाओं, प्रस्तावों, अनुसंधान एवं खातिरदारी पर इतनी अधिक मुद्रा खर्च कर सकती है कि अन्ततः वह संस्था उसके घर जैसी हो जाये ।

(v) **मुद्रा 'सुरक्षण' खरीदती है**—यह अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है कि फर्म कुछ सुरक्षण योग्य भिन्नात्मक लाभ प्राप्त करे । इस हेतु यदि पर्याप्त वित्तीय साधनों का अभाव है, तो फर्म अपने से बड़ी और आर्थिक साधन सम्पन्न फर्मों द्वारा अपने पेटेन्टों और कॉपीराईटों का हरण रोक न सकेगी ।

(vi) **मुद्रा 'सूचना' खरीदती है**—विपणन के प्रेक्षकों का कहना है कि निगम के बड़ा होने का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि वह अपने अनुसंधान कार्यों द्वारा सूचना खरीदती है । ऐसी सूचना उसे जोखिम घटाने और अधिक कुशलता के साथ अपने व्यवसाय का संचालन करने में समर्थ बनाती है । किन्तु अनुसंधान हेतु भारी राशि में मुद्रा व्यय करनी पड़ती है ।

(vii) **मुद्रा 'लाभ' खरीदती है**—कभी-कभी लाभ का स्रोत फर्म के महँगे प्लाण्ट की उत्पादक कुशलता में निहित होता है । यदि फर्म के पास पर्याप्त वित्तीय साधन हैं, तो वह ऐसे महँगे प्लाण्ट खरीद कर लाभ में वृद्धि कर सकती है । अन्य परिस्थितियों में फर्म अपने लाभों में क्रय छूटों के द्वारा वृद्धि कर लेती है, किन्तु यह तभी सम्भव है जबकि फर्म के पास पर्याप्त वित्तीय साधन हों ।

(viii) **मुद्रा 'सुविधायें' खरीदती है**—भौतिक सुविधाएँ अनेक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण होती हैं । आधुनिक प्लाण्टस ग्राहकों को आकर्षित करते हैं । संभावित कर्मचारियों की दृष्टि में भी कम्पनी अधिक गौरवपूर्ण बन जाती है और संगठन का मनोबल सुधरता है परन्तु ऐसी सुविधाएँ जुटाने में भी भारी मुद्रा विनियोग करना होता है ।

(x) **मुद्रा 'प्राथमिकताएँ' खरीदती है**—कभी-कभी आपूर्तियाँ (Supplies) सीमित होती हैं तथा सभी ग्राहकों को उसी समय पर सुपुर्दगियाँ मिलना सम्भव नहीं होता । ऐसी दशा में प्राथमिकता का सवाल बहुत महत्वपूर्ण बन जाता है । यहाँ भी बड़ी साधन सम्पन्न फर्में अपने छोटे प्रतिस्पर्धियों के ऊपर प्राथमिकताएँ पाने में सफल हो जाती हैं और इस प्रकार उनके पास सबसे जल्दी बिकने वाला माल रहने से उनकी सफलता में चार चाँद लग जाते हैं ।

●●

1 विक्रय प्रबन्ध एवं संगठन
Sales Management and Organisation

प्रश्न 1. किसी बड़े संस्थान का विक्रय संगठन बनाने में आप कौन से घटकों पर ध्यान देंगे ?

What factors will guide you in building up a sales organisation of big concern ?

उत्तर— **विक्रय संगठन संरचना को निर्धारित करने वाले घटक**

(Factors determining Building up a sales Organisation)

विक्रय क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए विक्रय संगठन का निर्माण आवश्यक होता है। विक्रय नियोजन एवं विक्रय नीति को कार्यान्वित करने के लिए एक कुशल संगठन का होना आवश्यक है। किसी व्यावसायिक संस्था में उसके विक्रय विभाग के संगठन-स्वरूप (Form of Organisation) को प्रभावित करने वाले घटक निम्नलिखित हैं—

1. **उत्पादन का स्वभाव** (Nature of Product)—विक्रय संगठन की संरचना उत्पादन के स्वभाव पर निर्भर करती है। वह वस्तु जिसको दूर-दूर तक फैले हुए उपभोक्ता काम में लावेंगे। उसके लिए अपेक्षाकृत अधिक बड़े संगठन की रचना करनी पड़ेगी। इसके विपरीत, यदि उत्पादन व्यापारी के औद्योगिक उपयोग का है तो उसके लिए अपेक्षाकृत छोटे विक्रय संगठन की आवश्यकता होगी। यदि उत्पादन तकनीकी प्रवृति का है तो उसके लिए संगठन में तकनीकी विक्रेताओं की आवश्यकता होगी। इस प्रकार विक्रय संगठन संरचना उत्पादन के स्वभाव से प्रभावित होती है।

2 **वांछित बाजार का स्वभाव** (Nature of the Market Sought)—उत्पादन के स्वभाव के साथ-साथ उत्पादन के विक्रय के लिए वांछित बाजार का स्वभाव भी विक्रय संगठन संरचना में महत्वपूर्ण होता है। उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण करने वाली व्यावसायिक संस्थाओं का विक्रय संगठन औद्योगिक वस्तुओं का निर्माण करने वाली संस्थाओं से कई बातों में भिन्न होगा। एक चाय विक्रेता कम्पनी या जूता निर्माता कम्पनी को देश के कोने-कोने में अपनी वस्तुएँ पहुँचाते रहने के लिए कई विक्रेता तथा स्वतः की दुकानें रखनी पड़ती हैं। इन कम्पनियों के विक्रय

क्षेत्र दूर-दूर तक फैले रहते हैं तथा अनेक भागों में बँटे रहते हैं जबकि एक मोटर पार्टस बनाने वाली कम्पनी या टाइप राइटर बनाने वाली कम्पनी को अपना विक्रय संगठन विशाल नहीं रखना पड़ता, क्योंकि इन वस्तुओं का बाजार अपेक्षाकृत सीमित होता है।

3. **उत्पादन का मूल्य** (Price of Products)—अधिक मूल्य वाली वस्तुएँ जिनका मूल्य सीमित होता है जैसे रेफ्रीजरेटर के लिए बड़े संगठन की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु एक ऐसी वस्तु जिसका मूल्य कम होता है जैसे टूथ पावडर या टूथ पेस्ट जिसकी माँग अधिक होती है, के लिए विक्रय संगठन बड़ा रखना पड़ता है।

4. **उपलब्ध कर्मचारी** (Available Personnel)—उपलब्ध कर्मचारी भी विक्रय संगठन संरचना को काफी सीमा तक प्रभावित करते हैं। एक अच्छे विक्रय संगठन को तब तक नहीं अपनाया जा सकता जब तक कि उसके लिए आवश्यक योग्यता वाले कर्मचारी उपलब्ध न हों।

5. **कम्पनी का आकार, विक्रय मात्रा एवं उत्पादन मात्रा के साथ विक्रय सम्बन्ध**—जिस संस्था का आकार बड़ा होता है तथा जिसकी विक्रय मात्रा अधिक होती है उसमें विक्रय संगठन बड़े पैमाने पर किया जाता है। विक्रय मात्रा एवं उत्पादन क्षमता के मध्य सम्बन्ध भी विक्रय संगठन संरचना को प्रभावित करता है। यदि उत्पादन अभी उत्पादन क्षमता का 70% है और इसे बढ़ाने की गुंजायश बढ़ते विक्रय को देखकर अच्छी नजर आ रही है, तो उस संस्था के विक्रय की संगठन संरचना इस प्रकार की होगी कि विक्रय में वृद्धि होने पर उसे समायोजित किया जा सके। इसके विपरीत, यदि विक्रय के बढ़ने की सम्भावना तो हो परन्तु उत्पादन क्षमता में वृद्धि की सम्भावना न हो तो सस्था इस प्रकार के विक्रय संगठन की संरचना करेंगी जो वर्तमान उत्पादन क्षमता के अनुरूप विक्रय कार्य के लिए सर्वोत्तम हो।

6. **प्रथा या परम्पराएँ** (Customs or Traditions)—प्रत्येक व्यवसाय में एक विशेष प्रकार की प्रथा या परम्परा होती है और उसी के अनुसार विक्रय संगठन संरचना जैसे थोक व्यापारी हमेशा फुटकर व्यापारी को माल बेचता है और फुटकर व्यापारी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में उपभोक्ताओं को माल बेचता है और उसी के अनुसार अपनी संगठन संरचना करता हैं इसमें परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता।

7. **विपणन योजना** (Marketing Plan)—विक्रय सगठन की संरचना बहुत कुछ विपणन की योजना पर निर्भर करती है। विपणन का कार्य एजेन्टों, दलालों या आढ़तियों के द्वारा, खुद की फुटकर दुकानों द्वारा, सीधे फुटकर व्यापारी को बेचकर, खुद के विक्रेताओं द्वारा घर-घर विक्रय करके, थोक विक्रेता को विक्रय करके जहाँ से वह उपभोक्ताओं को बेचेगा, तथा डाक द्वारा वस्तुएँ विक्रय करके

किया जाता है। जिस संस्था की जिस प्रकार की विपणन की योजना होगी उसी आधार पर विक्रय सगठन की संरचना की जावेगी। यदि विपणन का कार्य बड़े संगठन द्वारा सम्पन्न होना सम्भव होगा तो संगठन का आकार बड़ा होगा। यदि छोटे संगठन द्वारा विपणन कार्य सम्भव होगा तो संगठन की संरचना छोटे आकार पर की जावेगी।

8. **शीर्ष प्रबन्ध की संगठन नीति**—प्रत्येक व्यवसाय का शीर्ष प्रबन्ध व्यवसाय के सफल संचालन के लिये नीति का निर्धारण करता है तथा उसे कार्यान्वित करता है। शीर्ष प्रबन्ध द्वारा निर्धारित संगठन की नीति विक्रय संगठन की नीति को व्यापक रूप में प्रभावित करती है। शीर्ष प्रबन्ध विक्रय के सम्बन्ध में केन्द्रीयकरण या विकेन्द्रीयकरण की नीति को अपना सकता है तथा इन दोनों परिस्थितियों में विक्रय सगठन की संरचना अलग-अलग प्रकार की होगी।

9. **उत्पादों की संख्या**—एक उपक्रम द्वारा उत्पादित अथवा निर्मित उत्पादों की संख्या का प्रभाव भी विक्रय संगठन की संरचना पर पड़ता है। यदि उत्पन्न या निर्मित एवं किस्में उत्पादों की संख्या अधिक है तो उसके लिये एक बड़े जटिल विक्रय संगठन की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत यदि विक्रय किये जाने वाले उत्पादों की किस्म एवं संख्या कम है तो उनके लिये अपेक्षाकृत एक छोटे एवं सरल विक्रय संगठन की आवश्यकता होगी।

10. **विक्रय नीतियाँ**—उपक्रम द्वारा अपनाई गई विक्रय नीतियाँ भी विक्रय संगठन की संरचना को प्रभावित करती है। यदि उपक्रम द्वारा आक्रामक विक्रय नीति अपनाई गई है तो विक्रय संगठन जटिल होगा तथा शिथिल विक्रय नीति अपनाने की दशा में विक्रय संगठन छोटा एवं सरल होगा।

11. **उपक्रम की वित्तीय स्थिति**—उपक्रम की वित्तीय स्थिति भी विक्रय संगठन की संरचना को प्रभावित करती हैं। अच्छी वित्तीय स्थिति वाले उपक्रम जटिल एवं बड़े विक्रय संगठन को अपना सकते हैं।

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त विक्रय संगठन संरचना को व्यवसाय के मूल उद्देश्य एवं नीतियाँ, प्रतिस्पर्धा और क्रेताओं के प्रकार एवं उनकी संख्या भी प्रवाहित करते हैं।

प्रश्न 2. विक्रय विभाग के कार्यों को संक्षेप में बतलाइये।

Briefly summarise the functions of the Sales Department.

उत्तर—

विक्रय विभाग के कार्य

(Functions of Sales Department)

संस्था की विभिन्न उत्पादित वस्तुओं के विक्रय से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को हल करने के लिए प्रायः एक पृथक विभाग होता है जिसे विक्रय विभाग कहते

हैं। किसी औद्योगिक संस्था में विक्रय प्रबन्ध सामान्य प्रशासन का एक महत्वपूर्ण अंग होता है। इसका मुख्य उद्देश्य विक्रय की व्यवस्था करना है। विक्रय व्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं के वितरण से सम्बन्धित अनेक बातें सम्मिलित की जाती हैं। विक्रय विभाग के कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. **विक्रय नीति निर्धारित करना** (Sales Policy)—**विक्रय नीति से आशय उस समझ-बूझ से है जो सारे विक्रय संगठन में व्याप्त रहती है तथा यह भविष्यवाणी करना सम्भव बनाती है कि विक्रय कार्यवाह संगठन (विक्रय) के भीतर एक दी हुई परिस्थिति में किस प्रकार की कार्यवाही करेगी।** (Sales Policy connotes that body of understanding generally possessed throughout sales organisation which makes it possible to predict what type of action the sales executive within the organisation (Sales) will take under a given set of circumstances) इस प्रकार विक्रय नीति नियमों का एक समूह है और एक अच्छा नियम सिद्धान्त में ही महत्व नहीं रखता वरन् व्यवहार में भी मार्ग दर्शन करता है। एक उत्तम विक्रय नीति से निम्न बातों के लिए मार्ग दर्शन प्राप्त होता है—

1. **वस्तुयें या सेवायें जिनका विक्रय करना है**—इनका प्रकार, इनकी संख्या किस्म व विविधतायें।

2. **ग्राहक जिन्हें वस्तु व सेवा का विक्रय किया जायेगा**—विवरण के मार्ग, ग्राहकों के आकार एवं प्रकार तथा उनकी भौगोलिक स्थिति।

3. **कीमतें जिन पर वस्तु एवं सेवा का विक्रय होगा**—प्रतियोगी उत्पादों की कीमतों से सम्बन्ध, उत्पादन एवं वितरण लागतों से सम्बन्ध, व्यक्तिगत मदों की कीमतों से सम्बन्ध, कीमत परिवर्तनों की बारम्बारता, पुनः विक्रय कीमत का अनुरक्षण।

4. **विक्रय संवर्द्धन**—विक्रय अपील, विज्ञापन का प्रकार एवं साधन, वैयक्तिक अनुरोध।

एक स्वस्थ विक्रय नीति संस्था की साख को बढ़ाती है। एक स्वस्थ नीति में अनेक पहलुओं पर विचार करना पड़ता है जैसे विक्रेताओं का चुनाव एवं प्रशिक्षण, मूल्य-निर्धारण, जन सम्पर्क, विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन, उपभोक्ताओं का वर्गीकरण, बाजार अनुसंधान, विक्रय की शर्तें सेवा का काल, आदि। विक्रय नीति स्थायी, लोचपूर्ण व स्पष्ट होनी चाहिए तथा वह ऐसी होनी चाहिए जिससे जनता एवं उपभोक्तागण भी सन्तुष्ट हों।

2. **विक्रय नियोजन** (Sales Planning)—विक्रय योजना के अन्तर्गत यह नियोजन करना पड़ता है कि एक विशेष समयावधि में कितनी बिक्री होगी, किन पदार्थों की बिक्री होगी, किस प्रकार, किन स्थानों में तथा किन के द्वारा बिक्री होगी।

प्रत्येक उत्पादन, विक्रय-स्थान, समय व अवधि के लिए अलग-अलग योजनायें बनाकर उन्हें एक व्यापक योजना का अंग बनाया जाता है। विक्रय नियोजन का अभिप्राय प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित विक्रय लक्ष्यों या नीतियों के अनुरूप सही गुण और सही मात्रा में सबसे मितव्ययी. लागत पर कुशल विक्रय के लिए विक्रय आवश्कताओं और साथ ही साथ लम्बी एवं पृथक् क्रियाओं की जटिल श्रृंखला वाली तकनीक का व्यापक अध्ययन एवं पूर्व निर्धारण करने से है।"

विक्रय नियोजन की प्रक्रिया—विक्रय नियोजन में साधारणतः निम्नलिखित क्रियाएँ की जाती हैं—

1. बाजार के लिए वस्तुओं को तैयार करना। इसमें डिजायन (Design), पैकेजिंग व व्यापार-चिन्ह (Trade-Mark) सम्मिलित हैं।

2. विक्रय-पूर्वानुमान (Sales Forecasting) के लिए विपणि अनुसन्धान का संचालन करना।

3. माल के वितरण के लिए सरल, सस्ते एवं सुगम साधनों को खोजना।

4. विक्रय संवर्द्धन व विज्ञापन के लिए कर्मचारियों का चुनाव करना एवं उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

5. विज्ञापन के साधन का चुनाव करना।

6. निर्मित माल को गोदाम में रखने तथा स्टाक नियन्त्रण की उचित व्यवस्था करना।

7. विक्रय कार्यालय की व्यवस्था करना।

8. विक्रय प्रतियोगिताओं की व्यवस्था करना।

प्रभावी नियोजन के लिए भावी प्रवृत्तियों के पूर्वानुमान लगाने आवश्यक होते हैं और जब इन्हें योजना का आधार बनाया जाता है तो अनेक लाभदायक कार्यक्रम समाप्त हो जाते हैं। परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तन विक्रय नियोजन में परिवर्तन करना आवश्यक बना देते हैं। अतः विक्रय योजना बनाते समय लोच का समुचित ध्यान रखना चाहिए।

3. विपणि अनुसन्धान (Market Research)—विपणन अनुसन्धान विपणन क्षेत्र की किसी समस्या के सारगर्भित तथ्यों का क्रमबद्ध, उद्देश्यपूर्ण एवं विस्तृत अन्वेषण हेतु अध्ययन है। सरल शब्दों में, विपणि अनुसन्धान से आशय वस्तुओं तथा सेवाओं को उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक बेचने व हस्तान्तरित करने से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में समस्त तथ्य संकलित करना व उनका विश्लेषण करना है।

विपणि अनुसन्धान का प्रमुख लक्ष्य सर्वाधिक मूल्य प्राप्ति के लिए, क्या बेचना है; कहाँ बेचना है, कब बेचना है एवं किस प्रकार बेचना है, होता है। दूसरे

शब्दों में, विपणि अनुसन्धान का लक्ष्य वस्तु की विशेषता, उसके प्रयोग का समय स्थान एवं विधि तथा प्रयोग करने वाले व्यक्तियों का विवरण एवं उनके प्रयोग करने के कारणों का पता लगाना है। विपणि अनुसन्धान का लक्ष्य भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग हो सकता है, जैसे—

1. जब कोई नई वस्तु बाजार में विक्रय के लिए उपलब्ध कराई जाती है तब विपणि अनुसन्धान का प्रमुख लक्ष्य उस वस्तु के सम्बन्ध में उपभोक्ता की प्रतिक्रिया की जानकारी प्राप्त करना होता है जिससे अनेक गुण, आकार, किस्म, डिजाइन आदि में अनुकूल सुधार किया जा सके।

2. जब कोई वस्तु बाजार में चल रही हो तब उस वस्तु के उपभोक्ताओं की आवश्यकता का पता लगाकर उसके उत्पादन में वृद्धि की जा सके या उसी स्तर की अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके।

3. यदि किसी वस्तु के निर्माण की योजना सामने है या उत्पादन क्षमता को बढ़ाना है तब ऐसी स्थिति में उस वस्तु की आवश्यकता का अध्ययन करना।

4. यदि कोई वस्तु बाजार में प्रस्तुत की गई है परन्तु वह नहीं चल सकी हो तो इस असफलता के कारणों का पता लगाना।

5. विदेशों में बाजार खोजने तथा विदेशी विनियम के अर्जन के उद्देश्य से निर्यात मात्रा में वृद्धि करना।

उद्देश्य – प्रो. डी. कन्वर्स (P. D. Converse) के अनुसार विपणि अनुसन्धान के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं—1. उत्पादन का नियोजन एवं विक्रेता के माल का विभिन्न क्षेत्रों में वितरण करने के लिए आवश्यक आंकड़े संकलित करना। 2. बजट का निर्माण करने के लिए आवश्यक तथ्य व आंकड़े एकत्र करना। 3. विज्ञापन के साधन का चुनाव करना। 4. विक्रय-वार्ता का निर्माण करना। 5. विक्रय में वृद्धि की सम्भावनाओं के विकास के लिए विविध मध्यस्थों से आवश्यक तथ्यों का संकलन करना। 6. उपभोक्ता की रुचि एवं अरुचि का पता लगाना। 7. व्यावसायिक दशाओं की प्रवृत्तियों का पूर्वानुमान लगाना। 8. मध्यस्थों के पास स्टॉक का पता लगाना। 9. विक्रय के मध्यस्थों द्वारा अपनाये गये विज्ञापन व प्रचार आदि के साधनों की रिपोर्ट देना। 10. विक्रय नीति के सम्बन्ध में मध्यस्थों की प्रतिक्रियाओं का पता लगाना। 11. उन आंकड़ों का संकलन एवं सारणीयन करना जिनमें संस्था को विशेष रुचि है। 12. मध्यस्थ विक्रेताओं का कोटा (Quota) एवं क्षेत्र निश्चित करना। 13. किसी क्षेत्र विशेष के निवासियों की क्रय शक्ति का पता लगाना। 14. वस्तु के नये प्रयोग की खोज करना। 15. परिवर्तन या सुधार के उद्देश्य से विविध संस्थाओं के सगठन का अध्ययन करना। 16. अन्य उद्योगों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी एकत्र करना। 17. उपलब्ध प्रकाशित आंकड़ों का विश्लेषण करना।

4. विज्ञापन एवं विक्रय प्रवर्तन (Advetisement and Sales Promotion)—आधुनिक युग में बड़े पैमाने पर विक्रय की समस्या उत्पन्न होती है। इस समस्या का हल तभी सम्भव है जबकि निर्माता अपनी निर्मित वस्तुओं को अधिकतम मात्रा में ग्राहकों के सम्मुख रखें तथा उनकी क्रय-रुचि जागृत करें। इसके लिए एक अधिक व्यापक एवं मितव्ययी माध्यम की आवश्यकता होती है। विज्ञापन ऐसा ही माध्यम है। इसे आजकल 'दीर्घ-स्तर विक्रय विधि' (mass-selling technique) तथा मुद्रित विक्रय-कला (Salesmanship in Print) भी कहते हैं। प्रो. अलबर्ट फ्रे के अनुसार, विज्ञापन का अर्थ है लोगों को किसी वस्तु ब्रान्ड, सेवा, संस्था, विचार या विचारधारा से अवगत कराने तथा उस ओर प्रवृत करने हेतु दृश्य अथवा श्रव्य सन्देश लिखना तथा उनका प्रसारण करना। बिक्री को वैयक्तिक तथा अवैयक्तिक दोनों प्रकार से बढाना बिक्री विभाग का कार्य है। विज्ञापन अवैयक्तिक विक्रय कला का सर्वोत्तम साधन है। दीर्घकालीन दृष्टि से विज्ञापन का उद्देश्य संस्था के शुद्ध लाभों में वृद्धि करना है। इसका अल्पकालीन उद्देश्य है संस्था के उत्पाद को भावी ग्राहकों की जानकारी में लाना, उन्हें इनकी ओर आकर्षित करना और इन्हें क्रय करने के लिए प्रेरित करना। वैज्ञानिक विज्ञापन की श्रमिक अवस्थाएँ इस प्रकार होनी चाहिए—प्रारम्भिक जाँच-पडताल करना, बजट बनाना तथा विज्ञापन विधि का चुनाव करना, योजना को क्रियान्वित करना तथा परिणामों का परीक्षण करना।

विक्रय प्रवर्तन 'प्रबन्ध' का वह महत्वपूर्ण यन्त्र है जिसका प्रयोग विपणन (marketing) सम्बन्धी प्रयासों को सरल एवं सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से किया जाता है। विविधता (versatility) और समयानुकूलता विक्रय प्रवर्तन के अनिवार्य विशेषण हैं। वह संस्था, जो जनता को सर्वप्रथम उत्तम विक्रय-विचार प्रस्तुत करती है, सबसे अधिक लाभ उठाती है। जार्ज डब्ल्यू हॉप्किन्स के शब्दों में, "विज्ञापन को अधिक प्रभावशाली बनाने एवं विक्रय-वृद्धि की दिशा में किये गये समस्त प्रयास विक्रय प्रवर्तन के अन्तर्गत आते हैं।" इस प्रकार विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय, उत्पाद में नवीनता लाना, विक्रय पुस्तिकाओं का प्रकाशन, प्रदर्शनों व प्रति-पत्रकों (counter cards) का विकास, उपदेशक विक्रय व्यक्तियों (missionary salesman) तथा प्रदर्शकों (demonstrators) की नियुक्ति, निदर्शनों (samples) का वितरण, वाणिज्य प्रदर्शनियों का प्रयोग तथा इसी प्रकार के अन्य प्रयत्न जिनका उद्देश्य विक्रय में वृद्धि करना है, 'विक्रय प्रवर्तन' में सम्मिलित हैं।

5. वैज्ञानिक विक्रय कला का आयोजन (Scientific Salesmanship)—विक्रय विभाग के सम्मुख केवल बिक्री बढ़ाने की समस्या नहीं होती वरन् नियमित तथा स्थायी ग्राहक प्राप्त करने की भी एक बड़ी समस्या होती है। विक्रय कला इस समस्या को हल करने का सर्वोत्तम माध्यम है। गारफील्ड ब्लैक ने लिखा है, "विक्रय कला विक्रेता की फर्म और वस्तुओं में क्रेता का विश्वास जमा देने और इस प्रकार

एक नियमित तथा स्थायी ग्राहक प्राप्त करने का नाम है।" विक्रय कला की इस भावना को पॉल डब्ल्यू. ईवी ने इस प्रकार व्यक्त किया है, "यह व्यक्तियों को उन वस्तुओं का क्रय करने के लिए तत्पर (willing) करने की कला है, जो उन्हें दीर्घकालीन सन्तोष प्रदान करे।" अतः विक्रय विभाग को एक ऐसी शैली अपनानी पड़ती है जिसे संस्था की वस्तुओं को व्यक्तियों के सम्मुख अत्यन्त प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जा सके, क्रेता के मनोविज्ञान पर विजय प्राप्त की जा सके, वस्तुओं को आकर्षक ढंग से बेचा जा सके तथा क्रेता को स्थायी पूर्ण सन्तुष्टि उपलब्ध कराई जा सके। यही शैली 'विक्रय कला' कहलाती है।

6. **पूछताछ एवं आदेश** (Inquiries and Orders)—ग्राहकों की पूछताछ का उचित एवं सामाजिक उत्तर देना अत्यन्त आवश्यक है। प्रधान और शाखा विक्रय कार्यालयों का एक महत्वपूर्ण कार्य डाक, टेलीफोन, एवं तार द्वारा ग्राहकों से पूछताछ आने पर इनका उचित उत्तर देना है। इन पूछताछों में किसी विशिष्ट उत्पाद के विषय में सूचना, संभाव्य सुपुर्दगी की तिथि, उत्पाद अथवा सेवा-कार्य के सम्बन्ध में शिकायतें तथा इसी प्रकृति के अन्य अनेक विषयों पर सूचना जानने की प्रार्थना की जाती है। विक्रय कार्यालयों में प्रायः यह कार्य कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के समूह को सौंप दिया जाता है, जिसे सामान्यतया 'विक्रय संवाददाता' (Sales Correspondents) की संज्ञा दी जाती है। ये व्यक्ति ऐसे होने चाहिए जिन्हें निर्मित उत्पादों, इनके वितरण तथा सेवा कार्य से सम्बन्धित विक्रय नीतियों का पूर्ण एवं विस्तृत ज्ञान हो, जिससे वे प्राप्त पूछताछों का चतुरता से उत्तर दे सकें।

विक्रय संवाददाता आदेश की वास्तविक पूर्ति के लिए भी बहुधा उत्तरदायी होते हैं। परन्तु कुछ कम्पनियों में यह कार्य एक पृथक् 'आदेश-शाखा' अथवा 'आदेश-विभाग' द्वारा सम्पन्न किया जाता है। विक्रय संवाददाताओं द्वारा आदेश की पूर्ति कराने का लाभ यह होता है कि इससे विस्तृत विवरणों के परीक्षण, साख स्थापित करने, सुपुर्दगी तिथियाँ निश्चित करने तथा विशिष्ट समस्यायें जाँचने में ग्राहक और कार्यालय के बीच सम्पर्क केन्द्रित हो जाता है जो कुशलता एवं ग्राहक सम्बन्धों की दृष्टि से आवश्यक है।

7. **सेवा-कार्य** (Servicing)—ग्राहकों को प्रभावित करने तथा उनसे आने वाली शिकायतों को न्यूनतम करने की दृष्टि से सेवा-कार्य का बडा महत्व है। आधुनिक औद्योगिक जगत मे इस सिद्धान्त की मान्यता बढ़ती जा रही है कि 'सेवा' (देखभाल) स्वयं विक्रय का एक अनिवार्य अंग है। उत्पादक मशीन का निर्माता मशीन की बिक्री पर ही अपना कर्त्तव्य समाप्त हुआ नहीं समझता वरन् उसे यह भी ध्यान देना पड़ता है विक्रेता के यहाँ मशीन का स्थापन उचित ढंग से हुआ है अथवा नहीं। निर्माता यह व्यवस्था कर सकता है कि एक निर्धारित अवधि तक अपने विशेष 'पोषण' अथवा 'निर्वाह-दल' (maintenance staff) द्वारा, जो कि प्रधान

कार्यालय अथवा शाखा कार्यालयों पर नियुक्त रखा जा सकता है, ग्राहक को उत्पाद के सम्बन्ध में निःशुल्क पोषण-सेवा प्रदान करे।

8. **लागत नियन्त्रण** (Cost Control)—व्यापार की सफलता के लिए लागतों पर नियन्त्रण रखना अत्यन्त आवश्यक है। इनके लिए क्रय, विक्रय, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष व्यय आदि बातों से सम्बन्धित रेखाचित्र, तालिकायें अथवा सारिणियाँ बनाई जा सकती हैं बड़े बड़े व्यापार गृहों में बजट-नियन्त्रण अथवा वैज्ञानिक आर्थिक प्रबन्ध जैसी योजनायें अपनाई जाती हैं। व्ययों के विस्तृत विवरण रखने से विभिन्न स्थानों पर होने वाले अपव्ययों तथा क्षयों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है तथा उन्हें बड़ी सीमा तक समाप्त किया जा सकता है।

9. **मूल्य निर्धारण** (Pricing)—विक्रय प्रबन्ध में मूल्य-निर्धारण की समस्या भी सम्मिलित होती है। मूल्य-निर्धारण की क्रिया विक्रय-क्रिया से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। सामान्यतया, अधिक मूल्य का अर्थ है कम माँग एवं कम बिक्री। मूल्य के इस महत्व को देखते हुए विक्रय-प्रबन्धक को उत्पाद का मूल्य-निर्धारण करने से पूर्व कुछ महत्वपूर्ण बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए, जैसे—वस्तुओं की लागत, प्रतिस्पर्द्धियों द्वारा लिए जाने वाला मूल्य, माँग की प्रकृति (अर्थात् लोचदार माँग है अथवा बेलोचदार), उत्पाद की उपयोगिता, स्थायित्व एवं प्रचलनशीलता, सेवा-मूल्य, ऋतु-प्रभाव, प्रचलित व सुविधाजनक मूल्य, व्यापारिक जोखिम तथा सरकारी नीति इत्यादि। इन समस्त घटकों पर विचार करने के पश्चात् यह सुविधा पूर्वक तथा सही ढंग से निश्चित किया जा सकता है कि क्या उत्पाद का मूल्य (i) बाजार मूल्य से नीचे, या (ii) बाजार मूल्य के बराबर, अथवा (iii) बाजार मूल्य से अधिक रखा जाय। दूसरी ओर बाजार में एकाधिकार होने की दशा में यह ज्ञात किया जा सकता है कि क्या यह मूल्य 'उचित' रहेगा।

10. **व्यावसायिक जोखिमों की रोकथाम** (Avoiding business risks)—व्यापार में जोखिम उठाना एक सामान्य घटना है। व्यापारिक जोखिमों का पूर्वानुमान लगाना वास्तव में एक कठिन कार्य है। फिर भी यह देखा गया है कि व्यापारियों अथवा उद्योगपतियों को समय, स्थान व माँग में परिवर्तनों, प्रतिस्पर्द्धा, प्राकृतिक प्रकोप (जैसे—अतिवर्षा तूफान, अग्नि, भूचाल, बिजली, महामारी आदि) तथा मानवीय अनिश्चितताओं (जैसे—दुर्घटना, समुद्र में माल का डूब जाना, उधार का वसूल न होना, हड़ताल व तालाबन्दी आदि) के कारण बहुत सी जोखिमें उठानी पडती हैं। यदि इन जोखिमों को व्यवसाय स्वयं वहन करे तो उसमें अनिश्चितता एवं अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं। साथ ही उत्पाद का मूल्य भी बहुत अधिक बढ़ जाता है। अतः जोखिमों से होने वाली हानि से बचने के लिए इस हानि को दूसरों के कन्धों पर डाल दिया जाता है। बीमा कराना, मूल्यात्मक सौदे करना, माल संग्रहण की उचित व्यवस्था करना, अग्नि-शामक उपकरणों की व्यवस्था करना,

विक्रय-प्रसार अभियान प्रारम्भ करना आदि ऐसी कार्यवाहियाँ हैं जिनके द्वारा व्यावसायिक जोखिमों को अन्य संस्थाओं पर बाँटा जा सकता है तथा काफी मात्रा में कम किया जा सकता है। वास्तव में, व्यवसायी चाहे जितना सावधान तथा सतर्क क्यों न रहे, वह जोखिम से पूर्णतः मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। परन्तु फिर भी विक्रय विभाग को इस सम्बन्ध में अधिक से अधिक एवं परिस्थितियों के अनुकूल समुचित पग उठाने चाहिए।

प्रश्न 3. एक विक्रय प्रबन्धक के कर्त्तव्यों एवं गुणों को समझाइये।

Explain the duties and qualities of a Sales Manager.

उत्तर—

विक्रय प्रबन्धक के कर्त्तव्य

(Duties of a Sales Menager)

एक विक्रय प्रबन्धक को अनेक कर्त्तव्य निभाने पड़ते हैं जिनमें मुख्यतः प्रबंध एव प्रशासन सम्बधी कर्त्तव्य एवं विशेष कर्त्तव्य होते हैं।

(A) **विक्रय सम्बन्धी कर्त्तव्य**—

विक्रय विभाग का कार्यभार विक्रय प्रबंधक के हाथ में होता है। पत्र व्यवहार, ग्राहक के आदेशों के अनुसार माल भेजना, यातायात आदि कार्य आते है जिनमें से कुछ तो वह स्वयं करता है और शेष दूसरों से करवाता है।

(B) **प्रशासन सम्बन्धी कर्त्तव्य**—

दैनिक कार्यों के अतिरिक्त जो काम विक्रय प्रबंधक करता है वे कार्य प्रशासन सम्बंधी होते हैं। इनमें निम्न कार्य सम्मिलित हैं—

1. **ग्राहकों से सम्बन्धित कार्य**—ग्राहकों की आदत, जीवन स्तर आदि का अध्ययन करना उनकी शिकायतें सुनना और उन्हें दूर करना विक्रय प्रबंधक का कार्य है।

2. **विपणि अनुसन्धान**—विक्रय प्रबंधक वस्तु के बाजार का अन्वेषण करता है जिसके आधार पर ही उत्पादन का बड़ा महल खड़ा किया जाता है। यदि वह अपने इस कार्य में असफल हो जाता है तो सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। विपणि अनुसंधान का लक्ष्य वस्तु की विवेचना, उसके प्रयोग का समय, स्थान एवं विधि तथा प्रयोग करने वाले व्यक्तियों का विवरण एवं उनके प्रयोग करने के कारणों का पता लगाना है।

3. **विक्रेताओं का चयन एवं नियुक्ति**—विक्रेता व्यापार की रीढ़ की हड्डी माना जाता है। उसकी कुशलता पर व्यापारिक कुशलता आधारित होती है। अतएव विक्रेता का चयन व नियुक्ति बहुत ही जिम्मेदारी का कार्य है जो कि एक कुशल प्रबन्धक ही कर सकता है।

4. विक्रेताओं को विक्रय प्रदेश एवं विक्रय कोष बनाना—विक्रय प्रबन्धक अपने विक्रय क्षेत्र को विभिन्न हिस्सों में बाँटकर बिक्रीकरों को योग्यतानुसार बाँटता है। अधिक दक्ष बिक्रीकर को बड़ा प्रदेश दिया जाता है या ऐसा प्रदेश दिया जाता है जहाँ प्रतिस्पर्द्धा बहुत अधिक हो। हर एक बिक्रीकर का एक निश्चित अवधि में निश्चित राशि की बिक्री करनी पड़ती है जिसे विक्रय कोटा (Sales Quota) कहते हैं। विक्रय कोटा निश्चित करना विक्रय प्रबन्धक का कार्य है।

5. **विक्रेताओं पर नियन्त्रण**—विक्रेताओं के निष्पादन पर नियन्त्रण के लिये विक्रय बजट बनाया जाता है। विक्रेताओं के निष्पादन का मूल्यांकन बजट अनुमानों तथा वास्तविक विक्रय से तुलना करके किया जाता है। परन्तु केवल वास्तविक विक्रय पर आधारित नियन्त्रण अधिक प्रभावशाली नहीं हो सकता। उसके साथ-साथ विक्रय की नई वस्तुओं की संख्या, फुटकर व्यापारियों एवं उपभोक्ताओं से साक्षात्कारों की संख्या, निर्यात विक्रय की मात्रा आदि भी नियन्त्रण के महत्वपूर्ण आधार हैं।

6. **विक्रेताओं की रिपोर्ट (Salesman's Report) माँगना तथा उसका विश्लेषण करना**—विक्रेताओं की कार्यवाहियों का पूरा विवरण रखने के लिये उससे समय-समय पर विक्रय रिपोर्ट माँगनी चाहिये। विक्रय प्रबन्धक को उससे विक्रेता के कार्य के बारे में विशेषतः शाखाओं एवं प्रवासी विक्रेता की सूचनायें प्राप्त करते रहना चाहिए। उसे उनके कार्य को समय-समय पर देखना व नियन्त्रण करना पड़ता है। उचित सलाह देकर उन्हें कार्य करने के लिए प्रेरित करना पड़ता है। विक्रय प्रबंधक को विक्रय नीति के अनुसार विक्रेताओं से यह आशा करनी पड़ती है कि वे कम से कम निश्चित राशि तक बिक्री करें। विक्रेताओं की कुशलता बिक्री बढ़ाने पर निर्भर है। विक्रय खर्च और बिक्री का अनुमान उचित होना चाहिये। इन रिपोर्टों में विभिन्न तथ्य और विक्रेता की राय होती है। कभी-कभी विक्रेता मूल्यवान सूचनायें देते हैं जो उत्पादन विभाग और विक्रय संवर्द्धन विभाग के लिए विशेष महत्वपूर्ण होती है। बाजार अनुसंधान प्रत्येक व्यापारिक संस्था नहीं कर सकती परन्तु इन रिपोर्टों के द्वारा इस ओर भी काफी सामग्री प्राप्त हो जाती है क्योंकि उनका विक्रेता स्वयं बाजार तथा ग्राहकों के सम्पर्क में आता रहता है। वह प्रतिस्पर्द्धा, बाजार के अनुसार बढ़ती हुई माँगें, उपभोक्ताओं की उस वस्तु के प्रति रुचि और पैकिंग रंग, साइज, और डिजाइन आदि के सम्बन्ध में अपनी उचित राय लिखकर विक्रय प्रणाली और उत्पादन प्रणाली में सुधार करवा सकता है। विज्ञापन का प्रभाव भी उस क्षेत्र के बारे में इन रिपोर्टों से ज्ञात हो जाता है।

विक्रय प्रबंधक इस रिपोर्ट का पूर्ण विश्लेषण कर अपनी विक्रय नीति में आवश्यक हेर-फेर करता रहता है। इस प्रकार की रिपोर्ट स्वयं विक्रेता को भी लाभप्रद सिद्ध होती है। इससे वह स्वयं के प्रयत्नों का विश्लेषण कर सकता है और अपने विक्रय प्रदेश को बढ़ाने की चेष्टा करता है।

7. विक्रय एजेन्सी और उनका नियन्त्रण—ऐसे स्थानों पर जहाँ पर कि प्रवासी विक्रेता नियुक्त करना ठीक नहीं होता वहाँ पर विक्रय प्रबंधक विक्रय एजेन्सी मंजूर करता है और उन पर नियन्त्रण करता है।

8. विक्रय विश्लेषण करना—विक्रय निश्चित नहीं होना है उससे कमी वृद्धि होती रहती है अतः विक्रय विश्लेषण करना आवश्यक होता है और यह कार्य विक्रय प्रबन्धक द्वारा किया जाता है जो ऐसा करके विक्रय प्रणाली की त्रुटियाँ का ज्ञान प्राप्त करता है इसके द्वारा विक्रय प्रदेश का क्षेत्रफल बढ़ता है एवं वस्तुओं की माँग बढ़ाने की सम्भावना हो जाती है।

9. विक्रेताओं का प्रशिक्षण—विक्रेताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था करने का कार्य भी विक्रय प्रबन्धक का होता है।

(C) विशेष कर्त्तव्य—

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त एक विक्रेता प्रबन्धक अपने विभाग में अनुशासन बनाये रखता है, विक्रेताओं का वस्तु का ज्ञान कराता है, वितरण प्रणाली निश्चित करता है, उधार नीति निश्चित करता है, विक्रय बजट बनाता है एवं वस्तुओं के विज्ञापन, प्रदर्शन कक्ष का उचित प्रबन्ध आदि कार्य करता है।

विक्रय प्रबन्ध का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। उसके अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं की बिक्री मात्र ही सम्मिलित नहीं होती परन्तु उत्पादक से उपभोक्ताओं तथा वस्तुओं एवं सेवाओं को पहुँचाने से सम्बन्धित सभी क्रियाओं का प्रबन्ध आता है। प्रबन्ध के सामान्य कार्य नियोजन, संगठन, स्टाफिंग, निर्देशन व नियन्त्रण हैं। विक्रय प्रबन्धक के अन्तर्गत विक्रय नियोजन; विक्रय संगठन, विक्रय के लिए स्टाफिंग कार्य, विक्रय निर्देशन व नियन्त्रण आते हैं। सामान्य रूप से विक्रय प्रबंधक निम्न कार्य करता है—

1. सामान्य फर्म के सहयोग से संस्था की (i) उत्पादन-वितरण में कौन-सा विक्रय मार्ग अपनाया जाये एवं (ii) किसी क्षेत्र में विक्रय किया जाये, सम्बन्धी नीतियों को तय करना।

2. विक्रय नीतियों एवं योजना निश्चित करके प्रमुख विक्रय मोर्चाबंदी (Sales strategy) की नीति बनाना। विक्रय के लिए ठोस, एकीकृत तथा आक्रमणात्मक (Aggressive) विक्रय योजना बनाना।

3. विभिन्न विक्रय सेवाओं जैसे विज्ञापन, प्रत्यक्ष विक्रय, विक्रय, संवर्द्धन, विक्रय शोध, एवं व्यापार तथा सेवा विभाग को देखभाल करना व उनमें समन्वय स्थापित करना। प्रत्येक विभागाध्यक्ष को अधिकार सौंपकर उत्तरदायी करना।

4. विक्रय लागत पर नियन्त्रण रखना व उसे न्यूनतम करने के प्रयास करना।

5. मूल्य-सूचियाँ बनाना तथा छूट, उधार देने आदि सम्बन्धी नीतियाँ बनाना।

6. विक्रय सम्बन्धी विभिन्न रिपोर्टों का विश्लेषण करके उचित कदम उठाना।

7. ग्राहकों से श्रेष्ठ व सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों को विकसित करना व उन्हें बनाये रखना।

8. अन्य विभागों जैसे उत्पादन, लेखाकर्म आदि के साथ मिलकर उपक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रयत्न करना।

संक्षेप में विक्रय-प्रबन्धक के कार्य हैं—(i) विक्रय नियोजन, विक्रय नीति निर्धारण एवं संगठन (ii) विक्रय संवर्द्धन एवं विज्ञापन (iii) वैज्ञानिक विक्रय कला का आयोजन (iv) वितरण के माध्यम (v) विक्रय नियन्त्रण (vi) मूल्य-निर्धारण (vii) विपणि अनुसन्धान एवं (viii) विपणन की जोखिमों की रोकथाम।

विक्रय प्रबन्धक के गुण—

विक्रय प्रबन्धक एक संस्था का वह प्रबन्धक है, जिसका कार्य विक्रय संगठन को बनाना व इस सम्बन्ध में निर्देश देना है, जिससे संस्था द्वारा निर्धारित विक्रय लक्ष्य प्राप्त किये जा सकें। एक कुशल विक्रय प्रबन्धक में पेशेवर दक्षता के साथ-साथ कुछ चारित्रिक एवं मानवीय गुण भी होने चाहिए। विक्रय संगठन के प्रभावपूर्ण कार्य संचालन के लिए एक विक्रय प्रबन्धक में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है—

1. **व्यापार विशेष का पूर्ण ज्ञान** (Complete knowledge of the Business)—प्रत्येक व्यापार की अपनी अलग अलग विशेषतायें होती हैं। अतः एक विक्रय प्रबन्धक को संगठन से सम्बन्धित व्यापार का अनुभव आवश्यक है। उसे—(i) बिक्री नियोजन, (ii) कीमत, (iii) प्रोत्साहन कार्यक्रम, (iv) वितरण के ढंग, (v) विज्ञापन आदि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

2. **विक्रय कार्य का अनुभव** (Practical Sales Experience)—विक्रय का व्यावहारिक अनुभव विक्रय-प्रबन्धक को विक्रेताओं की कठिनाइयों व सफलताओं से अवगत कराता है जिसके परिणामस्वरूप यदि विक्रेताओं द्वारा कोई समस्या उसके समक्ष रखी जाती है तो वह उनका तत्काल समाधान कर सकता है।

3. **वस्तु-विशेष का पूर्ण ज्ञान** (Complete Knowledge of the product)—विक्रय प्रबन्धक को विक्रय संगठन द्वारा बेची जाने वाली समस्त वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है, अर्थात उसे इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि वस्तु का उत्पादन किस प्रकार होता है, उसमें कौन-कौन से कच्चे माल का प्रयोग होता है, और इस वस्तु की क्या-क्या विशेषतायें एव उपयोगितायें हैं। साथ ही इसकी प्रतियोगी संस्थायें कहाँ हैं एवं उनका उत्पादन अपने उत्पादन की तुलना में किस स्तर का है।

4. **संगठनात्मक योग्यता** (Organisational Ability)—विक्रय प्रबन्धक विक्रय-संगठन का प्रधान होता है। विक्रय संगठन को कुशलतापूर्वक संचालित करने

का उत्तरदायित्व विक्रय प्रबन्धक का ही होता हैं । अतः उसमें संगठनात्मक योग्यता का होना परम आवश्यक है।

5. **पहल शक्ति** (Initiative)—विक्रय प्रबन्धक में किसी कार्य की पहल करने की शक्ति भी होनी आवश्यक है। यदि उसमें पहल करने की शक्ति नहीं है तो उसके समस्त कर्मचारी उसका अनुसरण कार्य पहले नहीं करेंगे। व्यवसाय में बहुत से अवसरों पर पहल आवश्यक है।

6. **कल्पना शक्ति एवं दूरदर्शिता** (Imagination and Foresightedness)—विक्रय-प्रबन्धक में कल्पना-शक्ति एवं दूरदर्शिता का होना भी आवश्यक है। विक्रय संगठन की सफलता भावी-माँग एवं पूर्ति का सही अनुमान लगाने पर ही निर्भर करती है। अतः एक सफल प्रबन्धक के लिए विक्रय-संगठन में विक्रय योजनाओं एवं कार्यक्रमों को ठोस व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए कल्पना-शक्तिवान् एवं दूरदर्शी भी होना चाहिए।

7. **अधीनस्थ कर्मचारियों को प्रोत्साहन, मार्ग दर्शन एवं नियन्त्रण** (Encouragement, Guidance and Control of Subordinates)—विक्रय प्रबन्धक में अपने अधीनस्थ कर्मचारी को प्रोत्साहन देने का गुण होना चाहिए साथ ही उसमें मार्गदर्शन एवं नियन्त्रण की क्षमता भी होनी चाहिए जिससे वे (कर्मचारी) प्रोत्साहन के साथ अनियन्त्रित न हो जायें।

8. **अधिकार का अंतरण** (Delegation of Authority)—एक विक्रय प्रबन्धक में अधिकारों का अंतरण करने की भी योग्यता होनी चाहिए। यदि विक्रय प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को केवल उत्तरदायित्व सौंपता है पर अधिकार नहीं तो कर्मचारी दिलचस्पी से कार्य नहीं करेंगे।

9. **मानसिक योग्यता** (Mental ability)—यह सबसे अधिक अपेक्षित महत्वपूर्ण गुण हैं। विक्रय-प्रबन्धक में स्पष्ट रूप से सोचने, परिस्थितियों का विश्लेषण करने एवं रचनात्मक विचार करने की योग्यता होनी चाहिए। विक्रय प्रबन्धक में बुद्धि चातुर्य एवं उच्च कल्पना शक्ति होना चाहिए जिससे वह आदर्श विक्रय कार्यक्रमों का विकास कर सके।

10. **व्यक्तित्व** (Personality)—विक्रय प्रबन्धक का व्यक्तित्व प्रभावशाली आकर्षक एवं दूसरों को प्रेरणा प्रदान करने वाला होना चाहिए। उसे अपने अधीन कर्मचारियों को नेतृत्व प्रदान करना होता है। एक अतः अदार्श नेता के सभी गुण उसमें होने चाहिए।

2 विक्रेता [विक्रयी] का चयन एवं प्रशिक्षण
Salection and Training of Salesman

प्रश्न 4. आधुनिक विक्रय संस्थाओं में विक्रेता के चयन को महत्व क्यों दिया जाता है ? विक्रेता के चयन की विधि का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

Why is Salesman regarded important in modern Sales Organisation ? Explain in brief process of selection of Salesman.

उत्तर — आधुनिक विक्रय संस्थाओं में विक्रेता के चयन के महत्व—

सफल विक्रय मुख्य रूप से सफल विक्रेता पर आधारित होता है। अपनी कार्य पद्धति को स्वयं अपनी प्रेरणा से और सफलतापूर्वक कार्यान्वित कर सकने वाले विक्रेता का चुनाव करना एक कलापूर्ण और महत्वपूर्ण कार्य है। एक योग्य विक्रेता जहाँ व्यवसाय को ऊपर उठा सकता है, वहीं दूसरी ओर अयोग्य विक्रेता व्यवसाय को सफलता के तल तक पहुँचा सकता है। अतः योग्य विक्रेता का चुनाव आवश्यक है। विक्रय व्यापार रूपी शरीर के लिए जीवन स्वांस के समान है। अतः व्यापार रूपी शरीर को जीवित बनाये रखने के लिए इसके स्वांस को ठीक प्रकार से संचालित करने में एक कुशल विक्रेता ही सफल हो सकता है। अतः आधुनिक विक्रय संस्थाओं में विक्रेता के चयन को महत्वपूर्ण माना जाता है। यदि विक्रेता का चरित्र उत्तम है वह शिक्षित है तो वह ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है तथा व्यापार की ख्याति बढ़ा सकता है।

विक्रेता के चयन की विधि—

विक्रेता के चुनाव के लिए कई वैज्ञानिक प्राविधियाँ निर्माण की गई हैं, किन्तु विक्रेताओं के चुनाव में किस प्राविधि को अपनाया जाये यह बड़ा कठिन कार्य है। किसी विक्रेता के चुनाव के सम्बन्ध में जब विज्ञापन दे देने का कार्य सम्पन्न किया जा चुके तो आवेदन प्राप्त होने के उपरान्त निम्न चयन विधि अपनाई जाती है—

1. रिक्त आवेदन-पत्र (Blank Application Form)
2. विवरणों एवं संदर्भों की जाँच।
3. साक्षात्कार (Interview)
4. मनोवैज्ञानिक जाँच (Psychological Test)
5. सिफारिश (Recommendation) पर विचार करना।

6. डॉक्टरी जाँच (Medical Examination)

7. अन्तिम चयन (Final Selection) ।

1. **रिक्त आवेदन पत्र**—रिक्त प्रार्थना-पत्र एक ऐसा प्रपत्र होता है जिस पर प्रार्थी अपने बारे में पूछी गई समस्त जानकारियों को निर्धारित स्थान पर भरता है। जो व्यक्ति योग्याताओं को पूर्ण करते हैं वे ही आवेदन-पत्र भेजने की पात्रता रखते हैं।

ये आवेदन पत्र दो प्रकार के होते हैं—

(i) कोरे कागज पर, (ii) निर्धारित प्रार्थना-पत्र पर। जब आवेदन-पत्र कोरे कागज पर आमन्त्रित किये जाते हैं तो प्रार्थी विज्ञापन में चाही गई सम्पूर्ण जानकारी लिखकर भेजता है परन्तु इसमें यह भय रहता है कि प्रार्थी अपनी कमजोरी का स्पष्ट उल्लेख नहीं करता। अत: बड़ी-बड़ी फर्मों में प्रार्थना-पत्र के निर्धारित फार्म होते हैं, जिनमें प्रत्याशी के बारे में सारी जानकारी माँगी जाती हैं।

2. **विवरणों एवं संदर्भों की जाँच**—आवेदन प्राप्त हो जाने के पश्चात् आवेदन पत्र में आवेदक द्वारा दिये गये विवरणों एवं संदर्भों की जाँच की जाती है। इस जाँच के दौरान ऐसे प्रार्थियों के आवेदन पत्र निरस्त किये जा सकते है जिनमें उपक्रम द्वारा वांछित न्यूनतम योग्यता नहीं है। शेष प्रार्थियों को साक्षात्कार के लिये बुलाया जाता है।

3. **साक्षात्कार**—प्राप्त हुए आवेदन-पत्र में से केवल योग्य व्यक्तियों को ही साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है। साक्षात्कार का उद्देश्य है प्रार्थी द्वारा दी गई जानकारी की सत्यता का परीक्षण करना एं प्रार्थी के व्यक्तित्व, शैली, ज्ञान, स्वभाव मनोवृत्ति आदि की जानकारी प्राप्त करना जिससे बिक्री प्रबन्धक अपने विक्रेता की सामर्थ्य का पता लगा सके। साक्षात्कार लेने से पूर्व प्रमाण-पत्रों की प्रतिलिपि को मूल प्रमाण-पत्रों से मिला लेना चाहिए। साक्षात्कार हेतु आये गये प्रत्याशियों से साक्षात्कार कर्त्ताओं को मैत्रीपूर्ण, सरल व भय रहित व्यापार करना चाहिये, क्योंकि साक्षात्कार का मूल उद्देश्य अच्छे व योग्य व्यक्तियों की तलाश करना है, न कि प्रत्याशियों को अयोग्य प्रमाणित करना।

4. **मनोवैज्ञानिक जाँच**—मानव स्वाभाव को पहचानने वाला व्यक्ति अच्छा विक्रेता सिद्ध हो सकता है। आधुनिक युग में बड़े व्यवसायी-गण इस पद्धति को विक्रेता के चुनाव के लिए अपनाते हैं। इसके अन्तर्गत विक्रेता की विक्रय में रुचि देखी जाती है, उसके व्यक्तित्व की परीक्षा ली जाती है। उसकी मानसिक तथा सीखने की क्षमता देखी जाती है। मनोवैज्ञानिक आधार पर यदि विक्रेता सफल पाया जाता है तो उसकी अन्य जाँच की जाती है।

5. **सिफारिश पर विचार**—कभी-कभी प्रार्थियों को नियुक्त करने के बारे में कुछ लोग सिफारिश करते हैं। विक्रेताओं के अन्तिम चुनाव करने के पहले उन संदर्भों

की जाँच की जाती है जो कि उसने अपने आवेदन-पत्र में लिखे हैं। इन संदर्भों को अत्यन्त गोपनीय रखा जाता है परन्तु केवल सिफारिश के आधार पर नियुक्त करना उचित नहीं कहा जा सकता।

6. **डॉक्टरी जांच**—विक्रेता का स्वास्थ्य उचित होना परम आवश्यक है। स्वस्थ और प्रभावशाली शरीर क्रेता को प्रभावित करेगा। यदि विक्रेताओं का स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा तो वह अपने ग्राहक को सन्तुष्ट नहीं कर पायेगा। शारीरिक परीक्षण का कार्य किसी योग्य डॉक्टर द्वारा किया जाना चाहिए। केवल पूर्णतः स्वस्थ व्यक्ति को ही विक्रेता नियुक्त करना चाहिए।

7. **अन्तिम चुनाव**—जब विक्रेता साक्षात्कार, मनोवैज्ञानिक जाँच, सिफारिशों की जाँच, डॉक्टरी जाँच इत्यादि में सफल हो जाता है तो उसका नियुक्ति-पत्र जारी कर दिया जाता है। इसे ही अन्तिम चुनाव करना कहते हैं। नियुक्ति पत्र में नियुक्ति की शर्तों, वेतन-मान, भत्ते, नियुक्ति काल, परीक्षावधि, कार्य क्षेत्र आदि का स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए। यदि नियुक्ति के पूर्व अवधान द्रव्य (Deposit) जमा कराने की प्रथा हो तो वह रकम प्रत्याशी से प्राप्त करने के बाद उसे सेवा में रत होने देना चाहिए।

प्रश्न 5. विक्रेता का चुनाव करते समय आप किन-किन बातों पर ध्यान देंगे?

What Points will you consider while selecting the salesman ?

उत्तर— विक्रेता के चुनाव में ध्यान दी जाने वाली बातें

(Points to be consider while Salecting a salesman)

अपनी कार्य पद्धति को स्वयं प्रेरणा से और सफलतापूर्वक कार्यान्वित कर सकने वाले विक्रेता का चुनाव करना एक कलापूर्ण और महत्वपूर्ण कार्य है। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यापार व्यवसाय की सफलता विक्रय पर निर्भर करती है। क्योंकि विक्रय ही व्यापार रूपी शरीर के लिए जीवन स्वांस के समान है। अतः व्यापार रुपी शरीर को जीवित बनाये रखने के लिए इसके स्वांस को ठीक प्रकार से संचालित करने में एक कुशल विक्रेता ही सफल हो सकता है। इस प्रकार विक्रेता की कुशलता ही व्यापार को दिनोंदिन बढ़ाने एवं सफल बनाने में सहायक हो सकती है। अतः विक्रेता के चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

1. **चरित्र (Character)**—अच्छे चरित्र वाले व्यक्ति से व्यापार की साख जमती है तथा इसके विपरीत चरित्रहीनता के कारण व्यवसाय की हानि होती हैं क्योंकि दुकान पर स्त्रियाँ तथा बालिकायें भी वस्तु खरीदने आती हैं। अतः यदि उनसे अभद्र व्यवहार किया गया तो ग्राहक वहाँ पैर जाना पसन्द नहीं करेंगे।

अतः विक्रेता का चरित्र ऐसा होना चाहिये जो कि ग्राहकों को आकर्षित एवं प्रभावित कर सके।

2. **शिक्षा** (Education)—विक्रय-कला की निपुणता, तांत्रिक शिक्षा, अनुभव, बात करने का ढंग नम्रता आदि शिक्षा के द्वारा ही विक्रेता में आते हैं। अतः विक्रेता का शिक्षित होना आवश्यक है इससे व्यापार की ख्याति में वृद्धि होती है।

3. **स्वभाव** (Nature)—विक्रेता का स्वभाव नम्र, हँसमुख, सहनशील, उत्साही एवं निर्भीक होना चाहिए जिससे ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करने में वह सफल हो सके। अतः विक्रेता का चुनाव करते समय उसके स्वभाव को ध्यान में रखना चाहिये।

4. **स्वास्थ्य** (Health)–अस्वस्थ व्यक्ति किसी भी कार्य को करने में सफल नहीं हो सकता है। साथ ही वह थोड़े से परिश्रम से ही थक जाता है। अतः चुनाव करते समय यह ध्यान देना आवश्यक है कि उस व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिये।

5. **उम्र** (Age)—कम अवस्था वाले व्यक्तियों की बात पर कोई ध्यान नहीं देता है और अधिक अवस्था वाले व्यक्तियों को जीवन के प्रति कोई महत्वाकांक्षा नहीं होती है। अतः विक्रेता मध्यम अवस्था के ही व्यक्ति होने चाहिए। किन्तु कभी कभी व्यवसाय में विक्रेता की उम्र बेची जाने वाली वस्तु पर भी निर्भर होती है। जैसे यदि वस्तु नवयुवकों के लिए है तो नवयुवक विक्रेता ही उपयुक्त होंगे।

6. **मनोवैज्ञानिक** (Psychologist)—यदि विक्रेता को मनोविज्ञान का ज्ञान है तो वह ग्राहकों की प्रवृत्तियों, रुचियों एवं भावनाओं को शीघ्र ही समझ सकता है। अतः वह ग्राहक के अनुकूल वातावरण निर्मित कर व्यापार की बिक्री बढ़ाने में समर्थ हो सकता है।

7. **पेशे के प्रति रुचि** (Aptitude for the Profession)—जिन व्यक्तियों की रुचि जिस व्यवसाय में नहीं होती है वे उसमें सफल नहीं हो सकते। अतः विक्रेता उसी व्यक्ति को चुनना चाहिये जो कि उस व्यवसाय में रुचि रखता हो अन्यथा वह मन लगाकर काम नहीं करेगा।

8. **प्रशिक्षण** (Training)—चुनाव करते समय ऐसे व्यक्तियों को प्राथमिकता देनी चाहिये जो कि प्रशिक्षित हों। इससे कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। भारत में बड़ी-बड़ी व्यापारिक संस्थायें (जैसे बिरला, डी. सी. एम. आदि) अपने यहाँ विक्रेताओं को प्रशिक्षण देती हैं।

3. **प्रचलित भाषाओं का ज्ञान**—विक्रेता का चयन करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिये कि उसे उस क्षेत्र में प्रचलित भाषाओं का ज्ञान अवश्य हो, जिस क्षेत्र में उसकी नियुक्ति की जानी है।

10. **दंभ का अभाव** (Absence of Pride)—'घमण्डी का सिर नीचा होता है।' अतः विक्रेता को दंभ से दूर होना चाहिए, क्योंकि ग्राहक दंभ या शक्ति से वश में नहीं होता है। विक्रेता नम्रता से ही किसी ग्राहक को आकर्षित करने में सफल हो सकता है।

11. **जातीयता एवं राष्ट्रीयता**—विक्रेता के पद पर अपने ही निकट के व्यक्ति को रखना चाहिये, क्योंकि वह व्यापारी के हितों के प्रति जागरूक होगा, किन्तु स्मरण रहे कि मनोवृत्ति इतनी संकीर्ण नहीं होनी चाहिये कि कर्मचारी चाहे कुशल हो या अकुशल, परन्तु हो अपनी जाति का। इससे हानि की आशंका है। विदेशों में अपने ही देश का व्यक्ति विक्रेता नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि लोग उसकी तरफ जल्द आकर्षित हो सकेंगे और उसकी बातों को महत्व देंगे। इस प्रकार से राष्ट्रों में आपस का प्रेम भी बढ़ेगा।

प्रश्न 6. "अच्छे विक्रेता पैदा नहीं होते परन्तु उचित रूप से संगठित एवं निर्देशित विक्रय प्रशिक्षण कार्यक्रम से बनाये जाते हैं।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

"Good Salesman are not born but made by properly organised and directed sales training programmes." Examine this statement.

अथवा

'विक्रेता पैदा नहीं होते पर बनाये जाते हैं।' इस कथन की पुष्टि कीजिये।

अथवा

क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि 'अच्छे कवियों की तरह सफल विक्रेता पैदा होते हैं, उन्हें बनाया नहीं जाता।'

Do you agree with the statement that 'Like good poets successful salesmen are born and not made. ?'

उत्तर—

विक्रेता का प्रशिक्षण

महत्व—विक्रेता का चयन करने के उपरान्त उसे विक्रय कला का विधिवत् प्रशिक्षण देना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान युग में बढ़ती हुई प्रतियोगिता और विश्वव्यापी बाजारों के विकास ने विक्रय कला के महत्व को और अधिक बढ़ा दिया है। भलीभाँति प्रशिक्षित विक्रेता एक कुशल और सफल विक्रेता सिद्ध होता है। यह व्यवसाय के विक्रय संगठन का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज के लिए एक अमूल्य सम्पत्ति होता है।

कुछ नियोक्ता आज भी यह मानते हैं कि विक्रेता पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते।' इसलिये वे प्रशिक्षण की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। ये यह तर्क रखते हैं कि प्रशिक्षण में समय एवं धन की हानि होती है। परन्तु यह उनका भ्रम है। एक जन्मजात प्रशिक्षित डॉक्टर या इन्जीनियर एक **जन्मजात बिना प्रशिक्षण** पाये हुए डॉक्टर या इन्जीनियर से कहीं अधिक श्रेष्ठ होता है। यही बात विक्रय-कला के क्षेत्र में भी लागू होती है। एक जन्मजात प्रशिक्षित विक्रेता ऐसे जन्मजात विक्रेता से जो

कि अप्रशिक्षित है अधिक सफल एवं श्रेष्ठ होता है। प्रशिक्षण से उसके गुणों में तथा उसकी योग्यताओं में निखार आ जाता है। इस सम्बन्ध में केन्फील्ड का यह कथन काफी उचित प्रतीत होता है कि **"कि अच्छे विक्रेता पैदा नहीं होते, परन्तु उचित ढंग से संगठित एवं निर्देशित विक्रय प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा बनाये जाते हैं।"**

मनुष्य के अन्दर गुण होते ही हैं परन्तु उचित शिक्षा द्वारा उनका विकास किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जन्म से कुशल विक्रेता नहीं होता। उसे ठीक शिक्षा की आवश्यकता है जिससे कि उसके गुणों का विकास हो सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार का व्यक्ति कम समय में विक्रय कला का सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त कर लेगा। जिस वस्तु का विक्रय किया जाता है उसकी पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिये कारखाने में कुछ दिन रह कर विक्रेता को यह सीखने की आवश्यकता रहती है कि वस्तु किस प्रकार तैयार की जाती है जिससे कि ग्राहकों के वस्तु सम्बन्धी सभी प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर दे सके। इसके बाद किसी अनुभवी विक्रेता के साथ रहकर विक्रय कार्य का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और यदि मौका मिले तो 10-15 दिन के लिये स्वयं विक्रेता की हैसियत से कार्य करना चाहिए। इस प्रकार कार्य करने में बड़े ध्यानपूर्वक अपनी त्रुटियों को समझने की चेष्टा कर उन्हें दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे विक्रय-कला में निपुणता प्राप्त हो जायेगी। यद्यपि कोई भी व्यक्ति कभी पूर्ण नहीं हो सकता, सीखने के लिए हमेंशा गुंजाइस रहती है और विशेषकर एक विक्रेता तो प्रतिदिन अपने ग्राहकों से कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। अमेरिका आदि देशों में तो विक्रय-कला का सैद्धान्तिक ज्ञान देने के लिए कुछ शिक्षण-संस्थायें खुली हुई हैं जो कि पास होने पर डिप्लोमा भी देती हैं।

प्राचीन काल में यह धारणा थी कि विक्रेता जन्मते (Salesmen are born) है, बनाये नहीं जाते। परन्तु इस धारणा को नेशनल कैश रजिस्टर कम्पनी (National Cash Register Co.) के संस्थापक श्री जॉन एच. पैटर्सन (John H. Patterson) ने गलत सिद्ध किया और उन्होंने बताया कि बिक्रीकार जन्म से नहीं होते बल्कि वैज्ञानिक प्रशिक्षण द्वारा बनाये जाते हैं। यह तो सम्भव है कि कुछ व्यक्तियों मैं विक्रेता होने के कुछ गुण प्रारम्भ से ही हों परन्तु जब तक उन्हें बिक्रेता प्रशिक्षण भली-भाँति नहीं दे दिया जाता वे कदापि सफल विक्रेता नहीं बन सकते।

प्रशिक्षण की विधियाँ
(Methods of Training)

1. शिक्षणार्थी विधि (Apperentlces ship Method)—इस विधि में विधि के अन्तर्गत जिस विक्रेता को प्रशिक्षण देना है उसे किसी अनुभवी विक्रेता के साथ

में रखकर प्रशिक्षित किया जाता है। ऐसे व्यक्ति को जो अनुभवी विक्रेता के साथ कुछ समय तक कार्य करता है, शिक्षणार्थी कहलाता है। जब प्रशिक्षित विक्रेता सर्वप्रथम विक्रय कार्य हेतु बाहर जाने लगे तो किसी अनुभवी विक्रेता के साथ उसे भेजना चाहिये ताकि अनुभवी विक्रेता के साथ वह अपने कार्य को जागरूकता से अधिक अच्छी तरह परिचित हो सके। अनुभवी विक्रेता के साथ रहते हुए उसे उचित मार्ग दर्शन मिलेगा। अनुभवी विक्रेता उसे सफल विक्रय की आवश्यक बातें बतायेगा तथा किसी प्रकार की त्रुटि या कमी रहने पर सदैव सचेत करेगा। सफल एवं अनुभवी विक्रेता के साथ यात्रा करने से प्रशिक्षणार्थी को विभिन्न विक्रय-क्षेत्रों की विशिष्टताएँ जल्दी समझ में आवेंगी तथा उसका परिचय ग्राहकों से भी हो जावेगा जिससे उसे भविष्य में वस्तु-विक्रय कार्य में सहयोग मिलेगा।

2. **सायंशाला एवं अर्द्ध-समय प्रशिक्षण**—उन देशों में जहाँ विक्रय-कला का अधिक विकास हुआ है वहाँ विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय विक्रय-कला की शिक्षा के लिए सायंकालीन कक्षाएँ (Evening classes) लगाते हैं जिनमें विक्रेताओं को विक्रय-कला की शिक्षा दी जाती है। इनमें मुख्य रूप से सैद्धान्तिक शिक्षा दी जाती है। सायंकालीन कक्षा की भाँति ही अर्द्ध-सामयिक (Part-time) प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है।

3. **पत्राचार शालाएँ** (Correspondence Schools)—पत्राचार शालाएँ अपने पत्राचार पाठ्यक्रम द्वारा विक्रेताओं को प्रशिक्षण देती हैं। वे व्यक्ति जो विक्रय कला की शिक्षा स्वयं उपस्थित होकर नहीं पा सकते हैं उनके लिए तो ये संस्थायें वरदान स्वरूप ही हैं। इन विधि में ये संस्थायें अपने विद्यार्थियों को डाक द्वारा एक-एक करके पाठ भेजते हैं तथा प्रश्नावली भी भेजते हैं विद्यार्थीगण इन पाठों का अध्ययन करते हैं तथा प्रश्नावली में निर्धारित प्रश्नों के उत्तर लिखकर इन पत्राचार शालाओं को भेजते हैं। पत्राचार शालाएँ उन उत्तरों को जाँचती हैं तथा गल्तियों के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश भेजकर परीक्षार्थी को पाठ्यक्रम से प्रशिक्षित करती हैं तथा बाद में उन्हें डिप्लोमा दे देती हैं। इस विधि में भी विक्रय कला के सैद्धान्तिक पक्ष का ही ज्ञान दिया जाता है।

4. **विक्रय गोष्ठियाँ** (Sales Confernces)—विक्रय गोष्ठियों में सभी विक्रेता आपस में बैठकर किसी एक निर्धारित विषय पर बातचीत करते हैं। इन गोष्ठियों से विक्रेताओं को व्यावहारिक अनुभव की कई बातें मालूम हो जाती हैं। इसमें अधिक विक्रय के लिए सुझाव आते हैं जिनको उपयोग में लाने से विक्रय में वृद्धि हो जाती है।

5. **विक्रय सभाएँ**—जब किसी संस्था के अनेक विक्रेता दूर-दूर तक फैले हुए होते हैं तो इन दूर-दूर फैले विक्रेताओं को आपस में मिलने, अपने अनुभव सुनाने तथा संस्था की नीति को इन विक्रेताओं के समक्ष रखने के लिए विक्रय सभाएँ आयो-

जित की जाती हैं। इन विक्रय सभाओं में अनेक विषयों जैसे नई विक्रय नीति, नई विज्ञापन नीति, उपभोक्ता की रुचि, नये बाजारों की खोज आदि पर विचार किया जा सकता है।

6. **विक्रय साहित्य**—विक्रय प्रशिक्षण की इस विधि में बड़े-बड़े उपक्रम एवं कम्पनियाँ, अपनी आवश्यकता के अनुरूप विशेषज्ञों से विक्रय साहित्य तैयार कराकर छपवा लेती हैं तथा प्रशिक्षणार्थियों में विक्रय साहित्य वितरित कर दिया जाता है।

7. **संयुक्त प्रशिक्षण**—इस प्रकार के प्रशिक्षण में सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनों प्रकार से प्रशिक्षण एक साथ दिये जाते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम विक्रय विशेषज्ञों एवं विक्रय कला शिक्षण सस्थाओं के सहयोग से तैयार किये जाते हैं।

8. **भाषण या व्याख्यान**—इस विधि के अन्तर्गत सामूहिक रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण की इस विधि में सभी प्रशिक्षणार्थियों को एक हाल में एकत्रित कर लिया जाता है तथा उनके समक्ष विक्रय कला के विशेषज्ञों एवं प्रबन्धकों के द्वारा भाषण दिया जाता है।

9. **विक्रय प्रदर्शन**—प्रशिक्षण की इस विधि के अन्तर्गत विक्रेताओं के समक्ष विक्रय विशेषज्ञों के द्वारा प्रदर्शन करके बताया जाता है कि ग्राहकों का किस प्रकार से स्वागत किया जाय, संस्था की नीतियों एवं उत्पाद को किस प्रकार ग्राहकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाय, उनकी शंकाओं का समाधान किस प्रकार किया जाय आदि।

10. **बिक्री नाटक**—इस विधि के अन्तर्गत नाटक खेलकर विक्रेताओं को प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अन्तर्गत कुछ विक्रेता का और कुछ व्यक्ति ग्राहक का अभिनय करते हैं तथा शेष अन्य व्यक्ति इस नाटक को देखते हैं। विक्रेताओं को प्रशिक्षित करने का यह एक अच्छा तरीका है।

3 विक्रेता का पारिश्रमिक
(Remuneration of Salesman)

प्रश्न 7. विक्रेता को पारिश्रमिक देने की कौन-कौनसी विभिन्न पद्धतियाँ हैं ? उनमें से आप कौन-सी विधि सर्वोत्तम समझते हैं और क्यों ?

What are the different methods of remunerating Salesmen ? Which method do you think to be the best and why ?

उत्तर—

विक्रेता का पारिश्रमिक
(Remuneration of a Salesman)

विक्रय-कला की सफलता के लिये विक्रेता का पारिश्रमिक पर्याप्त एवं ठीक समय पर होना आवश्यक है। सामान्यतया यह देखा गया है कि सस्ते विक्रेता संस्था के लिए भविष्य में मँहगे सिद्ध होते हैं अर्थात् वे कम विक्रय कर संस्था को अधिक लाभ नहीं होने देंगे। इसलिए यह कहावत है कि "सस्ते विक्रेता अधिक वेतन वाले विक्रेताओं से मँहगे हो सकते हैं।"

एक विक्रेता को पारिश्रमिक निम्नलिखित चार प्रकार से दिया जा सकता है—

1. निश्चित वेतन के रूप में।
2. विक्रय पर कमीशन।
3. निश्चित वेतन तथा कमीशन।
4. अभ्यंश प्रथा।
5. लाभ विभाजन प्रणाली।
6. आहरण लेखा एवं कमीशन पद्धति।
7. विशेष कार्य-विधि
8. अन्य विधियाँ।

अब हम प्रत्येक प्रकार का अलग-अलग वर्णन करेंगे।

1. निश्चित वेतन

इस पद्धति के अन्दर विक्रेता की नियुक्ति के समय उसका पारिश्रमिक निश्चित कर दिया जाता है। प्रतिवर्ष, यदि कार्य सन्तोषजनक होता है तो उसकी बढ़ती दे दी जाती है। यदि कार्य असन्तोषजनक होता है तो उसे कोई बढ़ती नहीं मिलती है।

गुण—(i) पारिश्रमिक की दर निश्चित रहती है। उसे यह चिन्ता नहीं रहती है कि किसी महीने में उसका वेतन कम भी हो सकता है।

(ii) पारिश्रमिक देने की यह विधि अधिक आसान है। पारिश्रमिक निश्चित होने से उसका लेखा करने में किसी प्रकार की दिक्कत नहीं होती।

(iii) इस विधि को अपनाने से प्रबन्धकों को प्रबन्ध एवं नियन्त्रण सम्बन्धी कार्यों में आसानी रहती है।

(iv) विक्रेताओं के नैतिक स्तर में वृद्धि होती है।

(v) इस विधि में विक्रेता विक्रय-संवर्द्धन के अतिरिक्त विक्रय सम्बन्धी अन्य ठोस कार्यों में भी अपना सहयोग प्रदान कर सकता है।

(vi) सन्तोषजनक कार्य करने पर प्रतिवर्ष बढ़ती भी मिल सकती है।

(vii) व्यापार अवसाद के समय अर्थात् उस समय जबकि वस्तु की बिक्री बहुत कम हो उसे कोई हानि नहीं उठानी पड़ती है। उनका वेतन तो निश्चित ही रहता है, चाहे व्यापार में हानि हो या लाभ।

(viii) अपने वेतन से सन्तुष्ट रहता है। अतः उसकी कार्य-क्षमता पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।

दोष—(i) निश्चित पारिश्रमिक होने के कारण उसे बिक्री-वृद्धि की चिन्ता नहीं रहेगी। वह तो सोच लेगा कि बिक्री चाहे कम हो या अधिक उसे तो निश्चित पारिश्रमिक ही मिलेगा। वास्तव में इस प्रकार की भावना व्यापार के लिए बहुत हानिकारक है। व्यावसायिक उन्नति के लिए मनुष्य को सदैव परिश्रमी होना चाहिए, इसके अभाव में ग्राहकों की संख्या कम हो जाती है। इसके फलस्वरूप व्यापार को हानि होती है।

(ii) इस प्रथा में उन्नति की आशा बहुत कम रहती है क्योंकि पारिश्रमिक की दर निश्चित रहती है। मनुष्य सदैव आशा की भावना से ही प्रेरित होकर किसी कार्य को किया करता है। यह बात इस प्रणाली में नहीं पाई जाती है।

(iii) इस विधि में योग्य एवं अयोग्य दोनों ही प्रकार के विक्रेताओं को समान दृष्टि से देखा जाता है तथा समान वेतन दिया जाता है जिसका योग्य विक्रेताओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

निश्चित पारिश्रमिक पद्धति के गुणों एवं दोषों का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रथा में गुणों की अपेक्षा दोष अधिक हैं। क्योंकि निश्चित वेतन-दर होने के कारण विक्रेता को कोई प्रलोभन नहीं रहता। अतः वह अपने कार्य में ढील-ढाल रखता है जो कि व्यापार के लिये बहुत हानिकारक है।

2. विक्रय पर कमीशन

इस पद्धति के अन्दर विक्रेताओं का कोई पारिश्रमिक निश्चित नहीं होता है। केवल यह तय कर दिया जाता है कि बिक्री पर इतने प्रतिशत कमीशन मिलेगा। विक्रेता अपने प्रयत्नों द्वारा जितनी भी बिक्री कर लेता है उसी हिसाब से उसे कमीशन दे दिया जाता है। इससे उसकी आय प्रति मास घटती-बढ़ती है।

गुण—(i) इस प्रणाली में व्यवसाय की उन्नति होती है क्योंकि विक्रेता अधिकतम कमीशन प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक ग्राहक बनाने का प्रयास करता है।

(ii) एक निश्चित पारिश्रमिक तय न होने के कारण विक्रेता अपने कार्य में ढील-ढाल नहीं डालता है क्योंकि वह जानता है कि जितनी भी ढील वह डालेगा उतना ही उसको नुकसान रहेगा। अतः वह विशेष तत्परता के साथ अपना काम करता है।

(iii) जिन दिनों व्यावसायिक उन्नति बहुत होती है उस समय इन विक्रेताओं को बहुत लाभ रहता है क्योंकि अधिक बिक्री होने से उन्हें कमीशन भी अधिक मिलता है।

(iv) पारिश्रमिक विक्रेता की योग्यता पर निर्भर करता है।

(v) नियोक्ता एव विक्रेता के सम्बन्धों में मतभेद नहीं होता है।

(vi) अपने द्वारा किये गये परिश्रम से वे सदैव सन्तुष्ट रहते है। निश्चित-

पारिश्रमिक पद्धति में वे प्रायः यह सोचा करते हैं कि उनके साथ अन्याय किया जा रहा है और उनके परिश्रम के अनुसार उन्हें प्रतिफल नहीं मिल रहा है। किन्तु इस प्रणाली में यह भावना नहीं रहती है क्योंकि विक्रेता जितना प्रयास करता है उसे उतना ही कमीशन मिल जाता है।

दोष—(i) व्यापार अवसाद (Trade Depression) के समय विक्रेताओं को बहुत हानि उठानी पड़ती है क्योंकि उस समय विक्री बहुत कम होने के कारण उनके कमीशन का धन भी कम हो जाता है। यह धन कभी-कभी तो इतना कम हो जाता है कि वे उस व्यवसाय को छोडने के लिए बाध्य हो जाते हैं। ऐसे समय में व्यवसायी को और भी अधिक हानि होगी क्योंकि उसके पास से एक अनुभवी व सुयोग्य विक्रेता चला जायगा।

(ii) नये विक्रेताओं के लिए यह प्रणाली लाभप्रद नहीं है क्योंकि आरम्भ में उन्हें ग्राहक बनाने में बहुत समय लगता है। आरम्भ में कई मास तक बहुत कम कमीशन मिलने के कारण वे निराश हो जायेंगे और अन्त में बाध्य होकर उस व्यवसाय को छोड़ देंगे।

(iii) कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जहाँ उस व्यापार को सुगमता से बढ़ाया जा सकता है तथा कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जहाँ व्यापार का विस्तार करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में वे विक्रेता लाभ में रहेंगे जो उन्नत व्यापारिक क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। वे विक्रेता जो ऐसे क्षेत्रों में काम कर रहे हैं जहाँ व्यापार की वृद्धि करना सुगम नहीं है, हानि में रहेंगे।

(iv) विक्रेताओं के क्षेत्र-विभाजन में पक्षपात किया जा सकता है। अच्छे व्यावसायिक क्षेत्र चापलूस विक्रेताओं को दिये जा सकते हैं और खराब क्षेत्र सीधे-सादे विक्रेता को दिये जा सकते हैं।

(v) निश्चित वेतन न होने के कारण विक्रेता असन्तुष्ट रहते हैं जिससे कार्यक्षमता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

(vi) विक्रेता नये ग्राहक बनाने का कम प्रयास करेंगे। वे अधिकतर ध्यान पुराने विक्रेताओं पर ही देंगे क्योंकि नये ग्राहक बनाने में समय व परिश्रम बहुत लगता है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वे अपनी यह धारणा कर सकते हैं कि एक निश्चित विक्रय की संख्या कम से कम अवश्य बनी रहे जिससे कि एक निश्चित धन कमीशन के रूप में, उन्हें प्राप्त होता रहे। वास्तव में उनकी यह भावना व्यावसायिक उन्नति के पक्ष में नहीं है।

(vii) ग्राहकों की संख्या में वृद्धि करने के लिए अधिक कमीशन प्राप्त करने के हेतु विक्रेता उधार माल बेचना आरम्भ कर देते हैं। इस सम्बन्ध में वे अपने स्वामियों से कुछ गलत बातें बताकर उधार माल बेचने की आज्ञा ले लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अप्राप्य ऋण (Bad debts) की संख्या बढ़ने लगती है। जिससे व्यापार को हानि होती है।

(viii) विक्रेताओं पर नियोक्ताओं का कोई प्रबन्ध नहीं रहता है।

(ix) इस विधि में विक्रेता द्वारा अर्जित पारिश्रमिक की गणना का कार्य कठिन हो जाता है।

विक्रय कमीशन-पद्धति पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि इस प्रणाली में भी गुणों की अपेक्षा दोष अधिक हैं। यह ठीक है कि विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार कमीशन की दर को घटाया-बढ़ाया जा सकता है किन्तु फिर भी उसका पूर्ण दोष दूर नहीं हो पाता है।

3. निश्चित वेतन तथा कमीशन

उपर्युक्त दोनों प्रणालियों के दोषों को दूर करने के लिए इस पद्धति का प्रचलन किया गया है। इस प्रथा में विक्रेताओं का वेतन निश्चित रहता है तथा विक्रय पर निश्चित दर से कमीशन भी मिलता है। ऐसा होने से विक्रेताओं को सन्तोष रहता है क्योंकि उन्हें एक निश्चित वेतन मिलने की आशा सदैव बनी रहती है।

गुण—(i) निश्चित वेतन के साथ-साथ कमीशन भी मिलता है। कमीशन का कम या अधिक होना बिक्री के ऊपर निर्भर है। अधिकतम कमीशन प्राप्त करने के लिए प्रत्येक विक्रेता खूब बिक्री करने का प्रयास करता है। इससे व्यवसाय को लाभ होता है।

(ii) व्यापार अवसाद के समय विशेष हानि उठानी पड़ती है क्योंकि उसे निश्चित वेतन मिलने की तो आशा सदैव रहती है। केवल अतिरिक्त हानि की ही सम्भावना रहती है। इसके विपरीत जब व्यापार में अभिवृद्धि होती है तो विक्रेताओं को बहुत लाभ रहता है क्योंकि उन दिनों उनके कमीशन की धन-राशि काफी बढ़ जाती है।

(iii) निश्चित वेतन तथा औसत कमीशन धनराशि इतनी हो जाती है कि विक्रेता अपने कार्य से प्रायः सन्तुष्ट रहता है। सन्तुष्ट रहने के कारण वह कुशलतापूर्वक कार्य करता है।

(iv) एक निश्चित वेतन की दर तय होते हुए भी एक विक्रेता अपने कार्य में ढील-ढाल नहीं डालता है क्योंकि कमीशन का लालच उसे सदैव अग्रसर किये रहता है।

(v) विक्रेता को इस प्रणाली से अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।

(vi) नये व पुराने दोनों ही विक्रेता खुश रहते हैं क्योंकि उन्हें उनकी योग्यतानुसार पारिश्रमिक मिल जाता है।

दोष—इस प्रथा में कोई विशेष दोष नहीं है। केवल इतना ही है कि यदि वेतन की राशि कम कर दी जाती है तो विक्रेता को हानि होने की सम्भावना रहती है। इसके विपरीत, यदि वेतन की राशि बहुत ऊँची तय कर दी जाती है तो व्यवसायी को हानि हो सकती है क्योंकि अपने वेतन से ही सन्तुष्ट हो जाने से विक्रेता बिक्री वृद्धि के विषय में बहुत कम सोचेगा। इस दोष को सुगमता से दूर किया जा सकता है। वेतन की राशि व कमीशन की दर ऐसी निश्चित करनी चाहिए जो न तो बहुत अधिक हो और न बहुत कम।

4. अभ्यंश प्रथा (Quota System)

इसके अन्तर्गत विक्रेताओं के निर्धारित क्षेत्रों में होने वाले विक्रय का अनुमान

लगा लिया जाता है। प्रत्येक विक्रेता को एक निश्चित वेतन पर नियुक्त करके किसी क्षेत्र में कार्य करने के लिए भेज दिया जाता है और उससे यह आशा की जाती है कि वह कम से कम उस अनुमानित बिक्री की सीमा तक अवश्य पहुँच जायेगा जो कि उसके क्षेत्र में सोची गई थी। इस कार्य के लिए एक निश्चित दर से कमीशन दिया जायगा। यदि वह अपनी लापरवाही के कारण उस अनुमानित बिक्री तक नहीं पहुँचता है तो उसके कमीशन की दर में कमी की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, यहृदि व इस अनुमानित सीमा से आगे बढ़ जाता है, तो उसको कार्य में कुशल समझा जायेगा तथा उसके कार्य के लिए अतिरिक्त कमीशन भी दिया जायेगा।

गुण—(i) इस प्रथा का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें विक्रेता अपनी अनुमानित बिक्री सीमा तक पहुँचाने की अवश्य चेष्टा करता है क्योंकि यदि वह उससे कम बिक्री करेगा तो उसके कमीशन की दर भी कम हो जायेगी।

(ii) कमीशन के साथ-साथ उसका वेतन भी निश्चित रहता है। इससे वह सन्तुष्ट रहता है तो उसकी कार्य-कुशलता भी बढ़ती है।

(iii) अनुमानित सीमा से अधिक बिक्री करने पर कमीशन की दर भी बढ़ जाती है। यह विक्रेता के लिए एक बहुत बड़ा प्रलोभन है।

दोष—इस प्रथा में कोई विशेष दोष नहीं है। केवल यह हो सकता है कि अनुमानित बिक्री सीमा भूल से या पक्षपात के कारण कम या अधिक हो सकती है। इससे विक्रेता को लाभ या हानि हो सकती है। यदि इस प्रथा को सुचारु रूप से कार्यान्वित किया जाये तो यह बहुत हितकर सिद्ध होगी।

नये नियुक्त हुए विक्रेताओं के पारिश्रमिक के विषय में लोगों में मतभेद है। कुछ लोग तो यह कहते है कि जब तक विक्रेता अपने कार्य में पूर्ण रूप से दक्ष न हो जाये तब तक उसे कोई कमीशन न दिया जाये। अन्य लोगों का मत है कि उन्हें प्रशिक्षण के समय में ही उत्साहित करने के लिए कुछ वेतन और कमीशन की दर अवश्य निर्धारित कर देनी चाहिये। वास्तव में, होना भी यही चाहिये। जब वे प्रशिक्षण की समाप्ति पर स्वतन्त्र रूप से कार्य करने लगें तो उनके वेतन और कमीशन की दर को बढ़ा देना चाहिए।

व्यावसायिक सफलता प्राप्त करने के लिए विक्रेताओं को सन्तुष्ट रखना चाहिये। इसके लिए आवश्यक है कि उनकी नौकरियाँ सुरक्षित हों एवं अच्छे कार्य-कर्त्ताओं के कार्य की प्रशंसा भी की जानी चाहिये। उनका मान बढ़ाने के लिये कभी-कभी उन्हें पारितोषिक भी देना चाहिये।

5. लाभ विभाजन प्रणाली
(Profit Sharing Plan)

विक्रेता को पारिश्रमिक देने की एक विधि यह भी है कि उन्हें संस्था के होने वाले लाभों में से एक हिस्सा दिया जाय। वर्ष के अन्त में संस्था को जो लाभ होता

है उसे एक निश्चित प्रतिशत के आधार पर, निश्चित क्षेत्र की बिक्री के आधार पर वर्ष भर की सम्पूर्ण बिक्री के आधार पर यह युक्त लाभ के आधार पर विक्रेता को पारिश्रमिक दिया जाता है।

गुण—(i) विक्रेता को लाभ का एक हिस्सा मिलता है। अतः वह अपने आपको संस्था का साझेदार समझता है।

(ii) इस प्रणाली के अनुसार विक्रेता को लाभ तभी मिल सकता है जबकि संस्था को लाभ हो।

अतः वह अपना कार्य ईमानदारी, परिश्रम एवं मितव्ययता से करने का प्रयत्न करता है।

(iii) जब संस्था को हानि होती है, इन दिनों में स्वामी को, विक्रेता को पारिश्रमिक देने की चिन्ता नहीं होती और अधिक लाभ के दिनों में से भी उसे इस सम्बन्ध में उसे कोई चिन्ता नहीं होती क्योंकि अधिक लाभ होने पर विक्रेता को अधिक पारिश्रमिक अपेक्षाकृत अधिक रुच होता है।

दोष—(i) इस प्रणाली में विक्रेता को निश्चित एवं नियमित पारिश्रमिक मिलने का विश्वास नहीं होता है क्योंकि संस्था में प्रतिवर्ष लाभ की मात्रा समान नहीं होती।

(ii) इस विधि में विक्रेता का पारिश्रमिक लाभ की मात्रा पर निर्भर करता है परन्तु लाभ की मात्रा केवल विक्रेता के प्रयत्नों पर ही निर्भर नहीं करती वरन् लाभ में कमी या वृद्धि के अन्य अनेक कारण हो सकते हैं। जब कभी विक्रेता के पर्याप्त परिश्रम करने के बाद भी संस्था को दूसरे कारणों से लाभ कम हो तो ऐसी स्थिति में यह विधि उचित नहीं कही जा सकती।

(iii) लाभ के अन्य कारणों के साथ-साथ संस्था के सभी विक्रेताओं, वह विक्रेता जो कम परिश्रम करता है एवं वह विक्रेता जो अधिक परिश्रम करता है, दोनों के सम्मिलित प्रयास से प्राप्त होता है परन्तु पारिश्रमिक इन दोनों ही प्रकार के विक्रेताओं को समान रूप से मिलता है जो कि उचित नहीं है।

6. आहरण लेखा एवं कमीशन विधि
(Drawing Account and Commission Method)

इस पद्धति के अन्दर विक्रेता को व्यवसाय के प्रति सप्ताह/माह/पाक्षिक एक निश्चित रकम निकालने का अधिकार रहता है जिसे उसके आहरण खाते (Drawing Account) में लिखा जाता है और एक निश्चित समयावधि के पश्चात् उसके द्वारा बिक्री किये गये माल पर अर्जित कमीशन से समायोजित कर दिया है। यदि विक्रेता को देना होता है तो उसको दे दिया जाता है और यदि उससे लेना निकलता है तो भावी बिक्री से समायोजित करने के लिए उसके खाते में बाकी निकाल देते हैं।

गुण—(i) इस पद्धति में विक्रेता को यात्रा आदि पर व्यय करने हेतु अग्रिम राशि प्राप्त हो जाती है जिससे वह खर्च की चिन्ता से मुक्त रहता है।

(ii) विक्रेता इस प्रणाली में खर्चों आदि पर नियन्त्रण कर लाभ की मात्रा को बढ़ाते हैं जिससे उनका स्वयं का लाभ भी बढ़ता है।

(iii) विक्रेता इस प्रणाली में अपने आप को व्यवसाय का कर्मचारी न मानकर व्यवसाय का साझीदार मानते हैं व संस्था को ज्यादा लाभ देने का प्रयास करते हैं।

दोष—(i) पहले से ही राशि मिल जाने से विक्रेता अनावश्यक व्यय कर देता है। वह मितव्ययी नहीं रह पाता।

(ii) आहरण हेतु रकम की व्यवस्था करने का पूर्ण उत्तरदायित्व व्यवसायी पर ही आ जाता है। यदि संस्था में हानि होती है तो भी उसे अकेले ही सहन करनी पड़ती है।

7. विशेष-कार्य विधि
(Special Task Method)

इस पद्धति में प्रत्येक विक्रता के लिए कुछ विशिष्ट कार्य निर्धारित कर दिये जाते हैं और उस विशिष्ट कार्य हेतु उसे अलग से कमीशन दिया जाता है। यह एक विशेष पद्धति है जिसे विशेष अवसरों पर ही प्रयोग में लाया जाता है।

गुण—(i) विशिष्ट कार्यों को कराने के लिए यह पद्धति उत्तम है।

(ii) इस पद्धति में विक्रेता को अतिरिक्त आय होती है तथा बिक्री बढ़ने का अवसर मिलता है जिससे दीर्घकाल में और भी लाभ होते हैं।

दोष—(i) इस विधि को स्वतन्त्र रूप से नहीं अपनाया जा सकता।

(ii) नवीन विक्रेता विशिष्ट कार्यों को नहीं कर पाते हैं।

8. अन्य विधियाँ
(Other Methods)

उपरोक्त विधियों को तोड़-मोड़कर अन्य नयी विधियाँ भी बनायी जा सकती हैं, जिनका प्रयोग व्यवसाय एवं बाजार की स्थिति को ध्यान में रखकर किया जाता है। ये विधियाँ निम्न हो सकती हैं—

(1) **इनामी योजनाएँ**—कभी-कभी विक्रेताओं में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा निर्माण करने हेतु इनामी योजनाएँ प्रारम्भ की जाती हैं। इनका सदैव उपयोग करना आन्तरिक कलह को उत्पन्न करना है, जो व्यवसाय के लिए हानिकारक है।

(2) **भत्ते एवं अन्य सुविधाएँ**—कुछ संस्थाएँ अपने विक्रेताओं को पेन्शन व सामाजिक सुरक्षा की अन्य सुविधाएँ प्रदान करती हैं जैसे प्रोविडेण्ट फण्ड, बीमा, चिकित्सा सुविधाएँ, ग्रेच्युटी, यात्रा भत्ते आदि।

विक्रेता किसी एक को सर्वोत्तम नहीं बना सकते। यह प्रत्येक संस्था की स्थिति पर निर्भर करता है, और इस दृष्टिकोण से वही विधि सर्वोत्तम मानी जा सकती है, जिससे विक्रेताओं की नौकरी सुरक्षित हो एवं अच्छे विक्रेताओं को अच्छा पारिश्रमिक भी मिले।

प्रश्न 8. विक्रय कोटा (Quota) किस प्रकार निर्धारित किया जाता है ? इसके लाभ और हानियाँ बताइए ।

How is a sales quota determired ? Enumerate its merits and demerits.

उत्तर—कोटा विधि के अन्तर्गत प्रत्येक विक्रेता के लिए विक्रय की एक न्यूनतम सीमा निर्धारित कर दी जाती है । इसी न्यूनतम बिक्री को 'कोटा' कहा जाता है । इस सीमा तक विक्रय करने पर विक्रेता को प्रतिमाह निश्चित वेतन दिया जाता है । जब बिक्री की मात्रा उस कोटे से अधिक हो जाती है तो बढ़ी हुई मात्रा पर कमीशन या बोनस दिया जाता है । 'कोटा' पद्धति में दिया जाने वाला वेतन माह के अन्त में चुकाया जाता है । इस विधि में प्रत्येक विक्रेता का विक्रय क्षेत्र निश्चित रहता है और मासिक वेतन स्थिर रहता है ।

यह विधि वेतन तथा कमीशन विधि का ही एक अंग है । इसे इस उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है । मान लें कि मध्यप्रदेश के इन्दौर शहर में एक संस्था पंखे बनाने और बेचने का कार्य करती है, यह संस्था अपने यहाँ एक विक्रेता 250 रु० प्रतिमाह पर रखती है और उसके लिए एक माह में 150 पंखे बेचना अनिवार्य कर देती है । यदि विक्रेता 150 पंखे प्रतिमाह से अधिक बेचेगा तो उसको $2\frac{1}{2}$ रु० प्रति पंखा कमीशन या बोनस और मिलेगा तो इस प्रकार की पद्धति को 'कोटा' योजना कहते हैं । यदि विक्रेता ने किसी माह में 250 पंखे बेच दिये तो उसे (250–150) 100 पंखों पर $2\frac{1}{2}$ रु० प्रति पंखा अर्थात् 250 रु० और अधिक मिलेंगे । इस तरह 'कोटा' की दर विक्रय की मात्रा के साथ बढ़ती रहती है ।

कोटा पद्धति को वेतन एवम् कोटा पद्धति, कोटा एवम् बोनस पद्धति, वेतन एवम् बोनस पद्धति आदि विभिन्न नामों से भी पुकारा जाता है ।

कोटा योजना के गुण

(i) इस विधि में निश्चित वेतन मिलने के साथ ही विक्रेता को अधिक विक्रय करने की प्रेरणा मिलती है क्योंकि जैसे-जैसे वह विक्रय बढ़ायेगा, वैसे-वैसे उसे अधिक लाभ होगा ।

(ii) इस विधि में 'कोटा' निर्धारित कर देने से विक्रेता के समक्ष एक निश्चित लक्ष्य होता है । इस दृष्टि से यह पद्धति प्रेरणादायक है ।

(iii) कमीशन की दर में प्रगतिशील दर से वृद्धि होने से विक्रय बढ़ाने में विक्रेता अधिक रुचि लेता है ।

(iv) इस विधि में विक्रेता अपना कार्य उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से करता है, क्योंकि यदि वह अपने कोटे से कम विक्रय करता है तो इस कम विक्रय की राशि को आगामी महीनों में पूरा करना ही होता है ।

(v) इस विधि से व्यापार में वृद्धि होने के कारण व्यवसायी को भी लाभ होता है ।

कोटा योजना के दोष

इस पद्धति में कुछ दोष भी हैं जो कि निम्न हैं—

(i) इस विधि में सर्वप्रथम समस्या कोटा निर्धारित करने की है। बिना उचित कोटे के निर्धारण के यह पद्धति निराशापूर्ण हो सकती है।

(ii) कभी-कभी नियोक्ता को कोटा पूरा न करने पर भी वेतन देना पड़ता है।

(iii) इस विधि में प्रायः व्यवसायी अधिक कमीशन या बोनस न देने के उद्देश्य से कोटे की सीमा बहुत अधिक रख देते हैं। इस अधिक स्तर के लक्ष्य को प्राप्त करना विक्रेता के लिए कुछ कठिन होता है।

(iv) कोटा कम रखने से व्यवसायी को हानि होती है।

(v) इस विधि में विक्रेता अपना कोटा पूर्ण करने के लिए किसी भी प्रकार से विक्रय करता है तथा नगद एवं उधार दोनों तरह से वस्तुएँ बेच देता है। कभी-कभी उधार विक्रय की पूरी राशि प्राप्त नहीं होती है जिससे व्यवसायी को हानि उठानी पड़ती है।

इस विधि को एक अच्छी विधि के रूप में माना जा सकता है परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि कोटे का निर्धारण पूर्ण ईमानदारी के साथ काफी सोच-विचार कर किया जाये तथा उधार विक्रय पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाये। ●

4 विक्रय-नीति (Sales-Policy)

प्रश्न 9. एक उपक्रम की विक्रय-नीति को निर्धारित करते समय किन सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए।

Explain the principles which should be kept in mind while formulating sales-policy of a Concern.

उत्तर— **विक्रय नीति** (Sales Policy)

प्रत्येक व्यवसायी के लिए आवश्यक है कि वह वस्तु निर्मित होने के पूर्व ही विक्रय-नीति निर्धारित करे। जिस व्यवसायी की विक्रय-नीति जितनी अधिक ठोस होगी उसका व्यवसाय उतना ही अधिक समय तक जीवित रह सकेगा। प्रसिद्ध **विद्वान हेरोल्ड व्हाईट हेड के अनुसार** "एक विक्रय-नीति एक आधार पर और एक व्यवसाय की बिक्री क्रियाओं के मार्गदर्शन हेतु स्थापित की जाती है।" यह आवश्यकतानुसार परिवर्तन होने वाली होती है और कुशल व्यवसायी भी इसको समय समय पर परिवर्तित परिस्थितियों में बदलते रहते हैं। "एक विक्रय-नीति व्यवसाय एवं वितरक तथा जनसाधारण के सम्बन्धों को नियमित करती है।" एक संस्था की ख्याति (Reputation) मुख्य रूप से विक्रय-नीति एवम् वस्तु के गुण (quality of the product) पर ही आधारित होती है। जिन संस्थाओं की एक निश्चित विक्रय-नीति होती है उन संस्थाओं के बिक्रेता भी अपने कार्यों में स्थिरता रखते हैं।

विक्रय नीति का क्षेत्र (Scope of a Sales Policy)

एक विक्रय-नीति का निर्धारण बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। विक्रय-नीति में निम्नलिखित बातों पर विचार किया जाता है—विज्ञापन (Advertising), बिक्री प्रवर्तन (Sales Promotion), वितरण मार्ग (Distribution Channels), विक्रेताओं का चुनाव एवम् प्रशिक्षण (Selection and Training of Salesman), डिजाइन (Design), वस्तुओं की कीमत (Price of products), बिक्री की शर्तें (Terms of Sales), बिक्री के बाद सेवा (After Sales Service) आदि।

विक्रय-नीति निर्धारण के सिद्धान्त (Principles of the formulation of Sales Policy)

विक्रय-नीति का निर्धारण कुछ सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. प्रतियोगिता (Competition)
2. मूल्य (Price)
3. बाजार (Market)
4. विक्रय क्षेत्र (Trading Area)

1. **प्रतियोगिता** (Competition)—विक्रय-नीति का निर्धारण करते समय व्यवसाय की प्रतियोगिता को भी दृष्टिगत करना चाहिए। जब तक व्यवसाय की वस्तु में प्रतियोगी वस्तु से कुछ अधिक (Something Plus) नहीं होगा तब तक व्यवसाय ख्याति प्राप्त नहीं कर पायेगा। उपभोक्ता ख्याति विक्रय-नीति की रीढ़ की हड्डी है। क्रेता को अच्छी वस्तु ही नहीं, वरन् अच्छी सेवा भी मिलनी चाहिए जिसमें बिक्री के बाद की सेवा, मरम्मत सेवा, बदलने की सुविधा आदि सम्मिलित होती हैं।

2. **बाजार** (Market)—विक्रय-नीति में यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि वस्तु किस प्रकार की है और किन उपभोक्ताओं के लिए निर्मित की जा रही है। यदि उपभोक्ताओं की मात्रा अधिक या कम हो तो वितरण व्यवसाय भी उसी के अनुरूप होना चाहिए।

3. **मूल्य** (Price)—विक्रय-नीति के निर्धारण में वस्तु का मूल्य विशेष महत्व रखता है। अधिकांश एक जैसी वस्तुओं के मूल्य समान होते हैं। इसलिए यदि निर्माता वस्तु का मूल्य अधिक रखना चाहता है तो उसे वस्तु से प्राप्त होने वाली सेवायें भी अधिक उपलब्ध करनी पड़ेंगी। मूल्य-निर्धारण में उपभोक्ता की सन्तुष्टि के अतिरिक्त लागत और माल को भी ध्यान में रखना चाहिए।

4. **विक्रय-क्षेत्र** (Trading Area)—विक्रय-नीति निर्धारण सिद्धान्त के अन्तर्गत विक्रय क्षेत्र भी अपना अलग महत्व रखता है। यदि विक्रय का क्षेत्र छोटा है तो विस्तृत बिक्री की जायेगी। इसलिए अधिकांश व्यापारी गहन विस्तृत बिक्री से बिक्री की ओर बढ़ते हैं।

5 विक्रय क्षेत्र
(Sales Territory)

प्रश्न 10. विक्रय क्षेत्र किसे कहते हैं ? विक्रय क्षेत्रों को स्थापना से होने वाले लाभों को बताइये । साथ ही विक्रय क्षेत्रों के निर्धारण को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन कीजिए ।

What is meant by a 'Sales Territory' ? Discuss the advantages of establishing sales territories and also describe the factors which affect the determination of a sales territory.

उत्तर—"प्रभावकारी ढंग से समूचे विक्रय क्षेत्र का छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभाजन करना ही विक्रय क्षेत्रों का निर्धारण कहलाता है।"

बहुत-सी व्यावसायिक संस्थायें अपनी बिक्री क्रियाओं को प्रभावकारी ढंग से गठित करने, व्ययों में बचत करने, ग्राहक की सेवा अच्छी तरह से करने आदि के उद्देश्य से विक्रय क्षेत्रों का वितरण कर देती है। इस तरह स्पष्ट है कि **विक्रय क्षेत्र, विक्रय नियोजन एवं विक्रय नियंत्रण की सुविधा से निर्धारित किया हुआ, एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है**। साधारणतः यह इतना बड़ा होता है कि एक अकेला विक्रेता इसे अच्छी तरह संभाल सके ।

भारत में विक्रय क्षेत्र का बँटवारा बहुत-सी संस्थाओं के द्वारा किया जाता है जैसे—फीएट कार एवं डॉज ट्रक बनाने वाली कम्पनी, दी प्रीमियर ओटोमोबाईल्स लिमिटेड कुरला, बम्बई के द्वारा अपने वितरकों को भौगोलिक दृष्टि को ध्यान में रखकर नियुक्त करती है। एक वितरक को कई जिले सौंप दिये जाते हैं। यह वितरक उन्हीं जिलों में विक्रय कर सकते हैं, उनके बाहर नहीं। आवश्यकतानुसार एक भौगोलिक क्षेत्र को अन्य उपक्षेत्रों में भी बाँटा जा सकता है।

विक्रय क्षेत्रों से होने वाले लाभ

विक्रय क्षेत्रों की स्थापना विक्रय के कार्य को व्यवस्थित एवं नियोजित ढंग से पूर्ण करने की आदर्श पद्धति है। विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से एक संस्था स्वयं को एवं अपने ग्राहकों को भी अनेक लाभ प्रदान करती है जो अग्रलिखित हैं—

संस्था को लाभ—विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से संस्था को होने वाले लाभ निम्नलिखित हैं—

(i) **विक्रेताओं पर नियन्त्रण**—विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से एक विक्रेता को उसके क्षेत्र में बिक्री या सेवा के लिए उत्तरदायी बनाया जा सकता है। साथ ही साथ उनके कार्यों पर भी उचित नियन्त्रण रखना आसान हो जाता है।

(ii) **प्रतियोगिता**—विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से प्रतियोगी उत्पादकों एवं व्यावसायिक संस्थाओं की प्रतियोगिता का मुकाबला आसानी से किया जा सकता है।

(iii) **समान अवसर**—विक्रय क्षेत्र की स्थापना से सभी विक्रेताओं को अपनी योग्यता, कुशलता एवं विक्रय-कला में निपुणता दिखाने के समान अवसर प्राप्त होते हैं।

(iv) **विपणन अनुसंधान**—विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से चूँकि विपणन क्षेत्र निश्चित होते हैं तो विपणन अनुसंधान अच्छी तरह से किया जा सकता है। विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से वे तथ्य एवं जानकारियाँ सरलता से एकत्रित की जा सकती हैं, जिनके आधार पर विक्रय प्रयत्न निर्देशित एवं नियन्त्रित किये जाते हैं।

(v) **बाजार का विस्तार**—विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से वर्तमान एवं संभावित ग्राहकों से विक्रेता गहनतापूर्वक सम्पर्क स्थापित कर सकता है। इससे बाजार का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है।

(vi) **विक्रेताओं की संख्या का अनुमान**—विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से संगठन को यह ज्ञात हो जाता है कि कितने विक्रेताओं की आवश्यकता है।

ग्राहकों को लाभ—विक्रय क्षेत्रों का बँटवारा करने से ग्राहकों को भी लाभ होते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(i) **उत्तम सेवा**—क्षेत्रीय विक्रेता के उसी क्षेत्र में रहने से वह ग्राहकों की सेवा शीघ्रता एवं सरलता से पूर्ण कर सकता है।

(ii) **शिकायतों का समाधान**—विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से क्षेत्रीय अधिकारी द्वारा ग्राहकों की शिकायतों का प्रभावी एवं शीघ्र समाधान किया जा सकता है।

(iii) **ग्राहकों की रुचि एवं सुझावों के आधार पर उत्पादन**—पृथक विक्रय क्षेत्रों की स्थापना से क्षेत्र विशेष में रहने वाले ग्राहकों की व्यक्तिगत रुचि एवं सुझावों के आधार पर उनकी आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन करना संभव हो सकता है।

(iv) **व्यक्तिगत संतुष्टि सम्भव**—विक्रय क्षेत्रों के निर्धारण से प्रत्येक विक्रेता के लिये अपने-अपने क्षेत्रों के ग्राहकों की व्यक्तिगत संतुष्टि करना संभव हो जाता है।

इस तरह विक्रय क्षेत्रों की स्थापना के द्वारा ग्राहकों व साथ ही साथ संस्थाओं को भी लाभ होता है, जिससे विक्रय कार्य आसानी व बिना रुकावटों के पूर्ण किया जा सकता है।

विक्रय क्षेत्र के आकार को प्रभावित करने वाले घटक

विक्रय क्षेत्र का आकार कितना हो यह बहुत सी बातों पर निर्भर करता है। जो कि निम्नलिखित हैं—

(i) **व्यवसाय की रीतियाँ एवं नीतियाँ**—विक्रय क्षेत्र किस प्रकार का हो यह व्यवसाय की रीतियों एवं नीतियों पर निर्भर करता है। यदि व्यवसाय की नीति व्यापार का विकास करना है तो सीमित क्षेत्र बनाकर व्यवसाय में वृद्धि की जा सकती है।

(ii) **वस्तु की प्रकृति**—यदि वस्तु बहुत ही अधिक मूल्यवान है और उसके ग्राहक कम हों तो निश्चित ही विक्रय क्षेत्र का आकार बड़ा होगा। परन्तु यदि वस्तु सर्वसाधारण के उपयोग की कम मूल्य वाली है तो विक्रय क्षेत्र छोटा होगा।

(iii) **बाजार की परिस्थितियाँ**— यदि बाजार में ग्राहकों की संख्या अधिक हुई तो विक्रय क्षेत्र का आकार छोटा होगा और यदि भविष्य में ग्राहकों के बढ़ने की सम्भावना नहीं है तो विक्रय क्षेत्र बड़ा रखना पड़ेगा।

(iv) **प्रतियोगिता**—यदि प्रतियोगिता अधिक है और विक्रेता को ग्राहक से बार-बार सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है तो विक्रय क्षेत्र छोटा होगा और यदि प्रतिस्पर्द्धा नहीं है या कम है तो विक्रय क्षेत्र बड़ा होगा।

(v) **यातायात की सुविधायें** —यदि यातायात की सुविधाएँ हैं तो विक्रय क्षेत्र बड़ा रखा जा सकता है, परन्तु यदि विक्रय क्षेत्र में यातायात की सुविधाएँ नहीं हैं, तो निश्चय ही विक्रय क्षेत्र छोटा रखना पड़ेगा।

(vi) **देश की आर्थिक स्थिति**—देश की आर्थिक स्थिति का भी विक्रय क्षेत्रों के आकार पर प्रभाव पड़ता है। यदि आर्थिक मंदी का समय है और बिक्री कम है तो प्रति इकाई विक्रय लागत को कम करके एवं विक्रय क्षेत्र में कमी करने के लिए विक्रय क्षेत्र के आकारों में वृद्धि की जा सकती है और जहाँ स्थिति अच्छी होती जाती है वहाँ विक्रय क्षेत्र छोटे कर दिये जाते हैं।

(vii) **विज्ञापन एवं बिक्री प्रवर्तन**—यदि किसी क्षेत्र में विज्ञापन बहुत अधिक किया जाता है तथा बिक्री (Sales Promotion) की कोई योजना अपनाई जाती है तो उसका क्षेत्र बढ़ा दिया जाता है।

(viii) **विक्रेता की योग्यता**—विक्रेता की योग्यता भी विक्रय क्षेत्रों के आकार को प्रभावित करती है। नये विक्रेताओं को साधारणतया छोटा विक्रय क्षेत्र दिया जाता है, तथा पुराने एवं कुशल विक्रेताओं को बड़ा विक्रय क्षेत्र।

(ix) **वितरण की पद्धति**—वितरण की पद्धति पर भी विक्रय क्षेत्र का आकार निर्भर करता है। यदि वितरण का कार्य थोक व फुटकर व्यापारियों के माध्यम से होता है तो विक्रय का क्षेत्र छोटा होगा। इसके विपरीत यदि वितरण का कार्य संस्था के स्वयं के भण्डार-गृहों व उपकार्यालयों के माध्यम से होता है तो विक्रय का क्षेत्र बड़ा होगा।

(x) **विक्रय क्षेत्र की लागत**—कोई भी संस्था किसी क्षेत्र विशेष में होने वाली बिक्री का एक निश्चित प्रतिशत ही व्यय कर सकती है। अतः यदि किसी विक्रय क्षेत्र में होने वाली बिक्री की तुलना में उस पर अधिक व्यय करना पड़ता है तो निश्चित ही संस्था उसके विक्रय क्षेत्र में वृद्धि कर देगी।

(xi) **जनसंख्या का घनत्व**—जनसंख्या का घनत्व भी विक्रय क्षेत्र के निर्धारण को प्रभावित करता है। जिन देशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है वहाँ पर विक्रय क्षेत्र छोटा रहता है तथा कम जनसंख्या के घनत्व वाले क्षेत्रों में विक्रय क्षेत्र बड़ा रहता है।

इस तरह स्पष्ट होता है कि उपरोक्त घटकों को ध्यान में रखकर ही विक्रय क्षेत्र के आकार को निर्धारित किया जा सकता है और तभी विक्रय कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है।

6 विक्रेता का प्रतिवेदन (Salesman's Report)

प्रश्न 11. विक्रेता प्रतिवेदन से आप क्या समझते हैं ? इसके कारणों का वर्णन करते हुए इसकी उपयोगिता बताइये ।

What do you mean by Salesman Report ? Describe its different types and utility.

अथवा

विक्रेता के प्रतिवेदन से क्या तात्पर्य है ? विक्रय प्रबन्धक इन प्रतिवेदनों का किस प्रकार उपयोग करता है ?

What is Salesman's report ? What use does the Sales Manager make of these reports ?

उत्तर— विक्रेता का प्रतिवेदन

विक्रेता का प्रतिवेदन उस रिपोर्ट को कहा जाता है, जो विक्रेता अपने द्वारा किये गये कार्य के सम्बन्ध में अपने नियोक्ता व्यापारी या संस्था को समय-समय पर प्रस्तुत करता है । इन प्रतिवेदनों से प्रबन्धक को बहुत-सी सूचनायें मिल जाती हैं, जिनका प्रयोग वे अपनी नीति-निर्णयों में करते हैं । यह प्रतिवेदन दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, त्रैमासिक, अर्द्ध-वार्षिक या वार्षिक हो सकता है । मुख्यतया एक प्रतिवेदन में निम्न बातें होती हैं—विक्रेता का नाम, स्थान, तारीख, समय, सम्पर्क किये गये ग्राहकों के नाम, पते तथा व्यवसाय तथा उनकी बिक्री की सम्भावना, प्रतियोगिता, बाजार की बदलती हुई परिस्थितियाँ, जनता की वस्तु के प्रति प्रतिक्रिया, नयी वस्तुयें, वस्तु की कीमत, रंग तथा आकार, पैकिंग आदि के परिवर्तन की आवश्यकता आदि ।

विक्रेता का प्रतिवेदन संक्षिप्त भी हो सकता है अथवा विस्तृत भी । सैद्धांतिक बात इस सम्बन्ध में यह है कि प्रतिवेदन संक्षिप्त होना चाहिए तथा उसमें बिक्री सम्बन्धी समस्त बातों की जानकारी होनी चाहिए ।

प्रतिवेदन के प्रकार (Kinds of the Salesman's Report)

(i) **साधारण प्रतिवेदन**—साधारण प्रतिवेदन में विक्रेता द्वारा बेचे गये माल, प्राप्त किये ऑडर्स; भेंट किये ग्राहकों की संख्या, सम्भावित बिक्री का अनुमान, उधार की प्रगति, ग्राहकों की प्रतिक्रिया एवं शिकायतों का विवरण भेजा जाता है । वे निम्न प्रकार के होते हैं—

1. **दैनिक प्रतिवेदन**—यह प्रतिवेदन एक विक्रेता अपने मुख्य कार्यालय को भेजता है इसमें उस दिन व्यय किये समय का विवरण, सम्पर्क किये ग्राहकों का विवरण, नये व्यापार की प्रगति, प्रदर्शन, उधार की प्रगति आदि का विवरण होता है ।

2. **साप्ताहिक या मासिक प्रतिवेदन**—कुछ संस्थायें साप्ताहिक या मासिक प्रतिवेदन भी अपने विक्रेताओं से माँगती हैं। यह प्रतिवेदन दैनिक प्रतिवेदनों के अतिरिक्त होता है। कुछ संस्थायें पाक्षिक प्रतिवेदन भी माँगती हैं।

(ii) **विशेष प्रतिवेदन**—उपरोक्त प्रतिवेदन के अतिरिक्त कुछ संस्थायें अपने विक्रेताओं से कुछ विशेष प्रतिवेदन भी बुलवाती हैं। ये विशेष प्रतिवेदन निम्न प्रकार के हो सकते हैं—

1. **नई बिक्री का प्रतिवेदन**—इस प्रकार के प्रतिवेदन में विक्रेता द्वारा बनाये गये नये ग्राहकों के सम्बन्ध में सूचना भेजी जाती है। ऐसी रिपोर्ट में नवीन ग्राहकों के नाम, पते, क्रय की गई मात्रा, आर्थिक स्थिति, उनकी माँग आदि की सूचना भेजी जाती है जिससे मुख्य कार्यालय पीछा करने (Follow up) की क्रिया कर सके।

2. **साख एवं संकलन प्रतिवेदन**—इस प्रकार के प्रतिवेदन में विक्रेता उधार एवं वसूली के सम्बन्ध में जानकारी भेजता है, कि किन-किन ग्राहकों को कितना उधार दिया गया, कितना वसूल हुआ और कितना लेना शेष रहा।

3. **सम्भावित ग्राहकों के सम्बन्ध में प्रतिवेदन**—सम्भावित ग्राहकों के सम्बन्ध में भी प्रतिवेदन भेजा जाता है, जिसमें संभावित ग्राहकों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी दी जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि उस ग्राहक की ओर संस्था ध्यान रखे और यदि आवश्यक हो तो बिक्री निरीक्षक उस संभावित ग्राहक से सम्पर्क स्थापित कर सके।

4. **विक्रय-व्यय प्रतिवेदन**—यह प्रतिवेदन प्रबन्धक को व्ययों पर नियन्त्रण करने में सहायक होता है। प्रति सप्ताह विक्रेता अपने व्ययों का ब्यौरा मुख्य कार्यालय को भेजता है।

उपरोक्त प्रतिवेदनों के अतिरिक्त भी विक्रेता से कुछ अन्य प्रकार के प्रतिवेदन बुलवाये जा सकते हैं जैसे—लौटाये गये माल का प्रतिवेदन, छूटे गये ग्राहकों का प्रतिवेदन, मार्ग-प्रतिवेदन, समय-व्यतीत प्रतिवेदन आदि।

विक्रेता प्रतिवेदनों का उपयोग

विक्रेता का प्रतिवेदन विक्रय संगठन के लिये बहुत महत्वपूर्ण होता है। विक्रेता प्रतिवेदनों का उपयोग व्यवसाय के द्वारा विभिन्न कार्यों एवं उद्देश्यों के लिये किया जा सकता है लेकिन उनमें से निम्न प्रमुख हैं—

1. विक्रेता प्रतिवेदनों से ग्राहकों का रिकार्ड तैयार करने में सहायता मिलती है।

2. विक्रेता प्रतिवेदनों से यह पता लगता है कि विक्रेता इस समय किस स्थान पर है तथा उसने अब तक किन-किन स्थानों की यात्रा कर ली है।

3. विक्रेता के प्रतिवेदनों से विक्रय प्रबन्धक को विक्रेताओं के सम्मुख आने वाली समस्याओं व कठिनाइयों का ज्ञान हो जाता है।

4. विक्रेता की कमियों को ध्यान में रखकर उसको सुधारने का अवसर दिया जा सकता है, जिससे उसकी नौकरी बनी रहे तथा वह कुशलता प्राप्त कर अधिक कमा सके।

5. विक्रेता प्रतिवेदनों के आधार पर बिक्री एवं उत्पादन में समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

6. ग्राहकों को साख सुविधायें प्रदान करने सम्बन्धी निर्णय लेना भी इन्हीं प्रतिवेदनों पर आधारित होता है।

7. विक्रेता प्रतिवेदनों से वस्तु की कमियों एवं प्रतियोगिता का पता लगता है और प्रबन्धक उन कमियों को दूर करके वस्तु को प्रतियोगी वस्तु से अच्छा बनाने का प्रयत्न कर सकता है।

8. विक्रेता प्रतिवेदनों के आधार पर वस्तु में ग्राहकों की माँग व रुचि के अनुसार परिवर्तन किये जा सकते हैं एवं नवीन उत्पादन बाजार में लाये जा सकते हैं।

9. विक्रेता प्रतिवेदनों के द्वारा विकय-सम्वर्द्धन कार्यक्रमों (Sales Promotion Programmes) की प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है।

संक्षेप में, विक्रेता प्रतिवेदन का आज के युग में बड़ा महत्व है, क्योंकि उत्पादन एवं विक्रय की मात्रा का निर्धारण करने, विज्ञापन का स्वरूप निर्धारित करने एवं बिक्री सम्बन्धी व्यय में मितव्ययता लाने में इसका उपयोग बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। इससे विक्रय क्षेत्र की वास्तविक स्थिति ज्ञात होती रहती है। वास्तव में देखा जाये तो विक्रेता का प्रतिवेदन विक्रय-क्षेत्र की विक्रय स्थिति का दर्पण होता है।

7 उपभोक्ता व्यवहार एवं अभिप्रेरणा (Consumer's Behaviour and Motivation)

प्रश्न 12. क्रय-सम्बन्धी उद्देश्य (motives) से क्या तात्पर्य है ? विक्रय कला में इनका महत्व बतलाइये। किन्हीं दो क्रय सम्बन्धी उद्देश्यों का विस्तार से वर्णन कीजिये।

What is meant by buying motives ? Explain their importance in salesmanship. Discuss any two of the buying motives in detail.

उत्तर—क्रय-उद्देश्य या प्रयोजन से तात्पर्य (Definition of bying motives)

'उद्देश्य' अथवा 'प्रयोजन' वह लालसा है, जिसकी संतुष्टि के लिए व्यक्ति प्रयत्न करता है। कोई भी उद्देश्य 'क्रय-उद्देश्य' उस समय कहलायेगा जबकि व्यक्ति किसी वस्तु के क्रय द्वारा संतोष पाना चाहता है। एक विक्रेता उद्देश्यों का सृजन नहीं

करता वरन् नेताओं की संतुष्टि सम्बन्धी लालसा को अपने द्वारा उत्पादित वस्तु के प्रति मोड़ने की चेष्टा मात्र करता है। क्रय-उद्देश्य व्यक्ति के अन्दर से ही उत्पन्न होते हैं, इसे न तो विक्रेता उत्पन्न कर सकता है और न ही यह किसी ग्राहक पर जबर्दस्ती लादी जा सकती है।

उद्देश्य दो प्रकार के होते हैं—(i) प्राथमिक, (ii) गौण। प्राथमिक उद्देश्य वे होते हैं जो कि जन्मजात होते हैं जैसे—भोजन, आराम, सेक्स, परिवार से प्रेम आदि। गौण उद्देश्य वे हैं जिन्हें व्यक्ति पर्यावरण से जन्म लेने के पश्चात् सीखता है, जैसे—सूचना, स्वच्छता, निपुणता, सुविधा सम्बन्धी दृष्टिकोण आदि।

क्रय-उद्देश्य का विक्रय में महत्व—द्वितीय विश्वयुद्ध काल तक व्यवसायियों के मन में उपभोक्ताओं के सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित थी कि उपभोक्ता एक असहाय, विवेकहीन और इच्छा शून्य प्राणी है। मगर अब समय परिवर्तित हो गया है। आज विपणन कर्त्ता को किसी भी वस्तु का उत्पादन करने के पूर्व इस बात का अध्ययन कर लेना अति आवश्यक हो गया है कि इस वस्तु को क्रय करने में ग्राहक का क्या उद्देश्य है? उपभोक्ता एक विशेष प्रकार की वस्तु ही क्यों क्रय करते हैं, तथा एक ही दुकान विशेष से क्यों खरीदते हैं? इसके कारणों की जानकारी होना अति आवश्यक है। यदि विक्रेता सही प्रयोजन जानने में सफल रहता है तो वह प्रभावोत्पादन विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय एवम् विक्रय-प्रवर्तन कार्यक्रम सफलतापूर्वक संचालित कर सकता है। क्रय-उद्देश्यों का ज्ञान किसी भी विक्रेता को निम्न प्रकार से विभिन्न क्षेत्रों में लाभान्वित कर सकता है—

(i) **उत्पादन-सम्बन्धी नीतियाँ**—उपभोक्ता व्यवहार के अध्ययन के आधार पर कोई भी उत्पादन यह पता लगाकर कि उसकी वस्तु उपभोक्ता किस गुण के कारण अधिक क्रय करता है, अधिक ध्यान देकर वस्तु में उस गुण को समाविष्ट करता है और इस आधार पर अपनी उत्पादन-सम्बन्धी नीतियों का निर्माण कर सकता है।

(ii) **मूल्य-सम्बन्धी नीतियाँ**—उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन उत्पादन के मूल्य सम्बन्धी निर्णय लेने में भी सहायक होता है। यदि कोई वस्तु सिर्फ प्रतिष्ठा बनाये रखने हेतु खरीदी जाती है तो उत्पादक ऐसी वस्तुओं का मूल्य अधिक भी रख सकता है। इसके विपरीत, यदि वस्तु केवल इसलिए खरीदी जाती है कि वह अन्य प्रतिस्पर्द्धी वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती है, तो उस वस्तु का मूल्य बढ़ाना अनुचित होगा।

(iii) **वितरण-साधन सम्बन्धी निर्णय**—वितरण-साधनों से सम्बन्धित नीतियों के निर्धारण में भी उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन बहुत लाभ पहुँचाता है। यदि कोई वस्तु उपभोक्ता द्वारा कम मूल्य के आधार पर खरीदी जाती है तो उसे अन्य वस्तुओं की अपेक्षा सरल और सुविधाजनक वितरण माध्यम से बेचा जाना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि **क्रेता व्यवहार अथवा ग्राहकों का वस्तुओं के क्रय-सम्बन्धी उद्देश्य का अध्ययन आधुनिक युग में वैज्ञानिक विपणन निर्णयों की आधारभूमि का कार्य करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।**

(iv) **क्रय सम्बन्धी उद्देश्य**—क्रय सम्बन्धी उद्देश्य निम्न हैं—

(i) स्वाभाविक बनाम विवेकपूर्ण उद्देश्य ।

(ii) भावात्मक बनाम विवेकपूर्ण उद्देश्य ।

(iii) मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक क्रय उद्देश्य ।

(iv) निजी छवि का विचार ।

(v) समूह प्रभाव ।

(i) **स्वाभाविक बनाम सीखे हुए उद्देश्य**—स्वाभाविक क्रय उद्देश्यों से आशय ऐसे व्यवहारों से है जो कि व्यक्ति की आन्तरिक आवश्यकताओं से प्रेरित होते हैं । भूख लगना एक स्वाभाविक आवश्यकता है, जिसका अनुभव होते ही एक नवजात शिशु भी रोने लगता है । स्वाभाविक उद्देश्यों की संतुष्टि न होने पर व्यक्ति में तनाव पैदा होने लगते हैं । यह उद्देश्य व्यक्ति को आवश्यकताओं की पूर्ति कराने वाले लक्ष्यों की प्राप्ति कराते हैं ।

इसके विपरीत "सीखे हुए उद्देश्य" जिन्हें कि हम कृत्रिम या वातावरण सम्बन्धी उद्देश्य भी कह सकते हैं, से तात्पर्य ऐसे उद्देश्यों से है जिन्हें व्यक्ति अपने वातावरण तथा सामाजिक परिवेश के अन्तर्गत सीखता है । वास्तव में हमारी स्वाभाविक आवश्यकताएँ बहुत शक्तिशाली हैं किन्तु उनके अरिरिक्त कुछ सामाजिक आवश्यकताएँ भी होती हैं, जैसे प्रशंसा, सामाजिक प्रतिष्ठा, हैसियत, स्वीकृति, शक्ति प्राप्ति सम्बन्धी आवश्यकता आदि । इन उद्देश्यों पर क्रेताओं की आर्थिक स्थिति, शिक्षा का स्तर एवं सामाजिक वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही प्रकार के क्रय उद्देश्य विपणनकर्त्ताओं को महत्वपूर्ण दिशाओं में निर्देशित करते हैं । उनके दृष्टिकोण से कृत्रिम आवश्यकताएँ स्वाभाविक आवश्यकताओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो सकती हैं क्योंकि ये स्वाभाविक आवश्यकताओं की तुलना में अधिक मात्रा में रहती है । अतः विपणनकर्त्ताओं को यह पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिये कि कृत्रिम उद्देश्यों और कृत्रिम साधन व्यवहार से क्रय क्रिया किस प्रकार प्रभावित करती है । यह जानकारी विपणनकर्त्ताओं के उत्पादन सम्बन्धी विभिन्न निर्णय लेने में लाभप्रद होगी ।

(ii) **भावात्मक बनाम विवेकपूर्ण उद्देश्य**—यह उपभोक्ताओं की क्रिया संबंधी उद्देश्यों के अध्ययन का एक परम्परागत दृष्टिकोण है । जिसे आज से 50 वर्ष पूर्व प्रोफेसर **एम० टी० कौपलेण्ड** ने प्रस्तुत किया था । इस दृष्टिकोण के आधार पर क्रय उद्देश्यों को दो भागों में बाँटा गया है—

(i) **विवेकयुक्त क्रय-उद्देश्य**—विवेकयुक्त क्रय-उद्देश्यों से आशय ऐसे क्रय-उद्देश्यों से है जिनके अन्तर्गत क्रेता सावधानीपूर्वक एक तर्कपूर्ण क्रिया का अनुसरण करता है । वह क्रय में अपने विवेक का उपयोग करता है । उदाहरणार्थ एक सुविज्ञ और चतुर क्रेता बहुत शीघ्र ही वस्तु को क्रय करने का निर्णय ले सकता है और शीघ्र निर्णय लेने पर भी उसका निर्णय विवेकयुक्त होता है । यदि कोई व्यक्ति जान-

बूझकर एक कम लागत की शुद्ध वस्तु खरीदने की चेष्टा करता है तो इसे विवेकयुक्त क्रय ही माना जायेगा।

(ii) **भावात्मक क्रय-उद्देश्य**—भावात्मक क्रय-उद्देश्यों से तात्पर्य ऐसे उद्देश्यों से है जिनमें मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय की प्रधानता होती है। ऐसी अनेकों भावात्मक क्रियाएँ हैं जो कि क्रेता को वस्तु को क्रय करने हेतु प्रेरित करती हैं, जैसे—अहंकार, प्रतिष्ठा, आनंद, ईर्ष्या आदि। जब एक खाद्य निर्माता यह विज्ञापित करता है कि उसके शुष्क खाद्य के ब्राण्ड को देश के प्रतिष्ठित खिलाड़ियों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है तो ऐसे विज्ञापनों के माध्यम से छात्र एवं खिलाड़ी जगत की इसी भावात्मक क्रय-उद्देश्यों को उकसाने का प्रयास किया जाता है। इसी प्रकार श्रृंगार-प्रसाधन बेचने वाली फर्म नवयुवतियों से यह अनुरोध करती है कि वे उसके प्रसाधनों को अपनाकर अपने सामाजिक आकर्षण में वृद्धि करें तो इसका उद्देश्य पूर्णतया भावात्मक क्रय-उद्देश्य को ही प्रोत्साहित करने का होता है।

विपणनकर्त्ताओं को चाहिए कि उद्देश्यों के भावात्मक बनाम विवेकयुक्त वर्गीकरण की दुर्बलताओं को भलीभाँति समझ ले। यह वर्गीकरण प्रायः भ्रम में डालने वाले होते हैं। यहाँ तक कि एक प्रगट रूप वाला विवेकपूर्ण व्यवहार भी भावात्मक विशेषताओं से प्रेरित होता है। अतः विपणनकर्त्ताओं की भावनाएँ जानने का यत्न करना चाहिए ताकि वे अपनी विपणन नीतियों को उसी प्रकार निर्मित व संचालित कर सकें।

8 विक्रय समस्यायें एवं उनका समाधान
(Sales Problems and their Solutions)

प्रश्न 13. विक्रय समस्यायें क्या हैं? उन्हें दूर करने के उपायों का वर्णन कीजिए।

What are sales problems? Discuss the various methods of removing them.

उत्तर— विक्रय समस्यायें और उनका समाधान

माल के विक्रय के समय विक्रेता को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उसका सम्पर्क विभिन्न प्रकार के क्रेताओं से होता है। वह प्रत्येक प्रकार के क्रेता को सन्तुष्ट करना चाहता है। प्रत्येक क्रेता यही चाहता है कि उसके द्वारा व्यय किये जाने वाले धन से उसे सम्पूर्ण सन्तुष्टि प्राप्त हो। उसे इस सम्बन्ध में विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो कि अग्रलिखित हैं—

1. **सूचनाओं की प्राप्ति**—एक विक्रेता को माल के विक्रय के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता होती है। यदि वे सूचनायें उसे पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं होती हैं या समय पर प्राप्त नहीं होती हैं तो वह अपना विक्रय कार्य उचित रूप से नहीं कर पाता है। अतः उचित सूचनायें उचित समय पर प्राप्त होना चाहिए।

2. **सांख्यिकीय तथ्यों की समस्या**—विक्रेता की दूसरी समस्या सांख्यिकीय तथ्यों के संकलन की होती है। वे इन तथ्यों के आधार पर अपने व्यापार की स्थिति का सामान्य व्यापार तथा विशेष उद्योग से तुलना करके अपनी प्रगति को ज्ञात करते हैं। परन्तु उससे सही एवं विश्वसनीय जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती है।

3. **व्यक्तिगत निरीक्षण की समस्या**—एक छोटे व्यापार में हर दृष्टि से व्यक्तिगत निरीक्षण सम्भव है पर व्यापार के बड़े होने पर विक्रेता द्वारा पूर्ण कार्य-क्षमता के साथ कार्य करना सम्भव नहीं हो पाता है।

4. **मूल्य की समस्या**—मूल्य की समस्या प्रत्येक विक्रेता के सम्मुख होती है और जब माल उच्च किस्म का होता है तो स्वाभाविक ही है कि उसका मूल्य ऊँचा होगा। पर इस ऊँचे मूल्य पर माल को बेचने के लिए उच्चकोटि के विक्रेताओं की सेवायें प्राप्त करनी होती हैं। यदि इस वस्तु को नीचे मूल्य पर बेचा जावे तो उसके लिए विक्रेता रखने की कोई आवश्यकता नहीं होती है परन्तु इससे व्यापार को हानि होती है। अतः मूल्य की समस्या बनी रहती है। ऊँचे मूल्य क्यों रखे गये यदि इसका कारण स्पष्टतः विश्वास के साथ क्रेताओं को समझा दिया जावे तो यह समस्या हल हो सकती है।

5. **व्यापारिक निर्णय की समस्या**—विक्रय के सम्बन्ध में कई निर्णय लेने पड़ते हैं और अच्छे विक्रेता शीघ्र ही निर्णय लेते हैं। परन्तु सभी विक्रेताओं के लिए यह संभव नहीं है।

6. **शिकायतें एवं दावे**—प्रत्येक विक्रेता के समक्ष ग्राहकों की शिकायतें एवं दावे से सम्बन्धित समस्या होती है। बड़े-बड़े व्यापारिक गृहों में तो इनके लिए एक पृथक विभाग बना दिया जाता है। शिकायतों को दूर करने के बाद उनके कारणों का पता लगा कर उन्हें दूर करना चाहिए। शिकायत छोटी ही क्यों न हो पर उस पर भी पूर्ण ध्यान दिया जाना आवश्यक है क्योंकि ग्राहकों की सन्तुष्टि ही व्यापार का प्राण है।

शिकायतों को दूर करने के उपाय

ग्राहकों की शिकायतों एवं विक्रय कार्य में आने वाली समस्याओं को दूर करना आवश्यक है। इसके लिए कई उपाय हैं जो कि निम्नलिखित हैं :

1. **प्रत्यक्ष मना करने की विधि**—इस विधि का उपयोग उचित नहीं है क्योंकि इसमें ग्राहक को यह कहा जाता है कि वह गलती पर है। ऐसा करने पर

ग्राहक के नाराज हो जाने की सम्भावना है। योग्य एवं अनुभवी विक्रेता ही इस विधि का उपयोग कर सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

2. **विपरीत स्थिति विधि**—इस विधि में क्रेता से उसकी शिकायतों के सम्बन्ध में विस्तार से पूछा जाता है और ऐसा करने पर ग्राहक अपनी गलती को समझने लगता है और इस प्रकार विक्रय की समस्या का स्वतः ही समाधान हो जाता है।

3. **शिकायतों को न सुनना**—ग्राहक से उसकी शिकायत को न सुनना भी एक विधि है परन्तु यह बहुत ही अवैधानिक है और आज के युग में सम्भव नहीं है।

4. **अप्रत्यक्ष मना करने की विधि**—इस विधि का बहुत प्रयोग होता है। इस विधि में ग्राहक के कथन को सही मान लिया जाता है पर माल के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसमें ऐसी शिकायत नहीं है। इससे एक ओर ग्राहक संतुष्ट हो जाता है तथा दूसरी ओर विक्रय की समस्या भी हल हो जाती है।

5. **क्षतिपूर्ति विधि**—इस विधि में शिकायतों को ध्यानपूर्वक सुना जाता है और उसके बाद वस्तु के गुणों व उसके सस्तेपन की तुलना वैसी ही अन्य उत्पादकों की वस्तुओं से की जाती है जो कि महँगी होती हैं। ऐसा कहने पर कम मूल्य पर माल बेचना ही उस वस्तु की निम्न किस्म की ओर इशारा करता है और उसके विक्रय की समस्या हल हो जाती है।

6. **प्रश्न विधि**—इस विधि में ग्राहक से ही ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं कि उसके आक्षेप स्वयं ही दूर हो जाते हैं। जैसे अग्नि बीमा करते समय ग्राहक से पूछा जा सकता है कि गतवर्ष शहर में कितने स्थानों पर आग लगी थी। इससे ग्राहक की शंकाएँ स्वतः ही दूर हो जाती हैं।

9 | विक्रेताओं को प्रोत्साहन या अभिप्रेरणा

(Incentives to Salemen)

प्रश्न 14. विक्रेताओं को प्रोत्साहित करने के लिए उपयोग में आने वाली विभिन्न विधियों का परीक्षण कीजिए।

Examine the different methods used to provide incentive to Salesmen.

उत्तर—विक्रेता को प्रोत्साहन—प्रोत्साहन के द्वारा कार्य अधिक रुचि के साथ किया जा सकता है। जब एक छात्र अपने सामने अच्छे भविष्य की सम्भावनायें रखकर अध्ययन में अधिक परिश्रम करता है। परन्तु छात्रवृत्ति के प्रोत्साहन से वह अपने अध्ययन में और अधिक परिश्रम करने को प्रेरित होता है। विक्रेता भी विभिन्न

प्रकार के प्रोत्साहन मिलने से अपने विक्रय का कार्य अधिक परिश्रम और रुचि से करने लगता है। अतः विक्रेता को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

प्रोत्साहन के विभिन्न साधन निम्नलिखित हैं--

1. **पारिश्रमिक की विभिन्न योजनाएँ**--यदि विक्रेता को उसके वेतन के अतिरिक्त कार्यक्षमता दिखाने के लिए कुछ अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाय तो वह वह हमेशा ही अधिक परिश्रम और कार्यक्षमता के साथ कार्य करेगा। वेतन के साथ बोनस देना, लाभ-भाजन की पद्धति अपनाना, कमीशन को प्रगामी दर से देना, विशिष्ट कार्य के लिए विशिष्ट पारिश्रमिक देना, नये विक्रय क्षेत्र में जाने या नये ग्राहकों से सम्बन्ध बनाने, छूटे हुए ग्राहक को पुनः विक्रय करने में सफल होने या प्रतिस्पर्धा के ग्राहकों को अपना ग्राहक बनाने के लिए संस्था द्वारा अतिरिक्त पारिश्रमिक प्रदान करने की विविध योजनाएँ विक्रेता को अधिक परिश्रम से कार्य करने एवं कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

2. **पदोन्नति**—पदोन्नति से विक्रेता के सम्मान और उसकी आय में वृद्धि होती है। यदि योग्य एवं परिश्रमी विक्रेताओं को उनकी योग्यता एवं परिश्रम के बदले पदोन्नति दिये जाने की व्यवस्था होती है तो विक्रेता अधिक अच्छी तरह काम करने के लिए प्रोत्साहित होता है।

3. **व्यक्तिगत पत्र** यात्रा के दौरान विक्रेता अपने परिवार से दूर रहने तथा खाने-पीने, रहने और यात्रा की कठिनाइयों के कारण अपने कार्य में निरुत्साहित हो सकता है। ऐसे समय में उसे लिखे गये पत्रों से प्रोत्साहित किया जा सकता है। यदि विक्रेता ने यात्रा के दौरान अपने कार्य में उचित सफलता प्राप्त नहीं की है तो विक्रय प्रबन्धक उसे हिम्मत न हारने और आगे के लिए अधिक प्रयत्न की बात लिख कर उसके मनोबल को ऊपर उठा सकता है। यदि यात्रा के दौरान विक्रेता ने अधिक अच्छा कार्य किया है तो उसे बधाई देकर उसके उत्साह को बढ़ाया जा सकता है।

4. **प्रभावशाली व्यक्तिगत सम्बन्ध**—विक्रय प्रबन्धक द्वारा विक्रेता से प्रभावशाली व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाने से विक्रेता अधिक परिश्रम से कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है। विक्रय प्रबन्धक के व्यवहार का विक्रेता के कार्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। विक्रय प्रबन्धक के अच्छे व्यवहार के कारण विक्रेता अधिकतम परिश्रम से कार्य करते हैं। क्योंकि उन्हें संस्था में कुछ अपनत्व सा लगने लगता है। इसके विपरीत विक्रय प्रबन्धक के अच्छे व्यवहार के न होने पर विक्रेता अधिक परिश्रम से श्रम नहीं करता है।

5. **विक्रय पत्रिकाएँ**—अनेक संस्थाएँ विक्रय पत्रिकाओं के माध्यम से विक्रेताओं को अधिक अच्छी तरह कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करती हैं। विक्रय बढ़ाने सम्बन्धी लेख संस्था का इतिहास विक्रय-नीति विभिन्न विक्रेताओं के अनुभव आदि बातों की जानकारी इन पत्रिकाओं में दी जाती है, जिनसे विक्रेताओं को प्रोत्साहन मिलता है।

6. **विक्रय संगोष्ठियाँ एवं विक्रय सभाएँ**—विक्रय प्रबन्धक कभी-कभी विक्रय संगोष्ठियों और विक्रय सभाओं का आयोजन करते हैं। जिसमें संस्था के अधिकारी एवं विक्रेता आपसी विचार विमर्श करते हैं तथा एक-दूसरे के समीप आकर परस्पर सहयोग से व्यवसाय को सफलता प्रदान करने का आधार बनाते हैं। इन गोष्ठियों में सामान्यतः विक्रय प्रवर्तन के कार्यक्रम, बाजार एवं प्रतियोगिता, विक्रय-नीति, विक्रय वृद्धि की संभावनाओं आदि पर विचार किया जाता है। इसमें अच्छे कार्य करने वाले विक्रेताओं की प्रशंसा की जाती है और उनको पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। इससे विक्रेताओं को और अधिक कार्य करने के लिये प्रोत्साहन मिलता है।

7. **विक्रय प्रतियोगिताएँ**—विक्रेता को प्रोत्साहित करने के लिए विक्रय प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। विक्रय के एक निश्चित स्तर को प्राप्त करने वाले विक्रेता के लिए किसी पुरस्कार की व्यवस्था की जाती है। सर्वाधिक विक्रय करने वाले विक्रेताओं को कुछ विशेष पुरस्कार भी दिये जाते हैं। विक्रय प्रतियोगि-ताओं से जहाँ एक ओर विक्रेता पुरस्कार के लालच में अधिक क्षमता से कार्य करता है वहीं दूसरी ओर उसके मन में सर्वाधिक विक्रय करके लोकप्रिय बनने की भावना भी रहती है। विक्रय प्रतियोगिताओं से विक्रय तो बढ़ता ही है साथ ही साथ विक्रेता को विक्रय बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित भी किया जा सकता है।

8. **पुरस्कार**—विक्रेताओं को उनके द्वारा किये गये विशिष्ट कार्यों, जैसे नये ग्राहक बनाने, प्रतिद्वन्द्वी के ग्राहक को तोड़ने, अधिक विक्रय करने आदि के लिए समय-समय पर पुरस्कृत करना भी विक्रेता को प्रोत्साहित करना है। ये पुरस्कार निम्न रूपों में दिये जा सकते हैं—

(i) रोक के रूप में, (ii) वेतन वृद्धि देकर, (iii) पदोन्नति करके, (iv) वस्तु के रूप में पुरस्कार देकर, (v) प्रमाण-पत्र देकर, (vi) भ्रमण के टिकट देकर आदि।

9. **प्रभावी व्यक्तिगत सम्बन्ध**—विक्रय प्रबन्धक विक्रेताओं के साथ प्रभावशाली व्यक्तिगत सम्बन्धों की स्थापना करके, उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करके तथा उनके व अपने मध्य अपनत्व की भावना का विकास करके विक्रेताओं को प्रोत्साहन प्रदान करता है।

10. **प्रभावपूर्ण सन्देशवाहन व्यवस्था**—उपक्रम की प्रभावपूर्ण सन्देशवाहन की व्यवस्था भी विक्रेता को प्रोत्साहित करती है। आवश्यकता पड़ने पर छोटे से छोटे विक्रेता को बड़े से बड़े विक्रय अधिकारी तक शीघ्रता से पहुँचने एवं व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने का प्रावधान होना चाहिये ताकि उनकी कठिनाइयों एवं समस्याओं का उचित समाधान किया जा सके।

10 विक्रेताओं पर नियन्त्रण
(Control on Salesmen)

प्रश्न 15. 'विक्रेताओं पर नियन्त्रण' पर एक टिप्पणी लिखिये ।

Write a note on 'Control on Salesmen'.

उत्तर—विक्रय की बड़ी-बड़ी योजनाएँ बना लेना, विक्रेता का वैज्ञानिक चयन और प्रशिक्षण सम्पन्न कर देना या विक्रेता को विक्रय का कार्य सौंपकर निश्चिन्त हो जाना ही पर्याप्त नहीं होता वरन् समय-समय पर यह देखना भी अनिवार्य हो जाता है कि विक्रेता पर जो विक्रय सम्बन्धी भार डाला गया है क्या वह पूर्व आयोजित विधि से उन्हें सम्पन्न कर रहा है ? कहीं वह समस्त योजना से अलग दाएँ या बाएँ तो नहीं कर रहा है तो नियन्त्रित करके ठीक राह पर लाया जाता है । नियन्त्रण के कार्य को आसान बनाने के लिए समय-समय पर उसके कार्यों का मूल्यांकन भी किया जाता है ।

नियन्त्रण क्यों ?

विक्रेताओं पर नियन्त्रण रखने के दो प्रमुख कारण हैं :

1. कार्य-शिथिलता से फर्म के कार्य को बचाने के लिए नियन्त्रण न होने के कारण विक्रेता आलसी बन जाते हैं जिससे फर्म को आर्थिक हानि होती है और उसकी ख्याति को धक्का पहुँचता है।

2. विक्रेता वैयक्तिक ख्याति निर्माण कर बाजार में फर्म का स्थान गौण कर देते हैं । जब किसी कारणवश वह विक्रेता फर्म को छोड़ जाता है, तब उससे प्रभावित सारे ग्राहक भी फर्म को छोड़ जाते हैं । अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिए कभी तो विक्रेता ग्राहक को अजीब आश्वासन देते हैं—उदाहरणार्थ, भाई फर्म का नियम तो नकद व्यवहार करने का है पर मैं अपनी सिफारिश से आपको उधार (Credit) दिला दूँगा । फर्म ग्राहक को $3\frac{1}{2}\%$ कमीशन देती है, पर मैं प्रबन्धक के पास से आपको 5% कमीशन दिला दूँगा आदि । इस प्रकार के आश्वासन नये ग्राहक प्राप्त करने के लिए भी देने पड़ते हैं, किन्तु उनका उपयोग विक्रेता अपनी वैयक्तिक ख्याति स्थापित करने के लिए न करे इस ओर सदा ध्यान रखना चाहिए अन्यथा चन्द दिनों में विक्रेता अपनी निजी प्रतिस्पर्धी फर्म खड़ी कर देगा । अतः आरम्भ से ही फर्म की नीति का कड़ा पालन करने के लिए विक्रेताओं को चेतावनी दी जानी चाहिये जिससे संस्था की ख्याति स्थापित होगी, विक्रेता की नहीं । कोई विक्रेता एक दो बार समझाने पर भी यदि निर्धारित नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे जबरन हटा देना चाहिये ।

3. उपक्रम का नियोजक एवं विक्रेता ये दोनों अलग-अलग होते हैं तथा एक दूसरे से काफी दूर होते हैं अतः विक्रेता अपना कार्य उचित ढंग से करते रहें इसके लिये उनके कार्यों पर नियंत्रण रखा जाना आवश्यक है ।

4 विक्रय प्रयत्नों के दोषों को पता लगाकर उनके दोषों को दूर करने के लिये विक्रेता पर नियंत्रण रखा जाना आवश्यक है ।

5. न्यूनतम व्ययों पर अधिकतम लाभप्रद व्यवसाय को प्राप्त करने के लिये विक्रेताओं पर नियंत्रण रखा जाना आवश्यक है ।

6. विक्रेताओं की कार्यकुशलता एवं योग्यताओं में वृद्धि करने के लिये भी विक्रेताओं पर नियंत्रण रखा जाना जरूरी है।

नियन्त्रण करने के उपाय

1. **विक्रय योजना के नियमों का पालन**—प्रदेश बंटन, विक्रय अभ्यंश, विक्रय माध्यम आदि के निश्चित नियम बनाने चाहिए और उनका पालन विक्रेताओं द्वारा करा लेना चाहिए।

2. **विक्रेताओं से समय-समय पर रिपोर्ट माँगना**—सामयिक रिपोर्ट का कार्य ऐच्छिक न रखते हुए उसे विक्रेताओं के कार्य का ही एक अविभाज्य अंग समझा जाना चाहिये। सामान्यत: विक्रेता इसे अतिरिक्त (Additional) कार्य समझते हैं। अत: इसका महत्व उन्हें बता देना आवश्यक है। रिपोर्टों की छपी छपाई प्रतियाँ विक्रेताओं को भेजी जायें जिससे थोड़े समय में विक्रेता पूर्ण जानकारी पा सके। इन रिपोर्टों की सहायता से विक्रेताओं के कार्य की प्रगति जाँची जा सकती है और उचित कार्यवाही की जा सकती है।

3. **प्रबन्धकों द्वारा क्षेत्र निरीक्षण**—बीच-बीच में प्रबन्धकों द्वारा विक्रेताओं के क्षेत्र का निरीक्षण किया जाना दो प्रकार से महत्व रखता है। उसके कारण ग्राहकों से वैयक्तिक सम्पर्क बना रह सकता है और किसी कारणवश वह विक्रेता फर्म छोड़ जाय तो ग्राहक बने रह सकते हैं। साथ ही साथ विक्रेताओं पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण भी रहता है।

4. **योग्य और शीघ्र प्रबन्धन**—कार्यालय का प्रबन्ध इस प्रकार रखा जाय जिससे आवश्यक सूचनाएँ विक्रेताओं को तुरन्त मिल सकें।

5. **व्यक्तिगत सम्पर्क**—व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा विक्रेताओं पर अधिक आसानी के साथ नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। यह विक्रेता पर नियंत्रण रखने की सबसे प्रभावशाली विधि है।

6. **पत्र-व्यवहार**—संस्था का आकार बड़ा होने की स्थिति में पत्र-व्यवहार के माध्यम से विक्रेताओ पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है।

विक्रेताओं पर नियंत्रण रखने के लाभ

विक्रेताओं पर नियंत्रण रखने से ग्राहक; विक्रेता, नियोजक आदि सभी लाभान्वित होते हैं। विक्रेताओं पर नियंत्रण रखने के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं—

1. विक्रेताओं पर नियंत्रण रखने से यह आसानी से पता चल जाता है कि वक्रेता विक्रेता नियोजित ढंग से कार्य कर रहा है अथवा नहीं।

2. विक्रेता के कार्यों का आसानी के साथ मूल्यांकन किया जा सकता है।

3. जब विक्रेता को यह ज्ञात रहता है कि उसके कार्यों पर नियंत्रण रखा जा रहा है तो वह अधिक सावधानी तथा तत्परता के साथ कार्य करना है जिससे उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

4. प्रभावपूर्ण विक्रेता नियंत्रण के तरीकों से विक्रय एवं लाभ दोनों की मात्रा में वृद्धि होती है।

5. विक्रेताओं पर नियंत्रण होने से विक्रय प्रयासों में प्रभावी समन्वय स्थापित करना सरल हो जाता है।

6. विक्रेता नियंत्रण से ग्राहकों की समस्याओं का तत्काल समाधान करके तथा ग्राहकों की सेवाओं का विस्तार करके ग्राहकों को अधिकतम संतुष्टि प्रदान की जा सकती है।

7. विक्रेता नियंत्रण के द्वारा विक्रेता के द्वारा किये जाने वाले अनावश्यक व्यय समाप्त हो जाते हैं।

8. विक्रेता नियंत्रण के द्वारा विक्रेताओं के पारस्परिक विवादों तथा मनमुटावों को समाप्त किया जा सकता है तथा उनके मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना की जा सकती है।

9. विक्रेताओं पर नियंत्रण होने से विक्रय सम्बन्धी लक्ष्यों को आसानी के साथ प्राप्त किया जा सकता है।

11 विविध (Miscellaneous)

प्रश्न 16. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये--

(अ) विक्रय निष्पादन का विश्लेषण,

(ब) विक्रय अनुसंधान,

(स) विक्रय लागत का विश्लेषण।

Write short notes on—

(A) Analysis of sales operation,

(B) Sales Research,

(C) Analysis of selling cost.

उत्तर—

(अ) विक्रय निष्पादन का विश्लेषण

विक्रय प्रबन्ध में मानव व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है इसलिए विक्रय का नियोजन एवं नियन्त्रण करने में कुछ विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विक्रेता अपने ग्राहक के बारे में सिर्फ अनुमान लगा सकता है परन्तु सही ढंग से घोषणा नहीं कर पाता। व्यापार के विक्रय विभाग पर नियन्त्रण करने के लिए पहले यह ज्ञात किया जाता है कि नियोजन लाभकारी रहेगा या नहीं, विक्रय निष्पादन क्षेत्र से केवल नियन्त्रण करना ही नहीं आता वरन् सम्भावनाओं पर भी ध्यान दिया जाना सम्मिलित है। विक्रय निष्पादन में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि परिवर्तन के साथ विक्रय क्रियाओं में आवश्यक समायोजन किया जाना चाहिये।

विक्री के सम्बन्ध में बजटरी नियन्त्रण

एक अच्छी नियन्त्रण पद्धति में पर्याप्त एवं समयानुकूल सूचना प्राप्त होनी चाहिये। संग्रह करने, विवरण बनाने तथा प्रस्तुत करने में भी मितव्ययता का उपयोग होना चाहिये।

विक्रय नियन्त्रण पद्धति की अवस्थायें

विक्रय नियन्त्रण पद्धति की निम्न अवस्थायें होती हैं—

1. **सूचना एकत्रित करने की विधि**—विक्रय नियन्त्रण के लिए विक्रेता को सूचना प्राप्त करने की व्यवस्था करनी चाहिये।

2. **प्रमाप तय करना**—अन्य उद्योगों से तुलना करने के लिए विक्रेताओं को प्रमाप तय करना चाहिये। प्रमाप अनुभव के आधार पर या विपणन के अनुमान के अन्य साधनों के आधार पर तय किया जा सकता है।

3. **परिणामों की तुलना करना**—प्रमाप के आधार पर प्राप्त परिणामों की तुलना करके यह ज्ञात करना होगा कि वे प्रमाप किस सीमा तक प्राप्त किये जा सकते हैं।

4. **निष्कर्ष निकालना**—प्राप्त परिणामों के आधार पर भविष्य के लिए आवश्यक निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

विक्रय नियन्त्रण से यदि बिक्री की मात्रा, लाभ की मात्रा तथा व्ययों में कमी आ जाती तो नियन्त्रण को सफल माना जाता है। विक्रय नियन्त्रण का उद्देश्य सूचना प्रदान करके हानि की सम्भावना को कम करना व लाभ के अवसरों में वृद्धि करना है।

बजटरी नियन्त्रण व्यापार के लिए बहुत ही उपयोगी है। ईसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की बिक्री की मात्रा के सम्बन्ध में योजना का निर्माण किया जाता है तथा व्ययों को कम करने के सम्बन्ध में भी योजना बनाई जाती है। विक्रय बजट के आधार पर ही व्यापार की समस्त अर्थव्यवस्था निर्भर करती हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी व्यापार के सफल संचालन के लिए विक्रय नियन्त्रण व सफल विक्रय के लिए बजटरी नियन्त्रण का प्रयोग किया जाना अति आवश्यक है कि इस प्रतियोगितावादी युग में सफलता प्राप्त करने के लिए बजटरी नियन्त्रण आवश्यक है।

(ब) विक्रय अनुसंधान

आज से कुछ शतक पहले ग्राहक व निर्माता एक-दूसरे से परिचित होते थे व निर्माता ग्राहकों की रूचि के अनुसार ही माल का उत्पादन करते थे। उस समय विपणन या विक्रय अनुसंधान महत्वपूर्ण नहीं था लेकिन वर्तमान समय में जबकि निर्माता व ग्राहकों में सैकड़ों व हजारों किलोमीटर की दूरी है व एक ही वस्तु के अनेकों बनाने वाले व खरीदने वाले हैं। विक्रय अनुसंधान एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विक्रय अनुसंघान विपणन अनुसंधान का ही एक अंग है।

विक्रय अनुसंधान की सहायता से प्रतियोगी व्यापारियों की शक्ति एवं उनकी औद्योगिक नीतियों का पता लगाया जा सकता हैं व ग्राहकों की पसन्द व रुचि आदि को ज्ञात किया जा सकता है। विक्रय अनुसंधान के अभाव में विपणन कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं किया जा सकता है दूसरे शब्दों में, विक्रय अनुसंधान का महत्व प्रतिपादित करते हुए यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में विक्रय अनुसंधान किसी भी व्यापार उद्योग के सफल संचालन के लिये आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य हैं।

प्रो. लोरी एवं रॉबर्टस्, के अनुसार—"विपणन अनुसंधान एक व्यवस्थित प्रयास है जो सूचना प्राप्त करने के लिये किया जाता है। ये सूचनाएँ विपणन समस्याओं को हल करने में उपयोगी होती हैं।"

विक्रय अनुसंधान की स्थितियां

विक्रय अनुसंधान में निम्नलिखित स्थितियों से गुजरना होता है—

1. **समस्या को परिभाषित करना**—विक्रय अनुसंधान प्रारम्भ करने के पूर्व समस्या को परिभाषित कर देना आवश्यक है परिभाषित कर देने से यहाँ तात्पर्य यह है कि समस्या का भलीभांति अध्ययन कर लेना चाहिये इसके लिये समस्त सूचनाओं तथा तथ्यों का ज्ञान होना आवश्यक है।

2. **योजना का निर्माण**—विक्रय से सम्बन्धित समस्या का भली-भांति अध्ययन कर लेने के बाद समस्या का समाधान करने के लिये उसी के अनुरूप योजना का निर्माण किया जाता है। योजना का निर्माण करते समय समस्त सूचनाओं एवं स्थितियों को ध्यान में रखना चाहिये।

3. **योजना का निष्पादन**—योजना का निर्माण कर लेने के बाद आवश्यक साधनों को जुटाया जाता है व सभी आवश्यक साधनों की व्यवस्था हो जाने के बाद योजना का निष्पादन किया जाता है।

4. **विश्लेषण व निर्वचन**—उत्पादन, बिक्री व संगठन के बारे में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करके प्रबन्धकों से सलाह मशवरा करके आवश्यक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इसके पश्चात् स्थिति का अध्ययन करके बाहर के मध्यस्थों से अनुसंधान किया जाता है।

5. **रिपोर्ट प्रस्तुत करना**—अनुसंधान कार्य समाप्त हो जाने के पश्चात् अनुसधानकर्त्ता अपनी एक रिपोर्ट तैयार करता है। रिपोर्ट की एक प्रति अपने पास रखकर बाकी प्रतियाँ प्रबन्धक को सौंप दी जाती हैं। इसके साथ ही विक्रय अनुसंधान का समापन हो जाता है।

अनुसंधान की विधियाँ

विक्रय अनुसंधान की अनेकों पद्धतियाँ प्रचलित हैं, किस उद्योग के लिये कौन-सी विधि श्रेष्ठ रहेगी यह उद्योग विशेष पर निर्भर करता है। विक्रय अनुसंधान की कुछ प्रमुख पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **निरीक्षण विधि**—इस विधि में अनुसंधानकर्त्ता स्वयं सम्बन्धित व्यक्तियों से साक्षात्कार करता है एवं स्थिति का निरीक्षण करता है तथा अनुसंधान कार्य करता है। उदाहरण के लिये किसी दुकान में कितना सामान है यह ज्ञात करने के लिये अनुसधानकर्त्ता स्वयं दुकान में जाकर माल देखकर पता लगाता है तो इस प्रकार के अनुसंधान को निरीक्षण के द्वारा अनुसंधान कहा जाता है।

2. **अनुभव विधि**—जब अनुसंधानकर्त्ता अपने अनुभव के आधार पर अनुसंधान करता है तो इस विधि को अनुभव के द्वारा अनुसंधान विधि कहते हैं।

3. **सर्वेक्षण विधि**—इस विधि में अनुसंधानकर्त्ता व्यक्तिगत रूप से सम्बन्धित व्यक्तियों से मिलकर या पत्र व्यवहार करके जानकारी प्राप्त करता है। यह विधि भारत में बहुत लोकप्रिय है। भारत में सर्वेक्षण रीति के द्वारा ही विक्रय अनुसंधान किया जाता है।

4. **सैम्पलिंग विधि**—जब अनुसंधान का क्षेत्र काफी विस्तृत हो तो सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन करने के स्थान पर किसी एक आदर्श इकाई का, जो सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व करती हो, अध्ययन किया जाता है व उसी के आधार पर अनुसंधान कार्य किया जाता है।

विक्रय लागत का विश्लेषण
(Analysis of Selling Cost)

सम्पूर्ण निर्माण प्रक्रिया का विश्लेषण करके उसी के आधार पर विक्रय लागत का निर्धारण किया जाता है। विक्रय लागत को इस प्रकार से समायोजित किया जाना चाहिये कि उससे हमें लाभ प्राप्त हो। विक्रय लागत का निर्धारण करने से पहले वस्तु की सामान्य लागत ज्ञात की जाती है। विक्रय लागत में अनेकों प्रकार के व्ययों का समावेश रहता है। विक्रय लागत में कच्चा माल, श्रम व वितरण व प्रशासन सम्बन्धी व्ययों का समावेश होता है। निर्माण प्रक्रिया में मितव्ययिता लाने के लिये यह आवश्यक है कि उत्पादन लागत व विक्रय विभाग में समन्वय स्थापित किया जाय।

विक्रय लागत को प्रभावित करने वाले घटक

विक्रय लागत को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं—

A—**उत्पादक के दृष्टिकोण से**—उत्पादक के दृष्टिकोण से विक्रय लागत को निम्नलिखित घटक प्रभावित करते हैं—

1. विक्रय के प्रयास एवं निरीक्षण की मात्रा
2. मूल्य के अनुपात में वस्तु की मात्रा
3. बिक्री की सीमा
4. संग्रह की सुविधा व अन्य तत्व विज्ञापन व विशेष सुविधायें
5. माल के स्टाक की मात्रा व गति
6. मूल्य की तुलना में माल का वजन
7. औसत इकाई बिक्री।

B—**उपभोक्ता के दृष्टिकोण से** :

1. आदेश की निरन्तरता एवं मात्रा
2. सुपुर्दगी की सेवाएँ एवं व्यय
3. साख की मात्रा
4. क्षेत्र

5. आदेश का आकार
6. बिक्री प्रयास, एवं
7. संग्रहण सुविधायें।

C—विक्रय लागत को प्रभावित करने वाले अन्य घटक निम्नलिखित हैं :

1. परिवहन के साधन व बाजार की दशाएँ
2. अधिनियम
3. जाति
4. परिवर्तित माँग
5. जलवायु।

विक्रय व्ययों का वितरण
या
विक्रय व्यय का वर्गीकरण

विक्रय लागत या विक्रय व्यय में अनेक प्रकार के बिक्री व्ययों को सम्मिलित किया जाता है जैसे कि वेतन, यात्रा व्यय, टेलिफोन व्यय, स्टेशनरी व्यय, डाक व्यय व विज्ञापन व बिक्री से सम्बन्धित अन्य व्यय। इन सभी व्ययों को किसी निश्चित आधार पर विभिन्न विभागों में विभाजित कर दिया जाता है।

विक्रय लागत को निम्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. **प्रत्यक्ष व्यय**—प्रत्यक्ष व्ययों में सामग्री एवं प्रत्यक्ष श्रम व अन्य प्रत्यक्ष व्ययों को शामिल किया जाता है।

2. **अप्रत्यक्ष व्यय**—इसमें कारखाने एवं कार्यालय के व्ययों को शामिल किया जाता है।

3. **सामान्य प्रशासनिक व्यय**—इसमें विक्रय एवं वितरण से सम्बन्धित व्ययों को शामिल किया जाता है।

विक्रय लागत वर्गीकरण के लाभ

1. विक्रय लागत का वितरण कर देने से व्यापार की प्रत्येक क्रिया से होने वाले लाभ या हानि का सही-सही पता चल जाता है।

2. अलाभकारी ग्राहक का पता चल जाता है जिससे कि उसे व्यापार से पृथक किया जा सकता है।

3. प्रत्येक वस्तु के विक्रय मूल्य में समानता लायी जा सकती है।

1

वितरण के माध्यम या विपणन संस्थायें या विक्रय एजेंसियाँ (Channels of Distribution or Marketing Institutions or Sales Agencies)

प्रश्न 1. व्यापारिक एजेन्टों के विभिन्न प्रकार समझाइये।
Explain the various kinds of Mercantile Agents.

उत्तर—वर्तमान युग में व्यापार का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि एक व्यापारी भिन्न-भिन्न स्थानों पर आवश्यकतानुसार हर समय उपस्थित नहीं रह सकता। अतः व्यापारियों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपने कार्यों के करने के लिए एजेन्ट या प्रतिनिधि भेजना आरम्भ किया या नियुक्त करना आरम्भ किया। इनके अतिरिक्त व्यापारिक ढांचा भी दिन प्रतिदिन इतना क्लिष्ट होता जा रहा है कि एक व्यक्ति सब कार्य सम्हालने में असमर्थ रहता है और दूसरे व्यक्तियों को प्रतिनिधि के रूप में रखना अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

भारतीय प्रसंविदा विधान (Indian Contract Act) के अनुसार एजेन्ट उस व्यक्ति को कहते हैं जो दूसरे व्यक्ति के लिए कुछ काम करने या किसी अन्य व्यक्ति के काम-काज में उसका प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किया जाता है। जिस व्यक्ति के लिए इस प्रकार का काम किया जाता है या जिसका प्रतिनिधित्व किया जाता है उसको मालिक कहते हैं। एजेन्ट और मालिक का पारस्परिक सम्बन्ध एजेन्सी कहलाता है।

एजेन्टों के भेद (Kinds of Agents)—व्यापार की दृष्टि से एजेन्ट निम्न प्रकार के होते हैं—

1. **सर्वाधिकार एजेन्ट** (Universal Agent)—यह वह एजेन्ट है जिसे अपने प्रधान (Principal) की ओर से कार्य करने के असीमित अधिकार प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के एजेन्ट प्रायः बहुत ही कम होते हैं।

2. **साधारण एजेन्ट** (General Agent)—यह वह एजेन्ट है जिसे अपने प्रधान (Principal) की ओर से किसी एक व्यापार से सम्बन्धित सब कार्य करने का अधिकार होता है जैसे एक दुकान का मैनेजर अपने दुकान सम्बन्धी कार्य के लिए अपने प्रधान को उत्तरदायी बना सकता है। प्रायः एजेन्ट इसी प्रकार के होते हैं।

3. **विशेष एजेन्ट** (Special Agent)—यह वह एजेन्ट है जिसे प्रधान (Principal) अपने किसी विशेष कार्य के लिये नियुक्त करता है, जैसे एक व्यक्ति एक हजार बोरी गेहूँ खरीदने के लिये नियुक्त किया गया है। वह विशेष एजेन्ट है। बहुत से व्यापारिक एजेन्ट विशेष एजेन्ट होते हैं।

एजेन्ट बहुत से कामों के लिए नियुक्त किये जाते हैं और जब वे भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं तो उनको भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। कर्त्तव्य की दृष्टि से कुछ एजेन्ट निम्न प्रकार के होते हैं—

1, **पक्का आढ़तिया** (Factor)—यह वह एजेन्ट है जिसकी नियुक्ति किसी माल को बेचने के लिये की जाती है। वह प्रायः माल को अपने अधिकार में रखता है या उसके पास वे कागज (Documents) होते हैं जिनसे उसको माल मिल सकता है। वह अपने नाम से ही उन वस्तुओं को बेचता है और इस कारण इस सम्बन्ध में सारा उत्तरदायित्व उसी का होता है। प्रधान उसे उसकी सेवा के लिये विक्रय मूल्य पर कमीशन देता है जिसे 'आढ़त' कहते हैं।

2. **दलाल या कच्चा आढ़तिया** (Broker)—यह वह एजेन्ट है जो माल खरीदने या बेचने के लिये नियुक्त किया जाता है। उसका कार्य केवल क्रेता और विक्रेता के बीच शर्तों का तय कराना है। उसे माल का अधिकार नहीं दिया जाता। माल का सौदा वह अपने प्रधान के नाम पर ही करता है। इस काम के लिये जो पारिश्रमिक उसे मिलता है उसे दलाली (Brokerage) कहते हैं। जब वह किसी वस्तु का क्रय-विक्रय तय कर लेता है तो क्रेता को एक खरीद की चिट्ठी (Bought Note) और वस्तु विक्रेता को एक बिक्री की चिट्ठी (Sold Note) भेज देता है जिनमें माल का पूर्ण विवरण, कमीशन आदि का विवरण होता है।

3. **कमीशन एजेन्ट** (Commission Agent)—वह एजेन्ट है जो अच्छे से अच्छे भाव पर किसी वस्तु को खरीदने या बेचने के लिए नियुक्त किया जाता है। उसे अपने काम के लिए कमीशन मिलता है। वास्तव में में देखा जाय तो इस शब्द के अन्तर्गत वे सब एजेन्ट आ जाते हैं जो कमीशन के बदले काम करते हैं।

4. **यात्रा करने वाले एजेन्ट** (Travelling Agent)—प्रत्येक थोक व्यापारी या उत्पादक को थोड़े बहुत यात्रा करने वाले एजेन्ट नियुक्त करने पड़ते हैं जो शहर-शहर घूमते हैं, दुकानदारों को सूची-पत्र तथा मूल्य सूचियाँ दिखाते हैं एवं उनसे माल का आर्डर ले उन आर्डरों को अपने प्रधान के पास भेज देते हैं। उनको पुरस्कार या तो उनके द्वारा प्राप्त किये हुए आर्डरों के मूल्य पर एक निश्चित प्रतिशत के रूप में दिया जाता है या निश्चित मासिक वेतन के रूप में। साधारणतया मध्य मार्ग अपनाया जाता है और एजेन्ट को कुछ कमीशन और कुछ वेतन दिया जाता है। कमीशन उसे अधिकाधिक आर्डर प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित करता है और मासिक वेतन से उसे अपनी आय की अनिश्चितता का भय नहीं रहता।

5. **डेल क्रेडियर एजेंट या परिशोधी एजेंट** (Del Credere Agent) —वह वह एजेंट है जो माल बेचने के लिए नियुक्त किया जाता है। वह अतिरिक्त कमीशन के बदले में इस बात का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है कि यदि उनके द्वारा बेचे गए माल का रुपया न मिला तो वह अपने मालिक की क्षतिपूर्ति कर देगा। यह अतिरिक्त कमीशन, डेल क्रेडियर कमीशन कहलाता है। इसके लिये प्रधान और डेल क्रेडियर एजेंट के बीच एक समझौता होता है जिसे डेल क्रेडियर एग्रीमेंट (Del Credere Agreement) कहते हैं। इस प्रकार वस्तु विक्रेता अपनी बहुत-सी रकम बट्टे खाते (Bad Debts) में जाने से बचा लेता है और एजेन्ट उधार देते समय अधिक दूरदर्शिता से काम लेता है।

6. **नीलाम करने वाला एजेंट** (Auctioneers) यह वह एजेन्ट है जो अपने प्रधान का माल उसके आदेशानुसार जनसाधारण को नीलाम (Auction) द्वारा बेचता है। वह माल को सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को बेच देता है और जो मूल्य मिलता है उसमें से अपना कमीशन काटकर शेष प्रधान को दे देता है।

जब नीलाम करने वाला एजेंट किसी माल के लगाये हुए मूल्य को स्वीकार करता है तो वह अपनी स्वीकृति प्रायः घण्टी बजाकर या डेस्क पर एक हथौड़ी मार कर सूचित करता है जिसका अर्थ है वस्तु सबसे अधिक मूल्य लगाने वाले को बिक गई, इसको 'Knocked Down' कहते हैं। इस प्रकार की बोली स्वीकृत होने से पहले कोई भी व्यक्ति अपनी बोली वापस ले सकता है परन्तु उसके पश्चात् नहीं।

7. **बिक्री करने वाला** (Selling Agent)—यह वह एजेंट है जो अपने प्रधान के उत्तरदायित्व पर तथा निश्चित कमीशन के बदले कम से कम मूल्य पर माल बेचता है।

8. **क्रय करने वाले एजेंट** (Buying Agent)—यह वह एजेन्ट है जो अपने प्रधान के उत्तरदायित्व पर तथा निश्चित कमीशन के बदले कम से कम मूल्य पर माल खरीदता है।

9. **शेयर बेचने वाले एजेंट** (Under Writers)—ये वे एजेंट हैं जो किसी कम्पनी के शेयर (Share) कमीशन पर बेचने की गारंटी देते हैं और उसके बदले में उन्हें जो कमीशन मिलता है वह शेयर बेचने का कमीशन (Under Writer's Commission) कहलाता है। यदि जनता सब शेयर नहीं खरीदती तो बाकी बचे हुए शेयर ये एजेन्ट स्वयं खरीद लेते हैं और धीरे-धीरे जनता में बेचते रहते हैं।

10. **गोदाम वाले** (Warehouser)—गोदाम वाला वह एजेन्ट होता है जो कि सामान को अच्छी प्रकार सावधानीपूर्वक गोदाम में रखता है। इस काम के बदले में वह कुछ पुरस्कार लेता है। वह माल तभी देता है जबकि उसे पुरस्कार दे दिया जाता है।

11. **आयात करने वाला एजेंट** (Importing Agent)—यह विदेश स्थित एजेन्ट होता है जो अपने प्रधान द्वारा भेजे गये माल को आयात करता है तथा उसके माल को बेचकर बिक्री के रुपये को प्रधान के पास भेज देता है।

12. **निर्यात करने वाला एजेंट** (Exporting Agent)—यह एजेन्ट विदेश में अपने प्रधान के अनुसार माल क्रय करके उसे भेजता है। इसके बदले उसे स्वामी द्वारा एक नियत निर्यात कमीशन दिया जाता है। स्वामी इसे समय-समय पर निर्यात होने वाले माल को क्रय करने के सम्बन्ध में नमूने, मात्रा, दर आदि का आदेश देता रहता है।

13. **माल भेजने वाला या प्रेषक एजेंट** (Forwarding Agent)—जब कोई व्यापारी विदेश को माल भेजना चाहता है तो यह आवश्यक नहीं कि वह बन्दरगाह पर स्वयं जाय और अन्य कार्य करे। इस कार्य के लिये वह माल भेजने वाला एजेन्ट नियुक्त करता है जो माल से रेल की सुपुर्दगी लेता है, स्टेशन से बन्दरगाह तक माल लाता है, जहाज पर माल लदवाता है तथा ग्राहक के पास बिल्टी और बीमापत्र भिजवाता है।

14. **माल छुड़ाने वाला एजेंट** (Clearing Agent)—जब कोई व्यापारी विदेश से माल मँगाता है तो वह माल छुड़ाने वाला एजेन्ट नियुक्त करता है जो कि जहाज से माल की सुपुर्दगी लेता है, आयात कर देता है और रेल द्वारा माल आयात व्यापारी के स्थान को भेज देता है। ★

प्रश्न 2. एक फुटकर व्यापारी कौन होता है ? एक फुटकर तथा थोक व्यापारी में अन्तर बताइये।

Who is a Retailer ? Distinguish between a retailer and a wholesaler.

अथवा

थोक एवं फुटकर व्यापारियों की महत्वपूर्ण विशेषताओं को बताइये। वे कहाँ तक एक दूसरे पर निर्भर हैं ?

Outline the distinctive features of the Wholesaler and Retailers. How far are they interdependent ?

अथवा

फुटकर व्यापारी और थोक व्यापारी में अन्तर बताइये। थोक व्यापारियों व फुटकर व्यापारियों ने समाज के लिए क्या-क्या सेवायें प्रस्तुत की हैं ?

Distinguish between Retailer and Wholesaler. Explain briefly the services rendered to society by wholesalers and retailers.

उत्तर—वर्तमान युग में उत्पादन तथा उपभोग के बीच का अन्तर बढ़ते-बढ़ते इतना हो गया है कि पाटने के लिए अनेक मध्यस्थों (Middlemen) की आवश्यकता पड़ती है। देशी व्यापार को मोटे तौर पर हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला, थोक व्यापारी और दूसरा, फुटकर व्यापारी।

थोक व्यापारी (Wholesaler) उत्पादकों से माल (मुख्यतः कोई विशिष्ट माल) खरीदकर फुटकर व्यापारियों को इसे थोड़ी मात्रा में बेचना ही थोक व्यापार कहलाता है और ऐसे व्यापारी को थोक व्यापारी कहते हैं। संक्षेप में **थोक व्यापारी वह व्यापारी है जो कोई विशिष्ट माल अधिक मात्रा में उत्पादकों से खरीदकर फुटकर व्यापारियों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बेचा करता है।**

फुटकर व्यापारी (Retailer) —'Retail' शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा की क्रिया 'Tailer' में 're' के जोड़ने से हुई है, जिसका आशय होता है 'To cut'। फुटकर व्यापारी वह व्यापारी है जो विभिन्न प्रकार के पदार्थों को अन्तिम उपभोक्ताओं के हाथों थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बेचता है (That cuts-off smaller portions from larger lumps of goods)।

थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी में अन्तर और उनकी विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

1. **माल का परिमाण**—थोक व्यापारी माल को बड़ी मात्रा में खरीदता है और बेचता है जबकि फुटकर व्यापारी थोड़ी मात्रा में क्रय-विक्रय करता है।

2. **माल का स्वरूप**—थोक व्यापारी कुछ विशेष वस्तुओं में ही व्यापार करता है परन्तु फुटकर व्यापारी बहुत प्रकार की वस्तुओं में व्यापार करता है।

3. **क्रय के साधन**—थोक व्यापारी उत्पादकों से माल खरीदता है परन्तु फुटकर व्यापारी थोक व्यापारियों से ही माल खरीदते हैं।

4. **विक्रय के साधन**—थोक व्यापारी उत्पादकों से माल खरीदकर फुटकर व्यापारियों को बेचता है परन्तु फुटकर व्यापारी थोक व्यापारियों से माल खरीदकर उपभोक्ताओं को बेचता है। इस प्रकार थोक व्यापारी का बेचा हुआ माल पुनः बिकता है।

5. **व्यापार का क्षेत्र**—थोक व्यापारी का काम बहुत से स्थानों और शहरों में फैला रहता है परन्तु फुटकर व्यापारी साधारणतः एक ही स्थान में काम करता है।

6. **पूँजी**—थोक व्यापारी को व्यापार करने में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है क्योंकि उसे अपने यहाँ माल बड़े परिमाण में रखना पड़ता है।

7. **उत्पादक के सम्बन्ध**—थोक व्यापारी का उत्पादक से पास का तथा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है परन्तु फुटकर व्यापारी का दूर का ही सम्बन्ध होता है।

8. **उपभोक्ता के सम्बन्ध**—थोक व्यापारी का उपभोक्ता से दूर का सम्बन्ध होता है परन्तु फुटकर व्यापारी और उपभोक्ता का सम्बन्ध निकट का होता है।

9. **ग्राहकों की संख्या**—थोक व्यापारियों के ग्राहकों की संख्या फुटकर व्यापारियों के ग्राहकों की अपेक्षा कम होती है।

10. **गोदाम**—थोक व्यापारी माल रखने के लिए गोदामों का प्रयोग करते है परन्तु फुटकर व्यापारी प्रायः ऐसा नहीं करते है क्योंकि उन्हें उनकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती है।

11. **सजावट**—थोक व्यापारी के लिये सजावट का कोई महत्व नहीं है परन्तु फुटकर व्यापारी के लिए सजावट एक महत्व रखती है और वह इस ओर विशेष ध्यान देता है तथा इसके लिए भिन्न-भिन्न साधन उपयोग में लाता है।

12. **स्थान का चुनाव**—थोक व्यापारी के लिए उसकी दुकान के स्थान के लिए केवल यही सोचना पड़ता है कि फुटकर व्यापारी वहाँ सरलतापूर्वक पहुँच जाय परन्तु फुटकर व्यापारी को स्थान ढूँढ़ने में काफी ध्यान रखना पड़ता है तथा वह प्राय: ऐसे स्थान में दुकान स्थापित करता है जहाँ आवागमन होता हो।

13. **व्यापार का स्वरूप**—थोक व्यापारी उधार व्यापार अधिक और नगद कम करता है परन्तु फुटकर व्यापारी बहुधा नगद व्यापार करता है।

14. **व्यय**—थोक व्यापारी को ग्राहक को आकर्षित करने के लिए विज्ञापन आदि पर अधिक व्यय नहीं करना पड़ता है परन्तु फुटकर व्यापारी को ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए भिन्न-भिन्न साधनों पर व्यय करना पड़ता है।

15. **उद्देश्य**—थोक व्यापारियों के ग्राहक प्राय: फुटकर व्यापारी ही होते है जिनका उद्देश्य माल को फिर से बेचना होता है परन्तु फुटकर व्यापारियों का उद्देश्य उपभोक्ताओं को माल बेचना होता है जो माल का उपयोग करते हैं।

थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी दोनों ही समाज के लिए अनेक सेवायें प्रस्तुत करते हैं। थोक व्यापारियों की सेवाओं का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ केवल फुटकर व्यापारियों की सेवाओं का वर्णन किया जायेगा।

एक फुटकर व्यापारी विशेष रूप से जनता अर्थात् उपभोक्ताओं की सहायता करता है। समाज के प्रति वह निम्नलिखित सेवायें प्रस्तुत करता है—

उपभोक्ता माल का क्रय अपनी आवश्यकतानुसार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में करते हैं। वे अपनी आवश्यकता से अधिक किसी भी वस्तु को खरीदना पसन्द नहीं करते हैं। क्योंकि ऐसा करने के लिए उनके पास पर्याप्त साधन नहीं होते हैं। अत: फुटकर व्यापारियों की आवश्यकता होती है। इनके अभाव में उपभोक्ताओं के समक्ष एक विशेष कठिनाई उपस्थित हो जाती है। उन्हें थोड़ी वस्तु के लिए बार-बार थोक व्यापारियों के पास जाना पड़ता है। इस कठिनाई को फुटकर व्यापारी विभिन्न स्थानों पर अपनी दुकान खोलकर दूर कर देते हैं। ये अपने पास तरह-तरह की वस्तुओं का संग्रह रखते हैं। उपभोक्ता अपनी रुचि के अनुसार वस्तु को खरीद लेता है। ये ग्राहकों को आकृष्ट करने के लिए दुकान को बाहर तथा भीतर से सजाकर रखते हैं। कुछ फेरी वाले ऐसे फुटकर व्यापारी होते हैं जो अपनी वस्तुओं को उपभोक्ताओं के घर जाकर ही बेच आते हैं जैसे साग-सब्जी वाले आदि। अत: यह स्पष्ट है कि फुटकर व्यापारी उपभोक्ताओं की छोटी-छोटी माँगों को भी पूरा करते हैं।

फुटकर व्यापारी ग्राहकों की रुचि एवं अरुचि का अध्ययन करता है। इसी के आधार पर वह सामान को खरीदता है और बाद मे उसे उपभोक्ताओं को बेचकर उनको सन्तुष्ट करता है। गाँव के फुटकर व्यापारी गाँव वालों की आवश्यकतानुसार

तथा शहर के फुटकर व्यापारी शहर वालों की आवश्यकतानुसार माल का संग्रह करते हैं। वे अपने पास प्रत्येक मौसम में काम आने वाले सामान को रखते हैं जैसे जाड़े में गर्म कपड़े और गर्मी में सूती कपड़े आदि। वे सदैव इस बात का प्रयत्न करते हैं कि प्रत्येक मौसम में काम आने वाले सामान का संग्रह उनके यहाँ आवश्यकतानुसार हर समय बना रहे।

फुटकर व्यापारियों के साथ निरन्तर सम्पर्क में रहने के कारण प्रायः ग्राहकों के साथ उनसे घनिष्ठ मित्रता के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। इसका फल यह होना है कि ग्राहकों को ठगे जाने का भय नहीं रहता है। घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण ग्राहकों को बहकाया नहीं जा सकता है। इस घनिष्ठता का फल भी होता है कि यदि किसी समय भूल से कोई खराब माल उपभोक्ता को दे दिया जाता है तो वह समयानुसार वापिस भी ले लिया जाता है।

फुटकर व्यापारियों के द्वारा उपभोक्ताओं को कुछ ऐसी चीजों का ज्ञान हो जाता है जिनके विषय में उन्हें पहले से कुछ भी मालूम नहीं होता है। इसका कारण यह है कि फुटकर व्यापारी विभिन्न वर्ग के उपभोक्ताओं की माँगों का अध्ययन करता है। इस प्रकार से वह अपने ग्राहकों को समय-समय पर हुए परिवर्तनों से भली-प्रकार परिचित कराता है।

फुटकर व्यापारी समाज के उस वर्ग की बहुत सेवा करते हैं जो ताजा कमाते व ताजा खाते हैं अर्थात् उन व्यक्तियों की जिनकी आय बहुत कम होती है जैसे मजदूर आदि। इन लोगों की आय के साधन उतने नहीं होते कि वे भविष्य की माँग को पूरा करने के लिए वस्तुयें खरीद सकें। वे तो जो कुछ दिन भर के परिश्रम से कमाते हैं उसी में से व्यय करते हैं और अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं। थोड़ी-थोड़ी मात्रा में वस्तुओं को खरीदने व दिन-प्रतिदिन के कार्य को चलाने की सुविधा फुटकर व्यापारी ही प्रस्तुत करते हैं। इनके अभाव में इस वर्ग के लोगों के सामने एक विशेष कठिनाई उपस्थित हो जायेगी।

फुटकर व्यापारी अपने ग्राहकों को माल उधार भी देते हैं। इससे ग्राहकों की संख्या में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त कुछ फुटकर व्यापारी अपने द्वारा बेचे माल की गारण्टी भी करते हैं। यदि वह माल उस गारण्टी की अवधि से पूर्व खराब हो जाता है तो वह उसकी मरम्मत बिना किसी शुल्क के करता है। ऐसा करने से भी ग्राहकों को एक विशेष आकर्षण होता है।

उपभोक्ताओं के अतिरिक्त फुटकर व्यापारी थोक व्यापारियों व उत्पादन-कर्त्ताओं की भी सहायता करता है। वह उन्हें बाजार की माँग तथा दिन प्रतिदिन बदलने वाले फैशन का ज्ञान भी भली-भाँति कराता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समाज के लिए फुटकर व्यापारियों की सेवायें बहुत लाभप्रद हैं। ★

प्रश्न 3. "यह कहा जाता है कि थोक विक्रेता एक पराश्रयी (Parasite) है इसलिए वह उत्पादक-उपभोक्ता के मध्यस्थ शृंखला में एक बेकार कड़ी है।" थोक विक्रेता की जो सेवायें उत्पादक और फुटकर व्यापारी को प्राप्त हैं उनके सन्दर्भ में इस कथन को समझाइये।

"It is said that the wholesaler is a parasite and, therefore, a useless in the chain the chain of middlemen from the producer to the consumer." Explain the statement with reference to the services rendered by the wholesaler to the manufacturer and to the retailer.

अथवा

थोक व्यापारी उत्पादकों तथा फुटकर व्यापारियों को कौन-कौन सी सेवायें उपलब्ध कराता है ? क्या थोक व्यापारियों का अन्त हो जाना चाहिए ?

What services are rendered by a wholesaler to manufacturers and retailers ? Should wholesalers be eliminated ?

अथवा

थोक व्यापारियों द्वारा निर्माताओं एवं फुटकर विक्रेताओं के प्रति की जाने वाली सेवाओं को बताइये। जमाखोरी तथा लाभखोरी के दोषों को समाप्त करने के लिये क्या थोक व्यापार को सरकार द्वारा ले लेना चाहिये ?

Describe the services rendered by wholesalers to manufacturers and retailers. Should the wholesale trade be taken over by the Government so as to eradicate evils of hoarding and profiteering ?

अथवा

फुटकर व्यापारियों, निर्माताओं और समाज के प्रति थोक व्यापारी कौन-कौनसी सेवायें प्रस्तुत करते हैं ? क्या थोक व्यापारियों को समाप्त कर देना चाहिये ?

What services are rendered by the wholesalers to retailers, manufacturers and the society ? Should the wholesaler be eliminated ?

उत्तर—थोक व्यापारी उत्पादकों तथा फुटकर विक्रेताओं के मध्य की एक शृंखला हैं। ये उत्पादकों से अधिक मात्रा में माल खरीदकर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में फुटकर व्यापारियों को देते हैं। वास्तव में यदि देखा जाये तो ये न तो वस्तु निर्माता ही है और न फुटकर विक्रेता ही। ये तो केवल उपभोक्ता एवं निर्माता के मध्य सम्बन्ध स्थापित करके मध्यस्थ (Agent) का कार्य करते हैं। एक थोक व्यापारी मुख्यतः किसी एक विशेष वस्तु का व्यापार करता है।

थोक व्यापारी उत्पादकों एवं फुटकर विक्रेताओं के लिए पर्याप्त सेवायें प्रस्तुत करते हैं। ये उत्पादकों को माल की बिक्री की चिन्ता से मुक्त कर देते हैं। ये व्यापार को प्रोत्साहन देने में बहुत सहायक होते है क्योंकि इनके द्वारा अधिक मात्रा में माल

खरीदे जाने के कारण अधिक उत्पादन किया जाता है। ये जनता की रुचि एवं स्वभाव तथा फैशन से भली-भाँति परिचित होते हैं। अतएव ये उत्पादकों को इस बात की सूचना देते रहते हैं कि इस समय अमुक वस्तु का उत्पादन करना चाहिए। उत्पादकों की सहायता के साथ-साथ थोक व्यापारी फुटकर विक्रेता की भी पर्याप्त सेवा करते हैं। **फुटकर व्यापारियों के प्रति उनकी सेवायें निम्नलिखित हैं—**

1. फुटकर व्यापारियों के पास प्रायः धन का अभाव रहता है। इस कारण वे पर्याप्त मात्रा में माल को खरीद कर नहीं रख सकते हैं। वे तो केवल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में थोक व्यापारियों से माल खरीद लाते हैं और उसे उपभोक्ताओं को बेच देते हैं। माल की बिक्री के अनुसार वे माल को कम या अधिक मात्रा में खरीदते रहते हैं। यदि थोक व्यापारी नहीं होते तो फुटकर व्यापारियों को यह सुविधा उपलब्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में उन्हें उत्पादकों से ही अपना सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता और अधिक मात्रा में माल खरीदना पड़ता जो कि उनके लिए प्रायः असम्भव-सा ही होता है। इस कारण थोक व्यापारियों की सेवायें फुटकर व्यापारियों के प्रति बहुत हितकर एवं उपयोगी हैं।

2. थोक व्यापारी फुटकर व्यापारियों की अप्रत्यक्ष (Indirect) रूप से आर्थिक सहायता भी करते हैं। प्रायः वे माल उनको उधार दे दिया करते हैं। फुटकर विक्रेता माल की बिक्री पर अथवा अपनी सुविधानुसार उसका भुगतान थोक व्यापारियों को कर देता है। इस प्रकार से दोनों पक्षों को लाभ होता है। उधार के लालच में फुटकर विक्रेता थोक व्यापारियों से काफी माल खरीद लेते हैं और लाभ प्राप्ति के हेतु उसे शीघ्र बेचने का प्रयास करते हैं। माल बिकने पर थोक व्यापारी का भुगतान कर देते हैं तथा आगामी माल फिर से उधार ले आते हैं। इस प्रकार से वे थोड़ी पूँजी ही लगाकर व्यापार का क्षेत्र विस्तृत कर लेते हैं और थोड़ी पूँजी से ही अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। इससे थोक व्यापारियों को यह लाभ है कि उनका माल अधिक मात्रा में बिना प्रयास किये ही बिक जाता है। इस प्रकार थोक विक्रेताओं द्वारा फुटकर व्यापारियों को साख सुविधायें प्रदान करने के कारण उन्हें अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता नहीं रहती है।

3. थोक व्यापारी किसी एक विशेष वस्तु का ही व्यापार करते हैं किन्तु फुटकर व्यापारी फुटकर विभिन्न प्रकार की चीजें थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अपनी दुकान पर रखता है। यदि थोक व्यापारी न होते तो फुटकर व्यापारियों को ही विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न उत्पादकों के पास जाना पड़ता। उत्पादकों की वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् एक फुटकर विक्रेता यह निश्चय कर पाता है कि वह कौनसे उत्पादनकर्त्ता से माल खरीदे। इन सब कार्यों को सम्पन्न करने में उनका समय व धन बहुत अधिक लगता है। थोक व्यापारियों के होने से यह कार्य बहुत सुगम हो गया है। थोक व्यापारी विभिन्न उत्पादकों के यहाँ से माल

मँगाकर अपने यहाँ रख लेते हैं और फुटकर व्यापारियों की पसन्द के अनुसार उसे बेच देते हैं। इस प्रकार फुटकर व्यापारी काफी परेशानी से बच जाते हैं।

4. थोक व्यापारियों को उपभोक्ताओं की माँग का अन्दाजा भली प्रकार होता है क्योंकि वे विभिन्न फुटकर व्यापारियों के सम्पर्क में आते रहते हैं। इसलिए उन्हें हर तरह की स्थिति का ज्ञान रहता है। इस ज्ञान का लाभ उठाकर वे फुटकर व्यापारियों को नये नमूने का माल दिखाकर बेच देते हैं। वे फुटकर व्यापारी जिन्हें उस नये नमूने के माल का ज्ञान नहीं होता उसे खरीदकर पर्याप्त लाभ उठाते हैं। वे नमूने के माल को ग्राहकों को बेचकर अच्छे दाम प्राप्त करते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि थोक व्यापारियों की सेवायें फुटकर व्यापारियों के लिए बहुत लाभप्रद हैं।

5. थोक विक्रेता अपने फुटकर विक्रेता को किसी विशेष वस्तु के बेचने में विशेषीकरण प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।

6. थोक व्यापारी अपनी वस्तु को किसी अच्छे निर्माता से उचित मूल्य पर खरीदकर फुटकर व्यापारियों को भी वस्तु को सस्ते दामों पर बेच देते हैं। यदि ये वस्तु के खरीदते समय अच्छे निर्माणकर्त्ताओं का चुनाव न करें तो वस्तु का मूल्य अवश्य ही तेज हो जायेगा और इससे फुटकर व्यापारियों का लाभ कम हो जायेगा। थोक व्यापारियों की सेवा के कारण फुटकर व्यापारियों को केवल थोक व्यापारियों के अनुभव का ही लाभ नहीं मिलता है बल्कि उन्हें निर्माणकर्त्ताओं के अनुभव का भी लाभ प्राप्त होता है।

7. थोक विक्रेता वस्तु के मूल्य पर नियन्त्रण रखकर फुटकर विक्रेता को हानि के भय से बचना है। इसका तात्पर्य यह है कि थोक व्यापारी वस्तु की माँग एवं उसकी पूर्ति में समानता लाने का भरसक प्रयत्न करता है और वह अपने प्रयत्न के फलस्वरूप बाजार में कीमतों को सामान्य दशा में बनाये रखता है।

8. थोक व्यापारी उत्पादनकर्त्ताओं एवं फुटकर व्यापारियों के मध्य मध्यस्थ का कार्य करता है। अपने इस कार्य के कारण वह फुटकर विक्रेता के लिए अनेक बातों में सहायक होता है। यदि ये हों तो इनके समस्त कार्यों को विक्रेताओं को ही करना पड़े जो कि वास्तव में उनके लिए बहुत कठिन होगा।

9. थोक व्यापारी अपने विज्ञापन (Advertisement) व विक्रेताओं (Salesman) की सहायता से फुटकर व्यापारियों की अनेक सेवायें करता है। विज्ञापन व विक्रेता की सहायता से फुटकर विक्रेताओं को किसी नई वस्तु के विषय में शीघ्र ही जानकारी हो जाती है। इसका फल यह होता है कि फुटकर व्यापारियों को उस वस्तु के लिए, बिना विशेष प्रयत्न किये हुए ही नया बाजार तैयार करने में आसानी हो जाती है। इस प्रकार से बिना विज्ञापनादि पर व्यय किये हुए ही नये बाजार की तैयारी का लाभ उठा सकते हैं।

10. वस्तुओं के संग्रह करने में अनेक प्रकार की जोखिमें उठानी पड़ती हैं। इन सबको थोक विक्रेता सहन करता है। इनके अभाव में यह कार्य फुटकर व्यापारियों को करना पड़ता है। अब फुटकर व्यापारियों को विशेष जोखिम नहीं है क्योंकि उनके पास वस्तुओं का संग्रह अधिक मात्रा में नहीं होता है।

11. बहुत-सी बिक्री के अयोग्य वस्तुओं को विक्रय योग्य बनाने में थोक व्यापारी फुटकर व्यापारी की बड़ी सहायता करता है। प्रायः माल को छाँटने, डिब्बों में भरने व बाँधने का अधिकांश कार्य वे स्वयं ही करते हैं। इस प्रकार से फुटकर व्यापारियों का बहुत-सा श्रम बच जाता है और उन्हें केवल अपनी वस्तु को बेचने का ही कार्य बचा रहता है।

12. थोक व्यापारी को विभिन्न उत्पादकों के उत्पादनों के बारे में जानकारी रहती है। उसकी इस जानकारी से फुटकर विक्रेता भी लाभान्वित होते हैं।

थोक व्यापारियों की निर्माताओं (Manufacturers) के प्रति सेवायें

1. थोक व्यापारी फुटकर व्यापारी से आर्डर इकट्ठे करके निर्माताओं को दे देता है जिससे कि वह उत्पादन कार्य में संलग्न रहता है क्योंकि फिर उसे फुटकर व्यापारियों से छोटे-छोटे आदेश प्राप्त करने के लिए प्रबन्ध नहीं करना पड़ता।

2. वह सीधा माल निर्माताओं से खरीदता है और छोटी-छोटी मात्रा फुटकर व्यापारियों को बेचता रहता है। इस कार्य में यह निर्माताओं को छोटे-छोटे दुकानदारों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में माल बेचने की असुविधा से बचा देता है और उन्हें उत्पादन कार्य में पूर्ण रूप से लगने का अवसर देता है।

3. वह उत्पादकों को उपभोक्ताओं के रहन-सहन, रुचि और फैशन के सम्बन्ध में ज्ञान कराया करता है, इससे उत्पादकों को ग्राहक की माँग के अनुसार वस्तुयें उत्पन्न करने की सुविधा रहती है।

4. उत्पादकों को कच्चा माल संग्रह नहीं करना पड़ता है क्योंकि यह कार्य व्यापारी करते हैं अतः उत्पादकों को कच्चे माल के संग्रह में अपनी पूँजी नहीं फँसानी पड़ती।

5. वह उत्पादक तथा फुटकर व्यापारी के बीच मध्यस्थ का कार्य करके परस्पर सम्पर्क स्थापित करता है।

6. नये प्रकार के माल के उत्पादकों को बाजार में नये माल की माँग पैदा (Create) करने के लिए थोक व्यापारियों से बहुत सहायता मिलती है।

7. माल तैयार होते ही थोक व्यापारी उत्पादक से माल खरीद लेता है और उसका मूल्य प्रायः नकद चुका देता है। इस प्रकार उत्पादक को माल का अधिक स्टॉक रखने की आवश्यकता नहीं रहती। साथ ही साथ उसका रुपया अधिक दिन तक माल में फँसा नहीं रहता और न उसे अपना विक्रय संगठन ही रखना पड़ता है जिससे विज्ञापन आदि में उसे अधिक व्यय नहीं करना पड़ता।

8. उत्पादन तथा उपभोग के समय में काफी अन्तर होता है। इस बीच के समय में उत्पादित माल के संग्रह की आवश्यकता होती है। थोक व्यापारी इस कार्य को करके उत्पादकों की सहायता करते हैं।

9. थोक व्यापारी उत्पादकों को आदेश (Orders) देकर या माल को बड़ी मात्रा में खरीद कर बड़े पैमाने पर माल उत्पन्न (Large Scale Production) करने में उत्साहित करता है और इस प्रकार उत्पादक बड़े पैमाने पर माल उत्पन्न करने से होने वाले लाभों को उठाने में समर्थ हो जाते हैं।

10. वस्तुओं के बाजारू मूल्य में घट-बढ़ होती रहती है। थोक व्यापारी उत्पादक से माल खरीद लेता है और फिर बाजार की घट-बढ़ का स्वयं भागी बन जाता है। फैशन बदलने, सामान खराब होने आदि की जोखिम भी थोक व्यापारी पर होती है। कभी-कभी थोक व्यापारी माल बनने के पहले ही यह तय कर लेते हैं कि वे उसे एक निश्चित मूल्य पर खरीदेंगे, इससे उत्पादन के काम में स्थायित्व आ जाता है।

11. थोक व्यापारी उत्पादकों का केवल माल ही नहीं बेचते वरन् वे उन्हें कच्चा माल, मशीन, रसायन आदि भी थोक और किफायत से वेचते हे। इससे उत्पादक बहुत से फुटकर कामों से छुटकारा पा जाता है और उसे एक ही समय में अधिक रुपया नहीं फँसाना पड़ता।

थोक व्यापारी की समाज के प्रति सेवायें

1. थोक व्यापारी की सेवाओं के कारण उत्पादक बड़े पैमाने पर उत्पादन करते हैं जिससे माल के मूल्य में कमी होती है और इससे जनता को सस्ते मूल्य पर माल मिलता है।

2. थोक व्यापारी मांग और पूर्ति में समायोजन (Adjustment) द्वारा माल के मूल्य में स्थिरता लाते हैं जिससे एक निश्चित गति से औद्योगीकरण होता है और इस औद्योगीकरण (Industrialization) से समाज को भी लाभ होता है।

3. जनता को फुटकर व्यापारियों द्वारा विभिन्न उत्पादकों का बना हुआ ताजा और आधुनिकतम माल मिलता रहता है। यह सुविधा इसलिए प्राप्त है कि वह अपने पास का विशिष्ट संग्रह हर समय तैयार रखता है।

4. थोक विक्रेता अपनी दुकान में विभिन्न उत्पादकों के उत्पादनों को रखता है परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं के लिये फुटकर विक्रेता उनकी रुचि के अनुकूल वस्तु का चयन कर सकते है।

5. थोक विक्रेता द्वारा किये गये विपणन सम्बन्धी अनुसन्धान से समाज को भी लाभ प्राप्त होता है।

थोक व्यापारियों को हटाना—वर्तमान युग में कुछ व्यक्तियों की यह सम्मति है कि थोक व्यापारियों की सेवायें अनावश्यक हैं। अतः उन्हें हटा देना ही जनता व

व्यवसाय के हित में है। ये लोग इसके कथन की पुष्टि निम्नलिखित बातों के द्वारा करते हैं—

1. उनका कथन है कि थोक व्यापारियों के कारण वस्तुओं के मूल्य में अधिक वृद्धि हो जाती है। प्रायः हम यह देखते हैं कि जिस कीमत पर उत्पादनकर्त्ताओं से माल खरीदा जाता है जिस पर उपभोक्ताओं को वास्तव में मिलता है, उसमें बहुत अन्तर होता है। इस अन्तर का कारण यह है कि एक वस्तु विभिन्न थोक व्यापारियों के हाथों में से गुजरती है और प्रत्येक थोक व्यापारी को कमीशन मिलता है इसके कारण वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है। अपने कथन की पुष्टि में इन लोगों का कहना है कि यदि थोक-विक्रेता न होते तो उपभोक्ताओं को वस्तुयें बहुत सस्ते दामों पर मिल जाती क्योंकि थोक व्यापारियों का अधिकांश लाभ उपभोक्ताओं (Consumers) को ही होता।

2. वे थोक व्यापारियों की अवहेलना फुटकर व्यापारियों व उत्पादकों के परस्पर विद्रोह के कारण भी करते हैं। उनका यह विचार है कि आधुनिक युग में जबकि परिवहन व विज्ञापन की पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध हैं तो थोक विक्रेता की कोई आवश्यकता ही नहीं है। फुटकर व्यापारी बिना किसी कठिनाई के उत्पादकों से माल खरीद सकते हैं और विज्ञापन की सहायता से ग्राहकों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं। अतएव उनके विचार से थोक विक्रेताओं की कोई आवश्यकता नहीं है।

3. आज के युग में फुटकर विक्रेताओं के अनेक प्रकार हो गये हैं जैसे बहु-विक्रयशालायें (Multiple or chain shops) तथा विभागीय भण्डार (Departmental stores) आदि। इनके द्वारा उत्पादनकर्त्ताओं से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना बहुत सुगम हो गया है। अतएव इन लोगों के विचार में थोक व्यापारियों की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है।

4. आजकल कुछ निर्माणकर्त्ताओं ने फुटकर व्यापार भी आरम्भ कर दिया है। वे विभिन्न नगरों में एजेन्सी पद्धति के आधार पर कुछ दुकानें खुलवा देते हैं जहाँ इनके द्वारा निर्मित माल उपभोक्ताओं को बेचा जाता है जैसे दिल्ली क्लाथ मिल्स, बाटा शू कम्पनी व एल्गिन मिल्स की दुकानें आदि। थोक व्यापारियों के विरोधियों का कथन है कि इस प्रकार की दुकानें खुल जाने से उपभोक्ताओं को चीजें सस्ते दामों पर प्राप्त हो जाती हैं क्योंकि इनमें एजेन्ट को थोड़ा-सा कमीशन देना पड़ता है। थोक व्यापारियों के द्वारा होने वाला सब लाभ बच जाता है और वस्तु का मूल्य कम हो जाता है। अतः उनके विचार से थोक व्यापारियों की कोई आवश्यकता नहीं है।

5. सहकारिता आन्दोलन में उन्नति होने के कारण थोक व्यापारियों का महत्व कम हो जाता है क्योंकि सहकारी समितियों के द्वारा उत्पादनकर्त्ताओं से सीधे सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर थोक व्यापारियों के हटाने के विषय में सोचा जा रहा है, किन्तु इतना विरोध होते हुए भी उनका अस्तित्व बना हुआ है। वास्तव में यदि देखा जाये तो इनका होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इनके द्वारा किये जाने वाले कार्य बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। यदि उन कार्यों को निर्माणकर्त्ता अथवा फुटकर व्यापार स्वयं सम्पन्न करने लगेंगे तो यह निश्चित है कि उनकी कार्यक्षमता कम हो जायेगी और वस्तु के मँगाने में व्यय भी काफी हो जायेगा क्योंकि वस्तु को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मँगाने से बार-बार रेल या पैकिंग आदि का खर्च बढ़ जायेगा। साथ ही माल आने में देरी होने के कारण ग्राहकों को असुविधा होने की भी आशंका है। इसलिए थोक व्यापारियों का रहना बहुत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, थोक व्यापारी निर्माणकर्त्ताओं को यह बताते हैं कि वे भविष्य में अमुक वस्तु का इतना उत्पादन करें। इसका कारण यह है कि थोक व्यापारियों का विक्रय संगठन बहुत विस्तृत और अच्छा होता है। बाजार की माँग का अन्दाजा स्वयं निर्माणकर्त्ताओं को लगाना बहुत कठिन है। थोक व्यापारी विभिन्न बाजारों के सम्पर्क में आने से उत्पादकों को विशिष्टीकरण (Specialization) करने के लिए उत्साहित करता है तथा इन्हें विभिन्न बाजारों की सूचानाओं तथा भावी माँग की परिस्थिति से परिचित कराता है। उत्पादकों के लिए यह कार्य सम्भव नहीं है। इस प्रकार थोक व्यापारी निर्माण कार्य में बहुत सहायक होते हैं। इसके अलावा यदि वितरण का कार्य स्वयं निर्माणकर्त्ता अपने हाथ में ले लेते हैं तो उन्हें फुटकर व्यापारियों को माल उधार भी देना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी। थोक व्यापारियों के होने से इस धन को किसी भी उत्पादक कार्य (Productive Purpose) में लगाया जा सकता है।

इन सब बातों के अतिरिक्त, यदि वास्तव में देखा जाये तो अभी तक कोई ऐसी व्यापारिक संस्था स्थापित नहीं हुई है जो थोक व्यापारियों के अभाव में निर्माण-कर्त्ताओं से वस्तुओं को खरीदकर प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओं के घर तक सुगमता से पहुँचा सके। अतएव स्पष्ट है कि थोक व्यापारियों का हटाना किसी भी प्रकार से वांछनीय नहीं है। हाँ, इतना अवश्य किया जा सकता है कि इनकी अधिकता को कम कर दिया जाये। ये फुटकर व्यापार की बहुत बड़ी फर्मों के लिए अधिक उपयोगी नहीं हैं। इसलिए वहाँ इनकी सेवाओं की कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु छोटे-छोटे फुटकर व्यापारियों के लिए व निर्माणकर्त्ताओं के लिए इनका होना बहुत आवश्यक है।

विस्तृत अध्ययन के लिए अगले प्रश्न का उत्तर भी पढ़िये। ★

प्रश्न 4. "मध्यस्थ और एजेन्ट केवल सामाजिक शोषणकर्त्ता हैं और जितनी शीघ्र इनको हटा दिया जाये समाज के लिए उतना ही अच्छा है।" तुम इस कथन से कहाँ तक सहमत हो ? क्या आज के आर्थिक ढाँचे में उनको बिल्कुल समाप्त कर देना चाहिए ? कारण सहित विचार प्रकट कीजिए।

"Middlemen and agents are nothing but Social parasiters and the sooner they are eliminated the better for Society." How far do you agree with this statement ? Should this class of people be totally eliminated from present day economy ? Give reasons for your views.

उत्तर—मनुष्य की आवश्यकतायें अनन्त होती हैं । प्रत्येक आवश्यकता का समाधान स्वयं नहीं किया जा सकता है । मनुष्य को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरे लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है । वस्तुओं के उत्पादनकर्त्ता उपभोक्ताओं से बहुत दूर होते हैं । अतः ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती है जो इन दोनों के बीच सम्पर्क स्थापित करा सकें । इस प्रकार का कार्य करने वाले मनुष्यों को मध्यस्थ कहते हैं ।

कुछ लोगों का यह कथन है कि मध्यस्थ समाज का शोषण करते हैं और जितनी जल्दी हो सके इनको समाप्त करना ही अच्छा है । वास्तव में उनका यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि आज श्रम-विभाजन और विशिष्टीकरण (Division of labour and specialisation) के युग में मध्यस्थों का बहुत महत्व है । व्यापार का आकार और क्षेत्र बढ़ जाने के कारण यह सम्भव नहीं है कि उत्पादनकर्त्ताओं और उपभोक्ता में सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सके । इन दोनों के बीच सम्पर्क स्थापित करने ने लिये मध्यस्थों का होना नितान्त आवश्यक है । मध्यस्थों के उस समय न होने से कोई हानि नहीं थी जबकि मुद्रा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था । छोटी मात्रा में उत्पादन होने के कारण उत्पादक और उपभोक्ता का सीधा सम्पर्क स्थापित कराया जा सकता था । किन्तु आजकल जबकि मुद्रा का प्रादुर्भाव हो चुका है तथा परिवहन का विकास हो चुका है तो ऐसे समय में मध्यस्थों का होना बहुत आवश्यक हो गया है ।

कुछ व्यक्ति मध्यस्थों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं । उनका यह कथन है कि मध्यस्थों के ऊपर उत्पादनकर्त्ता के लाभ-हानि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । उत्पादकों को चाहे लाभ हो अथवा हानि उन्हें तो उनका कमीशन प्राप्त हो ही जाता है । उनकी यह बात ठीक है किन्तु फिर भी उनको बिल्कुल समाप्त नही किया जा सकता है । उनको बिल्कुल समाप्त न करने के पक्ष मे यह बात कही जा सकती है कि वे व्यापारिक जगत के आवश्यक यन्त्र हैं तथा वे उत्पादकों और उपभोक्ताओं के प्रति बहुमूल्य सेवायें प्रदान करते हैं ।

देशी व्यवसाय के अन्दर मध्यस्थों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(1) थोक व्यापारी व (2) फुटकर व्यापारी । थोक व्यापारी उत्पादकों से माल को खरीदता है और फिर वह उस खरीदे हुए माल को फुटकर विक्रेताओं को वेच देता है । फुटकर व्यापारी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में इस माल को उपभोक्ताओं को वेच देते हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मध्यस्थ उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच

में एक आवश्यक कड़ी है। यदि मध्यस्थों की सेवायें उपलब्ध न हों तो उपभोक्ताओं को माल सुगमता से प्राप्त नहीं हो सकता है। मध्यस्थों द्वारा माल उपभोक्ताओं के पास तक शीघ्रातिशीघ्र पहुँच जाता है। आजकल कुछ उत्पादनकर्त्ता अपनी विक्रय-शालाओं (Retail Shops) के द्वारा उपभोक्ताओं से सीधा सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। ऐसी स्थिति में भी मध्यस्थों का होना नितान्त आवश्यक है।

आधुनिक व्यापारिक जगत में मध्यस्थ अनेक सेवायें प्रस्तुत करते हैं। इन सेवाओं के कारण इनका होना आवश्यक हो गया है। इनकी प्रमुख सेवाओं का विवरण निम्नलिखित है—

1. मध्यस्थ उत्पादकों की वस्तुओं का बाजार-क्षेत्र विस्तृत करते हैं। इसके द्वारा उनकी वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। इस प्रकार से उत्पादकों को अधिक लाभ होता है। एक थोक विक्रेता (मध्यस्थ) उत्पादनकर्त्ता से माल को एक बड़ी मात्रा में खरीद लेता है और फिर उसे सुविधानुसार फुटकर व्यापारियों को बेच देता है। एक फुटकर व्यापारी के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह उत्पादनकर्त्ता से सीधा माल मँगवा ले। इसका कारण यह है कि ऐसा करने में उसका व्यय अधिक होगा। इसके अतिरिक्त उत्पादनकर्त्ता अपनी वस्तुओं को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में भी नहीं बेचते हैं। अतएव उत्पादनकर्त्ताओं व फुटकर व्यापारियों में एक मध्यस्थ (थोक व्यापारी) का होना नितान्त आवश्यक है।

2. मध्यस्थ उत्पादकों के माल की बिक्री में ही केवल सहायता नहीं करते हैं बल्कि वे उनको कच्चा माल व अन्य आवश्यक वस्तुएँ जुटाने में भी सहायता करते हैं। वे विभिन्न स्थानों से कुशल श्रमिक व पूँजी, मशीनें व कच्चा माल आदि एकत्रित करके उत्पादकों को सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त मध्यस्थ यह भी जानते हैं कि किसी वस्तु की कितनी माँग है और उसकी उत्पत्ति कितनी मात्रा में में करनी चाहिए। उनकी जानकारी उत्पादकों को माल खरीदने व बेचने दोनों में ही सहायक होती है। यदि मध्यस्थ नहीं होंगे तो उत्पादनकर्त्ता उपभोक्ताओं की माँग का ठीक प्रकार से अनुमान नहीं लगा सकेंगे और वे अधिक मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन कर लेंगे। ऐसी स्थिति मे उनको हानि होने की आशंका रहेगी अतएव व्यापारिक जगत में मध्यस्थों का बहुत महत्व है।

3. मध्यस्थों के द्वारा उत्पादनकर्त्ता वस्तुओं की माँग के परिवर्तन के विषय में पर्याप्त जानकारी रख सकते हैं। वे वस्तुओं को एकत्रित करके रखने व उनका बीमा आदि कराने में सहायता प्रदान करते हैं।

4. मध्यस्थों के द्वारा उत्पादकों को उनकी वस्तुओं का उचित मूल्य प्राप्त हो जाता है। इस सम्बन्ध में वे कृषकों की विशेष सहायता करते हैं। हमारे देश के अधिकांश कृषक अशिक्षित एवं अज्ञानी हैं, वे प्रायः जमींदारों या अन्य व्यक्तियों के

चंगुल में फँसकर अपनी फसल को सस्ते दामों पर बेच देते हैं किन्तु मध्यस्थों के द्वारा उनकी फसल का उचित मूल्य मिल जाता है।

5. मध्यस्थों का महत्व केवल उत्पादनकर्ता व फुटकर व्यापारी के लिए ही नहीं है बल्कि वह उपभोक्ताओं के प्रति भी अपनी बहुमूल्य सेवायें प्रस्तुत करता है। वह उपभोक्ताओं की मन-पसन्द वस्तुओं को खरीदता है तथा बाद में उनको उपभोक्ताओं को बेच देता है। इस प्रकार वर्तमान युग में मध्यस्थों का बहुत महत्व है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि मध्यस्थ व्यापारिक जगत के लिए अपनी अमूल्य सेवाएँ प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक समय में विभागीय भण्डारों (Departmental Stores) व बहुशाखा प्रणाली (Multiple Stores) द्वारा मध्यस्थों को हटाने का प्रयास किया गया है किन्तु इस कार्य में पूर्णरूप से सफलता नहीं मिल पायी है। इस बात को स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जब तक उत्पादनकर्त्ता थोक व्यापारी व फुटकर व्यापारी के समस्त कार्यों को अपने हाथ में नहीं ले लेगा तब तक मध्यस्थों को हटाने में सफलता नहीं मिल सकती है। वास्तव में, यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि उत्पादनकर्त्ता के लिए मध्यस्थों का कार्य करना बिल्कुल असम्भव है। अतएव मध्यस्थों को मूल रूप से अलग नहीं किया जा सकता है।

भारतीय कृषि कमीशन ने मध्यस्थों के पक्ष में निम्नलिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की है—

"उन्नति की दृष्टि वर्तमान क्रय-विक्रय की व्यवस्था में किसी इकाई के नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु हमको तो समस्त इकाइयों को अधिक लाभपूर्ण कार्य में लगाना है, अतएव हमारी कोई ऐसी सम्मति नहीं है जिससे मध्यस्थों को पूर्णतया नष्ट किया जा सके। वर्तमान व्यापार में मध्यस्थ अनेक सेवाएँ प्रदान करते हैं तथा भारत अथवा किसी भी अन्य देश में यह सम्भव नहीं है कि मध्यस्थों को जड़ से उखाड़ा जा सके। वस्तुओं का एकत्रित करना व विभिन्न स्थानों के अनुसार उनका वर्गीकरण करना तथा माँग व उत्पादन का परस्पर सम्बन्ध रखने आदि के कार्य अत्यन्त कठिन हैं, जिनका निष्पादन बिना मध्यस्थों के सहयोग के असम्भव है। भारतवर्ष जैसे देश में जहाँ परिवहन के साधन अधिक उन्नत दशा में नहीं हैं, जहाँ उत्पादन प्रायः छोटे उत्पादकों द्वारा किया जाता है तथा जहाँ के व्यापारियों में आर्थिक क्षमता बहुत कम है। ये कठिनाइयाँ सबसे अधिक हैं।"

मद्रास बैंकिंग जाँच कमेटी के अनुसार मध्यस्थों का होना महत्वपूर्ण नहीं है। उसका यह कथन है कि मध्यस्थों की संख्या बहुत अधिक है। उनके विचार में इस

संख्या को कम करना चाहिए। उक्त कमेटी के विचार में मध्यस्थों को दिये जाने वाला कमीशन अनुचित नहीं है।

उपर्युक्त दोनों कमेटियों की रिपोर्टों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मध्यस्थ समाज का शोषण नहीं करते हैं तथा व्यवसाय में उनका होना भी नितान्त आवश्यक है। हां, उनकी संख्या को अवश्य किसी सीमा तक कम किया जा सकता है। ★

प्रश्न 5. विभागीय भण्डार के संगठन तथा उसकी कार्य प्रणाली को समझाइये। भारत जैसे गरीब देश में इनसे क्या लाभ हैं ?

Explain the organisation and working of Departmental Stores. What are their advantages in a poor country like India ?

अथवा

विभागीय भण्डार (Departmental Stores) **और श्रृंखलाबद्ध भण्डारों** (Multiple or Chain shops) **में संगठन की दृष्टि से भेद करते हुए वर्णन कीजिये तथा प्रत्येक के हानि लाभ बताइये।**

Discuss the advantages and disadvantages of Departmental Stores and Multiple Shops bringing out the difference in their organisation.

उत्तर : विभागीय भण्डार – विभागीय भण्डार एक बहुत बड़ी दुकान होती है जहाँ भिन्न-भिन्न वस्तुओं के विभिन्न भाग होते हैं। प्रत्येक विभाग में से एक ही प्रकार की वस्तुओं का विक्रय होता है। ऐसे भण्डारों में प्रायः सब वस्तुयें मिलती है—सुई से लेकर मोटरकार तक इन्हीं भण्डारों में मिल सकती हैं। **दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विभागीय भण्डार का अर्थ है अनेक विशिष्ट दुकानों का एक स्थान पर और एक संगठनकर्त्ता के नियन्त्रण में होना।** ऐसे भण्डारों का उद्गम फ्रांस में पिछली शताब्दी में हुआ और वहाँ से इनका विकास क्रमशः अमरीका तथा यूरोप के अन्य देशों में हुआ। भारत में भी इस प्रकार के भण्डार खोले गये हैं पर उनकी संख्या बहुत कम है।

श्रृंखलाबद्ध भण्डार (Multiple or Chain shops) —यह व्यापार की वह पद्धति है जिसमें बहुत-सी दुकानें एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत एक ही प्रकार का सामान बेचती हैं। ये दुकानें एक बड़े शहर के कई भागों में एवं राज्य तथा देश के विभिन्न नगरों में खोली जाती हैं। इन दुकानों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें एक-सी ही सजावट, एक ही किस्म का सामान, एक-सा ही मूल्य और एक-सी ही व्यवस्था अर्थात् सभी दुकानों में एक समानता पाई जाती है। इन दुकानों का मुख्य उद्देश्य सब मध्यस्थों को हटाकर उपभोक्ताओं से सीधे सम्बन्ध स्थापित करना होता है। इन दुकानों के उदाहरण हैं बाटा शू कम्पनी, ऊषा मशीन आदि की दुकानें।

विभागीय भण्डार तथा श्रृंखलाबद्ध दुकानों के संगठन (Organization) में अन्तर

1. विभागीय भण्डार ग्राहकों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानें ग्राहकों की बहुत कम आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। वे उसी वस्तु में व्यापार करती है जो उनका सूत्रधार उत्पादक बनाता है।

2. विभागीय भण्डार में व्यापार का केन्द्रीयकरण एक ही स्थान पर होता है। इनमें एक ही शहर में एक ही छत के नीचे कई विभाग होते है तथा अन्य शहरों में इनकी शाखायें नहीं होती हैं और वे ग्राहकों को, विज्ञापन देकर, दूर-दूर से आकर्षित करते हैं परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानें ग्राहकों की सुविधानुसार भिन्न-भिन्न स्थानों पर खोली जाती हैं। इनकी एक ही शहर में कई शाखायें तथा अनेक शहरों में उपशाखायें होती हैं तथा उनकी यह चेष्टा होती है कि वे यथासम्भव ग्राहकों के समीप पहुँचें।

3. विभागीय भण्डार की स्थापना में बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानों की स्थापना में विशेष व्यय नहीं होता।

4. विभागीय भण्डार केवल अमीरों की सेवा करते हैं तथा धनवान ग्राहकों से ही व्यवहार करते हैं क्योंकि अधिकतर ये मूल्यवान वस्तुयें ही बेचते है परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानें जनसाधारण एवं मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों से व्यापार करती है क्योंकि ये अधिक मूल्यवान वस्तुयें नहीं बेचती हैं।

5. विभागीय भण्डार जिन वस्तुओं का व्यापार करते हैं उनकी माँग सदा समान नहीं रहती है अतएव बिक्री सदैव घटती-बढ़ती रहती है। परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानों की वस्तुओं की माँग सदा लगभग एक-सी रहती है इसलिए समय-समय पर माँग में भी कोई अन्तर नहीं पड़ता।

6. विभागीय भण्डार अपने ग्राहकों को माल उधार दे सकते हैं परन्तु श्रृंखला-बद्ध दुकानें अपने परिचित ग्राहकों को भी उधार नहीं दे सकतीं अर्थात् वे रोकड़ पर ही माल बेच सकती है।

7. विभागीय भण्डार की इमारत भव्य, बड़ी तथा महत्वपूर्ण होती है, परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानों की इमारत महत्व नहीं रखतीं।

8. विभागीय भण्डार का यदि कोई विभाग (Section) हानि में चलता हो तो उसे सरलता से बन्द नहीं किया जा सकता है परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानों में यदि कोई दुकान हानि में चलती है तो उसे बन्द किया जा सकता है और वह अन्य स्थान पर खोली जा सकती है।

9. विभागीय भण्डार में वस्तुओं का मूल्य प्रायः बाजार के मूल्य से अधिक रहता है परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानों में वस्तुओं का मूल्य बाजार के मूल्य के बराबर या उससे कम, पर अधिक नहीं रहता है।

10. विभागीय भण्डार में प्रत्येक विभाग के लाभ-हानि (Profit and Loss Account) अलग-अलग तैयार किये जाते हैं परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानों में हानि-लाभ का कोई खाता ही नहीं बनाया जाता है। यह तो केवल मुख्य कार्यालय में ही बनता है।

11. विभागीय भण्डार व्यापार की मन्दी के समय में भी लाभ कमाते रहते हैं क्योंकि यदि 10 प्रकार की वस्तुओं में हानि होती है तो 25 तरह की वस्तुओं में लाभ होता है परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानें ऐसा नहीं कर सकतीं क्योंकि वे बहुत थोड़ी वस्तुओं में व्यापार करती हैं।

12. विभागीय भण्डार अनेक स्थानों से माल खरीदकर एक ही स्थान में बेचते हैं परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानें केवल एक ही स्थान से खरीदकर बहुत से स्थानों पर बेचती है।

13. विभागीय भण्डार मध्यस्थ का काम करते हैं परन्तु श्रृंखलाबद्ध दुकानों के द्वारा मध्यस्थों का लोप होता है।

विभागीय भण्डार के लाभ—1. विभागीय भण्डार बड़ी मात्रा में क्रय करते हैं, अतः इन्हें माल सस्ता पड़ता है जिससे ये वस्तुयें सस्ती बेचते हैं।

2. इसके पास पर्याप्त धन होने के कारण रोकड़ अपहार (Cash Discount) का भी लाभ इनको होता है अर्थात् इनको सस्ते मूल्य पर माल मिल जाता है।

3. ग्राहकों को एक ही स्थान पर आवश्यकता का सारा सामान मिल जाता है अतः उसको सामान लेने के लिए अलग-अलग स्थान पर नहीं जाना पड़ता है।

4. नगर के मध्य में इनकी स्थिति होने के कारण चारों ओर से ग्राहक यहाँ आ सकते हैं।

5. ये ग्राहकों के घर माल पहुँचाने की सुविधा कर देते हैं। जिससे ग्राहकों को अधिक सुविधा रहती है।

6. फुटकर वस्तुओं का भिन्न-भिन्न किस्मों में संग्रह कर सकते हैं। अतः ग्राहकों को वस्तुओं का चुनाव करने में बड़ी सहायता मिलती है।

7. इस प्रकार के भण्डार अत्यन्त ही आकर्षक होते हैं, जब कोई ग्राहक एक वस्तु लेता है तो उसकी इच्छा होती है अन्य वस्तुयें भी खरीदे। इस प्रकार उन भण्डारों की बिक्री बहुत बढ़ जाती है।

8. ये हर विषय में विशेषकर क्रय-विक्रय में बहुत दक्ष तथा अनुभवी व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ उठाते हैं।

9. वस्तुओं के क्रय-विक्रय, व्यवस्थापन एवं विज्ञापन आदि कार्य बड़े पैमाने पर होने के कारण इनके व्यय में भी मितव्ययिता आती है।

10. विभागीय भण्डार में जब कोई ग्राहक किसी विशेष वस्तु को खरीदने के लिए जाता है तो उसके सामने अन्य विभागों की वस्तुएँ भी रहती हैं जिससे अन्य

विभागों का विज्ञापन स्वयं ही हो जाता है और ग्राहक को भी वे स्थान ज्ञात हो जाते हैं जहाँ से वह अपनी अन्य आवश्यक वस्तुएँ खरीद सकता है।

विभागीय भंडार के दोष—(1) इसकी स्थिति शहर के मध्य होने के कारण ग्राहक को इतनी दूर जाना असुविधाजनक हो जाता है और इस कारण वे अपने निकट की दुकान से ही वस्तुएँ खरीद लेते हैं।

(2) इनको विज्ञापन, इमारत तथा व्यवस्थापक पर अधिक व्यय करना पड़ता है जिनके कारण वस्तुओं के विक्रय मूल्य बढ़ जाते हैं।

(3) इनमें ग्राहकों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि छोटे-छोटे व्यापारी देते हैं।

(4) इन भण्डारों में कुछ ऐसे विभाग होते हैं जिन्हें विविधता बनाये रखने के लिए हानि पर ही चलाया जाता है, इस प्रकार लाभ में कमी आ जाती है।

(5) ये भण्डार केवल धनी वर्ग के लिए होते हैं परन्तु सामान्य जीवन-स्तर इतना ऊँचा नहीं कि ऐसे भण्डारों की आवश्यकता प्रतीत हो।

(6) इसमें अधिक पूँजी के अतिरिक्त अधिक कार्य-कुशलता की भी आवश्यकता होती है। यही कारण है कि हमारे देश में ऐसे भण्डार अधिक प्रचलित नहीं है।

(7) ये भण्डार ग्राहकों के सुस्तीपन और विलासप्रियता को प्रोत्साहन देते हैं।

शृंखलाबद्ध दुकानों के लाभ—(1) शृंखलाबद्ध दुकानें मध्यस्थ को समाप्त कर देती है। अतः मध्यस्थों को दिये जाने वाले पारिश्रमिक की बचत होती है और वस्तुएँ सस्ती मिलती है।

(2) ये बड़े परिमाण (Large scale) पर सब वस्तुएँ खरीदती हैं या पैदा करती हैं अतः माल सस्ता पड़ता है।

(3) इन सब दुकानों पर एक ही मूल्य पर माल बिकता है, जिससे ग्राहकों को इन दुकानों की सच्चाई के विषय में विश्वास हो जाता है और भाव ताव (Higgling) नही करना पड़ता।

(4) इन दुकानों का माल नकद बिकता है। अतः अधिक पूँजी की भी आवश्यकता नहीं होती।

(5) जो सामान एक दुकान पर नहीं बिकता उसको दूसरी दुकान पर भेजा जा सकता है, जहाँ उसके बिकने की आशा होती है।

(6) ऐसी दुकानें ग्राहकों के रहने के स्थान से बहुत निकट होती हैं इसलिए उनको सामान खरीदने के लिए दूर नहीं जाना पड़ता।

(7) सभी दुकानों का विज्ञापन एक साथ होने के कारण बचत हो जाती है।

(8) प्रत्येक दुकान की व्यवस्था एवं सजावट आदि में समानता होने के कारण ग्राहक उन दुकानों को सुगमता से पहिचान लेता है तथा एक दुकान की (Goodwill) का लाभ दूसरी दुकानें भी उठाया करती हैं।

(9) इसमें कर्मवाहक (Operating expenses) कम होता है ।

(10) केन्द्रीय कार्यालय में सब प्रकार के विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती ,है जिससे उनकी सेवाओं का अधिक से अधिक लाभ उठाया जाता है ।

(11) इसमें न तो अधिक स्थान की ही आवश्यकता होती है और न वस्तु संग्रह करने की क्योंकि इन दुकानों द्वारा सूचना भेजते ही वस्तुओं की पूर्ति केन्द्रीय कार्यालय से हो जाती है ।

श्रृंखलाबद्ध दुकानों के दोष—(1) कर्मचारी व्यापार बढ़ाने के हेतु न उतना ध्यान देते हैं और न पर्याप्त परिश्रम ही करते हैं, जितना छोटे-छोटे व्यापारी अपना विक्रय बढ़ाने के लिए करते हैं ।

(2) ग्राहकों को माल उधार नहीं दिया जाता है ।

(3) ग्राहकों के घरों पर विभागीय भण्डारों के समान माल पहुँचाने की सुविधा नहीं देते ।

(4) इसमें व्यवस्थापन आदि समस्त कार्यों का आदेश प्रधान कार्यालय से मिलता है, जिसका अक्षरशः पालन करना पड़ता है । अतः दुकान के संचालक अपने स्वयं के अनुभवों का प्रयोग नहीं कर सकते ।

(5) वस्तुओं के क्रय-विक्रय, विज्ञापन आदि समस्त कार्य प्रधान कार्यालय ही करता है । अतः दुकान के संचालक को अपनी कार्य-कुशलता तथा क्षमता दिखाने का अवसर नहीं रहता ।

(6) ये दुकानें एक ही शहर के कई स्थानों पर तथा भिन्न-भिन्न शहरों में स्थित होने के कारण निरीक्षकों आदि की नियुक्ति करनी पड़ती है जिसके फलस्वरूप व्यय बढ़ जाता है और उसका भार ग्राहकों को ही उठाना पड़ता है ।

(7) इन दुकानों में थोड़ी वस्तुएँ होने के कारण ग्राहकों या वस्तुओं के चुनाव का क्षेत्र सीमित रहता है ।

(8) ऐसी दुकानों में ग्राहक की ओर व्यक्तिगत ध्यान नहीं दिया जाता ।

(9) ये दुकानें थोक तथा फुटकर व्यापारियों से प्रतिस्पर्धा करती हैं अतः अन्य व्यापारियों को आर्थिक हानि होती है । ★

प्रश्न 6. "भारतीय अर्थ-व्यवस्था में उपभोक्ता सहकारी भंडार बड़े लाभदायक हैं ।" विवेचना कीजिए ।

"Consumer's Co-operative Stores are very useful in the Indian Economy." Discuss.

अथवा

उपभोक्ता सहकारी भण्डार से आप क्या समझते हैं ? इसके मुख्य लक्षणों को बतलाते हुए गुण और दोषों का वर्णन कीजिए ।

What do you understand by Consumer's Co-operative Stores ? Point out its essential features and briefly describe its merits and demerits.

अथवा

सहकारी उपभोक्ता भंडार पर एक निबन्ध लिखिए।

Write an essay on Consumer's Co-operative Store.

उत्तर— **सहकारी उपभोक्ता भण्डार**

सहकारिता के विकास के साथ-साथ फुटकर व्यापार में भी सहकारिता के सिद्धान्तों को अपनाया जाने लगा है। फुटकर व्यापार में सहकारी उपभोक्ता भण्डार विशेष उल्लेखनीय हैं। इन प्रकार के भण्डारों की स्थापना कुछ उपभोक्ता संगठित होकर तथा उसके सदस्य बनकर और पूँजी के रूप में एक निश्चित धन देकर करते हैं। इन भण्डारों का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि दिन-प्रतिदिन की आवश्यकता की वस्तुएँ बड़े पैमाने पर उत्पादकों से खरीदी जायें जिससे एक तो मध्यस्थों को दिया जाने वाला लाभ बचाया जा सकता है और दूसरे बड़े पैमाने पर क्रय करने से वस्तुयें सस्ते मूल्य पर खरीदी जा सकती हैं। इन वस्तुओं को सस्ते मूल्य पर उपभोक्ता को दिया जाता है। **संक्षेप में, सहकारी उपभोक्ता भण्डार से आशय उन दुकानों से है जो मध्यस्थों का लोप करने के लिए तथा वस्तुयें सुगमता से प्राप्त करने के लिए उपभोक्ताओं द्वारा ही सहयोग के आधार पर मिलकर चलाये जाते हैं।** इस प्रकार के भण्डार बहुत से उपभोक्ता मिलकर खोलते हैं। वे ही भण्डार खोलने के लिए धन एकत्रित करते हैं, वे ही एक कमेटी द्वारा इसका प्रबन्ध करते हैं और अपनी आवश्यकतानुसार इस प्रकार के भण्डार में वस्तु एकत्रित करते हैं। जो कुछ भी क्रय-विक्रय से लाभ होता है वह सब उपभोक्ता आपस में बाँट लेते हैं।

मुख्य लक्षण—(1) इनकी सदस्यता सबके लिए खुली रहती है. कोई भी व्यक्ति जो कुछ पूँजी लगा सकता है, इनका सदस्य बन सकता है।

(2) इनका प्रबन्ध एक प्रबन्ध समिति के हाथ में होता है जिसका निर्वाचन सदस्यों द्वारा होता है।

(3) सदस्यों को बाजारू मूल्य पर नकद माल बेचा जाता है।

(4) सदस्यों को उनकी वार्षिक खरीद के अनुसार लाभांश दिया जाता है।

(5) प्रतिवर्ष के लाभ में से एक निश्चित भाग धर्मार्थ कार्यों के लिए तथा सदस्यों को अन्य सुविधायें देने के लिए अलग रख दिया जाता है।

सहकारी उपभोक्ता भंडार से लाभ—(1) ये भण्डार थोक व्यापारी या उत्पादकों से बड़े पैमाने पर माल खरीदते हैं जिससे माल सस्ता मिलता है।

(2) ये भण्डार माल अधिकतर नकद बेचते हैं जिससे न तो रकम डूबने का ही भय रहता है और न अधिक हिसाब रखने की आवश्यकता ही होती है।

(3) इन भण्डारों के द्वारा अच्छा और सस्ता माल सुगमता से मिल जाता है।

(4) इनके ग्राहक निश्चित होते हैं अतः इन्हें विज्ञापन नहीं कराना पड़ता है।

(5) इन्हें अपने व्यापार का स्थान चुनने में भी अधिक सोच-विचार नहीं करना पड़ता।

(6) दुकान की सजावट व कर्मचारियों की संख्या कम होने तथा विज्ञापन व्यय न होने से इनके अनेक खर्चे बच जाते हैं।

(7) सदस्यों को लाभ उनके क्रय के आधार पर बाँटा जाता है. इसलिए हर सदस्य अधिक से अधिक माल यहीं से खरीदता है।

(8) ये सदस्यों में मितव्ययिता की भावना उत्पन्न करते हैं, जिससे सदस्य इन भण्डारों में अधिक पूँजी लगा सकें।

(9) सदस्यों में संगठन तथा सहकारिता की भावना विशेष रूप से जागृत हो जाती है।

सहकारी उपभोक्ता भण्डार के दोष—(1) इसके कर्मचारी सदस्य के हितों की ओर ध्यान न देकर अपने हित का अधिक ध्यान रखते हैं।

(2) जब सदस्यों की संख्या अधिक हो जाती है तो नियन्त्रण में शिथिलता आने का डर रहता है और सहकारिता की भावना दूर हो जाती है।

(3) ये भण्डार अपने सीमित साधनों के कारण अपनी व्यवस्था के लिए कुशल एवं योग्य कर्मचारी नियुक्त नहीं कर पाते।

(4) 'व्यवस्था दक्षता का खेल है, इसे प्रत्येक व्यक्ति नहीं खेल सकता' उपभोक्ताओं से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे इन भण्डारों का संचालन ठीक प्रकार से कर सकेंगे।

(5) बाजार में मन्दी आने की अवस्था में इन भण्डारों को विशेष हानि होती है। मन्दी के समय में भण्डार विशेष रूप से बन्द हो जाते हैं।

(6) व्यापारिक कार्यों में प्रबन्ध समिति का निर्णय होना आवश्यक होता है इसलिए बहुत से ऐसे अवसर आते हैं जब तक प्रबन्ध समिति अपना निर्णय करे तब तक उस काम का मौका हाथ से निकल जाता है।

भारत में सहकारी उपभोक्ता भंडार—भारत में इस प्रकार के भण्डारों के आन्दोलन का प्रारम्भ मद्रास में हुआ। भारत में इन भण्डारों ने कोई विशेष उन्नति नहीं की है, जिसके निम्नलिखित कारण हैं—

(1) जनता में शिक्षा का अभाव होना।
(2) सहकारिता के सिद्धान्तों को न समझना।
(3) भण्डारों के कर्मचारियों में व्यापारिक शिक्षा, योग्यता एवं अनुभव का अभाव होना।
(4) उधार विक्रय का प्रबन्ध न होना।
(5) पूँजी का अभाव होना।

6. लाभ एवं साधन कम होने के कारण योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति न हो सकना।
7. प्रबन्धकों का बेईमान व धोखेबाज होना।
8. सरकार की उदासीन नीति।
9. क्रय में असावधानी, हिसाब रखने की दोषपूर्ण पद्धति, लाभ कम और संचालन-व्यय अधिक होना आदि।
10. दुकानदारों से प्रतियोगिता।
11. सदस्यों द्वारा भण्डार से माल न खरीदकर अन्य साधनों से खरीदना।
12. भण्डार द्वारा सीमित माँग (Limited Demand) की वस्तुयें खरीद लेना।
13. खुले बाजार में वस्तुओं की आसानी से प्राप्ति तथा मूल्यों पर से नियन्त्रण हटना।

सहकारी उपभोक्ता भण्डार को सफल बनाने के उपाय

1. लगभग 5000 की जनसंख्या के लिए उपभोक्ता भण्डार स्थापित किया जावें।
2. व्यापार के लिए आवश्यक पूँजी, अंश (Share) बेचकर एवं केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर इकट्ठी की जावे।
3. भण्डारों की थोक समितियों का संगठन किया जावे। लगभग 50 शहरी और ग्रामीण भण्डारों को एक केन्द्रीय उपभोक्ता भण्डार के अधीन रखा जाय।
4. प्रत्येक राज्य में एक राजकीय उपभोक्ता समिति संगठित की जावे जिसका 50% व्यय 5 वर्षों तक केन्द्रीय सरकार वहन करे। यह समिति समन्वय का कार्य करेगी।
5. सदस्यों की अधिक से अधिक आवश्यकतायें पूरी की जावें।
6. प्रबन्धकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था हो।
7. भण्डारों में होने वाले अपव्यय को रोकना चाहिए।
8. भण्डारों के अंशों (Shares) का मूल्य कम रखा जावे ताकि अधिक से अधिक लोग अंश खरीदकर भण्डारों का लाभ उठा सकें।
9. नियन्त्रित माल की सुविधा दी जावे।
10. गाँवों के लिये भी भण्डार स्थापित किये जावें।
11. सर्वोत्तम भण्डारों को पुरस्कृत किया जावे।
12. औद्योगिक क्षेत्र में अधिक भण्डार खोले जावें जिससे मजदूर जनता का अधिक कल्याण हो सके।
13. सरकार एवं अन्य संस्थायें अपनी आवश्यक वस्तुयें इन भण्डारों से खरीदें।

14. विद्यालयों में सहकारी भण्डार खोले जावें ।
15. गैर सदस्यों को विक्रय की छूट दी जावे क्योंकि इससे भण्डारों का विज्ञापन होता है ।

★

प्रश्न 7. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
(अ) बहु-विक्रयशालायें व विभागीय भण्डार ।
(ब) सुपर बाजार ।
Write a short note on—
(a) Multiple Shops and Departmental Stores.
(b) Super Market.

उत्तर—

बहु-विक्रयशालाओं व विभागीय भण्डारों में अन्तर

विभागीय भण्डार (Departmental Store) का तात्पर्य एक ऐसे विशाल भण्डार से है जहाँ कई विभाग हों और जिनमें पृथक्-पृथक् रूप से किसी विशेष वस्तु का व्यवसाय होता हो । ये समस्त विभाग एक ही भवन में तथा एक ही व्यक्ति के प्रबन्ध में कार्य करते हैं ।

बहु-विक्रयशालायें (Multiple Shops) एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत एक ही प्रकार का सामान विभिन्न नगरों में बेचा करती हैं । इस प्रकार की दुकानें कम्पनी, साझेदारी या एकाकी व्यापार के स्वामित्व में चलाई जाती हैं । ये दुकानें बड़े-नगरों में कई भागों में तथा देश के विभिन्न नगरों में खोली जाती हैं । इन दुकानों में केवल वही सामान बिकता है जो इनका मुख्य उत्पादक बनाता है । इन दुकानों की सजावट लगभग एक-सी ही होती है । इनका उद्देश्य मध्यस्थों को हटाकर उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना होता है ।

उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विभागीय भण्डार व बहु-विक्रयशालाओं में बहुत अन्तर होता है । संक्षेप में वह अन्तर निम्नलिखित है—

विभागीय भण्डार	बहु-विक्रयशालायें
1. विभागीय भण्डार में कई विभाग होते हैं। ये समस्त एक ही भवन के अन्दर होते हैं ।	1. इसमें विभिन्न विभाग नहीं होते हैं । यह भी आवश्यक नहीं है कि वह दुकान नगर के किसी विशेष स्थान पर स्थापित हो ।
2. प्रत्येक विभाग का एक विभाग-अधिकारी होता है जो अपने विभाग के लिए आवश्यकतानुसार सामान का क्रय भी करता है ।	2. प्रत्येक स्थान पर एक व्यवस्थापक होता है किन्तु उसे माल को खरीदने का अधिकार नहीं होता है । यह तो केवल अपने सूत्रधार उत्पादक से ही मँगा सकता है ।
3. इस प्रकार के भण्डारों का उद्देश्य ग्राहक की आवश्यकता की प्रत्येक	3. इसका उद्देश्य सब प्रकार की वस्तुओं को बेचना नहीं है । इसमें तो

विभागीय भण्डार	बहु-विक्रयशालायें
वस्तु की पूर्ति करना है अर्थात् इनमें पिन से लेकर मोटरकार तक समस्त वस्तुयें प्राप्त हो सकती हैं।	केवल कुछ विशेष प्रकार की वस्तुएँ ही बेची जाती हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य मध्यस्थों को हटाकर उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना है।
4. विभागीय भण्डार की स्थिति निश्चित करने से पूर्व बहुत-सी बातों को सोचना पड़ता है। इनको केवल उन्हीं स्थानों पर स्थापित किया जा सकता है जहाँ नगर की अधिक जनसंख्या हो और जहाँ ग्राहक अधिक से अधिक संख्या में पहुँच सकें।	4. बहु-विक्रयशालाओं को स्थापित करते समय बहुत-सी बातों से ऊपर मनन करना आवश्यक नहीं है। इसमें केवल इतना ध्यान रखना ही पर्याप्त है कि वहाँ स्थान ऐसा हो जहाँ ग्राहक सुगमता से पहुँच सकें।
5. विभागीय भण्डारों की व्यवस्था में ग्राहकों की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। उनकी सुविधा के लिए ठण्डे पानी का प्रबन्ध, भोजनालय व वाचनालय आदि का प्रबन्ध भी किया जाता है। इन सब सुविधाओं के होने से वस्तुओं का मूल्य अधिक हो जाता है। वस्तुतः इन भण्डारों में धनी लोगों को ही माल बेचने की व्यवस्था की जाती है।	5. बहु-विक्रयशालाओं में इस प्रकार की सुविधायें नहीं दी जाती है। वह तो केवल एकरूपता, विकेन्द्रीयकरण और साधारण वस्तु को बेचने की व्यवस्था रहती है। इसमें धनी व गरीब सभी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार माल को खरीद सकते हैं।
6. विभागीय भण्डार नगर के किसी विशेष स्थान पर होते है और ग्राहकों को उनकी ओर खींचने का प्रयास किया जाता है।	6. बहु-विक्रयशालायें नगर व देश के विभिन्न भागों में स्थापित रहती हैं। ग्राहकों को उनकी ओर खींचने का कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता है बल्कि इनकी यह चेष्टा होती है कि ये यथा-सम्भव ग्राहक के समीप पहुँचें।
7. विभागीय भण्डार में स्थानीय ग्राहकों को खींचने का प्रयास किया जाता है और उसी से सम्बन्धित विज्ञापन भी किया जाता है। इनका विज्ञापन स्थानीय समाचार-पत्रों, पोस्टरों, अलमारियों का प्रदर्शन व आकर्षक पट्टिकाओं (Sign Boards) द्वारा किया जाता है।	7. इसमें व्यवसाय का क्षेत्र विस्तृत होता है। अतएव विज्ञापन भी देश भर में किया जाता है।
8. विभागीय भण्डारों की स्थापना फुटकर व्यापारिक संगठन के आधार पर की जाती है।	8. बहु-विक्रयशालाओं का निर्माण उत्पादकों द्वारा किया जाता है।

विभागीय भण्डार	बहु-विक्रयशालायें
9. विभागीय भण्डारों में वस्तुओं के मूल्य प्राय: बाजार से अधिक रहते हैं।	9, इनमें वस्तुओं के मूल्य बाजार से प्राय: कम रहते हैं।
10. विभागीय भण्डारों में बिक्री नकद-उधार दोनों प्रकार से की जाती है।	10. बहु-विक्रयशालाओं में केवल नकद बिक्री की जाती है।
11. इस व्यवसाय को आरम्भ करने के लिए बहुत पूँजी की आवश्यकता होती है क्योंकि विभागों की संख्या बहुत होती है।	11. इस व्यवसाय मे विभागीय भण्डारों की अपेक्षा कम पूँजी की आवश्यकता होती है।
12. इस व्यवसाय में समस्त पूँजी को एक ही स्थान पर लगाना पड़ता है। इससे उन्नति व लाभ का क्षेत्र सीमित हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ विभागों को अन्य विभागों के साथ समानता बनाये रखने के कारण हानि में भी चलाना पड़ता है। इसमें भी व्यापार का लाभ कम हो जाता है।	12. इस व्यवसाय में पूँजी को विभिन्न स्थानों पर लगाना पड़ता है इससे उन्नति की अधिक आशा रहती है। साथ ही यदि किसी स्थान का व्यवसाय घाटे में चलता है तो उस कमी की पूर्ति उस स्थान से हो जाती है जहाँ व्यवसाय खूब उन्नति पर चल रहा होता है। अतएव इस व्यवसाय में हानि की सम्भावना बहुत कम है।
13. विभागीय भण्डार की वस्तुओं की माँग निरन्तर नहीं रहती है क्योंकि ये अधिकतर विलासिता की वस्तुयें बेचते हैं जिनको केवल धनी वर्ग के लोग ही खरीद सकते हैं।	13. बहु-विक्रयशालाओं की वस्तुओं की माँग सदैव बनी रहती है क्योंकि ये जन-साधारण के उपयोग की वस्तुओं को बेचते हैं।
14. विभागीय भण्डार व्यवस्था में प्रत्येक विभाग अपनी लाभ-हानि का खाता बनाता है। इसमें कर्मचारियों की वेतन वृद्धि उस विभाग की बिक्री के ऊपर निर्भर रहती है।	14. इसमें पृथक्-पृथक् लाभ-हानि खाता नहीं बनाया जाता है। सबको मिलाकर केवल एक लाभ-हानि खाता तैयार किया जाता है। इनमे व्यवस्थापकों व कर्मचारियों का वेतन व वृद्धि निश्चित रहती है।
15. विभागीय भण्डार मध्यस्थ (Middlemen) का काम करते हैं।	15. बहु-विक्रयशालाओं द्वारा मध्यस्थों का लोप होता है। ★

प्रश्न 8. डाक द्वारा विक्रय किसे कहते हैं ? इस प्रणाली में व्यापार करने की पद्धति का वर्णन कीजिए तथा फुटकर व्यापार की इस पद्धति के लाभ और हानियाँ भी बताइये।

What is Mail Order Selling ? Describe how a business is conducted on these lines and examine the advantages and disadvantages of this method of conducting retail trade.

अथवा

डाक द्वारा व्यापार करने की पद्धति के विशेष लक्षण बताओ। इसमें व्यापार के संगठन व विधि का वर्णन करो। क्या यह कृषि-सामान विक्रय हेतु हितकर एजेन्सी सिद्ध हो सकती है ?

What are the chief characteristics of a Mail Order System? How is it conducted and organised? Can it be a successful agency for retailing agricultural goods in India?

उत्तर– डाक द्वारा व्यापार करने की पद्धति के विशेष लक्षण जानने से पूर्व उसकी परिभाषा को समझना बहुत आवश्यक है। इसकी परिभाषा निम्नलिखित है :

"डाक द्वारा व्यापार करने का साधारणतया यही अर्थ होता है कि इस प्रणाली में ग्राहक डाक द्वारा किसी माल को मँगाने का आदेश देता है तथा विक्रेता भी माल को डाक द्वारा ही क्रेता के पास भेज देता है। इस विधि को डाक द्वारा विक्रय (Shopping by post) भी कहते हैं। इसमें क्रय-विक्रय और भुगतान आदि सब कुछ डाक द्वारा ही किया जाता है। इस पद्धति को प्रोत्साहन देने में विज्ञापन का विशेष महत्त्व है। ग्राहकों को वस्तुओं का परिचय समाचार-पत्रों, नियत-कालिकाओं (Periodicals) और वैयक्तिक रूप से कराया जाता है। इन विज्ञापनों के आधार पर ही ग्राहक माल मँगाने का आदेश भेज देते हैं। इनमें क्रेता और विक्रेता एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से नहीं जान पाते हैं और उनकी जानकारी का एकमात्र आधार पत्र-व्यवहार ही होता है। इसमें वस्तुओं को वी. पी. पी. (Value Payable Post) द्वारा भेजा जाता है जब वस्तु ग्राहक के पास पहुँचती है तो उसे उस पर लिखे हुए मूल्य को अनिवार्य रूप से चुकाना पड़ता है। यदि वह उस वस्तु को स्वीकार करने से मना कर देता है तो डाकिया उसको डाकखाने में जमा कर देता है और बाद में वह वस्तु विक्रेता को वापिस भेज दी जाती है। संक्षेप में, यह कह सकते हैं कि इस प्रकार के व्यापार में डाकघर का एक महत्वपूर्ण स्थान है।"

इस प्रथा का चलन सर्वप्रथम अमरीका में हुआ। यातायात और संदेशवाहन की सुविधाओं के साथ-साथ इस व्यवसाय ने भी उन्नति की। अब इस प्रकार का व्यापार लगभग सभी देशों में किया जाने लगा है। इस प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य मध्यस्थों की कड़ी को समाप्त करना है क्योंकि इसमें क्रेता व विक्रेता का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से रहता है। इस पद्धति के विशेष लक्षण निम्नलिखित हैं—

(1) माल का विक्रय विज्ञापन द्वारा किया जाता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि विज्ञापन पद्धति बहुत प्रभावशाली हो जिससे कि ग्राहक उसे देखकर प्रभावित हों और माल मंगाने का आदेश भेजें।

(2) समस्त माल डाक द्वारा भेजा जाता है। इस सम्बन्ध में वी. पी. पी. पद्धति को अपनाया जाता है।

(3) इस प्रणाली में विक्रेता की दुकान और उसकी स्थिति का विशेष महत्त्व नहीं होता है। वह नगर के किसी भाग में स्थापित की जा सकती है क्योंकि वहाँ पर ग्राहक स्वयं वस्तुओं को खरीदने के लिए नहीं जाता है।

(4) इस पद्धति में हर प्रकार का सामान नहीं बेचा जा सकता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(i) सामान ऐसा हो जो शीघ्र नष्ट या खराब न हो जाये।

(ii) उसका श्रेणीयन (Grading) होना आवश्यक है।

(iii) सामान ऐसा होना चाहिये जिसको प्रमापीकृत (Standardised) किया जा सके।

(iv) व्यावसायिक चिन्ह (Trade mark) का होना भी आवश्यक है इसके होने से ग्राहक माल को शीघ्र पहिचान सकते हैं।

(5) इस प्रकार के व्यापार में मध्यस्थों का कोई महत्त्व नहीं है। उत्पादन-कर्त्ता माल को सीधे ग्राहकों के पास भेज सकते हैं।

(6) यदि थोक व्यापारी या बड़ी मात्रा पर कार्य करने वाले फुटकर व्यापारी उत्पादनकर्त्ताओं से माल खरीदना चाहें तो वे ऐसा कर सकते हैं और बाद में उस माल को उपभोक्ताओं को बेच सकते हैं।

संगठन एवं व्यवस्था

इस प्रकार के व्यापार में यह आवश्यक नहीं है कि बाजार के अन्दर कोई दुकान खोली जाये और उसको अन्य दुकानदारों की भाँति सजाकर रखा जाये। इसका कारण यह है कि इस प्रथा में ग्राहकों को व्यक्तिगत रूप से आकर्षित नहीं किया जाता है। यह व्यवस्थापक घर बैठे ही अपने व्यापार का समस्त कार्य चला सकता हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुछ व्यापारी अपने घर का पता नहीं बताना चाहते है। ऐसी दशा में वे Post Box प्रणाली के अनुसार अपने पत्र Post Box Number द्वारा मँगा सकते हैं। आजकल नौकरी दिलाने के अधिकतर विज्ञापन इसी प्रकार से किये जाते हैं। इस प्रकार के व्यापार में न तो अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है और न अधिक मात्रा में माल का संग्रह करने की ही आवश्यकता पड़ती है। वस्तु की जितनी माँग (Demand) होती है उसी के अनुसार पूर्ति (Supply) पर भी नियन्त्रण किया जा सकता है। इस प्रणाली को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यवस्थापक कार्य-कुशल, परिश्रमी एवं विज्ञापन-कला में निपुण हो। ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि नये से नये विज्ञापन किये जायें। इसके लिए व्यवस्थापक को चाहिए कि वह एक विज्ञापन विशेषज्ञ को अपने यहाँ रखे। विज्ञापन ऐसा होना चाहिए कि उसको पढ़ते ही ग्राहक के अन्दर उस वस्तु को खरीदने की अभिरुचि उत्पन्न हो जाये।

इस प्रकार के व्यवसाय को आरम्भ करते समय ग्राहकों की एक सूची बनानी चाहिए जो उस माल को खरीद सकें। यह आवश्यक नहीं है कि वह व्यवस्थापक केवल

एक वस्तु का ही व्यापार करे। वह एक साथ कई वस्तुओं का व्यापार कर सकता है। इस सम्बन्ध में व्यवस्थापक को चाहिए कि वह विभिन्न वस्तुओं के ग्राहकों की भिन्न-भिन्न सूचियाँ अपने पास रखे। इस सूची को समय-समय पर दोहराते रहना चाहिए। व्यवस्थापक को चाहिए कि वह अपने विज्ञापन-पत्र (Pamphlets) व सूची पत्र (Price Lists) इन ग्राहकों के पास भेजता रहे। ऐसा करने से वस्तु की माँग बढ़ती है। ग्राहकों के नाम टेलीफोन डाइरेक्टरी, मोटर मालिकों की सूची व ट्रेड डाइरेक्टरी आदि से प्राप्त किये जा सकते हैं। व्यवस्थापक को अपने पुराने एवं सम्भाव्य ग्राहकों से सम्पर्क स्थापित रखने में विशेष तत्परता से काम लेना चाहिए। कभी-कभी पुराने ग्राहकों से माल का आदेश मँगाने के लिए भ्रमणकर्त्ताओं (Travellers) को भी नियुक्त किया जाता है। जिन ग्राहकों से पत्र विज्ञापन आदि भेजने पर कोई भी उत्तर न मिले उनका नाम डाक-सूची (Mailing List) से काट देना चाहिए और उनके स्थान पर नये ग्राहकों का नाम लिख देना चाहिए। डाक-सूची बनाते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए। इनके निर्माण करने में पर्याप्त धन व समय व्यय हो जाता है, परन्तु भविष्य में इनके द्वारा बहुत लाभ होता है। अमरीका में तो प्रतिवर्ष इन्हीं सूचियों के आधार पर करोड़ों डालर का व्यापार डाक द्वारा किया जाता है।

सूची-पत्रों का आकार व सजावट उचित होनी चाहिए। आकार का उपयुक्त होना इसलिए आवश्यक है क्योंकि इन सूची-पत्रों को डाक द्वारा प्रेषित किया जाता है। इन सूची-पत्रों की सजावट और विवरण लिखने की पद्धति बहुत आकर्षक होनी चाहिए। इसके लिए भी एक विशेष तान्त्रिक योग्यता (Technical ability) की आवश्यकता है। दूर-दूर के ग्राहकों को आकर्षित करने का एकमात्र साधन सूची पत्र ही हैं। अतएव इनको लिखवाने, छपवाने और कागज आदि के अन्दर लेशमात्र भी लोभ नहीं करना चाहिए।

इस व्यापार मे एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यवस्थापक को व्यापार करने के लिए केवल उन्हीं वस्तुओं को छाँटना चाहिए जिनकी माँग अधिक हो। उनको चाहिए कि वह उन्हीं वस्तुओं का व्यापार करे जिनका प्रमापीकरण तथा श्रेणीयन (Standardization and Gradation) हो गया है। ऐसा हो जाने से तथा वस्तु के ऊपर व्यापार का चिन्ह (Trade Mark) लग जाने से ग्राहक को सन्तोष रहता है कि उसके द्वारा मँगाया सभी माल एक-सा होगा। फिर उसे वस्तु की किस्म के विषय में चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं रहती है। इस प्रकार के व्यापार के लिए पुस्तकें, औषधियाँ, बच्चों के खिलौने, चमड़े का सामान और जवाहरात आदि उपयुक्त वस्तुयें हैं।

डाक द्वारा माल मँगाने में क्रेता को निम्नांकित आकर्षण रहता है—

(1) वस्तु का मूल्य प्रायः स्थानीय मूल्य से कम होता है।

(2) वस्तु उसके घर तक पहुँच जाती है। उसको प्राप्त करने के लिए क्रेता को किसी स्थान पर नहीं जाना पड़ता है।

(3) वस्तु के विवरण से उसकी कल्पना ठीक प्रकार से हो जाती है। उस विवरण को भली प्रकार समझकर ही क्रेता वस्तु मँगाने का आदेश दे सकता है। उसे वस्तु का निरीक्षण करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

डाक द्वारा विक्रय प्रणाली में क्रेता निम्नलिखित तीन प्रकार से माल का मूल्य चुका सकता है —

(1) आदेश के साथ मूल्य (Cash with Order)।

(2) सामान की प्राप्ति (On Delivery or V. P. P.)।

(3) किश्त पद्धति द्वारा (On Instalment basis)।

उपर्युक्त तीनों रीतियों में से दूसरी रीति अर्थात् सामान की प्राप्ति पर मूल्य का भुगतान करने की विधि सबसे अधिक प्रचलित है।

डाक द्वारा व्यापार के लाभ

ग्राहकों के दृष्टिकोण से— (1) ग्राहक की इच्छित वस्तु उसके घर पर पहुँच जाती है। उसे उसको प्राप्त करके के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है।

(2) समस्त माल एक गुण का व उत्तम प्रकार का आता है। ग्राहक को इस बात का भय नहीं रहता है कि उसका माल खराब या कम उपयोगी होगा।

(3) वे वस्तुयें जो स्थानीय बाजार में नहीं मिलती हैं वे उसे आसानी से प्राप्त हो जाती हैं।

(4) बाजार में नये माल के आने की सूचना मिलती रहती है।

विक्रेता के दृष्टिकोण से— (1) व्यापारी को दुकान की सजावट पर रुपया खर्च नहीं करना पड़ता है। वह घर बैठे ही व्यापार कर सकता है।

(2) थोड़ी-सी पूँजी लगाकर व्यापार को आरम्भ किया जा सकता है।

(3) उसको बाहर भेजने वाले एजेन्टों और प्रचारकों की आवश्यकता नहीं है। अतः वस्तु का मूल्य कम हो जाता है।

(4) व्यापार का कार्य-क्षेत्र विस्तृत हो जाता है क्योंकि डाक द्वारा विज्ञापन दूर-दूर तक किया जा सकता है।

(5) रुपये के डूबने का भय नहीं रहता है क्योंकि अधिकांश माल वी. पी. पी. द्वारा भेजा जाता है।

(6) इस प्रकार व्यापार में मध्यस्थों की कड़ी नहीं होती है। अतः माल का मूल्य सस्ता हो जाता है और इसके फलस्वरूप बिक्री अधिक होती है।

(7) यह व्यापार अतिरिक्त समय में भी किया जा सकता है।

डाक द्वारा व्यापार की हानियाँ

(1) क्रेता और विक्रेता एक दूसरे के सम्पर्क में नहीं आते हैं। अतः माल की किस्म को बिना देखे ही आदेश दिया जाता है। यदि माल वर्णित किस्म से भिन्न होता है तो क्रेता को हानि रहती है।

2. वस्तु प्रायः उधार बेची जाती है।

3. डाक द्वारा वस्तु भेजने में तथा माल का आदेश देने में कुछ समय लगता है। अतः क्रेता को माल तुरन्त ही नहीं प्राप्त होता है।

4. यदि ग्राहक माल के गुण व उपयोगिता के विषय में कुछ अतिरिक्त जानकारी करना चाहता है तो उसे बार-बार पत्र-व्यवहार करना पड़ता है। ऐसा करने में असुविधा होती है तथा व्यर्थ का व्यय करना पड़ता है।

5. अनपढ़ ग्राहकों के लिए पद्धति बेकार है।

6. इस प्रकार व्यवसाय में ईमानदारी की अपेक्षा धोखेबाजी अधिक है। हम नित्य प्रति समाचार-पत्रों में ऐसे विज्ञापन पढ़ते हैं वे प्रायः धोखेबाजी से परिपूर्ण होते हैं। इससे क्रेताओं को बहुत हानि उठानी पड़ती है।

7. इस प्रकार के व्यवसाय में ग्राहकों की संख्या बहुत कम होती है क्योंकि ग्राहक विज्ञापन व सूची-पत्र से इतना प्रभावित होता है जितना कि वह वस्तु को स्वयं देखकर प्रभावित होता है।

8. विक्रेता के लिए यह असम्भव है कि वह प्रत्येक ग्राहक की रुचि का ख्याल रख सके। इससे ग्राहकों की संख्या अधिक नहीं हो पाती है।

9. विज्ञापन तथा सूची-पत्रों के छपवाने में अधिक व्यय करना पड़ता है।

उपर्युक्त लाभ व दोषों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इन निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतवर्ष में डाक द्वारा माल भेजने का व्यवसाय प्रायः धोखेबाजी व छल-कपट का व्यापार बन गया है। यही करण है कि लोगों का विश्वास इस प्रकार की पद्धति की ओर से बिल्कुल हट चला है। इस प्रकार के व्यापार में सफलता प्राप्त करने की आधार-शिला ग्राहकों में विश्वास उत्पन्न करना है जो कि भारतवर्ष में नहीं पाया जाता है। इस प्रणाली के अन्दर छोटी-छोटी चीजों को भेजा जाता है अतः कृषि के सामान के विक्रय के लिए प्रणाली उपयुक्त नहीं है क्योंकि उस सामान को डाक द्वारा भेजना सम्भव नहीं है। ★

प्रश्न 9. सुपर बाजार क्या है ? इसकी विशेषताओं का वर्णन करते हुए इसके लाभ व दोषों का विवेचन कीजिये। भारत में इसकी सफलता की सम्भावना पर विचार कीजिये।

What is Super Market ? Bring out their characteristics and discuss advantages and disadvantages. Explore the possibilities of its success in India.

उत्तर : सुपर बाजार (Super Market)—**सुपर बाजार** से आशय एक ऐसी बड़ी विभागीय फुटकर संस्था से है, जो विभिन्न वस्तुओं का व्यापार करती है तथा जो स्वयं सेवा (Self Service) के आधार पर ही वस्तुओं का विक्रय करती है। प्रायः

इस प्रकार की संस्था नकद आधार पर ही माल का विक्रय करती है। चूँकि संस्थायें विभिन्न प्रकार की दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का व्यापार करती हैं, अतः इन्हें मिला-जुला भण्डार (Combination Store) भी कहते हैं। ये भण्डार बिना विक्रे-ताओं के संचालित होते हैं तथा ये बाजार में ग्राहकों को अपनी मनपसन्द वस्तुओं के चुनने का पूरा-पूरा सुअवसर प्रदान करते हैं।

सुपर बाजार की विशेषतायें (Characteristics of Super Market)—सुपर बाजार की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

1. **बृहद्-स्तरीय विक्रय** (Large-scale selling)—सुपर बाजार में विक्रय वृहद् पैमाने पर होता है।

2. **स्वयं सेवा** (Self Service)—सुपर बाजार स्वयं सेवा के आधार पर संचालित किये जाते हैं विक्रेताओं का इसमें प्रायः अभाव ही होता है। ग्राहक अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को खुली आलमारियों में से निकाल-निकालकर स्वयं देखता है और छाँट लेता है।

3. **विभिन्न वस्तुओं का विक्रय** (Sales Variety of Products)—आजकल सुपर बाजार में खाद्य-सामग्री के साथ ही जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की कई वस्तुओं का विक्रय किया जाता है।

4. **पैकिंग पर विशेष ध्यान** (Special Attention to Packing)—सुपर बाजार में बेची जाने वाली वस्तुओं के पैकिंग पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

5. **अपेक्षाकृत कम कीमतें** (Comparative Low-Prices)—सुपर बाजार में माल की कीमतें अपेक्षाकृत कम होती हैं।

6. **विभागीय संस्था** (Departmental Institution)—इसमें प्रायः वस्तुओं के अनुसार विभाग बना दिये जाते हैं।

7. **पर्याप्त स्थान** (Ample Space)—सुपर बाजार में ग्राहकों की सुविधा हेतु पर्याप्त स्थान की व्यवस्था की जाती है।

8. **केन्द्रीय भुगतान व्यवस्था** (Central Payment System)—सुपर बाजार में केन्द्रीय भुगतान पद्धति का प्रयोग किया जाता है अर्थात् ग्राहक जब सभी विभागों से माल चुनकर एकत्रित कर लेता है तो उसे एक स्थान पर आकर बिल बनवाना पड़ता है और उसका भुगतान करना पड़ता है।

सुपर बाजारों का उद्भव एवं विकास (Origin and Development of Super Markets)—सुपर बाजार की व्यवस्था सर्वप्रथम अमेरिका में प्रथम व द्वितीय महायुद्ध की अवधि के मध्य हुई थी। वहाँ पर युद्धकाल में विभिन्न प्रकार की फुटकर दुकानों की परस्पर प्रतिस्पर्धा के कारण सुपर बाजारों की स्थापना की गई। सन् 1929 में सुपर बाजार में खाद्य-पदार्थों का केवल 36% ही व्यापार होता था। सन् 1939 में इसमें 54% व्यापार होने लगा। इसकी बिक्री प्रतिवर्ष 1 लाख डालर से अधिक की होने लगी। यह प्रारम्भ में 600 प्रकार की वस्तुयें ही रखता था किन्तु अब 8000

से अधिक किस्म की वस्तुओं का विक्रय करना है। अतः बड़ी मात्रा में वस्तुओं के विक्रय होने के कारण इसकी लागत में 10% की बचत होने लगी। इससे वस्तुयें अधिक सस्ते दामों पर बिकने लगीं।

सुपर बाजार के लाभ
(Advantages of Super Market)

1. **एक ही स्थान पर आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि**—सुपर बाजार की व्यवस्था से ग्राहकों को सभी घरेलू आवश्यकताओं की वस्तुयें एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती हैं अतः ग्राहकों को इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं होती है।

2. **एक मूल्य**—सुपर बाजार में वस्तुओं का एक ही मूल्य होता है। इसमें सौदेबाजी करने की आवश्यकता नहीं होती है।

3. **अधिक विक्रय**—ग्राहकों को अपनी पसन्द की सम्पूर्ण वस्तुयें एक-ही स्थान पर प्राप्त हो जाने के कारण विक्रय में तीव्रगति से वृद्धि होती है।

4. **कम मूल्य**—सुपर बाजारों की संचालन लागत कम आने से ग्राहकों को जो मूल्य देना पड़ता है वह अन्य दुकानों की अपेक्षा कम होता है।

5. **ग्राहकों को चुनाव सम्बन्धी पूर्ण स्वतन्त्रता**—इस प्रणाली में विक्रेता कर्मचारियों का अभाव होने के कारण ग्राहकों को अपनी मनपसन्द वस्तुयें चुनने का अवसर उपलब्ध होता है।

6. **कर्मचारी समस्याओं से मुक्ति**—सुपर बाजार में विक्रेता नहीं होते हैं। अतः कर्मचारियों की आवश्यकता बहुत कम होती है। परिणामतः सुपर बाजार के संचालक विक्रेताओं के प्रशिक्षण एवं नियन्त्रण जैसी समस्याओं से मुक्त हो जाते हैं।

7. **बड़े पैमाने पर उत्पादन के लाभ**—बड़े पैमाने पर किये जाने वाले समस्त लाभ सुपर बाजार में प्राप्त होते हैं।

8. **नकद विक्रय**—इन बाजारों से प्रायः नकद व्यापार ही होता है। अतः ऋण के डूबने का भय नहीं रहता है।

9. **विभिन्न वस्तुओं के विक्रय में सक्षम**—सुपर बाजार में कई वस्तुओं का विक्रय एक साथ सम्भव है।

10. **अधिक लाभ**—प्रति इकाई कम लाभ द्वारा अधिक विक्रय करके कुल लाभ को अधिक किया जा सकता है। सुपर बाजार में भी यही बात लागू होती है।

सुपर बाजार से हानियाँ
(Disadvantages of Super Market)

सुपर बाजार के जहाँ लाभ हैं वहाँ इनकी हानियाँ भी हैं। ये हानियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **विशाल पूँजी की आवश्यकता**—सुपर बाजार में बड़ी मात्रा में व्यापार होने के कारण पूँजी की अत्यधिक मात्रा में आवश्यकता होती है।

2. **अधिक समय**—प्रायः सुपर बाजार में माल के चुनाव में तो समय नहीं लगता किन्तु चुने माल के बिल बनाने और पैकिंग में काफी समय लग जाता है।

3. **उपयुक्त स्थान मिलने में कठिनाई**—इनकी स्थापना शहर के मध्य ही होने के कारण विशाल भवन एवं उपयुक्त स्थान मिलने में कठिनाई होती है।

4. **साख सुविधाओं का अभाव**—इन बाजारों में साख सुविधाओं का प्रायः अभाव होता है। अतः ग्राहकों को इससे बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ता है।

5. **अन्य प्रकार की असुविधा**—भारी तथा विभाजित की जाने वाली वस्तुओं के विक्रय में काफी असुविधा रहती है।

6. **वस्तुओं के खराब होने का भय**—सुपर बाजारों में भारी मात्रा में स्टॉक रखा जाता है और मुख्यतः वस्तुयें खाद्य वस्तुयें ही होती हैं अतः उनके खराब होने का भय रहता है।

7. **अतिरिक्त क्रय का अभाव**—सुपर बाजारों में ग्राहक को अतिरिक्त क्रय के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता है। यदि विक्रेता कुशल हो तो वह ग्राहकों को अतिरिक्त क्रय के लिये प्रोत्साहित कर सकता है।

8. **ग्राहकों की असन्तुष्टि**—सुपर बाजार में ग्राहकों को व्यक्तिगत सेवा एवं सहयोग न मिल सकने के कारण बहुत से ग्राहक असन्तुष्ट होते हैं।

9. **तकनीकी एवं भारी वस्तुओं का विक्रय असम्भव**—सुपर बाजारों में तकनीकी एवं भारी वस्तुओं का विक्रय करना प्रायः असम्भव है।

भारत में सुपर बाजार (Super Market in India)—भारत में भी सुपर बाजार का प्रादुर्भाव हो चुका है। भारतवर्ष में जो सुपर बाजार उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार की सहायता से स्थापित किये हैं वे वास्तव में यूरोप एवं अमेरिका के विभागीय भण्डारों से अधिक मेल खाते हैं। नई दिल्ली में कनॉट प्लेस में "गोविन्द वल्लभ पंत सुपर बाजार" स्थापित किया है। साथ ही बम्बई, लखनऊ, देहरादून, इलाहाबाद, जोधपुर आदि शहरों में भी सुपर बाजारों की स्थापना की गई तथा शीघ्र ही देश के अन्य स्थानों में भी इनकी स्थापना की जा रही है।

भारत में अधिकांश जनता के निर्धन एवं अशिक्षित होने के कारण यहाँ सुपर बाजार अधिक सफल नहीं हुए हैं किन्तु आशा है कि भविष्य में भारत में इनका तेज गति से विकास हो सकेगा। भारत में ज्यों-ज्यों शहरीकरण होता जा रहा है, त्यों-त्यों, इनकी स्थापना का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। ★

प्रश्न 10. वितरण के उपयुक्त माध्यम का चुनाव करते समय ध्यान में रखे जाने वाले तत्वों का उल्लेख कीजिए।

Explain the factors determining the choice of a suitable channel distribution.

अथवा

स्रोत निर्माण से सम्बन्धित निर्णय लेने में किन कारकों पर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

उत्तर—प्रत्येक उत्पादक को अपनी वस्तुओं के वितरण एवं बिक्री के लिये एक उपयुक्त वितरण माध्यम चुनने की समस्या सदैव सामने आती है। वितरण व्यवस्था की सफलता में यह एक निर्णायक तत्व है अतः इसे बहुत सोच विचारकर तथा सावधानी से तय करना चाहिए । वितरण के उपयुक्त माध्यम का चुनाव वितरण सम्बन्धी निर्णयों का एक महत्वपूर्ण घटक है और इस निर्णय का एक उपक्रम के लिए निम्न दो दृष्टियों से व्यापक महत्व है—

(1) कम्पनी द्वारा अपनी वस्तुओं के वितरण के लिए चुना गया वितरण माध्यम कम्पनी में दूसरे वितरण सम्बन्धी निर्णयों को भी प्रभावित करता है।

(2) चूँकि स्थापित माध्यम एक नये उत्पाद के विपणन व्यय में बचत करके ऊँचे लाभ सम्भव बनाती है अतः उन्हें एक कमाऊ सम्पत्ति (Earning asset) माना जा सकता है ।

अतः इस सम्बन्ध में कोई भी अंतिम निर्णय लेने से पूर्व वितरण के माध्यमों के चयन को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का गहन अध्ययन व विश्लेषण करना उपयुक्त है जो निम्नलिखित हैं -

(अ) **उपभोक्ता सम्बन्धी तत्व** (Consumers Considerations)—वितरण के माध्यम पर जिन तत्वों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है उनमें उपभोक्ता की प्रकृति तथा सुविधा का विशिष्ट स्थान है । उपभोक्ता कि निम्न विशेषताओं का वितरण माध्यम पर बहुत प्रभाव पड़ता है—

(1) **संख्या** (Number)—जब उपभोक्ताओं की संख्या बड़ी होनी है तो उत्पादकगण लम्बी वाहिकाओं का प्रयोग करते है, जिनमें की प्रत्येक स्तर पर अनेक मध्यजन होते हैं ।

(2) **उपभोक्ताओं का विस्तार** (Scatter of the Consumers)—यदि किसी वस्तु के उपभोक्ता एक सीमित क्षेत्र में ही फैले हुए हों तब निर्माता को चाहिए कि वह अपनी वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप में सक्रिय मध्यस्थों के माध्यम से बेच दे । इसके विपरीत, यदि उस वस्तु के उपभोक्ता देश के विभिन्न भागों में फैले हुए हों तो निर्माता को चाहिए कि वह थोक विक्रेताओं एवं फुटकर व्यापारियों की सहायता ले । बिखरे हुए उपभोक्ताओं को बेचने की अपेक्षा सीमित स्थानों में संकेन्द्रित उपभोक्ताओं को बेचना कम खर्चीला होता है ।

(3) **क्रय का स्वरूप**—क्रय का स्वरूप भी वितरण माध्यम को प्रभावित करता है । जहाँ अन्तिम उपभोक्ता वस्तु को थोड़ी-थोड़ी मात्राओं में कई बार खरीदते हैं वहाँ अपेक्षाकृत लम्बी वितरण वाहिकायें वाँछनीय होती हैं ।

(4) **साख आदि सुविधाओं की आवश्यकता** – यदि उस वस्तु को बेचने के लिए उपभोक्ता को उधार देना आवश्यक हो तो निर्माता के लिये यह अधिक लाभदायक रहता है कि वह अपनी वस्तुओं को थोक व्यापारियों और फुटकर व्यापारियों के माध्यम से बेचे। इसी प्रकार यदि ग्राहक किसी विशेष सुविधा के अभ्यस्त हों और निर्माता के लिये उसे सुलभ कराना सम्भव न हो तो उस स्थिति में उसे प्रचलित माध्यमों का ही आश्रय लेना लाभदायक रहता है।

(ब) **वस्तु सम्बन्धी तत्व** (Product Considerations)—अनेक वस्तुयें कुछ विशेषताओं का पिटारा होती हैं। वस्तु की कुछ विशेषताओं (जैसे वस्तु का रंग) को छोड़कर अन्य विशेषतायें इस बात को बहुत प्रभावित करती हैं कि अंतिम उपभोक्ताओं तक उसे पहुँचाने के लिये किन-किन मध्यस्थों का प्रयोग किया जाये। इस सम्बन्ध में वस्तु के निम्न गुणों पर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक होता है—

(1) **इकाई मूल्य** (Unit Value)—एक वस्तु का इकाई मूल्य वितरण व्यवस्था पर व्यय किये जा सकने योग्य धन की व्यवस्था को प्रभावित करता है। इकाई मूल्य जितना कम होता है वितरण श्रृंखला उतनी ही अधिक लम्बी हो सकती है। जो वस्तुयें अधिक मूल्यवान होती हैं, वे प्रायः उत्पादकों द्वारा सीधी ही बेची जाती हैं।

(2) **आकार एवं वजन** (Bulk & Weight)—जो वस्तुयें मूल्य के सन्दर्भ में भारी या बड़े आकार की हैं उनके लिए प्रायः ऐसी वाहिका प्रणालियों की आवश्यकता होती है, जो माल के उत्पादक से अन्तिम ग्राहकों तक ले जाने में परिवहन दूरी और फेर-बदल से सम्बन्धित उठाया-धरी की बारम्बारता को न्यूनतम कर दें।

(3) **नाशवानता** (Perishability)—जो वस्तुयें शीघ्र नाशवान हैं, वे कम से कम मध्यस्थों के हाथ से गुजरनी चाहिए। ऐसी वस्तुओं के लिए प्रत्यक्ष विपणन की आवश्यकता होती है, क्योंकि समय विलम्बों और बार-बार उठाया-धरी से माल को नुकसान पहुँचता है।

(4) **प्रमापीकरण** (Standardization) – प्रमापित वस्तुयें प्रायः मध्यस्थों के द्वारा ही बेची जाती हैं।

(5) **विक्रयोपरांत सेवा** (After Sale Service) – जिन वस्तुओं के लिए विक्रयोपरांत सेवा देनी होती है वे या तो निर्माता द्वारा स्वयं या उनके अधिकृत अभिकर्त्ताओं (Authorised Agents) द्वारा ही बेची जाती हैं।

(स) **कम्पनी सम्बन्धी तत्व** (Company Consideration)—वितरण के माध्यम पर कम्पनी के विशिष्ट लक्षणों का भी प्रभाव पड़ता है—

(1) **कम्पनी का आकार** (Size of the Company) —एक बड़ी कम्पनी वितरण माध्यमों की छोटी श्रृंखला से भी काम चला सकती है।

(2) **कम्पनी के वित्तीय साधन** (Financial Resources)—वित्तीय साधनों की दृष्टि से सशक्त एक कम्पनी को मध्यस्थों की आवश्यकता कम पड़ती है और वह इसके बिना प्रत्यक्ष व्यवसाय भी कर सकती है।

(3) **वस्तु अन्तर्लय**—वस्तु अन्तर्लय जितना चौड़ा होगा कम्पनी की ग्राहकों से प्रत्यक्ष व्यवहार करने की योग्यता भी उतनी ही अधिक होगी। इसी प्रकार वस्तु अन्तर्लय में जितनी अधिक अनुरूपता होगी, वितरण वाहिकाओं में भी उतनी अधिक एकरूपता पाई जायेगी।

(4) **व्यवसाय का प्रचलन** (Custom of the Business)—अनेक बार निर्माता को वितरण के माध्यम में चुनाव करने का कोई अधिकार नहीं होता, यह व्यावसायिक परिस्थितियों के द्वारा पहले से ही तय होता है। कोई भी नया निर्माता व्यवसाय में सुस्थापित इन माध्यमों की अवहेलना नहीं कर सकता।

(द) **मध्यस्थों से सम्बन्धित तत्व** (Middlemen Consideration)—

(1) **मध्यस्थों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवायें** (Services Provided by Middlemen)—एक उत्पादक को उस मध्यम का चयन करना चाहिए जो उन विपणन सेवाओं को प्रदान कर सकता हो जिन्हें वह उत्पादक प्रदान ही नहीं कर सकता या मितव्ययितापूर्वक प्रदान नहीं कर सकता।

(2) **उत्पादकों की नीतियों के प्रति मध्यस्थों का रुख** (Attitude of middlemen towards Manufacturer Policies)—कभी-कभी उत्पादकों की वितरण एवं पूर्ति सम्बन्धी नीतियाँ मध्यस्थों को पसन्द न आने के कारण भी मध्यस्थों का चुनाव सीमित हो जाता है।

(3) **विक्रय मात्रा की सम्भावनायें** (Sales Volume Possibilities)—उत्पादक स्वाभाविक रूप से उस मध्यस्थ को ही चुनना पसन्द करेगा जो उसे अधिक से अधिक मात्रा में बिक्री करके दे सके।

(4) **लागत** (Cost Consideration)—अन्त में यह तत्व पर्याप्त महत्वपूर्ण है कि किस वितरण माध्यम के द्वारा वस्तु वितरण करने में उत्पादक को लागत कम से कम पड़ेगी। उत्पादक स्वाभाविक रूप से सबसे अधिक मितव्ययी माध्यम का ही चुनाव करेगा।

(य) **वातावरण सम्बन्धी तत्व** (Environmental Consideration)—वातावरण सम्बन्धी तत्व भी वितरण माध्यम को प्रभावित करते हैं—

(1) **आर्थिक दशायें**—जब आर्थिक दशायें निराशापूर्ण होती हैं तो उत्पादक अपने माल को बाजार में ऐसे तरीके से पहुँचाना पसन्द करेंगे जो कि अन्तिम ग्राहकों के लिए कम से कम खर्चीला हो।

(2) **कानूनी प्रतिबन्ध**—सरकारी कानून और प्रतिबन्ध भी वितरण माध्यम को प्रभावित करते हैं।

(र) **सामान्य तत्व** (General Factors)—निम्नलिखित सामान्य तत्व भी उत्पादकों को वितरण माध्यमों का चयन करने मे पथ-प्रदर्शक का काम करते हैं—

(1) **उपयुक्तता**—विचाराधीन वितरण माध्यम उपक्रम की घोषित विपणन नीतियों और विपणन कार्यक्रम के उपयुक्त हो।

(2) **सक्षमता**—मध्यस्थ उत्पादक उपक्रम को बाजार में नयी वस्तुओं के प्रवेश के समय उल्लेखनीय सफलता दिलाने में सक्षम हो।

(3) **बदलने की स्वतन्त्रता**—उपक्रम के प्रबन्धकों पर वितरण माध्यम का चुनाव करने में कोई अनुबन्धात्मक अथवा वैधानिक प्रतिबन्ध न लगता हो। उपक्रम को यह स्वतन्त्रता हो कि वह आवश्यकता पड़ने पर मध्यस्थ बदल सके।

(4) **प्रतिस्पर्धियों के वितरण माध्यम**—दूसरे प्रतिस्पर्धी उत्पादकों द्वारा उसी प्रकार की वस्तुओं के वितरण के लिए किन-किन माध्यमों का प्रयोग किया जा रहा है इस बात को भी ध्यान में रखना अति आवश्यक है।

(5) **सामाजिक दृष्टिकोण**—उत्पादकों को इस दिशा में हो रहे नये परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना चाहिए। मध्यस्थों के प्रति साधारण समाज का क्या दृष्टिकोण है यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए।

1

विज्ञापन

(ADVERTISEMENT)

प्रश्न 1. "विज्ञापन को कुछ फिजूलखर्ची कहते हैं तो अन्य उसे आधुनिक व्यवसाय की अनिवार्यता समझते हैं।" विवेचना कीजिए तथा वैज्ञानिक विज्ञापन की आवश्यकता दर्शाइये।

"While some call advertising a waste, others regard it as a sine-qua-non of modern business." Comment and point out the need for scientific advertising.

अथवा

वैज्ञानिक विज्ञापन से आप क्या समझते हो ? आधुनिक व्यवसाय में विज्ञापन की उपयोगिता समझाइये।

What do you understand by Scientific Advertising ? Explain the usefulness of advertisement in modern business.

अथवा

विज्ञापन शब्द का अर्थ बताओ। क्या प्रचार और विज्ञापन एक ही बात है ? विज्ञापन के लाभ (महत्व), दोष व मर्यादायें बताओ।

Explain the term 'Publicity,' Is it the same thing as propaganda' ? Discuss its advantages and. disadvantage slimitations.

अथवा

"विज्ञापन करने से लाभ होता है।" "विज्ञापन पर व्यय किया रुपया व्यर्थ जाता है।" दोनों की विवेचना कीजिए।

"It pays to advertise," "Money spent on advertisement is wasteful," Reconcile these views.

अथवा

'विज्ञापन' तथा 'प्रचार' में भेद स्पष्ट कीजिये तथा विज्ञापन के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—

विज्ञापन से आशय

विज्ञापन का तात्पर्य उन समस्त क्रियाओं से है जिनका उद्देश्य किसी वस्तु की 'लोक प्रसिद्ध' है। अब तक विज्ञापन का अर्थ 'सूचना देना' या 'सूचित करना' था, किन्तु आधुनिक व्यापार-जगत में तथा प्रतिस्पर्धा के युग में इसका अर्थ अधिक विस्तृत हो गया है। आजकल विज्ञापन शब्द की परिभाषा के अन्दर हम उन सभी साधनों का समावेश करते हैं, जिनके द्वारा उपभोक्ताओं को नवीन वस्तुओं की उत्पत्ति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इसका प्रमुख उद्देश्य बिक्री में वृद्धि करना तथा उपभोक्ताओं को वस्तुओं के गुण एवं मूल्य की सूचना देना है। **संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि व्यापारिक दृष्टिकोण से विज्ञापन का तात्पर्य उन क्रियाओं से है जो किसी 'वस्तु' अथवा 'सेवा' की उपयोगिता का जनता के ऊपर प्रभाव डालने से सम्बन्ध रखती हैं।**

विज्ञापन की परिभाषाएँ

'विज्ञापन' को विभिन्न विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है—

1. **डॉ. जोन्स के अनुसार**—"विज्ञापन एक यंत्र निर्मित बड़े पैमाने के उत्पादन की विक्रय विधि है जो व्यक्तिगत विक्रेताओं के व्यक्तित्व एवं वाणी की पूरक है"।

2. **लस्कर के अनुसार** —"विज्ञापन मुद्रण के रूप में विक्रय कला है।"

3. **शैल्डन के अनुसार**—"विज्ञापन वह व्यावसायिक शक्ति है जिसके अंतर्गत मुद्रित शब्दों के द्वारा विक्रय-वृद्धि में सहायता मिलती है, ख्याति का निर्माण होता है तथा साख बढ़ती है।

4. **फ्रेंक प्रेसब्रे के अनुसार**—"विज्ञापन मुद्रित, लिखित, शब्दों द्वारा व्यक्त या चित्रित विक्रय कला है। विज्ञापन का कार्य विज्ञापक की वस्तुओं को बेचना तथा जनता के मस्तिष्क को व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से विज्ञापन के हित में प्रभावित करना होता है।

5. **वुड के अनुसार**—"विज्ञापन जानने, स्मरण रखने तथा कार्य करने की एक विधि है।"

प्रचार (Propaganda) का उद्देश्य भी वस्तु की लोक-प्रसिद्धि करना है। यह भी विक्रय कला का एक छिपा हुआ रूप है। किन्तु विज्ञापन और प्रचार में अन्तर है। विज्ञापन का रूप बृहत रूप में लिया जाता है। किसी वस्तु के प्रचार में व्यक्तिगत कला का बहुत महत्व होता है क्योंकि प्रचार करने का कार्य प्रधानतः मनुष्य द्वारा ही किया जाता है। प्रचार के द्वारा किसी वस्तु को प्रसिद्ध करने का क्षेत्र एवं विक्रय विकास का क्षेत्र सीमित होता है किन्तु विज्ञापन में यह बात नहीं है। किसी वस्तु का विज्ञापन अनेक साधनों से किया जा सकता है जैसे समाचार-पत्रों द्वारा, पत्रिकाओं द्वारा और सिनेमा द्वारा आदि। अतः यह स्पष्ट है कि प्रचार

एवं विज्ञापन का उद्देश्य तो एक ही हो सकता है किन्तु दोनों के कार्य-क्षेत्र में प्रायः अन्तर होता है। विज्ञापन का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है जबकि प्रचार करने का क्षेत्र सीमित ही होता है।

विज्ञापन एवं प्रचार में अन्तर

विज्ञापन एवं प्रचार में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित है—

नं.	अंतर का आधार	विज्ञापन	प्रचार
1	उद्देश्य	विज्ञापन का उद्देश्य किसी वस्तु को सस्ते से सस्ते मूल्य पर बेचना है।	प्रचार का उद्देश्य किसी वस्तु की ख्याति बढ़ाना या किसी मत को व्यक्त करना है।
2	क्षेत्र	विज्ञापन का क्षेत्र व्यापक है।	प्रचार का क्षेत्र संकुचित है।
3	व्यक्तिगत कला	विज्ञापन में व्यक्तिगत कला का विशेष महत्व नहीं है।	प्रचार में व्यक्तिगत कला का विशेष महत्व है।
4	व्यय की सीमा	विज्ञापन में व्यय नियोजित ढंग से होता है।	प्रचार में व्यय की कोई सीमा नहीं है।

विज्ञापन की आवश्यकता, उद्देश्य एवं महत्व

विज्ञापन आधुनिक व्यापार का एक जीवन तत्व है। इसके बिना आज के व्यापार की उन्नति सम्भव नहीं है। आज विस्तृत मण्डियों को हस्तगत करने के लिए विज्ञापन एक आवश्यक वस्तु बन गया है। आजकल विज्ञापन मुख्यतः निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है—

1. **वस्तुओं के बारे में जानकारी देना**—"विज्ञापन का एक प्रमुख उद्देश्य वस्तुओं के बारे में उपभोक्ताओं एवं जन सामान्य को जानकारी देना होता है। जब तक वस्तुओं के बारे में जनसामान्य को जानकारी नहीं होगी तब तक वस्तुओं का विक्रय होना असंभव है।

2. **नवीन वस्तु के लिये आधार तैयार करना**—विज्ञापन का उद्देश्य जनसामान्य को वस्तुओं के बारे में जानकारी देने के साथ-साथ नवीन वस्तुओं के विक्रय के लिये आधार तैयार करना भी है।

3. **माँग उत्पन्न करना**—विज्ञापन का एक उद्देश्य बाजार में वस्तु के लिये माँग उत्पन्न करना भी है। किसी भी वस्तु के लिये बाजार में माँग तभी उत्पन्न की

जा सकती है जबकि ग्राहकों के समक्ष वस्तु की उपयोगिता को बता कर उनमें वस्तु क्रय करने की इच्छा जाग्रत की जाय।

4. **उत्पन्न माँग को स्थिर रखना**—विज्ञापन का उद्देश्य माँग को उत्पन्न करके उसे स्थिर बनाये रखना भी है। माँग को स्थिर रखने से यहाँ पर हमारा अभिप्राय मांग में कमी न होने देने से है।

5. **माँग में वृद्धि करना**—विज्ञापन का एक उद्देश्य वस्तु की माँग में वृद्धि करना भी है ताकि उत्तरोत्तर अधिक विक्रय संभव हो सके। प्रत्येक व्यवसायी अथवा उत्पादक का प्रधान लक्ष्य अपने उत्पादन में वृद्धि करना रहता है क्योंकि अधिकतम लाभ की प्राप्ति उसी दशा में सम्भव है जबकि विक्रय अधिकतम हो।

6. **साख में वृध्दि करना**—विज्ञापन का उद्देश्य विक्रय में वृद्धि करने के साथ-साथ व्यवसाय की साख में वृद्धि करना भी होता है।

आज के युग में विज्ञापन का महत्व प्रत्येक क्षेत्र में बहुत बढ़ गया है जैसे व्यापारिक क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में व राजनैतिक क्षेत्र में आदि। प्राचीन काल में जबकि मनुष्यों की आवश्यकतायें बहुत कम थीं उस समय विज्ञापन का कोई महत्व नहीं था किन्तु उत्पादन तथा बाजार के विस्तार के साथ-साथ विज्ञापन का महत्व भी बढ़ता चला। आजकल श्रम-विभाजन (Division of Lobour) व विशिष्टीकरण (Specialisation) का बोलबाला है। ऐसो अवस्था में विज्ञापन का महत्व बढ़ जाना भी स्वाभाविक है। विशिष्टीकरण के युग में वस्तुओं की उत्तमता का प्रचार करना नितान्त आवश्यक हो जाता है। इसके लिए विभिन्न साधनों का प्रयोग करना पड़ता है जैसे—समाचार-पत्र, पत्रिकायें, रेडियो और सिनेमा आदि। आजकल के विज्ञापन पुराने समय के विज्ञानों से बिल्कुल भिन्न हैं। प्राचीन समय में जनता को केवल इस बात की सूचना दी जाती थी कि अमुक वस्तु बनकर तैयार हो गई और यदि क्रेता चाहें तो उसे खरीद सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय विज्ञापन का उद्देश्य उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकृष्ट करना नहीं था, किन्तु आधुनिक समय में ग्राहकों को आकृष्ट करने के प्रत्येक प्रयत्न किये जाते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह मालूम होता है कि आज के युग में विज्ञापन का बहुत महत्व ह। अब हम इस बात का अध्ययन विस्तृत रूप में करेंगे कि विज्ञापन के क्या-क्या लाभ (महत्व) हैं। इनका विवरण निम्नलिखित है—

(i) **वस्तुओं की बिक्री में वृद्धि**—आज का युग विज्ञापन का युग है। कोई भी व्यापार चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा बिना विज्ञापन कराये उन्नति नहीं कर सकता। आजकल विज्ञापन को बहुत ही शृंगारमय व चित्ताकर्षक तरीकों से किया जाता है। इससे ग्राहक उनकी ओर आकृष्ट होते हैं और इस प्रकार से बिक्री में वृद्धि होती है। बिक्री में वृद्धि से विक्रेता का लाभ भी बढ़ता है—

2. **आजीविका का साधन**—आर्थिक दृष्टिकोण से विज्ञापन का निःसन्देह अत्यन्त महत्व है। अधिकांश जनता इस विज्ञापन एवं तत्सम्बन्धी कार्यों से ही अपना जीवन निर्वाह करती है। विज्ञापन के लिए चित्रादि बनाने के लिए कलाकारों (Artists), लेखकों (Writers) व विशेषज्ञों (Specialists) की आवश्यकता पड़ती है। इन लोगों की जीविका का एकमात्र साधन विज्ञापन ही है। आजकल तो कई कम्पनियाँ ऐसी खुल गई है जिनका कार्य विज्ञप्ति करना ही है। इनका प्रचार विदेशों में अधिक है। अब हमारे देश में भी इनका प्रचार होता जा रहा है।

3. **उत्पादन व्यय में कमी**—उत्पादन के क्षेत्र में भी विज्ञापन का बहुत महत्व है। विज्ञापन के फलस्वरूप ग्राहकों की संख्या बढ़ती है और वस्तुओं की माँग भी अधिक होती है। ऐसा होने से उत्पत्ति एक बहुत बड़ी मात्रा में की जाती है। अधिक मात्रा में किसी वस्तु का उत्पादन करने से यह निश्चित है कि उस वस्तु का उत्पादन मूल्य कम हो जाता है। उत्पादन मूल्य के कम होने से वस्तुओं का मूल्य भी कम हो जाता है। इससे ग्राहकों और विक्रेताओं दोनों को ही लाभ रहता है।

4. **समाचार-पत्रों की आय में वृध्दि**—आधुनिक समय में विज्ञप्ति कराने के लिए प्रायः विभिन्न प्रकार के समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं का सहारा लेना पड़ता है। इससे उनकी आय में वृद्धि होती है। इस बात का अनुमान लगाया गया है कि समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की आय का लगभग 70 प्रतिशत भाग केवल विज्ञापन द्वारा ही प्राप्त होता है। शेष 30 प्रतिशत भाग केवल पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने वालों से प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि विज्ञापन के द्वारा समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं को कितना लाभ है। इस लाभ के भागीदार पाठकगण भी हैं क्योंकि यह विज्ञापन के लाभ द्वारा ही सम्भव है कि पत्र व पत्रिकाओं को इतने सस्ते मूल्य पर बेचा जा सके। यदि समाचार-पत्रों में विज्ञप्ति देना बन्द हो जाये तो यह निश्चित है कि उनका मूल्य बहुत बढ़ जायेगा। इसके फलस्वरूप पाठकों की संख्या भी कम हो जायेगी और इससे व्यापार को भी हानि पहुँचेगी क्योंकि ग्राहकों को वस्तुओं के विषय में कुछ भी मालूम नहीं हो सकेगा। अतः हम कह सकते हैं कि विज्ञापन का महत्व समाचार-पत्र पत्रिकाओं के लिए बहुत अधिक है।

5. **शिक्षाप्रद तथा ज्ञानवर्ध्दक**—विज्ञापन द्वारा उपभोक्ताओं को नई-नई वस्तुओं के बारे में ज्ञान होता है। आजकल व्यापार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है अर्थात् बाजार का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। ऐसी स्थिति में बिना विज्ञापन की सहायता के दूर-दूर की वस्तुओं का ज्ञान होना बिल्कुल कठिन होता है। आजकल विज्ञापन को शिक्षाप्रद एवं ज्ञानवर्द्धक बनाने में रेडियो का विशेष महत्व है। इसके द्वारा अनेक नवीन बातों का पता चलता है। दिल्ली और लखनऊ के आकाशवाणी केन्द्रों से ऐसे प्रोग्राम प्रसारित किये जाते हैं जो कि महिलाओं और बच्चों के लिए

बहुत शिक्षाप्रद एवं ज्ञानवर्द्धक होते हैं। इससे स्पष्ट है कि आधुनिक युग में विज्ञापन का बहुत अधिक महत्व है।

6. **वस्तुओं के लिए माँग**—विज्ञापन एक ऐसा साधन हो गया है जिसके द्वारा किसी वस्तु की माँग को स्थायी रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए हम 'चाय' को लेते हं। समाचार-पत्रों में इस प्रकार का विज्ञापन निकला करता है कि "ब्रुक बाण्ड चाय पीजिए यह गर्मियों में ठण्डक और जाड़ों में गर्मी पहुँचाती है।" बहुत से लोग इन विज्ञापनों से प्रभावित होकर बारह महीने चाय पीने लगते हैं। इसस चाय की माँग स्थायी बन जाती है।

7. **मध्यस्थों की संख्या में कमी**—मध्यस्थों की एक लम्बी कड़ी होने से वस्तुओं का मूल्य बहुत बढ़ जाता है तथा इसका प्रभाव उपभोक्ताओं पर बहुत बुरा पड़ता है। किन्तु विज्ञापन के द्वारा मध्यस्थों की कड़ी को बहुत न्यून कर दिया गया है क्योंकि इसके द्वारा उपभोक्ताओ से उत्पादनकर्त्ताओं का प्रायः प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि विक्रय एवं वितरण व्यय में कमी हो जाती है तथा वस्तुओं का मूल्य कम हो जाता है। ऐसा हो जाने से उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर वस्तु प्राप्त हो जाती है तथा बिक्री में भी वृद्धि होती है।

8. **नवनिर्मित वस्तुओं की माँग में वृध्दि**—विज्ञापन के द्वारा जनता को नवनिर्मित वस्तुओं का ज्ञान कराया जाता है। आज का युग प्रतिस्पर्धा का युग है। ऐसे समय में यह आवश्यक है कि अपनी वस्तु के गुणों को इस प्रकार से बताया जाये कि ग्राहकों पर यह प्रभाव पड़े कि जो भी वस्तु अब चलन में आई है वह अवश्य ही पहली वस्तुओं की अपेक्षाकृत अच्छी होगी। ऐसा हो जाने से पुरानी वस्तुओं की माँग कम हो जाती है तथा नई वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। यह सब कुछ विज्ञापन की कला के ऊपर निर्भर है। विज्ञापन के द्वारा ग्राहकों को वस्तु सम्बन्धी पूर्ण जानकारी करा देनी चाहिए। ऐसा करने से वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है।

9. **उपभोक्ताओं के समय की बचत**—विज्ञापन की सहायता से उपभोक्ताओं के समय की वचत होती है। उनको अपनी आवश्यकता की वस्तु को ढूँढ़ने में अधिक समय व्यर्थ नहीं खोना पड़ता है। विज्ञापन द्वारा उन्हें यह मालूम हो जाता है कि किस प्रकार की वस्तु कहाँ से तथा किसी मूल्य पर प्राप्त की जा सकती है।

10. **व्यवसाय की ख्याति में वृध्दि**—विज्ञापन के द्वारा व्यवसाय की ख्याति निःसन्देह बढ़ती है। इससे व्यापारी को आर्थिक लाभ होता है।

11. **अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा का विकास**—प्रतिस्पर्धा के युग में विज्ञापन का महत्व बहुत अधिक हो गया है। बहुत-सी वस्तुएँ ऐसी भी होती है जिनका कोई उपयोग न होते हुए भी विज्ञापन होता है। इस प्रकार का विज्ञापन उस समय निरर्थक सिद्ध होता है जबकि सामूहिक रूप से किसी वस्तु का विज्ञापन कराया जाता है जैसे

वनस्पति घी। इस प्रकार अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा समाप्त हो जाती है और ग्राहकों को लाभ होता है।

12. **विक्रेताओं (Salesmen) को प्रोत्साहन**—विज्ञापन के द्वारा विक्रेताओं का काम बहुत आसान हो जाता है। उनका यह कार्य है कि वे उपभोक्ताओं और दुकानदारों को अपनी वस्तुओं के गुणों को समझाकर प्रभावित करें एवं विक्रय वृद्धि करें। उनका यह काम बहुत कुछ विज्ञापन के द्वारा आसान हो गया है। अब उन्हें वस्तु के गुणों को समझाने की बहुत अधिक आवश्यकता नहीं रहती है क्योंकि यह कार्य विज्ञापन के द्वारा हो जाता है। अब तो उन्हें केवल माल का आदेश प्राप्त करने का काम ही बाकी रह गया है। इससे स्पष्ट है कि विज्ञापन के द्वारा विक्रेताओं को बहुत प्रोत्साहन मिलता है।

13. **वस्तु के प्रति विश्वास तथा ग्राहकों की निरन्तर मांग**—विज्ञापन के द्वारा वस्तु के प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाता है। विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों को देखकर दुकानदार और उपभोक्ता इस बात का अनुमान लगा लेते हैं कि किस वस्तु में अधिक गुण हैं एवं किसमें कम। विज्ञापन से पूर्व यह कार्य विक्रेता को स्वयं करना पड़ता था। उसे विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ ग्राहकों को दिखानी पड़ती थीं और उनका तुलनात्मक वर्णन करने के पश्चात यह बताना पड़ता था कि उसकी वस्तु सर्वश्रेष्ठ है किन्तु अब यह बात नहीं रही है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं की माँग भी निरन्तर हो जाती है क्योंकि वस्तु के गुणों से सन्तुष्ट हो जाने के पश्चात् ग्राहक उसी वस्तु को खरीदना पसन्द करेगा।

14. **प्रबन्धकों व मजदूरों को प्रोत्साहन**—किसी वस्तु के बारम्बार विज्ञापन से प्रबन्धकों एवं मजदूरों को प्रोत्साहन मिलता है। वे इस बात का प्रयास करते हैं कि उन्होंने अपनी वस्तु के जो गुण विज्ञापन में बताये हैं इन्हें पूर्ण रूप से पूरा करें जिससे कि बाजार में उनकी वस्तु की ख्याति कम न हो। प्रबन्धकों एवं मजदूरों द्वारा तैयार की गई वस्तुओं को अधिक बिक्री होने से उन्हें यह प्रेरणा मिलती है कि उनके द्वारा किया गया प्रयास सफल रहा और वे भविष्य में उस वस्तु को अधिक अच्छा बनाने का प्रयास करते हैं।

15. **सुरक्षा पैदा करना विज्ञापन निर्माता के व्यापार के लिए बीमे का काम करता है**—विज्ञापन के कारण जनता वस्तु को पहचान लेती है। इससे अन्य व्यापारी उस विज्ञापित वस्तु के स्थान पर अपनी वस्तु नहीं चला पाते। सच तो यह है कि विज्ञापन से सुरक्षा प्राप्त होती है जो अपना समय व्यतीत हो जाने के बाद पेटेन्ट प्रदान नहीं कर सकता।

16. **अन्य क्षेत्रों में महत्व**—विज्ञापन के महत्व का अब तक जितना भी वर्णन किया गया है वह व्यावहारिक एवं आर्थिक क्षेत्रों का है। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त भी विज्ञापन का महत्व होता है जैसे सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में यदि कोई

समाज सुधारक देश की भलाई के लिए कोई कार्य करना चाहता है तो उसके लिए जनता के सम्पर्क में आकर अपने भावों को प्रकट करने का सबसे सरल व अच्छा साधन विज्ञापन ही होता है। इसी प्रकार राजनीति सम्बन्धी बातों का प्रचार करने में भी विज्ञापन का विशेष महत्व रहता है। जैसे काश्मीर समस्या, चीन समस्या पर विज्ञप्ति आदि।

उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि विज्ञापन का महत्व आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक व राजनैतिक सभी क्षेत्रों में बहुत है। इस महत्व के साथ-साथ इसके किंचित दोष भी हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है—

1. **अधिक व्यय**—किसी वस्तु का विज्ञापन करने से व्यय बहुत अधिक करना पड़ता है और यह किसी न किसी से वसूल भी अवश्य किया जाता है। वस्तुतः व्यय का भार उपभोक्ताओं पर पड़ता है क्योंकि विक्रेता को इस व्यय को वस्तु के मूल्य में सम्मिलित कर लेता है।

2. **उपभोक्ता का स्वत्व** (Sovereignty) **नष्ट होना**—उपभोक्ता प्रायः विज्ञापन की चमक-दमक से बहुत प्रभावित हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह उस वस्तु को नहीं खरीद पाता है, जिसको कि खरीदना चाहता है बल्कि उस वस्तु को खरीद लेता है जिसके विज्ञापत से वह अधिक प्रभावित होता है। इस प्रकार उसका स्वत्व नष्ट हो जाता है।

3. **धन का अपव्यय**—कभी-कभी ग्राहक विज्ञापन को देखकर ऐसी वस्तुओं को खरीदने के लिए लालायित हो उठता है जिसकी उसे आवश्यकता नहीं होती है तथा जिसके खरीदने के लिए उसके पास पर्याप्त आर्थिक साधन भी नहीं होते हैं। ऐसा करने से धन का अपव्यय होता है।

4. **चंचलता**—विज्ञापन के प्रभाव से उपभोक्ताओं का मस्तिष्क चलायमान हो जाता है। वह उस वस्तु के उपभोग को छोड़ देता है जिसके विषय में उसने पहले निश्चय किया था और उस वस्तु का उपभोग करने लगता है जिसके लिये वह विज्ञापन से प्रेरित होता है। उदाहरण के लिये माना सुशील प्रोफैक्ट साबुन खरीदने के लिये घर से चलता है। रास्ते व फूल छाप साबुन का विज्ञापन बड़ी चमक-दमक के साथ देखता है। उसे देखकर उसका मन चलायमान हो जाता है और वह प्रीफैक्ट के स्थान पर फूल छाप साबुन को ही खरीद लेता है। यह है विज्ञापन का प्रभाव। इससे मनुष्य का मन स्थिर नहीं रहता है।

5. **मिथ्या वस्तुओं का प्रचार**—विज्ञापन एक ठग विद्या बन गई है, क्योंकि इसके द्वारा बहुत-सी मिथ्या बातों का प्रचार किया जाता है जैसे "आज ही पाँच रुपये भेजकर एक घड़ी व अंगूठी प्राप्त करें" आदि। उपभोक्तागण इन विज्ञापनों से प्रभावित होकर हानि उठाते हैं क्योंकि इसमें कोई आवश्यक तथ्य नहीं होता है। भारतवर्ष में इस प्रकार के विज्ञापन बहुत देखने में आते हैं।

6. **फैशन में परिवर्तन**—विज्ञापन के द्वारा फैशन में बहुत शीघ्र परिवर्तन आया करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उपभोक्ता व विक्रेता दोनों को ही हानि होती है। विक्रेता के पास जो पुराने फैशन का माल बच रहता है वह बेकार अवस्था में पड़ा रहता है क्योंकि फैशन में परिवर्तन होने के कारण उपभोक्ता उसे खरीदना पसन्द नहीं करते हैं। उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण से यह इसलिये हानिकारक है क्योंकि उसको फैशन में परिवर्तन के साथ-साथ वस्तुओं का बाहरी रूप बदलवाने में व्यय करना पड़ता है जैसे पुराने जेवरों को नये प्रकार के जेवरों में बदलना आदि।

7 **सामाजिक बुराइयाँ**—विज्ञापन अधिकतर आनन्ददायक व विलासिता सम्बन्धी वस्तुओं के क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में किया जाता है। इससे कई सामाजिक दुष्परिणाम निकलते हैं। किसी व्यक्ति को जब किसी एक चीज के उपभोग करने की बुरी आदत पड़ जाती है तो उसका छूटना बहुत कठिन होता है जैसे सिगरेट पीना। आजकल विभिन्न प्रकार की सिगरेटों का प्रचार विभिन्न आकर्षक तरीकों से किया जा रहा है। इन विज्ञापनों से प्रभावित होकर बहुत से व्यक्ति सिगरेट पीना आरम्भ कर देते हैं। बाद में यह आदत छूटती नहीं।

8. **अत्युक्ति** (Exaggeration)—विज्ञापन में लिखी गई बातें प्रायः जरूरत से ज्यादा बढ़ी हुई होती हैं। उनमें सत्यता लेशमात्र की नहीं है जैसे दवाइयों का विज्ञापन। आजकल दवाओं का विज्ञापन समाचार-पत्रों द्वारा व रेल इत्यादि में विक्रेताओं द्वारा खूब किया जाता है। वास्तव में ये दवायें लाभ की अपेक्षा हानि पहुँचाती हैं।

9. **स्वच्छता में कमी**—विज्ञापनों को दीवारों पर लिखकर या पोस्टर चिपका कर विज्ञापन करने से चारों ओर गन्दगी बढ़ जाती है। इससे नगर की स्वच्छता कम हो जाती है।

10. **आवश्यकताओं में वृद्धि**—विज्ञापन जनता को वस्तुएँ क्रय करने के लिये प्रेरित करता है। विज्ञापन से व्यक्तियों की वस्तुओं को खरीदने की इच्छा इतनी अधिक तीव्र हो जाती है कि वह उसे अपनी आवश्यकता की वस्तु समझने लगता है तथा अपनी आवश्यकता की पूर्ति न होने पर असंतोष महसूस करता है।

11. **नैतिक पतन**—विज्ञापन का एक दोष यह भी है कि कुछ विज्ञापन अश्लील एवं भद्दे होते हैं जिससे लोगों का नैतिक पतन होता है।

12. **प्रतिस्पर्धा का जन्म**—विज्ञापन प्रतिस्पर्धा को जन्म देते हैं। एक व्यापारी दूसरे व्यापारी से विज्ञापन में आगे बढ़ जाना चाहता है। इससे धन का अपव्यय होता है तथा वस्तु की किस्म में गिरावट आ जाती है।

13. **एकाधिकार का निर्माण**—विज्ञापन के निरन्तर प्रयोग से एक विशेष वस्तु का बाजार में एकाधिकार हो जाता है तथा अन्य वस्तुएँ अच्छी किस्म की होने पर भी बाजार में चल नहीं पाती है।

उपर्युक्त लाभ व दोषों की विवेचना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञापन के लाभ अधिक हैं, दोष बहुत कम तथा निर्मूल । अतः यह कहा जा सकता है कि "विज्ञापन से लाभ होता है ।" यह कथन कि, "विज्ञापन पर व्यय किया गया रुपया व्यर्थ जाता है" बिल्कुल निर्मूल है क्योंकि आज के युग में व्यावसायिक उन्नति की आधारशिला विज्ञापन ही है । विज्ञापन के जितने भी दोष बताए गए हैं उनमें किसी न किसी प्रकार सुधार अवश्य किया जा सकता है । यह कहना कि विज्ञापन से प्रभावित होकर मनुष्य धन का अपव्यय करता है या उपभोक्ता का स्वत्व नष्ट हो जाता है, बिल्कुल गलत है क्योंकि कोई भी व्यक्ति वस्तुओं को खरीदने से पूर्व उसकी अच्छाई एवं बुराई को भली प्रकार से देख लेता है । इसमें धन का अपव्यय या अधिक व्यय भी नहीं होता है क्योंकि अधिक माँग के कारण वस्तुओं का उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में किया जाता है । ऐसा करने से वस्तुओं का मूल्य स्वयं ही कम हो जाता है । यह कथन भी निर्मूल है कि विज्ञापन के द्वारा आरामदायक व विलासिता सम्बन्धी वस्तुओं को प्रोत्साहन मिलता है । आर्थिक सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाएँ सदैव बढ़ती रहती हैं और वह उन्हें पूरी करने का प्रयास करता है । इसके अतिरिक्त जहाँ तक मिथ्या वस्तुओं के प्रचार का प्रश्न है वह किसी सीमा तक ठीक है किन्तु इसमें सरकार का यह कर्तव्य है कि वह गलत करने वालों को दण्ड दे तथा उन पर प्रतिबन्ध लगा दे । ऐसा करने से यह निश्चित है कि विज्ञापन में सुधार होगा और उ के क्रेता और विक्रेता दोनों को ही लाभ होगा । इस सम्बन्ध में समाचार पत्रों के सम्पादकों का भी यह कर्तव्य है कि वह असत्य व निर्मूल विज्ञापनों को न छापें ।

विज्ञापन की मर्यादायें या सीमायें

यह ठीक है कि विज्ञापन के अनेकानेक लाभ हैं व आधुनिक युग में उसका महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु वह कोई ऐसा जादू नहीं है जिसके द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त हो जाए । विज्ञापन की सीमाओं का अध्ययन भली प्रकार से करना चाहिए । ये सीमाएँ निम्नलिखित हैं ।

1. जनता की रुचि के विरुद्ध कोई भी विज्ञापन सफल नहीं हो सकता है, चाहे वह कितना भी आकर्षक व प्रभावशाली हो ।

2. सफल विज्ञापक को अपना विज्ञापन बारम्बार प्रकाशित करते रहना चाहिए जिससे कि वस्तु की माँग निरन्तर बनी रहे । केवल एक या दो बार के विज्ञापन से ही सफलता नहीं मिल सकती है ।

3. विज्ञापन द्वारा वस्तु की माँग में वृद्धि की जा सकती है, किन्तु बिक्री कला के अभाव में वह व्यर्थ सिद्ध होता है । व्यवसाय में सफलता पाने के लिए विक्रय-कला व विज्ञापन दोनों का ही महत्व है ।

(4) विज्ञापन अर्थशास्त्र व मनोवैज्ञानिक नियमों के अनुसार होना चाहिये अन्यथा सफलता नहीं मिलेगी।

(5) बुरी एवं हानिप्रद वस्तुओं का विज्ञापन स्थिर नहीं रह सकता है।

अन्त में, यह कहना निरर्थक न होगा कि विज्ञापन की उपर्युक्त सीमायें होते हुए भी वह अपने उपासकों को लाभ अवश्य पहुँचाता रहेगा। आधुनिक युग में विज्ञापन का महत्व केवल एक देश में या नगर में ही सीमित नहीं है बल्कि वह अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है।

प्रश्न 2. विज्ञापन की विभिन्न पद्धतियों का उल्लेख कीजिए तथा उनके गुण-दोषों का विवेचन कीजिए।

Enumerate the various methods of advertisement and discuss their merits and demerits.

अथवा

विक्रय संवर्द्धन हेतु अपनाये जाने वाले विज्ञापन के आधुनिक माध्यमों का वर्णन कीजिए। भारतीय दशाओं में विज्ञापन के कीमती साधन को प्रयोग करने की सम्भाविताओं का विवेचन कीजिए। क्या ऐसे विज्ञापन से कोई लाभ हो सकेगा ?

Describe the modern methods of publicity for sales promotion. Discuss the possibility of adopting costly media of publicity in Indian conditions. Will such a publicity bear any fruit ?

अथवा

व्यापारिक विज्ञापन के कौन-कौन से सम्भव साधन हैं ? उन बातों का वर्णन करो जो उनके चुनने में सहायक होती है।

What can be the possible media of business advertisement ? Enumerate the factors that govern their selection.

अथवा

विज्ञापन के आधुनिक माध्यमों में से कुछ का वर्णन कीजिए तथा उनके परस्पर गुण-दोषों का परीक्षण कीजिए।

Describe some of advertising media and examine their merits and demer its.

उत्तर—विज्ञापन करने के अनेकानेक उपाय हैं। प्रत्येक विज्ञापन का माध्यम हर एक व्यापारी के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है। यह उसके व्यापार क्षेत्र, ग्राहकों की रुचि, वस्तुओं के आकार व विज्ञापन की आर्थिक सामर्थ्य आदि बातों पर निर्भर है। बड़े-बड़े व्यापारों में विज्ञापन के लिए एक अलग विभाग खोल दिया जाता है और वह विभाग एक विज्ञापन-विशेषज्ञ की अध्यक्षता में कार्य करता है।

विज्ञापन के साधनों का वर्गीकरण विभिन्न लेखकों ने विभिन्न प्रकार से किया है। **श्री एस० आर० डाबर** के मतानुसार वह वर्गीकरण निम्नलिखित है—

1. परिचय पत्र (Circular letters)
2. समाचार-पत्र व पत्रिकायें (Newspapers & magazines)
3. इश्तहार (Hand Bills)
4. विवरण पत्रिकायें व सूची-पत्र (Prospectus and catalogue)
5. चल-चित्र व नाट्य आयोजन (Cinema and theoritical Programmes)
6. दुकान की खिड़की पर प्रदर्शन (Shop window display)
7. प्रदर्शनियाँ (Exhibitions)
8. रेडियो (Radio)

आधुनिक समय में विज्ञापन के साधनों का वर्गीकरण उपर्युक्त ढंग से नहीं किया जाता है। वह वर्गीकरण निम्नलिखित है—

1. समाचार-पत्र व पत्रिकाओं द्वारा (Press Advertisement)
2. डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन (Direct Mail Advertising)
3. बाह्य या दीवारों के विज्ञापन (Out-door or Mural advertising)
4. दुकान की खिड़की पर प्रदर्शन (Shop window display)
5. मेला एवं प्रदर्शनी (Fairs and Exhibition)
6. अन्य विविध साधन (Miscellaneous advertising)

उपर्युक्त साधनों का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है—

(1) समाचार-पत्र व पत्रिकायें

समाचार-पत्र व पत्रिकाओं द्वारा विज्ञापन आधुनिक विज्ञापन का सबसे अधिक प्रचलित एवं महत्वपूर्ण साधन है। बड़ी-बड़ी व्यापारिक संस्थायें प्रायः समाचार-पत्रों द्वारा ही अपनी वस्तुओं का विज्ञापन करती हैं। इस प्रकार का विज्ञापन इस धारणा पर आधारित है कि व्यक्तियों को समाचार-पत्र पढ़ने की रुचि है तथा वे पढ़े लिखे हैं। प्रत्येक सभ्य देश में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार का समाचार-पत्र आदि अवश्य पढ़ता है। दैनिक समाचार-पत्रों एवम् व्यापारिक पत्र-पत्रिकाओं के विज्ञापन में कुछ अन्तर है। दैनिक समाचार-पत्रों का क्रय मुख्यतः दैनिक समाचार जानने के हेतु किया जाता है। इन पत्रों का महत्व केवल उसी दिन तक सीमित रहता है, जिस दिन कि वे प्रकाशित हुए हैं। किंतु व्यापारिक पत्र-पत्रिकाओं का महत्व काफी समय तक रहता है। ये पत्र साप्ताहिक, मासिक, छमाही या वार्षिक होते हैं। व्यापारिक पत्र-पत्रिकाओं में जितने भी विज्ञापन दिये जाते हैं वे आकर्षक, कलात्मक एवं विज्ञापन के दृष्टिकोण से परिपूर्ण होते है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार के विज्ञापनों का महत्व दैनिक समाचार-पत्रों में किये गये विज्ञापनों से बहुत

अधिक होता है। इसके अतिरिक्त इन पत्र-पत्रिकाओं को ग्राहक कम से कम एक सप्ताह या एक माह तक अपनी सुविधानुसार अवश्य पढ़ता रहता है। इसके अलावा, एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन पत्र-पत्रिकाओं का कागज बहुत अच्छा होता है। इसका परिणाम यह होता है कि इन पर कलात्मक ढंग से तथा रंग-बिरंगे चित्रादि द्वारा विज्ञापन किया जा सकता है। इस प्रकार से किया गया विज्ञापन ग्राहकों को बहुत शीघ्र अपनी ओर आकर्षित करता है। इन सामयिक पत्रों (Periodicals) के प्रचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है। इनमें से कुछ पत्रों का महत्व तो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी बहुत अधिक होता है।

समाचार-पत्रीय विज्ञापनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

1. वर्गीकृत विज्ञापन (Classified advertisement)

2. अवर्गीकृत विज्ञापन (Unclassified advertisement)

वर्गीकृत विज्ञापन संक्षिप्त होते हैं और प्रायः देखने वालों के लिए कम आकर्षक होते हैं। इस प्रकार के विज्ञापन उन व्यक्तियों के लिए लाभप्रद हैं जो किसी विशेष वस्तु की क्रय-विक्रय सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं या नौकरी आदि की तलाश में होते हैं। ऐसे विज्ञापनों में प्रायः वस्तुओं के नाम, विवरण पते व अन्य विशेषतायें संक्षेप में लिखी रहती हैं। आजकल कुछ समाचार-पत्रों में वर्गीकृत विज्ञापन के लिए एक पृथक स्थान नियत किया जाने लगा है जैसे "हिन्दुस्तान टाइम्स" में दूसरा पृष्ठ इसी कार्य के हेतु होता है।

अवर्गीकृत विज्ञापन साधारण पढ़ने वालों के लिए होते हैं। ऐसे विज्ञापनों के लिये कोई स्थान नियत नहीं होता है और इनको समाचार-पत्र के किसी भी पृष्ठ पर दिया जा सकता है। ये प्रायः समाचार-पत्र के पूरे पृष्ठ पर या आधे में अथवा चौथाई में दिये जाते हैं।

किसी भी समाचार-पत्र में विज्ञापन देने से पूर्व इस बात को भली प्रकार से सोच लेना चाहिए कि विज्ञापन दैनिक समाचार-पत्रों में दिया जाये अथवा किसी साप्ताहिक या पाक्षिक पत्रिका में दिया जाये। इस सम्बन्ध में उसे यह देखना चाहिए कि उस पत्रिका का प्रचार देश के किस भाग में अधिक है तथा उसके लिए वह भाग ग्राहकों के दृष्टिकोण से उपयुक्त है अथवा नहीं। विज्ञापन इस प्रकार का होना चाहिए कि पाठकगण उस ओर तुरन्त आकृष्ट हो जायें। इस सम्बन्ध में विज्ञापन की कला तथा उसकी स्थिति बहुत महत्व रखती है। विज्ञापन पाठ्य विषयों के बीच में अथवा किसी पृथक कागज पर दिया जा सकता है किन्तु एक पूरे अथवा आधे पृष्ठ का विज्ञापन बहुत शीघ्र दृष्टि में आता है। जो विज्ञापनकर्त्ता किसी विशेष वर्ग के लोगों के सम्पर्क में आना चाहते हैं उन्हें अपना विज्ञापन पत्रिकाओं द्वारा कराया जाना चाहिये। सामयिक पत्रिकायें विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के लिए छापी जाती हैं, जैसे —धार्मिक, आर्थिक, कृषि-सम्बन्धी व व्यापार सम्बन्धी आदि।

समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं द्वारा विज्ञापन कराने के लाभ एवं दोष

लाभ—1. समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं में विभिन्न प्रकार के विज्ञापन दिये रहते हैं। जब ये पत्र-पत्रिकायें परिवार में पहुँचती हैं तो परिवार में विभिन्न अभि-रुचि रखने वाले सदस्य इनको पढ़ते हैं और अपनी रुचि के अनुसार वस्तु खरीदने का निर्णय करते हैं। इस प्रकार बिक्री में वृद्धि होती है।

2. समाचार-पत्रों का प्रचार बहुत व्यापक होता है। विज्ञापन द्वारा दूर-दूर के उपभोक्ताओं को वस्तु के विषय में ज्ञान कराया जा सकता है।

3. विज्ञापन को अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार छोटा व बड़ा किया जा सकता है। जो विज्ञापक अधिक व्यय करना चाहें वे समाचार-पत्र के पूरे पृष्ठ पर विज्ञापन करा सकते हैं।

4. समाचार-पत्रों समाज के सभी वर्गों के लोगों के पास पहुँचता है जैसे धनी वर्ग, मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग आदि। अत: वस्तु की माँग बाजार में शीघ्र ही हो जाती है। धीरे-धीरे यह माँग सब वर्गों के लोगों में फैल जाती है।

5. विश्वसनीय समाचार-पत्रों में जो विज्ञप्तियाँ प्रकाशित की जाती हैं उनमें जनता का विश्वास रहता है और माल की किस्म इत्यादि के विषय में पूर्ण जानकारी किये बिना उस माल को प्रत्यक्ष आदेश देकर मँगा लिया जाता है।

6. दिन-प्रतिदिन बदलने वाले फैशन का ज्ञान समाचार-पत्रों द्वारा ही होता है। विशेष रूप से महिला वर्ग इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं का आश्रय लेता है।

दोष—1. समाचार-पत्रों द्वारा किये गये विज्ञापन का प्रभाव दीर्घकालीन नहीं होता है क्योंकि समाचार-पत्रों के पढ़ने के बाद उन्हें अधिक समय तक काम में नहीं लाया जाता है।

2. अधिकतर विज्ञापन एक ही स्याही से किये जाते हैं। अत: वे कम आकर्षक होते हैं।

3. विभिन्न क्षेत्र के व्यक्तियों के सम्पर्क में आने के लिए विभिन्न समाचार-पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन कराना आवश्यक है क्योंकि एक समाचार-पत्र के प्रचार का क्षेत्र प्राय: सीमित ही होता है। विभिन्न पत्रों में विज्ञापन कराने में व्यय बहुत अधिक होगा।

2. डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन

डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन माध्यम के अन्तर्गत उन सभी साधनों को सम्मि-लित कर लिया गया है जो व्यवसाय को अपने वर्तमान, गत तथा सम्भावित ग्राहकों से सम्पर्क स्थापित कर सकने में सहायता प्रदान कर सकते हैं। इसके अन्तर्गत विक्रय-पत्र व लिफाफे, गश्ती-पत्र, सूची-पत्र, विवरण-पत्रिका, प्रकाशित साहित्य व कार्ड्स आदि सम्मलित किये जाते हैं। इस पद्धति में सूची-पत्र, विवरण-पत्रिका, प्रकाशित साहित्य व गश्ती-पत्र इत्यादि ग्राहकों को डाकखाने द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उन्हीं के नाम

पर भेजते हैं। इस विज्ञापन पद्धति का प्रयोग किसी भी क्षेत्र में किया जा सकता है। इसका प्रयोग एक स्थान पर तथा दूर के देशों में भी किया जा सकता है। आजकल डाकघरों की संख्या में वृद्धि होने तथा अन्य सुविधायें प्राप्त होने के कारण यह पद्धति अधिक प्रभावपूर्ण एवं महत्वशाली हो गई है। इनमें उन ग्राहकों की सूची बना ली जाती है जिनसे समय-समय पर डाक द्वारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना होता है। यदि किसी विशेष वस्तु के लिए केवल किसी विशेष श्रेणी के व्यक्तियों तक ही सूचना पहुँचानी होती है, तो इस पद्धति का ही प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति का प्रचार विदेशों में (अमेरिका व इंगलैंड में विशेष रूप से) बहुत पाया जाता है। आजकल भारतवर्ष में भी इस पद्धति का अवलम्बन किया जाने लगा है।

डाकखाने द्वारा विज्ञापन करने की प्राय: दो पद्धतियां प्रचलित हैं—प्रथम पद्धति के अनुसार प्रत्येक ग्राहक के पास विक्रय-पत्र (Sales letter) छपवाकर भेजे जाते हैं और उनसे पृथक रूप से वस्तुओं के विषय में विनती की जाती है। दूसरी पद्धति में एक ही विषय के सूची-पत्र व लीफलैट्स (Leaflets) आदि छपवा लिए जाते हैं और वे प्रत्येक ग्राहक के पास पृथक-पृथक रूप से भेज दिये जाते हैं। इस प्रकार पत्रों को लिखते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए। इनका कलात्मक ढंग से आकर्षक बनाना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इनमें क्रेता की ओर ही विशेष ध्यान केन्द्रित रहता है। अत: उसकी आवश्यकता की जानकारी होना बहुत आवश्यक है। इस प्रकार के पत्रों को भेजने का उद्देश्य वस्तु बेचने की अपेक्षा ग्राहकों की रुचि संबंधी जानकारी प्राप्त करना है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि इन पत्रों की भाषा बहुत नम्र तथा आकर्षक हो। ऐसा करने से ग्राहकों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ेगा और वे वस्तु को खरीदने के लिए तत्पर हो जायेंगे। इन पत्रों में वस्तु की विशेषताओं पर विशेष जोर डालना चाहिए। विज्ञापक को चाहिए कि वह इन पत्रों पर अपनी सील का प्रयोग न करे बल्कि उन पर हस्ताक्षर करे जिससे कि वे पत्र व्यक्तिगत मालूम हों। पत्र को अधिक प्रभावशाली व विश्वसनीय बनाने के लिए यह भी लिखा जा सकता है कि यदि वस्तु पसन्द न होगी तो वह पूरे मूल्य पर वापिस कर ली जायेगी। ऐसा करने से ग्राहक के अन्दर वस्तु के गुणों के प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। कभी-कभी कुछ विज्ञापक अपने पत्र के साथ एक जवाबी कार्ड भी रख देते हैं। ग्राहक उन पर माल मंगाने का आदेश लिख सकता है। ऐसा करने से ग्राहकों के ऊपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।

कुछ विज्ञापक अपनी वस्तुओं के प्रचार के लिए अनेक छोटी-छोटी विवरण पत्रिकायें छपवाते हैं और उन्हें व्यापारियों व ग्राहकों के बीच में बांटते हैं। इन पत्रिकाओं में वस्तु के गुण, मूल्य, कटौती (Discount) की दर व अन्य शर्तें स्पष्ट रूप से लिखी रहती हैं। इनको तैयार करने में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—

(1) पुस्तिका का बाहरी आवरण सुन्दर, आकर्षक एवं प्रभावी हो।

(ii) पुस्तिका में लगाया गया कागज अच्छा हो तथा उस पर की छपाई भी आकर्षक होनी चाहिए ।

(iii) उसमें प्रत्येक आवश्यक सूचना को लिख देना चाहिए ।

(iv) पुस्तिका का आकार छोटा होना चाहिए जिससे कि उसे डाक द्वारा सुविधापूर्वक भेजा जा सके ।

(v) भाषा अत्यन्त सरल तथा विशिष्ट (Technical) शब्दों से रहित होनी चाहिए ।

लाभ— डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन करने के अनेक लाभ हैं जिनमें से निम्न-लिखित लाभ प्रमुख हैं—

1. भारत जैसे बिशाल देश में जहाँ समाचार-पत्र सुगमता से नहीं पहुंच सकते हैं वहाँ डाक द्वारा विज्ञापन करना ही लाभप्रद एवं सुगम होता है ।

2. विज्ञापक अनावश्यक विज्ञापन व्यय से बच जाता है क्योंकि ये पत्र व पत्रिकायें उन्हीं ग्राहकों के पास भेजी जाती हैं जिनको उस वस्तु को खरीदने में अभि-रुचि होती है ।

3. पत्रों की संख्या को आवश्यकतानुसार कम या अधिक किया जा सकता है । इस पद्धति का प्रयोग वे व्यवसायी भी कर सकते हैं जिनके आर्थिक साधन सीमित होते हैं ।

4. एक ही सूची-पत्र में अनेक वस्तुओं के गुणों का समावेच कर दिया जाता है । यह वात समाचार-पत्रों में सम्भव नहीं हैं क्योंकि उनमें स्थान के अनुसार विज्ञापन व्यय लिया जाता है ।

5. इस माध्यम से ग्राहकों को सदैव स्थायी रखा जा सकता है ।

दोष—1. समाचार-पत्रों की अपेक्षा इस पद्धति में व्यय कुछ अधिक होता है । क्योंकि पत्र-पत्रिकाओं को आकर्षक बनाने में बहुत-सा रुपया व्यय करना पड़ता है ।

2. यह पद्धति उस संस्था के लिए अधिक उत्तम नहीं है जहाँ ग्राहकों की संख्या बहुत अधिक होती है क्योंकि ऐसी दशा में प्रत्येक ग्राहक पृथक-पृथक व्यवहार करना सम्भव नहीं है ।

3. ग्राहकों के पते प्राय: बदल जाया करते हैं किन्तु विज्ञापक को इसकी सूचना या तो मिलती ही नहीं है और यदि मिलती भी है तो बहुत देर से । अतएव बिज्ञापक के द्वारा भेजा हुआ साहित्य कभी-कभी बेकार है ।

4. अशिक्षित व्यक्तियों के लिए यह पद्धति बेकार है ।

3. बाह्य या दीवारों के विज्ञापन

साधारणतः दीवारों पर किये जाने वाले विज्ञापन को "बाह्य-विज्ञापन,' कहते है । विज्ञापन करने की यह एक अत्यन्त प्राचीन प्रणाली है, किन्तु आधुनिक युग में इसका महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है । यह कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे

पोस्टर, विशिष्ट वेष-भूषा में व्यक्ति, बस, ट्रेन तथा ट्राम के विज्ञापन, सैंडविच बोर्ड व विद्युत प्रकाश पुंज आदि।

टिप्पणी—इस प्रकार के विज्ञापन की पद्धति का वर्णन प्रश्न नं. 4 में देखो।

(4) दुकान की खिड़की पर प्रदर्शन

दुकान को अन्दर तथा बाहर से सुशोभित करना भी एक प्रकार के विज्ञापन का अच्छा साधन है। ऐसा करने से ग्राहक दुकान की ओर आकृष्ट होते हैं और बिक्री में वृद्धि होती है। प्रायः दुकानों के अन्दर शीशे की अलमारियाँ लगा दी जाती हैं और उनमें विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का प्रदर्शन किया जाता है। ग्राहक उन्हें दूर से देखकर आकृष्ट होता है और बाद में उस माल को खरीद भी लेता है। त्यौहारों के अवसर पर इन अलमारियों को विशेष रूप से सजाया जाता है। कुछ वस्तुओं की माँग सामयिक होती है। ऐसी वस्तुओं का प्रदर्शन भी समयानुसार ही किया जाना चाहिये। ऐसा करने से व्यवसाय में विशेष उन्नति होगी।

(5) मेला एवं प्रदर्शनी

वस्तुओं के विज्ञापन में मेले एवं प्रदर्शनियों का प्राचीन समय से विशेष महत्व रहा है। आधुनिक युग में परिवहन की सुविधायें प्राप्त हो जाने के कारण मेले और प्रदर्शनियों का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। संसार में कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ सामयिक अवधि में किसी न किसी प्रकार के मेले एवं प्रदर्शनी का आयोजन न किया जाता हो। आजकल तो कुछ व्यापारिक संघ के व्यक्ति समय-समय पर मेलों एवं प्रदर्शनियों का आयोजन करते हैं। इस प्रकार से वे अपनी वस्तुओं के विषय में ग्राहकों को अधिक से अधिक सूचना दे सकते हैं। 1955 ई. में दिल्ली के अन्दर एक विशाल औद्योगिक मेले (Indian Industries Fair) का आयोजन किया गया था जिसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ ग्राहकों को दिखाई गई थीं। इन मेलों एवं प्रदर्शनियों के द्वारा ग्राहक एवं बाहर से आये हुए व्यापारी को कुछ समय तक दूसरे के सम्पर्क में आने का अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है। इन मेलों एवं प्रदर्शनियों के द्वारा माल की ख्याति बढ़ती है तथा भविष्य में विक्रय वृद्धि भी होती है। इन मेलों और प्रदर्शनियों में दूर-दूर के लोग आया करते हैं। वे प्रत्येक वस्तु को बड़े ध्यान से देखते हैं और अपनी आवश्यकता की वस्तु को या तो वे उसी समय खरीद लेते हैं या उस व्यापारी का नाम व पता लिख लेते हैं। थोड़े समय से विज्ञापन प्रदर्शनी की गाड़ियों (Exhibition Trains) द्वारा भी किया जाने लगा है। ये गाड़ियाँ प्रत्येक स्टेशन पर कुछ समय के लिये रुका करती हैं। उन्हें देखने के लिए वहाँ हजारों व्यक्ति जाते हैं। इन गाड़ियों में जो व्यापारी यात्रा करते हैं वे अपनी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का परिचय जनता को दे देते हैं। इससे व्यवसायी एवं उपभोक्ता दोनों को ही लाभ होता है।

(6) अन्य विविध साधन

विज्ञापन के अन्य साधनों में निम्नलिखित साधन प्रमुख हैं—

(i) **इश्तहार**—जब किसी वस्तु के विज्ञापन को किसी विशेष स्थान पर अथवा विशेष वर्ग के लोगों में करना होता है तो इश्तहार का सहारा लेना पड़ता है। इनका आकार छोटा व आकर्षक होता है। एक आदमी किसी विशेष स्थान पर कुछ इश्तहारों को लेकर खड़ा हो जाता है और जो भी व्यक्ति उसके पास से गुजरता है वह उसको एक इश्तहार दे देता है। ऐसा करने से वह व्यक्ति वस्तु की ओर आकृष्ट होता है और बिक्री में वृद्धि होती है।

(ii) **चल-चित्रों में स्लाइड्स दिखाना**—आजकल एक बहुत बड़ी संख्या में लोग सिनेमा देखने जाया करते है। वस्तुओं के प्रचार करने का यह एक अच्छा अवसर होता है। खेल आरम्भ होने से पूर्व तथा मध्यान्तर के बाद में कुछ देर तक विभिन्न वस्तुओं की विज्ञापन सम्बन्धी स्लाइड्स प्रस्तुत की जाती है। उसमें उस वस्तु के गुण व मिलने का स्थान बताया जाता है। जनता इस प्रकार के विज्ञापनों से बहुत प्रभावित होती है।

(iii) विज्ञापन चित्रपट—बड़े-बड़े उत्पादनकर्ता अपनी वस्तु को प्रसिद्ध करने के लिए छोटी-छोटी फिल्मों का निर्माण कराते हैं और उनको विभिन्न स्थानों पर जनता को दिखाते हैं। विज्ञापन करने की यह पद्धति बहुत खर्चीली है। इसका प्रयोग प्रत्येक व्यापारी नहीं कर सकता है।

(iv) **रेडियो द्वारा**—रेडियो द्वारा किया गया विज्ञापन बड़ी तेजी के साथ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रसार पाता है। इस प्रकार के विज्ञापन सीलोन आकाशवाणी केन्द्र से खूब किये जाते हैं। जनता को अधिक संख्या में अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए विज्ञापन के बीच-बीच में फिल्मी गानों का आयोजन रहता है।

(v) **आकाश लेखन**—इस प्रथा में वस्तुओं का विज्ञापन आकाश के अन्दर धुएँ द्वारा लिख दिया जाता है। यह प्रथा युद्ध से पूर्व प्रचलित थी। अधिक खर्चीली होने के कारण अब इस प्रथा का महत्व बहुत कम हो गया है।

(vi) **लाउडस्पीकर द्वारा**—इस साधन का प्रयोग अधिकतर शहरों में ही किया जाता है। इसके द्वारा वस्तुओं का प्रचार गली-गली में किया जा सकता है।

(vii) **नमूने बाँटकर**—आजकल विज्ञापन का यह साधन बहुत लोकप्रिय हो गया है। जिस वस्तु का विज्ञापन करना होता है उसका नमूना उपभोक्ताओं को थोड़ी-सी मात्रा में मुफ्त बाँट दिया जाता है। ऐसा करने से उपभोक्ताओं को वस्तुओं के गुणों का ज्ञान हो जायगा। ऐसे नमूने विक्स (Vicks) तथा मिठाई की गोलियाँ बेचने वाले खूब बाँटा करते हैं। कुछ व्यापारी अपनी वस्तु खरीदने वाले ग्राहकों को कुछ सुन्दर पदार्थ मुफ्त बाँटा करते हैं जैसे कलैण्डर, डायरियां, पैंसिलें, गुब्बारे व शीशे के ग्लास आदि। यद्यपि यह प्रथा बहुत खर्चीली है किन्तु आधुनिक युग में इसका महत्व बहुत बढ़ता जा रहा है।

(viii) **कूपन (Coupon) पद्धति**—इस पद्धति के अनुसार वस्तु लेने वाले को एक कूपन की कापी दे दी जाती है। वह उन वस्तु को खरीदने के लिये अन्य ग्राहक बनाने की चेष्टा करता है और उन कूपनों को उनको बेच देता है। जब सब कूपन मिल जाते हैं तो विक्रेता क्रेता के पास खरीदी हुई वस्तु के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु उपहार स्वरूप देता है जैसे—बटुआ, डायरी, पैन, घड़ी व अंगूठी आदि। इससे ग्राहक को खरीदने के साथ-साथ कुछ प्रलोभन भी रहता है।

विज्ञापन-साधन के चुनाव में ध्यान रखने योग्य बातें

विज्ञापन के विभिन्न साधनों का अध्ययन कर लेने के पश्चात् इस बात का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है कि विज्ञापन साधन के चुनाव में किन-किन बातों को ध्यान में रखा जाये। विज्ञापन साधन का चुनाव बहुत सावधानी से सोच-समझकर निश्चित करना चाहिए। इसका चुनाव करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि विज्ञापन उन व्यक्तियों तक पहुँच जाये तथा उनके द्वारा पढ़ा जाये जिनके लिये वह किया जा रहा है। कभी भी बिना सोचे-विचारे किसी भी विज्ञापन की नकल नहीं करनी चाहिये। विज्ञापन का साधन अपनाते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

1. इसका चुनाव वस्तु की प्रकृति तथा सेवा के अनुसार होना चाहिए। यदि जन-साधारण के उपयोग की वस्तु का विज्ञापन करना है तो उसको समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में करवाना चाहिए और यदि विज्ञापन किसी विशेष वर्ग के लोगों के लिए करना है तो उससे सम्बन्धित पत्र तथा पत्रिकाओं को अपनाना चाहिए।

2. इस बात का अध्ययन करना चाहिए कि विज्ञापन का कौनसा साधन जनता के लिए प्रभावी एवं चित्ताकर्षक होगा। इसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि विज्ञापन को रंगीन चित्रों द्वारा कराना है अथवा साधारण रीति से।

3. विज्ञापन ग्राहक की शिक्षा, योग्यता, संस्कृति और स्वभाव के अनुसार होना चाहिए।

4. यह भी सोचना चाहिये कि विज्ञापन के लिए किस माध्यम को जनता अधिक पसन्द करती है तथा किस माध्यम का प्रचलन बहुत अधिक है।

5. माध्यम में स्थिरता होनी चाहिये जिससे विज्ञापन का प्रभाव ग्राहक के मस्तिष्क पर बहुत गहरा पड़े और वह कुछ समय तक उसे आकर्षित भी करता रहे।

6. विज्ञापन करने से पूर्व उसमें होने वाले व्यय के सम्बन्ध में पूछताछ कर लेनी चाहिए और उसे अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही करना चाहिए।

7. किस प्रकार के विज्ञापन से वही बात पुनः प्रभावशाली ढंग से दोहरायी जा सकती है, इस पर भी विचार कर लेना चाहिये।

8. विभिन्न साधनों को अपनाने में कितने समय तक हम विज्ञापन से लोगों को आकर्षित कर सकते हैं, इसका विचार कर लेना चाहिये।

9. विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों को उनकी शिक्षा, धर्म, मनोवृत्ति व आर्थिक स्थिति के अनुसार बाँट लेना चाहिए और फिर यह देखना चाहिए कि विज्ञापन का कौनसा साधन किस वर्ग के लिए अधिक प्रभावशाली रहेगा।

10. उस स्थिति का अध्ययन करना चाहिए जबकि विज्ञापन जनता पर अधिक प्रभाव डाल सकता है जैसे एक स्वस्थ व्यक्ति पर दवाइयों के विज्ञापन का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा किन्तु यदि इसी विज्ञापन को किसी बीमारी के समय किया जायेगा तो उसका असर निश्चित होगा। इसी प्रकार यदि पढ़ने-लिखने सम्बन्धी कोई विज्ञापन छुट्टियों में किया जाता है तो विद्यार्थीगण उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देंगे क्योंकि वह समय उनके आमोद-प्रमोद का है। अत: इस सम्बन्ध में पहिले से ही विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है।

11. विज्ञापन करने से पूर्व इस बात पर भी विचार करना चाहिये कि विज्ञापन के तार्किक (Argumentative), सुझावात्मक (Suggestive) व शिक्षात्मक (Educational) आदि तत्वों में से कौन-सा चुना जाये।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखने से किसी विशेष माध्यम की उपयुक्तता व अनुपयुक्तता का पता सुगमता से लग जाता है।

प्रश्न 3. विज्ञापन की अच्छी प्रतिलिपि में कौन-कौन सी विशेषतायें होनी चाहिए? विज्ञापन के लाभों का वर्णन कीजिए।

What characteristics should a good copy of advertisement possess? Describe the advantages of advertising.

अथवा

(अ) विज्ञापन की एक अच्छी प्रति के आवश्यक तत्व बतलाइये।

(ब) विज्ञापन-माध्यम अपनाते समय विज्ञापकों को किन-किन बातों का ध्यान रखना चहिए।

(a) Discuss the essentials of a good copy of advertisement.

(b) What points should an advertiser consider in selecting the medea of advertisement?

उत्तर—विज्ञापन के लिए प्रभावशाली एवं यशस्वी प्रति का तैयार करना सबसे कठिन कार्य है। इस कार्य को अधिकतर अच्छे-अच्छे कलाकारों (Artists) द्वारा सम्पन्न कराया जाता है क्योंकि विज्ञापन का प्रमुख उद्देश्य जनता को अपनी ओर आकर्षित करना होता है। विज्ञापन के अन्दर मानवी प्रवृत्ति के विभिन्न घटकों को प्रभावित करने की इतनी क्षमता होनी चाहिए कि मनुष्य उसको पढ़ते ही उस ओर आकृष्ट हो जाये। इन विज्ञापनों में वस्तु की संक्षिप्त कहानी होनी चाहिए जिससे कि उस वस्तु के गुणों का पूर्ण परिचय तुरन्त ही मिल जाये। विज्ञापन के लिए प्रति बनाने से पूर्व उपभोक्ताओं की प्रवृत्ति का अध्ययन कर लेना

नितान्त आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि सस्ते मूल्य वाली कपड़ा सीने की मशीन का विज्ञापन करना है तो उसमें मितव्ययिता पर अधिक जोर डालना चाहिए और यदि अधिक मूल्य वाली मशीन का विज्ञापन करना है तो उसके टिकाऊपन, मजबूती और प्रयोग में सुगमता आदि बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये। अतः स्पष्ट है कि एक अच्छे विज्ञापन की प्रति में ग्राहकों को आकर्षित करने और उनके मन में एक कौतूहल उत्पन्न करने तथा विश्वास पैदा करने की चुम्बकीय शक्ति होनी चाहिए।

विज्ञापन की एक प्रभावशाली एवं यशस्वी प्रति के अन्दर निम्नलिखित तत्वों का समावेश होना चाहिये—

1. **आकर्षक तत्व** (Attention Value)—विज्ञापन-प्रति ऐसी होनी चाहिए जिसे अधिक व्यक्ति देख सकें और उसकी ओर आकृष्ट हो सकें। प्रायः जनता की वस्तु ग्रहण-शक्ति अर्थात् किसी वस्तु को देखने की शक्ति दुर्बल होती है। अतः जब तक उनका ध्यान किसी वस्तु द्वारा आकृष्ट नहीं कराया जाता है, तब तक वे उसकी ओर देखने का लेशमात्र भी प्रयास नहीं करते हैं। इस आकर्षण को उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि विज्ञापन की प्रति में कोई न कोई नवीनता (Novelty) लाई जाये। आज के युग में लोग अपने-अपने कार्यों में व्यस्त रहते हैं और जब तक उनके सामने कोई ऐसी आकर्षित वस्तु नहीं आती है जिसे पढ़ने या देखने के लिये वे बाध्य हों, तब तक वे उसे नहीं देखते हैं। अतः विज्ञापन की प्रति के अन्दर शोभा तत्व (Display value) का पूरा ध्यान रखना चाहिए। विज्ञापन-प्रति को शोभापूर्ण बनाने के लिए उसमें विभिन्न रंगों का प्रयोग, भिन्न-भिन्न टाइप का प्रयोग, कोई चित्र तथा आकर्षक शीर्षक आदि का प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करने से स्वभावतः ही जनता का ध्यान विज्ञापन की ओर आकर्षित हो जाता है। चित्र सदैव ऐसे होने चाहिए जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध विज्ञप्ति से ही हो जैसे साबुन के विज्ञापन के लिए उसका चित्र देना आदि। ये चित्र सुन्दर और आकर्षक होने चाहिए जिससे कि उपभोक्ता उन्हें देखकर प्रभावित हों। विज्ञापन के शीर्षक भी आकर्षक एवं मोटे शब्दों में लिखे जाने चाहिए जैसे—

"दिवाली के शुभावसर पर मूल्य में भारी कमी
आप सदा जनताब्रांड शूज पहिनें"

ध्यानाकर्षण करने के लिए विज्ञापन में मौलिकता का होना बहुत आवश्यक है। इसके अभाव में पाठकगण उसकी ओर आकृष्ट नहीं होंगे। कुछ विज्ञापनों को बाजार अथवा सड़कों पर किया जाता है। उनके लिए यह आवश्यक है कि रात्रि में विद्युत प्रकाश का आयोजन किया जावे। ऐसा करने से रात्रि के समय में भी दर्शक-गण उन्हें देखकर आकृष्ट हो सकते हैं। उनमें चमकने वाले रंगों का प्रयोग करने से वे और भी प्रभावशाली बन जायेंगे।

इसके अतिरिक्त, विज्ञापन के लिए समुचित स्थान का होना भी बहुत आवश्यक है। विज्ञापन को कभी भी अन्य विज्ञापनों के बीच में नहीं लगाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से लोगों का ध्यान उस ओर आकृष्ट नहीं होता है। विज्ञापन की प्रति को उसी प्रकार के विज्ञापनों की अपेक्षा अधिक आकर्षक बनाना चाहिए। अच्छा तो यह है कि विज्ञापन को सम्पूर्ण पृष्ठ पर कराया जाये। इससे सम्पूर्ण पृष्ठ पर केवल एक विज्ञापन ही चमकता है।

2. **सूचक तत्व** (Suggestive Value)—पढ़ने वालों का ध्यान विज्ञापन की ओर आकर्षित करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि विज्ञापन-प्रति ऐसी हो जिसके द्वारा पढ़ने वालों के मन में विचार तरंग उत्पन्न हो अर्थात् विज्ञापन प्रति के अन्दर वस्तु के गुणों का उल्लेख करना बहुत आवश्यक है। विज्ञापन में इस बात को स्पष्ट रूप से लिख देना चाहिए कि कोई व्यक्ति अमुक वस्तु को क्यों खरीदे जैसे—

"कपड़े सफेद धुले हैं —उजले धुले हैं क्योंकि
मैंने **सनलाइट साबुन** का प्रयोग किया है।"

कभी-कभी वस्तुओं के गुणों को छोटी-छोटी कहानियों द्वारा समझाया जाता है। "हार्लिक्स" (Horlicks) और "शर्बत रुहअफजा" का विज्ञापन छोटी-छोटी कहानियों द्वारा ही किया जाता है। ये कहानियाँ बहुत ही रोचक भाषा में लिखी जाती हैं तथा संक्षिप्त होती हैं। इन कहानियों के साथ-साथ आवश्यक स्थानों पर रंग-बिरंगे चित्र भी दिए जाते हैं। ऐसा करने से ये विज्ञापन बहुत अधिक प्रभावशाली बन जाते हैं।

3. **ध्यान को बराबर आकर्षित रखना** (Holding the Attention)—एक विज्ञापन-प्रति में केवल यही गुण होना चाहिए कि वह वाचकों का ध्यान ही आकर्षित नहीं करे; बल्कि उसमें यह गुण भी होना चाहिए कि वह आकर्षण बराबर बना रहे। इसके अतिरिक्त विज्ञापन को देखकर पढ़ने वाले के मन में जिज्ञासा भी उत्पन्न होनी चाहिये। इसके लिए विभिन्न विचारों को एक स्थान पर केन्द्रित करना आवश्यक है। एक ही विज्ञापन को बार-बार अनेक मनमोहक ढंगों से दोहराना चाहिये जिससे कि लोगों को उस वस्तु की याद बनी रहे।

4. **स्मरण तत्व** (Memorizing Value)—विक्रय वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु का स्मरण सदैव बना रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विज्ञापन को बार-बार दोहराना चाहिये। ऐसा करते समय विज्ञापन प्रति में इस प्रकार के सूक्ष्म और आकर्षक शब्दों को लिखना चाहिए जो वाचकों के मन में सुगमता से घर कर लें तथा उन्हें वे शब्द आसानी से याद हो जाने चाहिये जैसे लाल इमली प्रोडक्ट्स व "टाटा प्रोडक्ट्स" आदि।

5. **विश्वास तत्व** (Conviction Value)—विज्ञापन-प्रति में लिखी गई भाषा ऐसी होनी चाहिये जिसे पढ़कर वाचक उस पर तुरन्त ही विश्वास कर ले।

विश्वास उत्पन्न करने के लिये उसमें निश्चित उदाहरणों का समावेश होना आवश्यक है। ग्राहकों में विज्ञापन के प्रति विश्वास उत्पन्न करने के लिये सुदृढ़ शर्तों का लिखा जाना भी आवश्यक है जैसे 'माल पसन्द न आने पर पूरा मूल्य वापिस दिया जायेगा' आदि। असली और नकली माल की पहिचान के लिए कुछ व्यापारिक चिन्हों का होना भी आवश्यक है। उन्हें देखकर ग्राहक को यह विश्वास हो जाता है कि वह जो वस्तु खरीद रहा है असली है अथवा नहीं जैसे 'लाल इमली' के विज्ञापनों और कपड़े पर भेड़ का चित्र बना रहता है आदि।

6. **भावनात्मक तत्व** (Sentimental Value)–विभिन्न व्यक्ति तथा जातियों के लोगों की भावनायें भिन्न होती हैं। एक सफल विज्ञापक को चाहिए कि वह उन सब की भावनाओं का ध्यान रखकर विज्ञापन-प्रति तैयार करे। विज्ञापन-प्रति में कोई भी शब्द ऐसा नहीं होना चाहिए जो उनकी भावना पर चोट पहुँचाए। यदि ऐसा हुआ तो वह विज्ञापन व्यर्थ हो जायगा क्योंकि पाठकगण इस ओर आकृष्ट नहीं होंगे। भोज्य पदार्थों के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से लागू होती है। कुछ भोजनालयों पर यह बोर्ड लगा रहता है, "यहाँ शुद्ध तथा शाकाहारी भोजन मिलता है।" जो मनुष्य मांसाहारी नहीं हैं वे इसकी ओर अवश्य आकृष्ट होंगे किन्तु जो लोग मांसाहारी होते है उनका ध्यान इस ओर बहुत कम आकृष्ट होगा। इसके अतिरिक्त कुछ भावनाएँ राष्ट्रीय विचारों से भी सम्बन्ध रखती हैं जैसे 'हिन्द सायकिल' व 'हिन्द मोटर साइकिल' आदि। जिन व्यक्तियों की भावनायें राष्ट्रीय होती हैं वे इस ओर बहुत आकृष्ट होते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि विज्ञापन-प्रति बनाते समय सब की भावनाओं का ध्यान रखा जाए।

7. **शिक्षा तत्व** (Educational Value)–विज्ञापन-प्रति में यह भी गुण होना चाहिए कि वह शिक्षाप्रद हो, अर्थात् उसमें इस बात को स्पष्ट रूप से लिख देना चाहिए कि अमुक वस्तु का उपभोग किस प्रकार से करना चाहिए। बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं जो वस्तु के विज्ञापन से तो प्रभावित होते हैं किन्तु उसमें प्रयोग विधि न देने के कारण उसके ग्राहक नहीं बनना चाहते। आजकल इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। 'ऐस्प्रो' के विज्ञापन में उसमें गुण व सेवन विधि दी जाती है आदि।

8. **प्रवृत्ति तत्व** (Instinctive Value)–प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृत्ति अलग-अलग होती है। वह उन्हीं प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर किसी वस्तु को खरीदा करता है। अतएव एक विज्ञापन-प्रति में यह गुण होना चाहिए कि वह विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को जागृत करे। ये प्रवृत्तियाँ मुख्यतः निम्नलिखित हैं—

1. स्वरक्षा प्रवृत्ति (Self Preservation Instinct)–इसमें भोजन, गर्मी व स्वास्थ्य आदि की प्रवृत्ति होती है।
2. खाद्य प्रवृत्ति (Food Preservation Instinct)
3. पैतृक प्रवृत्ति (Parental Instinct)

4. संचय प्रवृत्ति (Hoarding Instinct)
5. वस्त्र प्रवृत्ति (Clothing Instinct)
6. आखेट प्रवृत्ति (Hunting Instinct)
7. कौतूहल प्रवृत्ति (Curiosity Instinct)
8. बैठे से बेगार भली प्रवृत्ति (Something for nothing Instinct)

9. **हृदय लालायित कर देना** (Evoking response)—प्रत्येक व्यापारिक विज्ञापन का उद्देश्य बिक्री-वृद्धि करना होता है। अतः विज्ञापन-प्रति ऐसी होनी चाहिए जो वाचकों को इस बात के लिए लालायित कर दे कि वे अमुक वस्तु अवश्य ही खरीदें।

10. **विज्ञापन सम्बन्धी बुराइयों का परित्याग**—विज्ञापन-प्रति में उन सब बुराइयों का परित्याग कर देना चाहिए जो बहुधा विज्ञापनों में पाई जाती हैं। जैसे आडम्बरपूर्ण एवं मिथ्या कथन, क्लिष्ट भाषा, अतिशयोक्ति व असत्य बातें आदि। इन बुराइयों को दूर करने से विज्ञापन-प्रति बहुत अच्छी समझी जायेगी।

11. **विज्ञापन का खाका** (Lay-out)—विज्ञापन-प्रति तैयार करते समय उसका उचित खाका खींचना एक महत्वपूर्ण बात है। इसमें विज्ञापन का विषय, चित्र व व्यापार चिन्ह आदि का विवेचन रहता है। खाका बनाने का उद्देश्य यह रहता है कि उसके द्वारा प्रेस के कम्पोजिटर यह समझ लें कि उन्हें समाचार-पत्र के किस स्थान पर कितने आकार में किस चित्र व व्यापार चिन्ह के साथ वह विज्ञापन छापना है। विज्ञापक को विज्ञापन का एक निश्चित खाका बनाकर देना चाहिए तथा इसको बनाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(i) विज्ञापन का विषय बड़े अक्षरों में छपे जिससे कि पढ़ने वाले उस ओर आकृष्ट हों।

(ii) विषय संक्षिप्त एवं स्पष्ट होना चाहिये।

(iii) छाया-चित्र व अन्य चित्र उपयुक्त स्थानों पर दिए जायें तथा उनसे आवश्यक भावों की पूर्ति होनी चाहिए।

(iv) दो मुद्रित पंक्तियों के बीच में पर्याप्त स्थान छोड़ना चाहिए जिससे कि प्रत्येक अक्षर स्पष्ट रूप से पढ़ा जा सके।

(v) पंक्तियों की लम्बाई $2\frac{1}{4}''$ से $3''$ तक होनी चाहिए।

(vi) विज्ञापन में नवीनता होनी चाहिए।

(vii) विषय का विभाजन विभिन्न परिच्छेदों (Paragraphs) में किया जाना चाहिए जिससे कि वाचकों की दृष्टि उस ओर स्थिर रह सके।

(viii) एक विज्ञापन में एक वस्तु की विज्ञप्ति ही होनी चाहिए अन्यथा उसका महत्व जाता रहता है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि एक विज्ञापन-प्रति बनाते समय उसमें उपरोक्त सभी बातों का ध्यान रखा जाय। विज्ञापन प्रति में ये बातें नहीं पाई जाती हैं, वे अभीष्ट

उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहती हैं अर्थात् उन पर कितना रुपया भी व्यय क्यों न किया जाय उनसे बिक्री वृद्धि नहीं होती।

प्रश्न 4. बाह्य विज्ञापन से आपका क्या आशय है ? इसके स्वरूप, गुण एवं दोषों को समझाइये।

What do you mean by Mural Advertising? Explain its forms, merits and demerits.

अथवा

बाह्य-विज्ञापन या दीवार पर किये जाने वाले विज्ञापन पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखो।

Write a short essay on 'Mural Advertising.'

उत्तर—साधारणतः दीवारों पर किये जाने वाले विज्ञापनों को बाह्य-विज्ञापन (Mural advertising) कहते हैं। विज्ञापन की यह प्रणाली बहुत प्राचीन है। यदि इस पद्धति को ही विज्ञापन का आरम्भ कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि वर्तमान उन्नति के पूर्व जब मुद्रण कला का आरम्भ नहीं हुआ था तथा विज्ञापन के आधुनिक साधन भी उपलब्ध नहीं थे, उस समय पत्थर की शिलाओं पर ही विषयों के प्रलेख खुदवाकर प्रचारार्थ स्थान-स्थान पर लगवाये जाते थे। प्राचीन रोम तथा मध्यकालीन इङ्गलैण्ड के व्यापारी इस प्रथा को अपनाते थे। वे अपने दरवाजों के बाहर एक बड़ा बोर्ड लगाते थे, जिस पर वे उन वस्तुओं का विवरण लिखते थे जिनका कि वे व्यापार करते थे। विज्ञापन के प्रसार के कारण इन साधनों में पर्याप्त विकास और सुधार हुआ। इस सम्बन्ध में यह बता देना अनुचित न होगा कि बाह्य विज्ञापन में केवल दीवार पर लगाये जाने वाले विज्ञापन ही सम्मिलित नहीं किये जाते हैं बल्कि निम्नलिखित को भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत लाते हैं—पोस्टर्स चिपकाना बिजली द्वारा सजावट करना, बस-ट्रेन तथा ट्राम के विज्ञापन, सैण्डविच बोर्ड विज्ञापन व विशिष्ट वेश-भूषा आदि।

बाह्य-विज्ञापन सदैव तार्किक (Argumentative) नहीं होते हैं, बल्कि वे सुझावात्मक (Suggestive) होते हैं। इस प्रकार के विज्ञापन का सम्बन्ध कला से विशेष नहीं होता है। यह उन वस्तुओं की प्रसिद्धि के लिए उपयोग में लाया जाता है जो जन-साधारण के उपयोग की होती हैं। ऐसी वस्तुयें जो किसी वर्ग के ही काम आती हैं जैसे मशीन आदि, वे इस श्रेणी में नहीं आती हैं। इसमें जन-साधारण के उपयोग की वस्तुयें जैसे दवाइयाँ, साबुन, बीड़ी-सिगरेट व अन्य घरेलू सामग्री आदि सम्मिलित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त सरकस, सिनेमा, नाटक, कवि-सम्मेलन या किसी मैच इत्यादि की सूचना देना भी दीवार के विज्ञापनों के उदाहरण हैं। विज्ञापन की इस पद्धति को उस समय अपनाया जाता है जबकि उसका क्षेत्र सीमित होता है।

दीवार पर विज्ञापन अनेक प्रकार से किये जा सकते हैं जैसे स्टेशन पर या किसी अन्य जनसाधारण के स्थान पर इश्तहारों का चिपकाना, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं की दीवारों या छतों पर एवं कारखानों की चिमनियों पर बिज्ञापनों को लिखवाना या पोस्टर चिपकाना आदि। इसके अतिरिक्त, सड़कों या रेलवे लाइनों के किनारे दीवारों पर तथा वायुयान द्वारा धुएँ से अक्षर लिखना या गुब्बारों पर वस्तुओं का सूक्ष्म विवरण देकर उड़ाना व होल्डर, पेंसिल, ब्लाटिंग पेपर, डायरियों व कलैण्ड़रों पर रंगीन चित्र व वस्तु का विवरण लिखकर भी विज्ञापन किया जाता है। आजकल इस प्रकार का विज्ञापन कुछ व्यक्तियों को विशिष्ट वेश-भूषा पहिनाकर किया जाता है। वे रंग-बिरंगे कपड़े पहिनकर और अपने हाथों में बड़ी-बड़ी छतरियों को लेकर, जिन पर विज्ञापन सम्बन्धी बातें मोटे अक्षरों में लिखी रहती हैं, नगर के प्रमुख भागों में घूमा करते हैं। कुछ व्यक्ति तो अपनी टांगों में डण्डे बांध लेते हैं ओर फिर उनकी सहायता से वे लम्बे व्यक्ति बनकर नगर में घूमा करते हैं। उनको देखकर लोगों का आकृष्ट होना स्वभाविक है। इस प्रकार के विज्ञापन अधिकतर बीड़ी व सिगरेट वाले किया करते हैं।

इस प्रकार के विज्ञापन ऐसे स्थानों पर होने चाहिये जहाँ पर व्यक्ति उनको आसानी से पढ़ सकें। वे इतने बड़े व रंग-बिरंगे अक्षरों में लिखे जाने चाहिये कि आने-जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो, चाहे वह दौड़ ही क्यों न रहा हो। ऐसे विज्ञापनों को करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि वह विवरण जो भी विज्ञापन में लिखा गया है अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट हो। इस सम्बन्ध में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि विवरण विषयानुकूल हो। विज्ञापन में इधर-उधर की बातें नहीं होनी चाहिए। उसमें यह गुण होना चाहिए कि देखने वाले उसकी ओर तुरन्त आकर्षित हों और उसे याद रखें, चाहे उन्होंने उसे एक क्षण के लिए ही देखा हो। यदि वास्तव में देखा जाये तो दीवारों के विज्ञापन सदैव समाचार-पत्र पत्रिकाओं में किये गये विज्ञापन के पूरक होते हैं क्योंकि समाचार-पत्रों में लिखा हुआ विवरण कभी-कभी याद नहीं रहता है, किन्तु जब कोई व्यक्ति उसी वस्तु के विज्ञापनों को दीवारों पर बड़े आकार एवं बड़े स्वरूप में देखता है तो उसका प्रभाव उसके मस्तिष्क पर स्थायी रूप से हो जाता है। ऐसे विज्ञापनों में निम्नलिखित तीन बातों को अनिवार्य रूप से देखना चाहिये—

1. वस्तु का नाम तथा बनाने वाले का नाम।
2. वस्तु की उपयोगिता तथा अन्य विशेषतायें।
3. वस्तु प्राप्त होने का स्थान व ट्रेड मार्क।

उपर्युक्त तीनों बातों को बताने के लिए चित्रों व बिभिन्न रंगों का प्रयोग किया जा सकता है। चित्रों के अभाव में संक्षिप्त मुहावरों व नारों का भी प्रयोग किया जा सकता है। ये नारे या वाक्य ऐसे होने चाहिए जो सुगमता से पढ़े जा सकें, तथा याद रखे जा सकें जैसे—

टगाँन बेट (TUGON BAIT)

झींगुरों को ललचाता और मारता है

या

साबुनों का राजा **"कांति सोप"** प्रयोग करें।

दीवार पर दिये जाने वाले विज्ञापन में यह गुण होना चाहिये कि उसमें से सदैव वस्तु सम्बन्धी ध्वनि निकले। विज्ञापन को प्रभावशाली बनाने के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि मुहावरे या वाक्यांश अच्छे हों, बल्कि उनके साथ उसमें बनाने वाले का नाम व वस्तु के गुणों का विवरण भी देना चाहिए। इन सब कार्यों को करने में विशेष सावधानी तथा बुद्धि की आवश्यकता होती है। अतः जो भी विज्ञापन तैयार किया जाये उसे बहुत सोच-समझ के पश्चात् बनाना चाहिए।

अब हम इस बाह्य विज्ञापन के विभिन्न रूपों का अध्ययन करेंगे—

1. **पोस्टर्स** (Posters)—पोस्टर्स या विज्ञापन-पत्रों से हमारा तात्पर्य विज्ञापन का सन्देश रखने वाले ऐसे छपे हुए कागजों, कार्ड बोर्डों व धातु या लकड़ी की प्लेटों से होता है जो चौराहों, रेलवे स्टेशनों, सड़क के किनारों या दुकानों के बाहर तथा भीतर लगे रहते हैं। ये काफी बड़े तथा चित्ताकर्षक होने चाहिये जिससे कि राहगीरों का ध्यान स्वभावतः ही उनकी ओर आकर्षित हो जाये। इनका कागज व रंग ऐसा होना चाहिए जो वर्षा आदि से भी खराब न हो। इसका निर्माण अच्छे कलाकारों से कराना चाहिए ताकि वे मनमोहक बन सकें। इसके अन्दर काम में आने वाले रंगों का चुनाव भी बहुत सोच-समझ के पश्चात् करना चाहिये। ये साधारण प्रचलित आकार के बनवाने चाहियें जिससे उनके आन्तरिक परिवर्तन में कोई आपत्ति न हो। पोस्टर लगाने के लिए सदैव ऐसे स्थान चुनना चाहिये, जहाँ दूसरे न लगे हों तथा राहगीरों को आते-जाते अच्छी तरह से दिखाई दे सके। यदि पोस्टर वर्षा व मिट्टी आदि के कारण खराब हो जायें तो उन्हें बदल देना चाहिये जिससे कि जनता का आकर्षण बना रहे। व्यापार के परिवर्तन के साथ-साथ पोस्टरों में भी परिवर्तन किया जा सकता है। पोस्टरों के ऊपर विद्युत प्रकाश का भी उचित प्रबन्ध करना चाहिये जिससे कि वे रात्रि के समय में अच्छी तरह से पढ़े जा सकें। प्रकाश का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए जिससे कि पोस्टरों के मूल रंग में कोई परिवर्तन उपस्थित न हो।

पोस्टरों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके द्वारा विज्ञापन को स्थानीय बनाया जा सकता है अर्थात् इनके द्वारा किसी नगर या बाजार या मोहल्ले के व्यक्तियों के ध्यान को सुगमता से आकर्षित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ये जनता को पूर्व परिचित एवं प्रयोगित वस्तुओं के बारे में याद दिलाते रहते हैं।

2. **विज्ञापन बोर्ड**—कुछ बड़े-बड़े व्यापारी अपनी वस्तु के प्रचारार्थ विज्ञापन बोर्डों का प्रयोग करते हैं। जैसे लखनऊ में स्टेशन के बाहर 'जे. बी. मंगाराम' का विज्ञापन व अन्य नगरों में 'वैद्यनाथ' व 'दन्त कान्ति मंजन' आदि का विज्ञापन। इन बोर्डों को आकर्षक बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के रंगों व चित्रों का प्रयोग

किया जाता है। इनको लगाने का उचित प्रबन्ध किया जाता है जिससे कि जनता उन्हें सुगमता से देख सके। आजकल विज्ञापन-बोर्डों की सहायता से सिनेमा आदि का खूब विज्ञापन किया जाता है।

3. **बिजली द्वारा सजावट** (Electric display)—इस पद्धति के द्वारा ग्राहक को रात्रि के समय आकर्षित किया जाता है। इसके अन्तर्गत व्यापार चिन्ह तथा व्यापारिक संस्था के नाम आदि को विभिन्न रंग के बल्बों से सजाया जाता है। इस साधन का चलन विदेशों में अधिक है। इसमें बिजली के बल्ब क्रमशः जलते-बुझते रहते हैं। इस प्रकार के विज्ञापन बहुधा ऊँचे-ऊँचे भवनों पर या सर्वोच्च दीवारों पर लगाये जाते हैं। इन विज्ञापनों का आकार निश्चित नहीं होता है, किन्तु इतना अवश्य होना चाहिए कि वे संक्षिप्त हों क्योंकि जनता के पास इतना समय नहीं होता है कि वह बड़े-बड़े विज्ञापनों को पढ़े। इसमें संक्षिप्त रूप से वस्तु का नाम व मिलने का पता लिखा रहना चाहिए। इस प्रकार के विज्ञापन स्थानीय फुटकर व्यापारियों के लिए बहुत लाभप्रद हैं क्योंकि इनके द्वारा उनकी विक्रय वृद्धि सुगमता से हो जाती है। यदि इस विज्ञापन से अधिक से अधिक लोग आकर्षित नहीं होते हैं तो इनमें किये जाने वाला व्यय व्यर्थ ही रहेगा।

4. **सैंडविच बोर्ड विज्ञापन** (Sandwitch-Board Advertising.)—इसके अन्तर्गत किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के चारों ओर पट्टे या बोर्डों के विज्ञापन लिखकर एक पंक्ति में परेड सी कराते हुए निकाला जाता है। इनकी वेश-भूषा भी विचित्र होती है। इस प्रकार के विज्ञापनों के उदाहरण 'मेपोल' सिगरेट वाले, 'बन्दर छाप मंजन' का विज्ञापन करने वाले आदि हैं। ऐसे विज्ञापनों से जनता का ध्यान उसकी ओर तुरन्त आकृष्ट हो जाता है क्योंकि उन व्यक्तियों की वेश-भूषा तथा चलने-फिरने व गाने का ढंग बिल्कुल विचित्र होता है। यह पद्धति सिनेमा या नाटक के विज्ञापन में अधिक सहायक होती है। आजकल इस साधन का प्रचार बहुत कम है क्योंकि इसके द्वारा लोग आकृष्ट होते हैं किन्तु विज्ञापन का उद्देश्य सिद्ध नहीं होता है। इसके अतिरिक्त आजकल मजदूरी भी बढ़ गई है। इसके परिणास्वरूप अब यह पद्धति सस्ती नहीं रही है।

5. **बस, ट्रेन तथा ट्राम के विज्ञापन**—परिवहन के इन साधनों पर कार्ड या पोस्टर लगाकर विज्ञापन किया जाता है। प्रायः बसों व ट्राम गाड़ियों के अन्दर कुछ स्थान विज्ञापन के लिये निश्चित रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि आजकल बस तथा ट्राम परिवहन के गतिशील साधन हैं। इन पोस्टरों को ट्राम व बस के अन्दर लगाया जाता है, किन्तु यदि वहाँ स्थान रिक्त नहीं रहता है तो उनको बाहर भी लगा दिया जाता है। पथिक प्रायः यह देखने के लिए कि बस या ट्राम किस ओर से आ रही है अथवा जा रही है, उसकी ओर बड़े ध्यान से निहारता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसका ध्यान उन पोस्टरों पर भी पडता है जो बाहर की ओर लगे रहते हैं। इसके अरिरिक्त, जो विज्ञापन अन्दर की ओर लगे रहते हैं उनको जनता

बाहर की अपेक्षा कुछ अधिक समय तक बैठकर देख सकती है। इन अन्दर के विज्ञापनों से लाभ भी अधिक होता है। जब तक कोई यात्री बस या ट्राम में बैठकर यात्रा करता है, तब तक वह उस पोस्टर को अवश्य पढ़ेगा या देखेगा जो उसमें लगा हुआ है क्योंकि सुसज्जित और सुन्दर ढंग से किये गये विज्ञापन की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक ही होता है। इसके अतिरिक्त अन्दर की ओर जो विज्ञापन या पोस्टर लगाये जाते हैं उनमें विवरण बहुत विस्तृत रूप से दिया रहता है। ऐसा होने से जनता को अधिक लाभ होता है क्योंकि उन्हें वस्तु की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है। ऐसे विज्ञापनों से केवल नगर की जनता को ही लाभ नहीं होता है बल्कि ग्रामीण जनता भी इसका लाभ उठाती है। इसका कारण यह है कि कुछ मोटरें नगर के निकट स्थित गाँवों में भी जाती हैं। विज्ञापन का यह साधन बहुत अधिक खर्चीला भी नहीं है।

बाह्य विज्ञापन के लाभ

1. आधुनिक समय में विज्ञापन का साधन बहुत प्रचलित एवं उपयोगी है। इसके द्वारा अधिकांश जनता को वस्तुओं की सूचना सुगमता से मिल जाती है। इनके द्वारा चलते-फिरते पथिकों को भी सुगमता से आकृष्ट किया जा सकता है क्योंकि चलते समय प्राय: उनका मस्तिष्क खाली रहता है।

2. वस्तुओं के प्रति जनता की रुचि एवं विचार जानने के लिए यह एक प्रभावशाली प्रणाली है।

3. इस पद्धति के द्वारा अनेक प्रकार के विज्ञापन किए जा सकते हैं। उनमें पर्याप्त कुशलता एवं कला का उपयोग करने का अच्छा अवसर मिलता है।

4. ये विज्ञापन प्राय: मोटे-मोटे चित्ताकर्षक अक्षरों में किये जा सकते हैं। इससे लोगों को उस वस्तु की अन्य बातों की जानकारी न होने पर भी उसका नाम भली प्रकार याद हो जाता है और फिर आवश्यकता के समय उस वस्तु को खरीदने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है।

5. इसके अन्दर पोस्टरों को बहुत बड़े-बड़े आकार में लगाया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि उनको देखने व पढ़ने के लिए अधिक से अधिक जनता उनकी ओर आकृष्ट होती है।

6. यह प्रणाली स्थानीय फुटकर विक्रेताओं के लिए बहुत लाभदायक है क्योंकि इसके द्वारा वे अपनी वस्तुओं को पड़ौस के लोगों में आसानी से बेच सकते हैं और पर्याप्त लाभ उठा सकते है।

बाह्य विज्ञापन के दोष

1. बाह्य-विज्ञापत के समस्त साधन अत्यन्त खर्चीले होते हैं, अतः प्रत्येक व्यापारी इनका समुचित लाभ नहीं उठा सकता है।

2. दीवारों पर लिखे गये विज्ञापनों की भाषा प्राय: अनैतिक और भद्दी होती है। इससे जनता पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है।

3. लोग अनुत्तरदायित्व पूर्ण रीति से दूसरों के मकान की दीवार बिना उनकी आज्ञा के गन्दी करते फिरते हैं। वास्तव में यह बात शिष्टाचार के विरुद्ध है।

अन्त में कहा जा सकता है कि इस पद्धति में कुछ दोष होते हुए भी यह जनता को उन वस्तुओं की याद दिलाने के लिए सर्वोत्तम साधन है जो कि उसको प्रयोग करनी चाहिए। इस प्रकार का विज्ञापन सबसे अधिक स्थायी और पर्याप्त समय तक चल सकता है तथा अन्त में यह खर्चीला नहीं बैठता है। इस विज्ञापन की पद्धति के सम्बन्ध में यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि जो भी विज्ञापन किया जाये उसकी भाषा अत्यन्त सुन्दर व आकर्षक हो। कुरूप एवं भद्दे विज्ञापन जनता के सामने प्रस्तुत करना श्रेयस्कर नहीं है।

प्रश्न 5. विज्ञापन-साधन के नाते समाचार-पत्र व पत्रिकाओं के गुण और दोषों का तुलनात्मक वर्णन करो। एक आर्थिक साप्ताहिक में देने के हेतु किसी बीमा कम्पनी अथवा बैंक के विज्ञापन की एक प्रति तैयार करो।

उत्तर—समाचार-पत्र व पत्रिकाओं द्वारा विज्ञापन करना आधुनिक विज्ञापन का सबसे अधिक प्रचलित एवं महत्वपूर्ण साधन है। बड़ी-बड़ी व्यापारिक संस्थायें अपनी वस्तुओं के प्रचार के लिए इन्हीं का सहारा लेती हैं। इसका विस्तृत वर्णन प्रश्न नं0 2 में किया जा चुका है। यहाँ तो केवल इनके गुण व दोषों का तुलनात्मक वर्णन किया जायेगा जो कि निम्नलिखित हैं—

दैनिक समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं के विज्ञापन में कुछ अन्तर है। दैनिक समाचार-पत्रों का क्रय मुख्यत: दैनिक समाचार जानने के हेतु किया जाता है। पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर निबन्ध लिखे रहते हैं जैसे कला, शिक्षा, धर्म, साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र , वाणिज्य व जीवशास्त्र सम्बन्धी लेख आदि। इन निबन्धों का प्रकाशन पुस्तकाकार रूप में किया जाता है। इसी अन्तर के आधार पर समाचार-पत्र व पत्रिकाओं में विभिन्न गुण व दोष पाये जाते हैं।

समाचार-पत्रों में जो सूचना दी रहती है उनका प्रभाव एवं महत्व क्षणिक होता है क्योंकि समाचार-पत्रों का प्रकाशन प्रतिदिन किया जाता है। समाचार-पत्रों को पढ़ने वाला पुराने पत्रों को अगले दिन नहीं पड़ता है। अत: उसमें जो भी विज्ञापन आदि किया जाता है उसका महत्व भी केवल एक दो दिन का ही रहता है, किन्तु समाचार-पत्रिकाओं में यह बात नहीं है। उनका प्रकाशन साप्ताहिक, पाक्षिक, छमाही या वार्षिक हुआ करता है। जो अंक जितनी देर से निकलता है वह उतना ही अधिक मोटा होता है। अत: किसी भी पढ़ने वाले के लिए यह सम्भव नहीं है कि उसमें लिखे हुए सब लेखों व निबन्धों को एक दिन में ही पढ़ा जा सके। उनको पढ़ने के लिए कई दिन लग जाते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्रिकाओं का महत्व काफी समय तक रहता है। अत: इसके अन्दर जो भी विज्ञापन किया जाता है वह भी पाठकों के सामने कई बार आता है। इस प्रकार वे एक विज्ञापन को बारम्बार देखने के कारण उससे खूब परिचित हो जाते हैं।

समाचार-पत्रों का जीवन केवल एक दिवस का होता है। अतः विज्ञापन को बार-बार दोहराने की आवश्यकता पड़ती है। केवल एक बार का निकाला हुआ विज्ञापन प्रायः व्यर्थ ही जाता है क्योंकि एक बार के विज्ञापन से पाठकों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट नहीं होता है। समाचार-पत्रिकाओं में यह बात नहीं है क्योंकि उनका जीवन लम्बा होता है। उनमें एक विज्ञापन को बारम्बार दोहराने की आवश्यकता नहीं रहती है।

समाचार-पत्रों के बिकने का क्षेत्र प्रायः सीमित होता है. किन्तु समाचार-पत्रिकाओं का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है। इस कारण इनमें किया हुआ विज्ञापन दूर-दूर के लोगों के पास तक पहुँच सकता है। ऐसा होने से ग्राहकों की संख्या में वृद्धि होती है।

समाचार-पत्रों का कागज मामूली किस्म का होता है। उन पर जो भी विज्ञापन किया जाता है वह बहुत अधिक चित्ताकर्षक नहीं होता है क्योंकि उनमें जो भी चित्रादि दिये जाते हैं वे छाया द्वारा या काली स्याही के द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। इससे लोगों का ध्यान उस ओर बहुत कम आकृष्ट होता है, किन्तु समाचार पत्रिकाओं में यह बात नहीं है। उसका कागज मोटा, सफेद तथा चमकीला होता है। उनके अंदर जो भी विज्ञापन दिये जाते हैं वे बहुत चित्ताकर्षक होते हैं क्योंकि उनमें विभिन्न प्रकार के रंगों का प्रयोग किया जाता है। इनके अन्दर किये गये विज्ञापन आकर्षक, कलात्मक एवं विज्ञापन दृष्टिकोण से परिपूर्ण होते हैं।

समाचार-पत्र जन-हित के दृष्टिकोण से प्रकाशित किये जाते हैं किन्तु समाचार-पत्रिकाओं का प्रकाशन विशिष्ट वर्गों के लिए किया जाता है जैसे श्रमिक, व्यापारी, डॉक्टर, बच्चों, स्त्रियों व धार्मिक वर्गों के व्यक्तियों के लिए। इन विभिन्न प्रकार की पत्रिकाओं में इनसे सम्बन्धित विज्ञापन को ही किया जा सकता है और अपनी वस्तु का प्रचार उसी क्षेत्र में किया जा सकता है जहाँ कि वस्तु के ग्राहक बनने की सम्भावना है, किन्तु समाचार-पत्रों में यह सुविधा प्राप्त नहीं है। व्यापारिक विज्ञापन प्रायः टेक्निकल होते है जो केवल व्यापारी वर्ग के ही काम के होते हैं जैसे मशीनरी अथवा किसी नई व्यापारिक पद्धति तथा निर्माण का प्रदर्शन आदि। ये जन-साधारण के लाभ के नहीं होते हैं। इस प्रकार वस्तुओं की प्रकृति के अनुसार एक पत्रिका विशेष चुन ली जाती है और उसी में विज्ञापन कराया जाता है।

समाचार-पत्रिकाओं का प्रचलन अधिकतर उच्च स्तर व सम्भ्रांत नागरिकों के मध्य होता है। अतः उनसे बिक्री में वृद्धि होती है क्योंकि वे विज्ञापनों को देखकर शीघ्र उनकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। समाचार-पत्रों के द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है।

समाचार-पत्रिकाओं की अपेक्षा समाचार-पत्रों में कम व्यय करना पड़ता है। अतः छोटे व बड़े व्यापारी सभी उसका लाभ उठा सकते हैं।

जन-साधारण की उपयोगी वस्तुओं के विज्ञापन को समाचार-पत्रिकाओं की अपेक्षा समाचार-पत्रों में छपवाना ही हितकर है क्योंकि समाचार-पत्रिकाओं को साधारण व्यक्ति बहुत कम पढ़ पाते हैं।

दैनिक समाचार-पत्रों का प्रकाशन प्रतिदिन होने के कारण उनमें मुद्रण-संबंधी अनेक दोष रह जाते हैं। परन्तु समाचार-पत्रिकाओं का प्रकाशन अत्यन्त सावधानी से से किया जाता है।

एक साप्ताहिक पत्र में देने के हेतु एक बीमा कम्पनी निम्नलिखित विज्ञापन तैयार कर सकती है—

Save for..............................Future Prosperity

Insurance against...............Old age and Accident

We are always at your Service

LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

Un't--the Bombay Mutul Life Assurance Society

Head Office-BOMBAY

Branches throughout country

एक बैंक का विज्ञापन निम्नलिखित होगा—

Save ! Save !! Save !!!

THE ALLAHABAD BANK LIMITED

(BRANCHES THROUGHOUT THE COUNTRY)

Inyest your money and earn a high rate interest

paid Capital............ Rs.........

Reserve Fund........... Rs,.........

प्रश्न 6. विज्ञापन के साधनों में 'खिड़की प्रदर्शन' का महत्व बताओ तथा उन बातों को बताओ जिनको एक विशेषज्ञ विज्ञापनकर्त्ता को ध्यान में रखना चाहिए।

Discuss the value of window display as a form of publicity and state the important points which a Scientific advertiser should not lose sight of in this connection,

उत्तर—विज्ञापनों के माध्यमों में 'खिड़की प्रदर्शन' (Window Display) का बहुत महत्व है। माल के उचित प्रदर्शन से उसकी बिक्री बढ़ती है। प्रदर्शन आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक होना चाहिये। वस्तुयें ठीक प्रकार से क्रम-बद्ध होनी चाहिये। प्रदर्शन को हम दो भागों में बाँट सकते हैं—

1. वाह्य प्रदर्शन (Outside Display)

2. आन्तरिक प्रदर्शन (Inside Display)

बाह्य प्रदर्शन—इसके अन्दर दुकान का अग्रभाग तथा दुकान की अलमारियाँ सम्मिलित की जाती हैं। वाह्य प्रदर्शन से पहले प्रभाव पड़ता है। इसका अग्रभाग साफ तथा क्रमबद्ध सजा होना चाहिए। विज्ञापन के अन्य जितने भी साधन हैं उनके द्वारा जन-साधारण को वस्तु विशेष के उपयोग की ओर मानसिक ढंग से आकर्षित किया जाता है किन्तु बाह्य प्रदर्शन में दुकान की चमक को देखकर ग्राहक स्वयं उसकी ओर आकर्षित होता है। इस प्रकार के प्रदर्शन के द्वारा पिछले विज्ञापनों में जिन वस्तुओं के गुण-गान किए गए थे उनकी पुनः जागृति होती है। दुकान की बाहरी सफाई एवं सजावट को देखकर उपभोक्ताओं के मन में उसी दुकान से वस्तु को क्रय करने की भावना उत्पन्न होती है।

दुकानों की बाहरी सफाई सजावट को देखकर ही उपभोक्ता दुकान की अन्तरिक दशा का अन्दाजा लगाते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि दुकान के बाह्य-प्रदर्शन की ओर विशेष ध्यान दिया जाए। सजाने का ढंग व्यापार के अनुरूप ही होना चाहिए। यह नहीं होना चाहिये कि अन्दर व्यापार किसी चीज का हो तथा बाहर विज्ञापन व प्रदर्शन किसी और वस्तु का हो। ऐसा करने से ग्राहक उस ओर आकर्षित नहीं हो सकता है इसके लिए यह भी आवश्यक है कि जो भी वस्तुएँ सजावट के लिये दुकान के बाहर रखी जायें वे भी व्यवसाय के अनुरूप ही हों। अलमारियों का स्थान दुकान के आकार तथा विक्रय वस्तुओं के प्रकार के द्वारा निश्चित करना चाहिए। बाह्य प्रदर्शन के लिए जितनी भी अलमारियाँ या शो-केस आदि काम में लाए जायें वे सब शीशे के होने चाहिये जिससे कि उनमें रखी हुई सुन्दर वस्तुयें ग्राहकों को सुगमता से दिखाई दे सकें और उनको अपनी ओर आकर्षित कर सकें। जनता को अपनी ओर खींचने के लिए कुछ चलती-फिरती मूर्तियों का प्रदर्शन भी किया जा सकता है। प्रत्येक अलमारी में प्रकाश का उचित प्रबन्ध रहना चाहिए। ऐसा होने से रात्रि के समय भी उपभोक्तागण दुकान की ओर आकृष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकाश के द्वारा प्रत्येक वस्तु साफ और चमकदार दिखाई पड़ती है। वस्तुओं की सजावट का क्रम ऐसा होना चाहिए जिससे एक-दूसरे की सुन्दरता बढ़ सके।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विज्ञापनों के साधनों में बाह्य प्रदर्शन का महत्व बहुत अधिक है। इसके द्वारा सम्भावी ग्राहकों को दुकान की ओर सुगमता से आकर्षित किया जा सकता है। सुन्दर प्रदर्शन के प्रभाव से बिक्री की वृद्धि भी होती है।

एक विशेषज्ञ विज्ञापनकर्त्ता को ऊपर बताई गई सभी बातों का ध्यान रखना चाहिए। बाह्य प्रदर्शन एक कला है। इसके लिए बड़ी योग्यता एवं कुशलता की आवश्यकता है। विज्ञापनकर्त्ता को चाहिए कि वह सुन्दर व सस्ती चीजों का प्रदर्शन

करे जिससे कि ग्राहक उसकी ओर आकर्षित हों। इसके अतिरिक्त उसे बहुत अधिक वस्तुओं का प्रदर्शन करने का प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए। प्रदर्शित वस्तुओं को एक ही स्थान पर एकत्रित कर देना अनुचित बात है। यदि किसी विशेष कारणवश कई वस्तुओं का प्रदर्शन एक साथ किया भी जाए तो बीच-बीच में ऐसी वस्तुओं को रखना चाहिए जिनमें कोई न कोई विशेष आकर्षण अवश्य हो।

आन्तरिक प्रदर्शन—बाह्य प्रदर्शन के साथ-साथ आन्तरिक प्रदर्शन का महत्व भी बहुत अधिक है। इसका महत्व उस समय से आरम्भ होता है जब से कि ग्राहक दुकान में पैर रखता है और उस समय तक रहता है कि जब तक कि वह दुकान से बाहर आता है। दुकान के अन्दर ऐसी आकर्षक चीजों का होना आवश्यक है जिनसे प्रभावित होकर वह दुकान में घुसते ही उन्हें लेने के लिये बाध्य हो जाए। कोई भी विक्रेता किसी क्रेता को वस्तु खरीदने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है। वह तो केवल क्रेता को अच्छाई व गुण बताकर सन्तुष्ट कर सकता है। क्रेता के अन्दर वस्तु के प्रति भावना जागृत कर देना भी एक कला है जिसे कि प्रत्येक व्यक्ति सुगमता से नहीं कर सकता है। दुकान का आन्तरिक प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए कि क्रेता को वस्तु माँगने पर तुरन्त ही वह उसे मिल जाए। यदि ऐसा करने में देर लगती है तो ग्राहक के ऊपर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके अलावा ग्राहकों के आराम का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। गर्मियों के दिनों में बिजली का पंखा व ठण्डे पानी का प्रबन्ध होना नितान्त आवश्यक है। ग्राहकों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये वस्तुओं के विशेष लाभ व उपयोग मोटे-मोटे अक्षरों में दुकान के अन्दर किसी उपयुक्त स्थान पर लटकवा देने चाहिए। ऐसा करने से ग्राहकों के ऊपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि बिक्री-वृद्धि के लिए दुकान के आन्तरिक प्रदर्शन का महत्व भी बहुत अधिक है। दुकान के बाह्य प्रदर्शन को देखकर तो ग्राहक केवल उसकी ओर आकृष्ट ही होते हैं, किन्तु आन्तरिक प्रदर्शन के प्रभाव से वे वस्तुओं को खरीदते हैं। अतः इस प्रकार का प्रदर्शन बहुत महत्वपूर्ण होता है।

एक विशेषज्ञ विज्ञापनकर्त्ता को चाहिए कि वह आन्तरिक प्रदर्शन के लिए एवं ग्राहकों की सन्तुष्टि के लिए कुशल, योग्य, अनुभवी एवं चपल विक्रेताओं को रखे। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित सिद्धान्तों को भी ध्यान में रखना चाहिए—

(i) प्रदर्शित वस्तुओं को क्रमानुसार सजाना चाहिए जिससे कि वे असमान न मालूम हों तथा उन्हें देखने वाला भी थकावट महसूस न करें।

(ii) प्रदर्शन में रंगों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जिस वस्तु का प्रदर्शन किया जा रहा है वह रंगीन हो सकती है। अतएव उसका पृष्ठ भाग जिसके सहारे वह वस्तु खड़ी की जायेगी वह भी रंगीन होना चाहिए।

(iii) प्रत्येक वस्तु को इस प्रकार से रखना चाहिए कि वह प्रभावोत्पादक प्रतीत हो।

(iv) अलमारी का प्रत्येक भाग तथा उसमें रखी हुई प्रत्येक वस्तु स्पष्ट रूप से दिखाई देनी चाहिए।

(v) प्रत्येक वस्तु के साथ मूल्य कार्ड लगाना चाहिये जिससे कि दुकान में प्रवेश करते ही ग्राहक को वस्तु का मूल्य मालूम हो जाये।

(vi) प्रदर्शन के वाह्य एवं आन्तरिक रूप को आवश्यकतानुसार बदलते रहना चाहिये।

(vii) अलमारियों व शो-केशों की बनावट चित्ताकर्षक होनी चाहिए।

उपर्युक्त समस्त बातों को ध्यान में रखना एक विशेषज्ञ विज्ञापनकर्ता के लिए आवश्यक है।

प्रश्न 7. विज्ञापन के हेतु सूची-पत्र (Catalogue) बनाते समय तुम किन बातों को ध्यान में रखोगे तथा किन-किन विवरणों को नोट करोगे ? विस्तारपूर्वक बताइये।

State what points you would consider and what details you would note when preparing a catalogue for advertisement purposes.

उत्तर—डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन करने में सूची-पत्रों का बहुत महत्व है। इसका निर्माता इसके अन्दर सभी वस्तुओं के नाम, गुण, प्रयोग आदि आवश्यक तथ्यों का संक्षिप्त रूप से विवरण देता है। इसके अन्दर वस्तुओं का मूल्य तथा उस पर दी जाने वाली कटौती (Discount) का भी विवरण दिया रहता है। इसमें वस्तुओं के मिलने का स्थान तथा प्रमुख कार्यालय से उसके सम्बन्ध में पूछ-ताछ के नियम भी लिखे रहते हैं। इन सूची-पत्रों का प्रकाशन समय-समय पर होता रहता है क्योंकि वस्तुओं के दामों में प्रायः परिवर्तन होते रहते हैं। नवीन सूची-पत्रों के द्वारा ग्राहकों को वस्तुओं के उचित मूल्य के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इनमें कभी-कभी दैनिक आवश्यकता की अन्य सूचनायें भी दी रहती हैं।

सूची-पत्रों को डाक या प्रतिनिधियों द्वारा ग्राहकों के पास भेजा जाता है। ग्राहकों की एक सूची पहले से ही तैयार कर ली जाती है। इसके अन्दर समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। इसमें संभावित ग्राहकों के नाम लिख लिए जाते हैं तथा जिन पुराने ग्राहकों ने माल खरीदना बन्द कर दिया है उनके नाम काट दिये जाते हैं। ग्राहकों के पास सूची-पत्र भेजने का प्रभाव अच्छा पड़ता है। ग्राहक यह समझते हैं कि विज्ञापित वस्तुओं का विक्रेता उनकी ओर विशेष ध्यान देता है। इससे उसके अन्दर आत्म सम्मान (Self-respect) की भावना जाग्रत होती हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के सूची-पत्रों को प्राप्त करने के पश्चात् ग्राहक उन्हें अपने विश्राम के समय पढ़ता तथा देखता है। अन्य विज्ञापन के साधनों की अपेक्षा इनका गहरा प्रभाव

इन सूची-पत्रों को बड़ी सावधानी से तैयार करना चाहिए क्योंकि व्यवसाय की उन्नति इन्हीं के ऊपर निर्भर करती है। ये सूची-पत्र नवीन ग्राहकों को तथा पुराने ग्राहकों द्वारा सम्भावित व्यक्तियों को भी भेजे जाते हैं। अत: व्यापारी को चाहिये कि वह इन सूची-पत्रों को इस प्रकार से तैयार करे जिससे कि वस्तु को खरीदने की जिज्ञासा ग्राहकों के अन्दर बनी रहे। उसका प्रस्ताव इस प्रकार का होना चाहिए जिससे इस जिज्ञासा को इच्छा तथा बाद में आवश्यकता के अन्दर परिणत करने की क्षमता हो। यह भावना जागृत होने पर स्वाभाविक है कि इन सूची-पत्रों को देखकर ग्राहक अपना आदेश भेज देंगे। इन सूची-पत्रों के बनाने में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. सूची-पत्रों की पुस्तिका का आवरण सुन्दर, आकर्षण एवं प्रभावी होना चाहिए। मनुष्य का स्वभाव होता है कि वह सुन्दर वस्तु की ओर शीघ्र ही आकर्षित होता है। इस पुस्तिका का आवरण भी बहुत आकर्षक एवं प्रभावी होना चाहिए।

2. पुस्तिका के अन्दर जो भी कागज लगाया जाए वह उत्तम प्रकार का होना चाहिए। सस्ता कागज या अखबारी कागज (Newspaper) लगाने से ग्राहक के ऊपर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। कागज के अच्छा होने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उस पर की गई छपाई भी अच्छी हो। यदि छपाई खराब होगी या उसमें बहुत सी भूलें (Mistakes) रह जायेंगी तो कागज चाहे कितना भी उत्तम क्यों न हो उसका प्रभाव ग्राहकों के ऊपर नहीं पड़ेगा। अत: यह आवश्यक है कि सूची-पत्रों का कागज तथा छपाई सुन्दर तथा आकर्षक हो।

3. सूची-पत्रों में समस्त आवश्यक सूचनाओं का समावेश होना चाहिए जैसे वस्तुओं के नाम व किस्म, उनके गुण, मूल्य, कटौती की दर, रुपया भेजने की शर्तें, पैकिंग व उसका व्यय, पोस्टेज या रेल-भाड़ा तथा वस्तुओं के मिलने का स्थान आदि। यदि ये सूचनायें अपूर्ण होंगी तो ग्राहकों को माल मँगाने में बहुत असुविधा होगी। वस्तु का गुणगान करते समय भाषा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। नगद रुपया देने वाले ग्राहकों को कुछ प्रलोभन भी देना चाहिये जैसे यदि वे उधार माल खरीदेंगे तो उन्हें व्यापारिक कटौती (Trade Discount) ही मिलेगा और यदि वे नकद भुगतान करेंगे तो व्यापारिक कटौती के साथ-साथ उन्हें नकद बट्टा (Cash Discount) भी अतिरिक्त रूप से मिलेगा। इस प्रकार का प्रलोभन देने से नकद बिक्री होती है।

4. सूची-पत्रों का आकार छोटा होना चाहिए क्योंकि उनको डाक द्वारा भेजा जाता है। यदि वे आकार में बहुत बड़े होंगे तो उनको मोड़ना पड़ेगा। ऐसा करने से उनकी सुन्दरता कम हो जायगी।

5. सूची-पत्रों में जो भी भाषा लिखी जाय वह अत्यन्त सरल व रोचक होनी चाहिये क्योंकि इनको जन-साधारण व व्यापारी लोग ही पढ़ते हैं। उनमें विशिष्ट शब्दों (Technical words) का प्रयोग भी नहीं करना चाहिये।

6. सूची-पत्रों में जो भी सूचना दी जाय वह इस क्रम से होनी चाहिए जिससे कि पढ़ने वालों की रुचि बराबर बनी रहे। एक बार यदि पढ़ने में मन ऊब जाता है तो फिर उसमें रुचि उत्पन्न होना कठिन होता है।

सूची पत्रों द्वारा विज्ञापन करने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें विज्ञापन का व्यर्थ का व्यय बच जाता है क्योंकि वस्तुओं का सम्बन्ध जिन व्यक्तियों से रहता है उन्हीं के साथ सम्पर्क स्थापित किया जाता है। अतः विज्ञापन के हेतु सूची-पत्र बनाते समय एक विज्ञापक को उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

प्रश्न 8. प्रबन्ध को विज्ञापन कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता का मूल्यांकन क्यों करना चाहिए ? विज्ञापन की प्रभावोत्पादकता के मापन के विभिन्न तरीकों का वर्णन कीजिए।

Why should management evaluate advertising effectiveness ? Explain the different methods of evaluation of advertising effectiveness.

उत्तर—विज्ञापन कार्यक्रम के दौरान कई अवस्थाओं में प्रबन्धकों को चाहिए कि जो कुछ किया है अथवा भविष्य में करने की योजना है उसे सावधानी से मूल्यांकित करे। एक कम्पनी के वैज्ञानिक विज्ञापन कार्यक्रम का अन्तिम एवं पर्याप्त महत्वपूर्ण अंग विज्ञापन कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता का मूल्यांकन करना है। इस मूल्यांकन द्वारा प्रबन्धक-वर्ग यह निश्चित करता है कि हमारे विज्ञापन कार्यक्रम हमारे विज्ञापन उद्देश्यों को प्राप्त करने में किस सीमा तक सफल रहे हैं। कम्पनी के प्रबन्धकों को विज्ञापन पर व्यय करके ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए अपितु उन्हें चाहिए कि इस सम्बन्ध में कुछ किया गया है अथवा भविष्य में करने की योजना है, उसे सावधानी-पूर्वक मूल्यांकन भी करें। विज्ञापन कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता के मूल्यांकन की आवश्यकता निम्न तत्वों से भी स्पष्ट हो जाती है—

1. वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक जगत् में उत्पादक यह पता लगाने का प्रयास करते हैं कि कौनसे विज्ञापन अन्य विज्ञापनों से बेहतर है और वे क्यों बेहतर है ? विज्ञापन पर व्यय की जाने वाली धनराशि सार्थक भी हो रही है अथवा नहीं, यह ज्ञात करने के लिए विज्ञापन कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना अति आवश्यक होता है।

2. घटते हुए लाभ-मार्जिन एव बढ़ती हुई विदेशी प्रतिस्पर्धा ने प्रबन्धकों को इस बात के लिये विवश कर दिया है वे अपने समस्त व्ययों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करें।

3. विज्ञापन कार्यक्रमों के मूल्यांकन से यह भी पता चल जाता है कि विज्ञापन अभियान ने हमारे विज्ञापन सम्बन्धी उद्देश्यों की कहाँ तक पूर्ति की है। एक उत्पादक संस्था के विज्ञापन सम्बन्धी मुख्य लक्ष्य तीन होते हैं—(i) कम्पनी के बारे में जन-जागृति उत्पन्न करना, (ii) कम्पनी की अच्छी प्रतिच्छाया उत्पन्न करना और (iii) उपक्रम की बिक्री में वृद्धि करना। विज्ञापन कार्यक्रमों के मूल्यांकन द्वारा हम इनके विषय में भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

विज्ञापन की प्रभावोत्पादकता मापने के ढंग

विज्ञापन की प्रभावोत्पादकता मापने हेतु प्रयोग किये गए अनुसन्धानात्मक तरीके विज्ञापन के लक्ष्यानुसार विभिन्न होते हैं। ये तरीके निम्नलिखित हैं—

1. **सम्मति अनुसन्धान** (Opinion Research)—इस अनुसन्धान का उद्देश्य संभावित क्रेताओं में एक दिए हुए विज्ञापन अथवा इसके किसी भाग (प्रतिलेख, मुद्रण-सौन्दर्य अथवा विषय-वस्तुओं) के बारे में अपनी प्रतिक्रियायें पता लगाना है। इसके लिये क्रेताओं से या तो लिखित विवरण माँगा जा सकता है, या उनकी गोष्ठी आयोजित की जा सकती है और या कोई प्रतियोगिता आदि आयोजित की जा सकती है। सम्मति अनुसन्धानों की एक सबसे बड़ी सीमा यह है कि इससे विज्ञापन सम्बन्धी महत्व का माप नहीं हो सकता।

2. **चेतना अनुसन्धान** (Awareness Research)—चेतना अनुसन्धानों के प्रयोग नई वस्तुओं के बारे में जनता की जानकारी की सीमा मापने, ट्रेडमार्क, ब्राण्ड और वस्तु का नाम आदि की लोकप्रियता जाँचने के लिए किया जाता है। ऐसे अनुसन्धान के मुख्य लाभ हैं–मितव्ययिता समझने और सम्प्रेषण में सुविधा तथा आयोजन में सुविधा आदि।

3. **स्मृति-काल परीक्षायें** (Memory Tests)—विज्ञापन के ध्यानाकर्षण सम्बन्धी महत्व को जानने के लिए कई स्मृति-काल परीक्षायें विकसित की गई हैं। उदाहरणार्थ एक नया विज्ञापन प्रत्यर्थी (Respondent) को तीन सेकेण्डस् के लिए दिखाया जाता है और फिर अलग रख दिया जाता है। तत्पश्चात् उससे विज्ञापन के बारे में जो भी याद रहा हो, बताने के लिए अनुरोध किया जाता है। ये परीक्षायें प्राय: ऐसे विज्ञापनों की जाँच के लिए प्रयोग की जाती हैं जो कि व्यापारिक ढंग से प्रकाशित हुए हैं। इन परीक्षाओं को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है—(अ) पहिचान-परीक्षायें (Reeognition tests) एवं (ब) पुन: स्मरण परीक्षायें (Recall tests)।

(अ) **पहिचान परीक्षायें** (Recognition Tests)—ऐसे परीक्षणों में प्रत्यर्थी से किसी प्रकाशित विज्ञापन को दिखाकर यह पूछा जाता है कि इसमें से किस विज्ञापन को वह एक पूर्व उद्भासन (Previous exposure) द्वारा पहिचानता है। इस प्रकार यह एक सहायता-युक्त स्मरण परीक्षा (Aided Recall Tests) है।

(ब) **पुनः स्मरण परीक्षायें** (Recall Tests)—इसमें प्रत्यर्थी को कोई विज्ञापन नहीं दिखाया जाता किन्तु उससे पूछा जाता है "हाल ही में कौन-कौन से विज्ञापन देखे हैं ?" इस सम्बन्ध में प्रबल पुनः स्मरण (High Recall) को विज्ञापन की उत्कृष्ठ ध्यानाकर्षण शक्ति का प्रमाण माना जाता है। इसे सहायता-युक्त स्मृति परीक्षण (Unaided Recall Tests) भी कहा जाता है।

प्रथम प्रकार की परीक्षा उपभोक्ता की सच्ची प्रवृत्ति को प्रकट करने में असमर्थ है जबकि पुनः स्मरण परीक्षा अधिक समय लेने वाली और अपर्याप्त सूचना प्रदान करने वाली पद्धति है।

4. **विद्युत-चालित युक्तियाँ** (Electronic devices)—कुछ संस्थायें विभिन्न विज्ञापनों एवं विज्ञापन-धागों के प्रति होने वाली ऐच्छिक एवं अनैच्छिक प्रतिक्रियाओं को रिकार्ड करने हेतु अब विद्युत-चालित युक्तियों का प्रयोग भी करने लगी हैं। इनमें साइको गेल्वानोमीटर (Psycho galvanometer), टेक्स्टिटोस्कोप (tachistoscope) तथा इलेक्ट्रानीय स्केल आदि का व्यापक प्रयोग होने लगा है।

5. **विक्रय-विश्लेषण** (Sales analysis)—विज्ञापन कार्यक्रमों का एक मुख्य उद्देश्य विक्रय में वृद्धि करना भी होता है अतः किसी विशेष विज्ञापन अभियान के पश्चात् बिक्री पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसे जाँचने के लिए विक्रय-विश्लेषण भी किया जा सकता है। इसका सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है कूपनों की गणना करना। कूपनों की गणना करके उस वस्तु की विक्रय वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। ●●